वीणा

अनुकरणीय चरण-चिह्न

सम्पादक :
प्रो० कमलाशंकर मिश्र
प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव '

...रा

...दनिक

...म साधन

विषय-सूची

★

अक्टूबर १९५७ [अङ्क १२
आश्विन विक्रम संवत् २०१४
शक संवत् १८७९
एक प्रति का ॥)

आप "वीणा" में ही विज्ञापन क्यों छपवायें !

क्योंकि—

अपने सुन्दर और आकर्षक गेटअप के साथ "वीणा" आज लगातार ३० वर्षों से हिन्दी-संसार की सेवा कर रही है!

"वीणा" के पाठकों की संख्या आज १०,००० से भी ऊपर है।

"वीणा" सारे भारतवर्ष तथा समुद्र पार तक पहुँचती है।

"वीणा" के विज्ञापन के दर सब से सस्ते हैं।

"वीणा" ही समस्त मध्य-प्रदेश की एकमात्र प्रतिष्ठित एवं प्रतिनिधित्व करनेवाली पत्रिका है, जिसका प्रचार राजप्रासाद से लेकर छोटी से छोटी पाठशाला तक में है।

अतएव— **"वीणा" में विज्ञापन देकर**

अधिकाधिक लाभ उठाइये !

विज्ञापन के दरः—

(एक बार के लिए)

	स्थान रिक्त होने पर आवरण पृष्ठ के किसी भाग के लिए				अन्य साधारण पृष्ठों के लिए
	एक रंग में	दो रंग में	तीन रंग में		
पूरा पृष्ठ	५०)	६०)	७०)	पूरा पृष्ठ	४०)
आधा पृष्ठ	२७)	३२)	३७)	आधा पृष्ठ	२२)
चौथाई पृष्ठ	१५)	२०)	२५)	चौथाई पृष्ठ	१२)

इंचों में—

आवरण पृष्ठ के लिए—	साधारण पृष्ठों के लिए—
५) प्रति इंच प्रति कालम	३) प्रति इंच प्रति कालम

व्यवस्थापक—'वीणा' साउथ तुकोगंज, इन्दौर सिटी.

वीणा

श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर की मुख-पत्रिका

तेरे गुन-गौरव सुनाऊँ आजु भूतल पै, यातें मातु सारदे सुधारि निज 'वीणा' तू।

वर्ष ३० } आश्विन संवत् २०१४, अक्टूबर सन् १९५७ { अंक १२

महात्माजी के प्रति

★ श्री सुमित्रानंदन पन्त

निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अन्तिम दीप शिखोदय!
जिनकी ज्योति घटा के क्षणसे प्लावित आज दिगंचल,
गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय
अतःपराजय आज तुम्हारी जयसे चिर लोको ज्वल!

मानव आत्मा के प्रतीक! आदर्शों से तुम ऊपर,
निज उद्देश्यों से महान निज यश से विशद चिरंतन;
सिद्ध नहीं तुम लोक सिद्धि के साधक बने महत्तर
विजित आज तुम नरवरेण्य, गण जन विजयी साधारण

युग युग की संस्कृतियों का चुन तुमने सार सनातन,
नव संस्कृतिका शिलान्यास करना चाहा भव शुभकर,
साम्राज्यों ने ठुकरा दिया युगों का वैभव पाहन–
पदाघात से मोह मुक्त हो गया आज जन अन्तर।

दलित देश के दुर्दम नेता, हे ध्रुव, धीर धुरन्धर,
आत्म शक्ति से दिया जाति-शव को तुमने जीवन बल;
विश्व-सभ्यता का होना था नखशिख नव रूपान्तर,
राम राज्यका स्वप्न तुम्हारा हुआ न यों ही निष्फल?

विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यों का विनाश था निश्चय,
वृद्ध विश्व सामन्त काल का था केवल जड़ खँडहर!
हे भारत के हृदय! तुम्हारे साथ आज निःसंशय
चूर्ण हो गया विगत साँस्कृतिक हृदय जगत का जर्जर!

गत संस्कृतियों का आदर्शों का था नियत पराभव,
वर्ग व्यक्ति की आत्मा पर थे सौध, धाम जिनके स्थित–
तोड़ युगों के स्वर्ण-पाश अब मुक्त हो रहा मानव
जन-मानवता की नव संस्कृति आज हो रही निर्मित!

किये प्रयोग नीति सत्यों के तुमने जन जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन-हित!
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखाएँ संस्कृतियाँ वर
वस्तु विभव पर ही जनगण का भाव विभव अवलंबित!

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग में यदि आवाहन,
सबसे पहले विमुख तुम्हारे होता निर्धन भारत;
मध्य युगों की नैतिकता में पोषित शोषित-जनगण,
बिना भाव स्वप्नों को परखे कब हो सकते जाग्रत!

सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक!
धर्म नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दर्शन मत,
शासन जनगणतंत्र अचिर-युग स्थितियाँ जिनकी प्रेषक,
मानव गुण, भव रूप नाम होते परिवर्तित युगपत्!

पूर्ण पुरुष, विकसित मानव तुम जीवन सिद्ध अहिंसक
मुक्त-हुए-तुम मुक्त हुए, जन, हे जग वंद्य महात्मन,
देख रहे मानव भविष्य तुम मनुश्चक्षु बन अपलक,
धन्य तुम्हारे श्री चरणों से धरा आज चिर पावन!

मेरी मूरत

कुमारी मालती दिघे

सोच रही हूँ यदि तुम मेरे
गीतों को सुन पाते होगे,
तो क्या मेरी मूरत कोई
अपने मन में लाते होगे !

मूरत जिसमें मस्ती से लोचन मेरे मतवाले होंगे,
भोली उलझन में लहराकर कुन्तल ये घुँघराले होंगे,

स्वर्णिम सपनों की कूँची से
मेरा चित्र बनाते होगे !

मेरे व्यंगों-सी ही तीखी, मेरी भौंहें खिंचती होंगीं,
आशा-सी मधुरिम स्मिति-रेखा, अधरों पर भी सजती होगी,

तुम मेरा सुकुमार कलेवर
भावों से तुलवाते होगे !

गीतों में सब कुछ मेरा है, पर मैं मादक गीत नहीं हूँ,
प्यार भरा कण-कण में मेरे, पर मैं मधुमय प्रीत नहीं हूँ,

मैं हूँ पीर वही जिस पर तुम
रह-रहकर मुसकाते होगे !

पता—दिघे हाउस, संयोगितागंज, इन्दौर

★

रे गांव तुझे मैं छोड चला

श्री प्रभाषचन्द्र जोशी 'पंकज'

था एक दिवस, जब तेरे इस
आँगन में फूली अमराई
था एक दिवस, जब मेरे भी
मन में थी भूली तरुणाई ।

पीपल की फुनगी पर बोली
पंचम स्वर में कोयल काली;
मादक मधुऋतु के स्वागत में
कोसों तक फैली हरियाली ।

तुम इन्द्रपुरी से सुन्दर थे
मेरे मनहर रे सुखद ग्राम;
तेरे रंगीले छोरों पर
उल्लास बिछाती सुबह शाम ।

अरमान सुलगते शोलों से, मानव मन के अवसादों से,
रे गांव, तुझे मैं छोड़ चला लाचार-भरे इस भादों में ।

पता—जयलाल मुंशी का रास्ता सुर-खुरी, बाम्बे हाऊस जयपुर (राजस्थान)

२०२०२० बीस पैसे २०२०२०

प्रो० चन्द्र

★★
★

बीस पैसे चाहिए चिकूटा को। पाँच दिनों से अथक परिश्रम कर रहा है। ऊँचे से ऊँचे स्वर में वह दाता की खैर मना रहा है, 'जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला' की रट लगाये है, यह निश्चय है; पर जो आज उसे देगा उसका भला न देने वाले की अपेक्षा वह अधिक मनाएगा, क्योंकि उसे बीस पैसे चाहिए। ज्यों-त्यों कर चने-चबैने से वह चौदह पैसे इन चार दिनों में बचा पाया है, छः और चाहिए। चार दिन में जब चौदह पैसे बचा पाया है, तो आज छः........ऊँ हुँ यह कैसे होगा। मैले-कुचैले चिथड़े लपेटे, कपड़ों से अधिक गंदा शरीर, बाल और दाढ़ी बढ़ी हुई, मटमैली। सड़क के किनारे इस अशोभन की ओर, दृष्टि-निक्षेप कौन करता। 'दाता एक पैसा, धरम करो दाता, एक पैसा, मरते हुए बच्चे को एक पैसा!' वह ऊँचे से ऊँचे स्वर में रट रहा था, और चिर-अभ्यस्त वाक्यावली सुन रहा था—'ये साले सब चोर होते हैं, गिरह-कट, दिन को भीख माँगते और रात को सेंध लगाते हैं, देश के लिए कलंक हैं यह निकम्मे, सरकार इनका कुछ प्रबंध भी तो नहीं करती, ऐसा ही था तो बच्चा क्यों पैदा किया। हट्टा-कट्टा तो है काम क्यों नहीं करता।' ये तथा इस प्रकार के वाक्य सुनकर भी संतोष धारण किये रहता, भला क्यों न करता, मजबूरी का नाम सब्र है। वर्ना एक एक वाक्य का उत्तर उसके पास था, फिर उत्तर देता किसे, सुनने वाले तो लहर की तरह आगे बढ़ जाते। कोई कहता—'सट्टा लगाता है साला, इसकी गुदड़ी में मुहरें सिली हैं मुहरें, बैंक में रुपया जमा कराता है।' पर उसे आज चाहिए बीस पैसे, जिनमें से चौदह—केवल चौदह—उसके पास हैं। उसके सामने से जाते हुए नर-नारी-समुदाय से कभी वह अपनी स्थिति की तुलना भी कर बैठता है, और दुर्भाग्य की थाह पर ही उसके पैर टिक पाते हैं। वह नहीं समझ पाता कि उसमें और उनमें अन्तर कहाँ पर है। फिर उसका ध्यान अपने अभाव पर, आज के अभाव पर जा टिकता है। छोटा-सा छौना, दूध तो दूर, रोटी को भी मुहताज, कई दिनों से मौत के मुँह में खेल रहा है। डाक्टर, दवाई, ये बातें उसके जीवन की नहीं। बिचकी चाची ने कहा था मनौती मना री मनिया, बीस पैसे चढ़ा भैरों बाबा पर, अच्छा हो जाएगा तेरा बच्चा।

बच्चा याद आते ही वह तड़प उठा, न जाने कब फुटपाथ के किनारे पड़े-पड़े मनिया उसके जीवन में आ गई थी और आ गई तो टिक भी गई। न ब्याह, न शादी; न हवन, न कलमा, न गिरजा। पर दोनों पति-पत्नी बन गये, न धर्म न जाति। मानवता ही उनकी जाति। और एक दिन वह पिता भी बन गया। सोचता है, क्यों बन गया पिता वह? पर जब बन ही गया तो क्या करे। भिखारी है तो क्या हुआ, ममता की भीख तो नहीं माँगनी पड़ती। पर सोचता है कि भिखारी की औलाद बच भी गई तो भिखारी ही तो होगी। तब क्या वह उसका मरना चीते? राम राम! उसका मन मसोस कर रह गया, मुँह से आह और आँख से आँसू एक साथ बह गये।

उसने आँखें पोंछलीं, देखा छः पैसे उसके सामने पड़े हैं। उन्हें समेट कर उठाया भी। आज भूखा ही

रहूँगा, मनिया भी पानी पीकर रह जाएगी तो क्या बिगड़ जाएगा। यह बीस पैसे तो मनौती के लिए हो ही गये। अब तो बच जाएगा मेरा लाल ! हैं यह क्या ! भीड़ कैसी चली आ रही है !! तिरंगे झण्डे, झंडियाँ, जहाँ-तहाँ द्वार बने हैं कान लगाकर सुना—"महात्मा गांधी की जय ! महात्मा गांधी की जय !! भारत माता की जय !!!" वह एक ओर हटकर ठिठका, देखा एक करुणामय मुस्कान बखेरता अस्थिपंजर, एक हाथ अभय की मुद्रा में उठाये। जुलूस बढ़ा, वह भी साथ ही बढ़ा, न जाने क्या मोह भर गया उसके हृदय में। सम्भव है कंकाल ने कंकाल को पहिचान लिया हो। जुलूस की समाप्ति पर जलसा हुआ, गांधीजी भाषण दे रहे थे, चिकूटा भी सुन रहा था। गरीबों की गरीबी की बात थी, गरीबी से त्राण पाने की बात थी। गांधीजी ने झोली पसारी। "गरीबी और भुखमरी से त्राण !" उसने सोचा, "वह भी अपना हक़ अदा करे।" गरीबी को गरीबी से त्राण गरीब ही दिला सकेगा, गांधीजी ने कहा था। छीता की याद हो आई, उसने सोचा, भिखारी का बेटा जिएगा तो भिखारी तो न होगा। वह आगे बढ़ा। अपनी सारी निधि गांधीजी के चरणों में चढ़ाने के प्रयत्न में हाथ काँप गये तथा इधर-उधर बिखर गये बीस पैसे और गांधीजी के ओठों से आलोकमय मुसकान। गांधीजी ने उन बीस पैसों को नीलाम पर चढ़ा दिया। पाँच आने पैसे देखते-देखते पाँच सहस्र रुपये हो गये। उन रुपयों से महात्माजी ने चिकूटा की झोली भर दी। उसे किसी ने राह किनारे भीख माँगते फिर कभी नहीं देखा।

मालवी गीत

श्री हरीश निगम

आवो म्हारा मन की रानी, म्हारा मन में हूक उठीरी,
केशरिया केसूड़ी भूमी, सर सर चाले हवा रँगीली,
डाल रूख पे कोंपल फूटी, कोयल कूकी सुनो हठीली,
फड़ फड़ फड़ फड़ फागण फड़के, आंबा से टपकीर्‌या मोर,
मोर आम का राग सुणावे, म्हारा मन में उठे हिलोर,
मस्ती से महुवो गदराणो, टोली होन से डाल झुकीरी,
आवो म्हारी मन की रानी, म्हारा मन में हूक उठीरी,
सूनो लागे बस्ती आखी, सूनो लागे आँगन,
मन के बाले हवा बसंती, सूनो जावे फागन,
सूनो भोजन फीको पानी, सूनी सूनी राताँ,
केशरिया सूरज भी सूनो, सूनी जग की बाताँ,
काँ बैठी जीवन की साथण, म्हारी डाबी आँख दुखीरी,
आवो म्हारा मन की रानी, म्हारा मन में हूक उठीरी,

बापू का पत्रकार-जीवन

श्री गौरीशंकर गुप्त

★

मध्याह्न-काल में विश्राम करने से पहले देशी और विदेशी पत्रों के चुने हुए समाचार बापू नियम-पूर्वक सुनते थे। संसार के विभिन्न राष्ट्रों के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं विविध विविध क्रिया-कलापों का ज्ञान बिना समाचार-पत्रों के हो भी नहीं सकता। वे पत्रकारिता में अनाचार के प्रबल आलोचक थे। कभी-कभी देशी या विदेशी पत्रों में बापू के भाषणों या छोटे-बड़े वक्तव्यों को उल्टा-सीधा अर्थ कर छाप दिया जाता था। इससे भारी भ्रम फैलने के साथ-साथ उनका व्यक्तिगत और भारत राष्ट्र का भी अहित होता था। इन्हीं सब कारणों से बापू अपने लिखे या लिखवाये हुए वक्तव्यों को फिर से एक बार पढ़ लेते थे पश्चात ही छापे में जाने देते थे। जिस सूत्र से बापू को समाचार या विषयों का ज्ञान होता था उस पर अपना मंतव्य प्रकट करते समय अधिकतर उस सूत्र का वे जिक्र कर देते थे। पत्रकारिता का यह एक नवीन प्रयोग था। दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारतवर्ष तक—जहाँ भी बापू ने सार्वजनिक कार्य किये उनकी कार्य-प्रणाली में पत्रकारिता का विशेष साहाय्य रहा। पत्रकारिता तो उनकी दिनचर्या में ही आबद्ध थी। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए 'इंडियन ओपीनियन' तथा भारत में 'यंग इण्डिया', 'नवजीवन' तथा 'हरिजन' जैसे पत्रों का नियमित सम्पादन समाचारपत्र-श्रवण से ही सम्बद्ध था। यद्यपि अधिकांश उलझनों को दूर कर उनके सेक्रेटरी कार्य-योग्य विशुद्ध और मुख्य समाचार ही उनके दृष्टिपथ में आने देते थे और इस प्रकार समाचार-पत्रों में छपने वाले ढेर के ढेर छपने वाले ऊलजलूल, झूठ, सच तथा अमर्यादित ढंग से छपे समाचारों पर दृष्टि दौड़ाने से वे बच जाते थे, तथापि उनकी पैनी-दृष्टि से पत्रकारिता के ये दोष छिप नहीं पाते थे।

उनके सम्मुख लाल पेंसिल से चिन्हित पत्रों की कतरनों की ढेर की ढेर रहती थी। इस कार्य से निवृत्त होकर बापू एक झपकी लेते थे। यदि झपकी नहीं लेते तो आई हुई चिट्ठियों के उत्तर लिखवाते, आये हुए सज्जनों के प्रश्नों के उत्तर देते और खुद भी अपने 'हरिजन' पत्र के लिए लेख लिखते थे। मिलने वालों में सभी श्रेणी के लोग होते—विदेशी, सांस्कृतिक राजनीतिक, पर्यटक, पत्रकार, जिज्ञासु, संत और अपने देश के राजनीतिक नेतृवृन्द, पत्रकार, लेखक, कवि, भक्त इत्यादि। सभी को व्यक्ति और कार्य के अनुसार पहले उनके सेक्रेटरी बापू के पास उनका सन्देश पहुँचाते और समय निर्धारित कर भेंट कराते थे।

सायंकाल के भोजन से निबृत्त होकर बापू दुबारा आई हुई डाक में से छँटे हुए समाचारपत्रों को श्रवण करते थे। उन समाचारों में से जो मतलब के होते थे उनमें निशान लगवा देते थे और अपने लिखने या लिखवाने के समय उनका उपयोग करते थे। उन समाचारों में से अधिकांश का सम्बन्ध तो बापू-द्वारा प्रेरित राजनीतिक, आर्थिक एवं हरिजन-समस्या से सम्बन्धित सामाजिक बातों से ही रहता था। यदाकदा

ऐसे समाचार भी उन्हें सुनने को मिल जाते थे जो जानबूझ कर उनके जनकार्य के विरोधी दलों द्वारा गढ़े या प्रचारित हुआ करते थे। ऐसे समाचारों के द्वारा फैलते हुए भ्रम का भी उन्हें अपनी शैली में निराकरण करना पड़ता था। विदेशी शासन-काल में भारतीय समस्या का अतिरंजित रूप विदेश के पत्रों में छपता, झूठे प्रचारात्मक लेख निकला करते और कभी-कभी उत्तरदायित्व-पूर्ण प्रतिष्ठित पत्रों में अग्रलेख या टिप्पनियाँ तक निकल जातीं। इस प्रकार के समाचारों के वे अभ्यस्त से हो गये थे, फिर भी यथासाध्य ऐसे समाचारों की उपेक्षा करते रहने पर भी कुछ का प्रतिवाद उन्हें करना ही पड़ता था और ऐसे स्थलों पर समाचारों को चिह्नित कर दिया जाता या कतरन के रूप में बापू की फाइल में सम्मिलित कर दिया जाता था। किसी समाचार का व्यक्तिगत पत्र लिख कर किसी का अपने साप्ताहिक 'हरिजन' में अथवा किसी का महादेव भाई की लेखनी से विदेशी पत्रों में प्रतिवाद छपता रहता था। पाकिस्तानी पत्र 'डॉन' तथा भारतीय साम्यवादी दल के साप्ताहिक 'जनयुग' की कतरनें बापू के निकट रखी जाती थी। विरोधी पत्रों के सत्य और उचित तर्कों को वे आदर के साथ मानते थे और व्यक्तिगत रूप से अपना अभिमत भी देते थे। उपर्युक्त विरोधी पत्रों के समाचारों को विशेष ध्यान देकर वे सुनते और उन पर लिखने या वक्तव्य देने के निमित्त उन्हें चिह्नित करवाते थे।

शरीर-श्रम के द्वारा मानसिक श्रम को क्षेत्र बना कर पूरे डेढ़-दो घंटे बापू नित्य रात्रि में भी कार्य-रत रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर तो कई-कई घंटे कार्य-रत रहते थे, लेकिन साधारण अवस्था में इतना तो नियमपूर्वक कर ही लेते थे। 'हरिजन' पत्र के लिए अधिकतर मौनव्रत वाले सोमवार को वे लिखते थे, फिर भी नित्य ही कुछ न कुछ उसके लिए करना हीं पड़ता था। व्यर्थ समझे जाने वाले पत्रों को यद्यपि उनके सेक्रेटरी छोड़ देते थे; तथापि आवश्यक पत्र ही इतने अधिक होते थे कि उनके उत्तर लिखने और लिखवाने में अधिक योग देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त हरिजन-समस्या से सम्बन्धित योजना, आधारभूत वर्धा शिक्षा-योजना से सम्बन्धित कार्यपद्धति पत्र-व्यवहार और इसी विषय को लेकर मिलने आने वाले शिक्षा-शास्त्रियों के तर्क और प्रश्नों के उत्तर, शासन सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रत्येक प्रादेशिक राज्य के मंत्रियों और प्रादेशिक कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों के सलाह-मशविरे सरीखे कार्य बापू को व्यस्त किये रहते थे। कभी-कभी तो वे बहुत रात तक लिखते रह जाते थे। जब एक हाथ लिखते-लिखते काफी थक जाता तब दूसरे हाथ से लिखना प्रारम्भ कर देते थे। बापू में इतनी विलक्षणता, इतनी अमोघ शक्ति, कार्य क्षमता तथा शील इत्यादि गुणों का सागर भरा था कि उनके प्रत्येक कार्य को देखकर आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता था और इसी कारण उनमें दैवी शक्ति के आधान का आभास होना कोई अस्वाभाविक कल्पना नहीं समझी जाती थी। उनके तिरोहित होने के कुछ ही समय बाद विश्व के महान् जर्मन वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने ठीक ही कहा थाः—"आने वाली पीढ़ियां जब महात्मा गांधी का इतिहास पढ़ेंगी तब वे कह उठेंगी कि इस पृथ्वी पर हाड़-मांस का एक ऐसा भी पुतला कभी चलता-फिरता था।"

बापू की सदा यही चेष्टा रहती थी कि नौ बजे तक कार्य समाप्त कर शयन करने चले जायें, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता था। फिर भी संसार के बड़े-बड़े कार्य व्यस्त राजनीतिज्ञों की अपेक्षा अधिक सफलता के साथ और विना विशेष सहायक के ही वे अपने दैनिक कार्यों की शीघ्र पूर्ति कर लिया करते थे। इतना अधिक उन्हें लिखना पड़ता था कि उनके स्थान पर यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो इस विज्ञान युग के सौकर्य से लाभान्वित होता और शॉर्ट हैण्ड तथा टाइपराइटर वाले कार्य-रत रहा करते। अपनी प्रकृति और विशेष सिद्धान्त के अनुसार बापू नये आविष्कार और यंत्र इत्यादि से उतने ही समय तक काम लेते थे, जितने समय तक वह अत्यन्त आवश्यक होता। नोआखाली-

(शेष पृष्ठ ५८१ पर)

कला के कक्ष में

प्रो० श्री आनंदनारायण शर्मा

मानवता के इतिहास में कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो युग-युग से पूछे जाते रहे हैं और प्रत्येक युग ने उनका उत्तर अपने ढंग से देने का प्रयास किया है। इन उत्तरों में उस युग की मान्यताएँ और कल्पनाएँ, विश्वास और सपने, संक्षेप में संपूर्ण जीवन-दर्शन निहित रहा करता है। कला, नीति और जीवन के संबंध का प्रश्न भी कुछ वैसा ही है। इसको लेकर सदियों से विचार-विमर्ष होता आया है, प्रायः विद्वानों के बीच उग्र वाद-विवाद भी हुए हैं, अनेक प्रकार के परस्पर-विरोधी मत सामने लाये गये हैं, पर आज तक किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका। यह कभी न समाप्त होने वाला विवाद जहाँ एक ओर इस प्रश्न के महत्व का संकेत करता है, वहाँ दूसरी ओर बार-बार हमें इसका नये सिरे से समाधान ढूँढ़ने की भी प्रेरणा देता है। नीचे हम कला-विषयक कुछ सिद्धांतों को लेकर इस प्रश्न को तनिक निकटता से देखने का प्रयास करेंगे।

यहाँ यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि 'कला' शब्द का जिस अर्थ में हम आज प्रयोग करते हैं, वह अर्थ हमने पश्चिम से ग्रहण किया है। प्राचीन भारतीय साहित्य में 'कला' का प्रयोग ऐसे हस्त-कौशल के लिए किया गया है, जिसका उद्देश्य चमत्कार-प्रदर्शन मात्र होता था। इससे अधिक किसी बड़े अर्थ की संभावना उसमें नहीं की गई है। इसलिए हमारे तत्वद्रष्टा मनीषियों ने 'साहित्य संगीत कला विहीन'; कहकर साहित्य और संगीत को सामान्य कलाओं से पृथक् माना है, क्योंकि इनका उद्देश्य मात्र प्रसादन नहीं है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी दास कर्म से लेकर अंगरागलेपन की कला तक का तो उल्लेख है, किंतु काव्य को इन चौंसठ कलाओं में स्थान नहीं दिया गया है। यहाँ हम कला अथवा ललित कला शब्द को अँग्रेजी के 'फॉइन आर्ट्स' का पर्याय मानकर प्रयुक्त कर रहे हैं, जिनके अंतर्गत वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला, एवं काव्य-कला, में पाँच भेद किये जाते हैं। अतएव कला-संबंधिनी स्थापनाओं के लिए भी हमें कुछ पाश्चात्य विद्वानों के मतों की ही परीक्षा करनी होगी।

कला-सम्बन्धी सबसे पहला मत हमें यूनानी दार्शनिकों, विशेषकर अरस्तू का प्राप्त है। उनके अनुसार कला का मूल तत्व अनुकरण में निहित है, यानी श्रेष्ठकला वही है, जो नैसर्गिक सौंदर्य का अनुकरण कर जीवन की भ्रांति उत्पन्न करे। स्पष्ट ही, यह उस समय की बात है, जब मानव-मस्तिष्क इतना विकसित और संश्लिष्ट नहीं हो पाया था और मनुष्य अपने जीवन के तत्वों के संकलन के लिए सीधी तरह प्राकृतिक उपादानों का ऋणी था। तब तक उसने प्राकृतिक, उपादानों पर विजय तो नहीं ही पाई थी, उसकी शक्तियों को अच्छी तरह समझ भी नहीं सका था और इसीलिए वह प्रकृति का आज्ञाकारी विनीत अनुचर मात्र था। आज यह बात असंदिग्ध रूप से घोषित की जा चुकी है कि श्रेष्ठ कला प्रकृति की केवल जड़ अनुकृति नहीं है, उसमें मानव कृतित्व का भी कुछ अंश अवश्य ही सम्मिलित है। उदाहरण के लिए, किसी एक दृश्य को कैमरे की आँखों से उतारा

जाए और फिर उसे ही कोई चित्रकार अपनी तूलिका के द्वारा कैनवास अथवा अन्य किसी आधार-फलक पर साकार करे तो कला की दृष्टि से दूसरे चित्र का महत्व अधिक होगा, यद्यपि जहाँ तक कोरे अनुकरण का प्रश्न है, पहला मूल के अधिक निकट का हो सकता है। विचार करने पर दूसरे की उत्कृष्टता का कारण यह है कि प्रथम जहाँ मूल दृश्यावली की यांत्रिक प्रतिकृति है, वहाँ दूसरे में मानवीय आवेगों के समावेश का अवकाश अधिक है। कोई कुशल चित्रकार जब किसी मर्मछवि की कला-पूर्ण झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास करता है तो वह यथार्थ को हू-ब-हू कागज पर उतार कर ही संतोष नहीं करता। वह मूल सौंदर्य में अपनी ओर से कुछ जोड़ घटाव भी करता है और इस प्रकार उसमें अपने अंतर के अमूल भावों को मूर्त रूप देने का प्रयास करता है, प्रकृति के रिक्तांश की पूर्ति कर देता है। तो परिणाम यह निकला कि कला यथार्थ का केवल दर्पण नहीं, वह एक महत्तर यथार्थ का सृजन भी है।

विचारकों का एक दूसरा दल है जो कला में नीति और उपयोगिता वाद के सिद्धान्त पर बल देता हुआ स्वीकार करता है कि कला मुख्यतः जीवन के लिए है, बाद में किसी दूसरे प्रयोजन की सिद्धि के लिए। जो जीवन के परिष्कार में किसी तरह हाथ नहीं बँटाती, वह कला बंध्या है। इस विचार के सबसे प्रबल समर्थक टाल्सटाय ने तो यहाँ तक कह डाला है—"कला ईश्वर या सौंदर्य की किसी रहस्यपूर्ण कल्पना की अभिव्यक्ति नहीं है, (यद्यपि दार्शनिकगण यही कहते हैं), न तो यह खेल है, जिसमें मनुष्य अपनी संगृहीत शक्ति का अतिरिक्त अंश निकालता है (यद्यपि सौंदर्यशास्त्र के ज्ञाता शरीर विज्ञानवादी यही कहते हैं); न तो बाह्य संकेतों द्वारा मनुष्य के भावों की अभिव्यक्ति है, न वह आनन्दप्रद वस्तुओं की रचना है और वह आनन्द तो नहीं ही है, वरन् वह मानवों में ऐक्य का साधन है जो उन्हें एक ही भावना से ग्रथित करता है और व्यक्तियों के तथा मानव जाति के कल्याणार्थ जीवन और प्रगति के लिए अनिवार्य है।" (कला क्या है?—पाँचवाँ परिच्छेद)

इसके विपरीत क्रोचे और उसके अनुयायी स्पिनगार्न मानते हैं कि 'कला का उद्देश्य विशुद्ध कला के अतिरिक्त कुछ नहीं। कला-मात्र सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति है और सौंदर्य अपना प्रयोजन आप है। उसे अपने से इतर किसी प्रयोजन की आवश्यकता नहीं होती। कला के साथ नैतिकता का सम्बन्ध जोड़ना एक ऐसी अंधपरम्परा है, जिसे अब हम पूरी तरह छोड़ चुके हैं।' इस प्रसंग में एक कहानी याद आती है। अँग्रेजी के प्रसिद्ध कथाकार ऑस्कर वाइल्ड पर उनके एक उपन्यास 'दि पिक्चर ऑफ़ डोरियनग्रे' के प्रकाशनोपरांत इसलिए मुकदमा चलाया गया कि कुछ लोगों के अनुसार उक्त पुस्तक अनैतिकता और अश्लीलता का प्रचार करती थी। जिस दिन इस पुस्तक पर बहस आरम्भ हुई उस दिन दर्शक-दीर्घा ठसा ठस भरी हुई थी। वादी पक्ष के वकील ने वाइल्ड महोदय से पूछा—"महाशय क्या आप बता सकते हैं, आपकी यह पुस्तक नैतिक है अथवा अनैतिक?"

इस पर वाइल्ड ने बड़ी निर्भीकता से उत्तर दिया—"साहित्य अथवा कला में नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न नहीं उठ सकता। यह पुस्तक या तो अच्छी लिखी हुई हो सकती है या बुरी! अब आप बताएँ, इसे किस कोटि में रखना पसंद करेंगे?"

और जैसा कहा जाता है, इस उत्तर के बाद वाइल्ड निर्दोष समझकर छोड़ दिये गये।

क्रोचे ने अपनी पुस्तक 'सौंदर्य शास्त्र' में इस बात पर बहुत अधिक बल देकर कहना चाहा है कि कला अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। क्रोचे अभिव्यक्ति के साथ 'सुन्दर' विशेषण जोड़ना भी पसन्द नहीं करता, क्योंकि उसके अनुसार जो अभिव्यक्ति 'सुन्दर' नहीं है, वह 'अभिव्यक्ति' ही नहीं है। अभिव्यक्ति के पूर्ण होते ही कला का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। कलाकार के लिए यह तनिक भी आवश्यक नहीं कि वह हर बार अपनी रचना के लिए कोई

उदात्त एवं शिक्षाप्रद विषय ही चुने। वह सामान्य विषयों, जैसे रेल के इंजन का धुआँ और सिगरेट की पन्नी के टुकड़े आदि को भी लेकर यदि अपनी सहानुभूति शब्दों, रँगों अथवा रेखाओं के माध्यम से पाठक या दर्शक के अंतःकरण तक उतार देता है तो उसकी कला सफल मानी जायगी। क्रोचे का यह सौंदर्यवादी सिद्धान्त औद्योगिक क्रांति और कल-कारखानों की वृद्धि के विरोध में सामने आया। जैसा इरविन एडमन ने अपनी पुस्तक 'आर्ट्‌स ऐंड दि मैन' में कहा है, "यह सौंदर्य की उत्तरदायित्व से शून्य खोज उन्नीसवीं शताब्दी के कार्यव्यग्र, नीरस जीवन की प्रतिक्रिया थी। कला के इस कल्पना-प्रधान रूप में तत्कालीन मनुष्य की थकी हुई और बेचैन आत्मा ने शांति पाने का प्रयास किया, ईसाई आचारवाद के आतंक से पीड़ित मनुष्य को थोड़ी देर के लिए राहत मिली।

अब यदि हम उपर्युक्त दोनों मतों की समीक्षा करें तो पाएँगे कि दोनों में ही आंशिक सत्य को अत्युक्ति पूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है। सुविधा के लिए पहले दूसरे मत को ही लेना उपयुक्त होगा। 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का समर्थन दो प्रकार से किया जा सकता है। स्रष्टा के पक्ष में इसका अर्थ यह है कि उत्कृष्ट कला का सर्जन किसी बाहरी दबाव से प्रेरित होकर नहीं किया जा सकता। कलाकार जब अपने भीतर की घनीभूत वेदना अथवा आनन्द को अपने हृदय में ही समेटकर नहीं रख पाता और छेनी, तूलिका, स्वरों अथवा शब्दों के माध्यम से उसे प्रकट करने को व्यग्र हो उठता है तो हमें उत्तम कला-कृतियाँ प्राप्त होती हैं। अतः कला कलाकार की आन्तरिक भावाकुलता का विग्रह मात्र है। भोक्ता के पक्ष में इसका अर्थ यह है कि कला की परीक्षा सर्वप्रथम सौंदर्यशास्त्र की कसौटी पर की जानी चाहिए, बाद में किसी अन्य शास्त्र के द्वारा उसे जाँचा-परखा जा सकता है। और इस परीक्षा की प्रणाली यह है कि हम यह देखने से पहले कि 'क्या' कहा जा रहा है, इस बात को पूर्वग्रह-रहित होकर देखने का प्रयास करें कि 'कैसे' कहा जा रहा है।

कला की प्रेरणा सामान्य नीतिशास्त्र की अपेक्षा अधिक गहरी होती है। इसलिए ऊपरी दृष्टि से कभी-कभी कलाकृतियाँ स्वीकृत नीति सिद्धान्तों की अवहेलना करती भी दीख सकती हैं। पर केवल इसीलिए उनका महत्व खंडित नहीं होता। अजंता के अलभ्य चित्रों में रँगों और रेखाओं के कुशल अंकन को देखकर जो मुग्ध नहीं होते, बल्कि उनमें नारी और पुरुष की उद्दाम मौन लिप्सा की झलक पाते हैं अथवा लियोनार्डो दा विंशी के विश्व-विख्यात चित्र 'मोनालिसा' को देखकर जो उसकी आँखों की ना मालूम गहराइयों में झाँकने की कोशिश नहीं करते, उसमें जीवन की दो महत्तम विभूतियों-सौंदर्य और जिज्ञासा का अपूर्व सम्मिश्रण नहीं देखते, प्रत्युत् उसके भीतर चित्रकार की वैयक्तिक कामवासना की दुर्गंध ही सूँघते हैं, कहना चाहिए, उनका मस्तिष्क अभी कला-समीक्षा के योग्य और संस्कृत नहीं हुआ है और उन्हें आलोचक का पेशा छोड़कर वकील की वर्दी अपनानी चाहिए। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। नारी के लिए पातिव्रत्य एक ऐसा आदर्श है, जिसकी महत्ता संसार के अधिकांश सभ्य देशों ने स्वीकार की है। लेकिन कलाकार ऐसी परिस्थितियों की अवतारणा कर सकता है, जहाँ एक नारी एकाधिक पुरुषों के यौन-सम्पर्क में आई हो, फिर भी अंत तक उसके प्रति आपकी सहानुभूति बनी रहे और उसमें आप मानवीय सद्‌गुणों की चिनगारी पाएँ। दूर जाने की आवश्यकता नहीं। भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' या जैनेन्द्रकुमार के 'त्याग पत्र' की 'मृणाल' को ही प्रमाण स्वरूप सामने रक्खा जा सकता है। यहाँ नैतिकता के प्रति सम्पूर्ण आस्था रखते हुए भी हमें स्वीकार करना होगा कि कलाकार का चित्रण नैतिकता की स्थूल परिभाषा से कहीं अधिक मर्मस्पर्शी, सजीव और संवेदनशील है। 'त्याग पत्र' की 'मृणाल' के विषय में स्वयं जैनेन्द्रजी ने अपनी सफाई देते हुए कहा है—"त्याग पत्र में जो मर्यादा का अतिक्रमण दीखता है, वह स्पर्द्धापूर्वक उल्लंघन नहीं है। कदाचित्, कारण उसमें सामाजिक से गहरे मूल्य का अनुमान ही है। अन्यथा अनुचित ठहराकर भी मन में मृणाल के

लिए प्रीति रखना सम्भव न था। ...'त्याग पत्र' की रचना किसी पाक्षिक महत्ता की प्रतिष्ठा के लिए नहीं हुई है। वैसी महत्ता की स्थापना मुझे नहीं करनी है। विवाह में क्या सदा प्रेम ही होता है? किन्तु उस संग को व्यभिचार नहीं कहते। कारण, आवेगशील प्रेम से बड़ी चीज कहाँ होती है, कर्त्तव्य होता है। कर्त्तव्य बुद्धि का अभाव तो बुभुक्षा के पक्ष में भी नहीं है, बल्कि कर्त्तव्य वहाँ और भी दारुण है।" तात्पर्य यह कि इस दारुण कर्त्तव्यशीलता और 'स्व की आहुति' के बाद शारीरिक संभोग का प्रश्न रह ही नहीं जाता।

प्रायः देखा जाता है कि एक युग के नीति-सिद्धान्त दूसरे युग में कभी-कभी सर्वथा अग्राह्य हो जाते हैं, पर कला के क्षेत्र में मूल्यों की इतनी बड़ी अराजकता नहीं संघटित हो पाती। अतीत की सुन्दर कृतियाँ जीवन के मान बदल जाने पर भी कुछ-न-कुछ प्रेरणा हमारे लिए अवश्य रखती हैं, उनकी ही नींव पर भविष्य का प्रासाद निर्मित होता है। मनु महाराज और अफलातून के विस्मृत हो जाने पर भी शायद कालिदास और शेक्सपियर आसानी से न भुलाये जा सकेंगे।

दूसरी बात यह कि कलाकार यदि जानबूझ कर दुर्नीति का प्रचार करने वाला या ग्राम्यता में रस लेने वाला नहीं है तो उसकी तथा-कथित नीति-विरोधी कृतियाँ भी व्यक्ति के मन को संस्कृत और उदात्त ही बनाती है। सूरदास के मन में किसी प्रकार की यौन कुण्ठा वर्तमान नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपने आराध्य की शृंगारिक लीलाओं का उन्मुक्त निस्संकोच वर्णन किया है। किंतु कौन कह सकता है कि उन रससिक्त शृंगारिक लीलाओं का निर्बंध वर्णन पढ़ कर हमारी कुरुचि और विलास-भावना को ही प्रोत्साहन मिलता है, हमारी वृत्तियों का उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) नहीं होता? इस अर्थ में सूरदास भी मानवता के उतने ही बड़े शिक्षक हैं, जितने बड़े—कबीर, तुलसी या अन्य भक्त कवि।

'कला जीवन के लिये' का सिद्धांत इस दूसरे सिद्धांत की अपेक्षा अधिक निर्भ्रान्त है, यद्यपि खतरा यहाँ भी कम नहीं है। श्रेष्ठ कला स्थूल नैतिकता का आग्रह न रख कर भी अंततः जीवन के लिए उन्नयनकारी होती ही है। किंतु यदि उपयोगितावाद का सिद्धांत अधिक मुखर हो गया तो बड़े से बड़े कलाकार की रचना को भी कला के गौरवमय सिंहासन से स्खलित होते देर नहीं लगती। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं टालस्टाय भी अपने अंतिम दिनों में एक महान् कलाकार की अपेक्षा उपदेशक ही अधिक रह गये थे। कला और नैतिकता में कुछ-न-कुछ संबंध अवश्य है। कलाकार भी सामान्य मनुष्यों की ही भाँति, किंतु उनकी अपेक्षा कुछ अधिक संवेदनशील सामाजिक प्राणी होता है और उसके अंतःकरण पर युगजीवन के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ते ही रहते हैं। इनसे यत्न करके भी बचा नहीं जा सकता। पर वह उन प्रभावों को अपनी कलाकृति में किस प्रकार व्यंजित करे कि वह रचना मानवता के विकास में सहायक सिद्ध हो सके एवं स्रष्टा पर प्रचारक होने का दोषारोपण भी न हो, इसके लिए कोई निश्चित या पेटेंट नुस्खा नहीं पेश किया जा सकता। दूसरे शब्दों में कला पर युगनीति की प्रतिच्छाया अवश्य रहती है, किंतु दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त ऋजु-सरल भी नहीं है जिसे एक सीधी रेखा खींच कर बतलाया जा सके। जैसे सूर्य का उदग्र प्रकाश सूक्ष्म जलकणों पर प्रतिच्छायित होकर इन्द्रधनुष का सम्मोहक आकार ग्रहण कर लेता है। वैसे ही शिवं का सात्विक उपदेश कला के देश में 'सुन्दरम्' का सहचर बन कर सामने आता है। यह कलाकार की नितांत वैयक्तिक चेतना पर अवलंबित है कि वह किस प्रकार नैतिक जीवन के सिद्धांतों को ग्रहण करता है और पुनः उन्हें अपनी सृष्टि में स्थापित करता है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि कलाकार का काम पाठक के सौंदर्यबोध को जगाना है उस पर अपने निर्णय का बोझ लादना नहीं। काव्य की चर्चा करते हुए जब आचार्य मम्मट ने कविता को 'कांतासम्मत उपदेश' कहा था तब उन्होंने भी कविता और नीति के संबंध की इस अव्याख्येयता की ओर ही संकेत करना चाहा था। इस सम्बन्ध को अच्छी तरह न समझ सकने

के कारण ही आये दिन जहाँ एक ओर कोरे प्रचारवादी साहित्य का ढेर लगता रहा है तो दूसरी ओर यथार्थचित्रण के नाम पर जुगुप्साजनक रचनाओं की बाढ़-सी आ गई है।

महान् कलाकारों की रचनाओं में सदैव सत्य की एक ऐसी अखंड दीप्ति मिलती है जिसके प्रकाश में हम जीवन के समुज्ज्वल रूप और मानवीय महिमा का आभास पा सकते हैं। कोई कवि जब अपनी रचना में किसी महान् चरित्र की अवतारणा करता है तो उस चरित्र को महाप्राणता स्रष्टा के व्यक्तित्व से ही प्राप्त होती है एवं अपने व्यक्तित्व की यह महाप्राणता पात्रों के माध्यम से वह अपने पाठकों में वितरित करना चाहता है। इस प्रकार जिस कलाकार ने जीवन को जितनी निकटता से देखा और जितना बड़ा उसका अंश स्वयं ग्रहण किया है अपनी रचना के द्वारा वह उतनी ही बड़ी प्रेरणा अपने पाठकों या दर्शकों को दे सकता है और उसी अनुपात में उसकी कला के उत्कर्षापकर्ष का निर्णय किया जा सकता है।

सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक का इतिहास मनुष्य की निरन्तर प्रगति और वर्द्धिष्णु चेतना का इतिहास है। अनेक बार अनेक भौतिक और आधिभौतिक व्याधियों में फँस कर, अनेक आवर्तन चक्र में पिस कर भी मनुष्य बराबर आगे बढ़ता ही आया है। विविध दुस्साहसिक कार्यों, आश्चर्यजनक आविष्कारों और सौंदर्यमयी सृष्टियों द्वारा उसने अपनी इसी जययात्रा की गाथा लिखी है। कला-क्षेत्र के अनेक प्रयोग भी उसके इसी अभियान के स्मारक हैं। उसने असुन्दरता के बीच रह कर सुन्दरता का संधान किया है, असन्तुलन में संतुलन ढूँढने का प्रयास किया है, असंगतियों के मध्य संगति की साधना की है। दक्षिण भारत के भव्य और विशालकाय मंदिर तथा मिश्र के ध्वंसावशिष्ट पिरामिड, यूनान और रोम की सुरम्य देव-प्रतिमाएँ, अजंता-एलोरा के रंगीन भित्तिचित्र, भारतीय तथा जर्मन संगीतज्ञों की भावपूर्ण उद्गीतियां और वाल्मीकि और व्यास, होमर और दांते, शेक्सपियर और मिल्टन, सूर तथा तुलसी के उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ इस सत्य के ही प्रखर-मुखर साक्षी हैं। इस प्रकार कला न तो वास्तविक जीवन की जड़ अनुकृति है और न उससे सर्वथा तटस्थ किसी कल्पना लोक की स्वैर विहारिणी मेनका ही। वह जीवन की दोपहरी में खिला बंधूक का अरुणाभ पुष्प है, मानव जीवन जो स्वयं अपूर्ण एवं रिक्त है उसकी अपूर्णता एवं रिक्तता को दूर करने का एक सौंदर्यमय प्रयास। वह मानव को स्वयं को स्थापित करने की दुर्दमनीय चेष्टा का ही दूसरा नाम है और अपने इसी रूप में वह न केवल विगत कल का अविस्मरणीय आख्यान है बल्कि आगत कल की अक्षम और चिरजीवंत प्रेरणा भी। वह अतीत वर्तमान और भविष्य नामक कालखंडों को एक ही संबंधसूत्र में गुंफित कर अर्द्धनारीश्वर की भाँति एकाकी व्यक्तित्व में सुन्दरता और प्रयोजन की संस्थिति उत्पन्न करती है। उसकी पंखुड़ियों पर इंद्रधनुष के रंग तैरा करते हैं, पर उसके पराग में मिट्टी की सोंधी गमक वर्तमान है।

पता—बेगू सराय (मुंगेर)

(पृष्ठ ५७६ का शेषांश)

यात्रा के समय वायुयान के उपयोग के लिए उनसे कहा गया, लेकिन उन्होंने रेलगाडी से ही यात्रा की। एक बार स्वनामधन्य पत्रकार पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी बापू से भेंट (इंटरव्यू) ले रहे थे। बापू ने तुरन्त ही स्मरण दिलाया— "फाउंटेनपेन से क्यों लिखते हो? विदेश के लोग यदि देखलें तो यही न कहेंगे कि इनके देश में लिखने के अपने साधन तक नहीं हैं।" और तुरत उन्होंने अपनी सरकंडे की कलम लिखने को दे दी।

प्रत्येक कार्य में पूर्ण स्वावलम्बी और भारतीयकरण की प्रेरणा वे अपने कार्य के द्वारा ही देते थे। उनका कोरा उपदेश ही नहीं चलता था। बापू ने इतना अधिक लिखा और तुरत-तुरत लिखा है कि कोई क्या इतना लिख पावेगा। लेकिन सभी अपने हाथों या बोलकर अपने प्रिय पात्रों की कलम के द्वारा ही। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी स्वयम् ही लिखा करते थे। उन्होंने अपने जीवन के दीर्घ काल में इतना लिखा, इतना लिखा कि दूसरा उदाहरण मिलना कठिन होगा। संयोग से ये भी बापू के समकालीन ही थे। दोनों महापुरुषों का उदाहरण हमें स्वावलम्बन और स्वदेशी का पाठ पढाने को काफी है।

पथ पर

श्री प्रकाश कौल

★

तुम कदम बढ़ाते उसी तरफ़, हो जिधर डगर-
मैं जहाँ पाँव धरता हूँ पथ बन जाता है।

बस इतना केवल अन्तर मुझमें-तुममें है,
तुम उलझन के चौराहे पर रुक जाते हो।
मैं बाधाओं में पंथ नया पा जाता हूँ,
तुम गीली-सूखी राहों में भरमाते हो।
मैं संघर्षों को साथ लिये चलता आया,
पर रहा न इनसे कभी तुम्हारा नाता है।
अन-देखी है यह राह, मगर इसका मुझको-
हर मोड़ सदा विश्वास नया दे जाता है।
मैं पन्थी हूँ उस पथ का जिस पर विपदा है,
यह पीड़ा ही तो मुझ में प्राण जगाये है।
इस लिए हमेशा आँसू को दुलराता हूँ,
हर टीस मुझे लगती है हँसी छुपाये है।
मैं चला जिधर, तूफान साथ में चलते हैं,
बिजली से मेरी साँस चेतना लेती है।
जिस पथ पर गाड़ा आंधी ने डेरा अपना,
वह राह मुझे अपनी दिखलाई देती है।
अब मुझको है विश्वास कि गति ही जीवन है,
क्या बोलूँ मैं, क्यों? रुकना मुझे न भाता है।

तुम कदम बढ़ाते उसी तरफ, हो जिधर डगर-
मैं जहाँ पाँव धरता हूँ पथ बन जाता है।

यह माना मेरी राह न मधुवन जायेगी,
है घृणा मुझे अब फूलों की मुसकानों से।
हर काँटा पथ का मुझ पर हृदय लुटाता है,
बस इसीलिए है प्यार मुझे वीरानों से।
तुम समझोगे अब इसको केवल मेरी हठ,
मैं भी अपने से यही प्रश्न पूछा करता।
क्यों खड़े किनारे तुम जीवन-भर झिझके हो,
क्यों मैं गहरी मझधारों में जूझा करता?
बस उत्तर उर से यही मिला हर बार मुझे,
ओ जीने वाले! तट को छोड़, लहर में जी।
सो गये अगर ये प्राण कहीं भी छाया में-
तो तूने अपनी साँसों से गद्दारी की।
मैं पीर सँजोये अन्तर में बढ़ता आया,
मुसकान न मेरी हारी दर्द, कराहों में।
छलछला गईं ये आँखें, इतनी पीड़ा थी,
पी गया हमेशा, लेकिन, नीर निगाहों में।
क्या देंगे अब वरदान मुझे हंसने वाले,
जब रोदन में मुसकाना मुझको आता है।

तुम क़दम बढ़ाते उसी तरफ़, हो जिधर डगर-
मैं जहाँ पाँव धरता हूँ पथ बन जाता है।

पता—कम्पू, लश्कर (म. प्र.)

कृष्ण-रसिक रसखान

श्री मदनमोहन शर्मा

हिन्दी की अनेक विभूतियों का जीवन-वृत्त स्पष्ट नहीं है। महात्मा तुलसीदास, भक्तवर सूरदासजी आदि तक का जीवन-चरित्र जानने के लिए अनुमान ही का अधिक सहारा लेना पड़ता है। हिन्दी क्या, यह समस्त भारतीय वाङ्मय की विशेषता है कि इसमें प्रणेता के जीवन-वृत्त की अपेक्षा उसकी कृति को ही अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मुसलमान भक्त शिरोमणि कृष्ण के अनन्य प्रेमी कविवर रसखान की जीवनी पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है। उनका कुछ जीवन-वृत्त "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में दिया गया है। उसके अनुसार आप किसी बनिये के लड़के पर आसक्त थे। यहाँ तक कि आप उसकी जूठन तक खा लिया करते थे। एक दिन एक वैष्णव ने उनसे कहा कि जितना अधिक प्रेम तुम इस वैश्य के लड़के पर करते हो उतना ही ईश्वर से करते तो तुम्हारी मुक्ति हो जाती। रसखान ने कहा कि ईश्वर कौन हैं, कैसे हैं और कहाँ रहते हैं? तब वैष्णव ने उन्हें श्रीनाथजी का एक चित्र दिखाया। चित्र देखते ही रसखान का मन उस लड़के से हट गया और वे गोकुल चले आये। उनकी इस सच्ची लगन को देखकर गोसांई विट्ठलनाथजी ने भी उन्हें अपना लिया।

ऐसा भी कहा जाता है कि ये किसी स्त्री पर आसक्त थे पर वह रूपवती और अभिमानिनी होने से इनका बहुत अधिक तिरस्कार करती थी। एक दिन ये श्री मद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे। विरह वर्णन पढ़ते-पढ़ते इन्होंने सोचा कि जिसे हजारों गोपियाँ प्यार करती हैं उन्हीं से क्यों न इश्क किया जाय। बस इसी भावावेश में वे उस रूपवती को छोड़ कर वृन्दावन चले आये। 'प्रेमवाटिका' नामक उनकी रचना का यह दोहा इस कथन की पुष्टि भी करता है—

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी—मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भये मियां रसखान॥

कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि एक बार कई मुसलमानों के साथ ये मक्का मदीना हज करने जा रहे थे। रास्ते में ये व्रज में ठहर गये। वहाँ ये व्रज भूमि पर आसक्त हो गये और इन्होंने, अपने साथियों से कहा कि आप लोग हज करने जायं मैं तो यहीं रहूँगा। यह समाचार बादशाह के पास भी पहुँचाया गया और बादशाह क्रुद्ध भी हुआ, परन्तु रसखान ने बादशाह के क्रोधित होने का समाचार सुन कर यह दोहा कहा—

कहा करे रसखान को, कोऊ चुगल लबार।
जो पै राखनहार हैं, माखन चाखन हार॥

ऐसा सम्भव है कि इनके श्री कृष्ण से प्रेम का कारण रूप ही था, यह इनके दोहों से ही प्रमाणित हो जाता है यथा—

देख्यो रूप अपार, मोहन सुन्दर श्याम को।
यह ब्रज-राज कुमार, हिय जिय नैननि में बस्यो॥

× × ×

तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखान॥

ये वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। वल्लभ-सम्प्रदाय के उपास्यदेव बालगोपाल हैं, किन्तु इनके उपास्यदेव गोपिका रमण-कुंज बिहारी श्री कृष्णचन्द्रजी हैं। यद्यपि बाललीला के भी दो एक छंद इन्होंने रचे हैं किन्तु प्रायः सभी रचना यौवन लीला की ही है। इन्हें रमाने वाली कृष्ण की यौवन लीला ही थी।

'शिवसिंह सरोज' में लिखा है कि यद्यपि ये मुसलमान थे फिर भी वृन्दावन में जाकर कृष्णचन्द्रजी की

भक्ति में ऐसे डूबे कि फिर मुसलमानी धर्म त्यागकर माला कंठी धारण किये हुए वृन्दावन की रज में मिल गये। इनकी कविता निपट ललित माधुरी से भरी हुई है।

रसखान ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि दादूदयाल प्रेममार्गी सूफी कवि जायसी तथा उसमान, रामभक्ति शाखा के महान कवि श्री तुलसीदासजी, कृष्णभक्ति शाखा के भक्तवर सूरदासजी, नीति ग्रंथकारों में प्रधान रहीम कवि तथा रीति ग्रंथकारों के आचार्य महाकवि केशवदासजी के समकालीन थे। रसखान का समय हिन्दी काव्य का स्वर्णकाल था। उस समय तक हिन्दी काव्य बहुत समृद्ध हो गया था। काव्य की वैसी उन्नति आज तक नहीं हुई। रसखान के लिए यह लाभ की बात थी जो ऐसे समय में उनका आविर्भाव हुआ। उस समय तक ब्रजभाषा मंज-सँवर कर परिष्कृत तथा शुद्ध हो गई थी। अनूठी भाव-व्यंजना का क्षेत्र भी ब्रजकवियों ने तैयार कर दिया था, छंदों की विधान सम्बन्धी शिथिलता भी चली गई थी।

प्रचलित तत्कालीन अनेक शाखाओं में रसखान पर कृष्ण-भक्ति-शाखा का ही मुख्य प्रभाव पड़ा। इसका कारण यह है कि कृष्ण-भक्ति-शाखा में सौंदर्योपासना तथा मधुर भावना की ही प्रधानता थी। रसखान के सौन्दर्योपासक तथा रसिक होने के कारण उनके अनुकूल यही शाखा थी। रसखान कृष्णभक्ति से केवल प्रभावित ही नहीं थे वरन् स्वयं भी सच्चे कृष्णभक्त थे। कृष्ण के सौन्दर्य, वेशभूषा, मुरली तथा लीलाओं पर ये मुग्ध और जी-जान से न्योछावर थे।

रसखान ने कोई प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखा और ग्रंथ लिखने के उद्देश्य से उन्होंने सवैये ही लिखे। हाँ ५२ दोहों की 'प्रेमवाटिका' को यदि पुस्तक मान लें तो कह सकते हैं कि उन्होंने 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' नामक दो पुस्तकों की रचना की। 'सुजान रसखान' में कोई नियम नहीं है समय-समय पर उठे हुए भावों के सवैये हैं किन्तु 'प्रेमवाटिका' नियमबद्ध लिखी गई मालूम होती है।

रसखान ने देखा कि रचना-शैली काव्य-पद्धति से पृथक् हुई जा रही है, गीतों की अपेक्षा अन्य छन्दों का प्रयोग कवि बहुत कम करते हैं, गीतों के भार से अन्य काव्य-छन्द दबे से जा रहे हैं, अतः रचना-शैली को काव्य-पद्धति के समीप तथा अन्तर्गत लाने के लिए गीतों से हाथ खींचकर कवित्त सवैयों में रचना की। रसखान ने मनहरण कवित्त लिखे हैं जिनके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं तथा १६+१५ पर यति होती है। सवैयों में रसखान ने मत्तगयंद सवैया चुना है जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण (ऽ।।) और दो गुरु कुल २३ वर्ण होते हैं। दोहे छन्द में भी रसखान ने रचना की है और अच्छी कुशलता दिखाई है।

रसखान ने स्वभावोक्ति को ही अपनी रचना के लिए उपयुक्त समझा और उसी का सहारा लिया। उन्हें जो कुछ कहना था उसे सीधे ढंग से बिना किसी घुमाव फिराव के कहा। रसखान ने यह प्रयत्न नहीं किया कि जो कुछ कहना है उसे विशिष्ट शैली में कहें वरन् उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि जो कुछ कहना है वह स्वयं सुन्दर और मधुर हो। उनका ध्यान कथन-प्रणाली को सुन्दर बनाने की ओर न होकर कथन को ही सुन्दर बनाने की ओर रहा है। यही कारण है कि उनके कहने की शैली में विशिष्टता न होते हुए भी उनकी रचना अत्यन्त रसपूर्ण है।

रसखान प्रेमलक्षणा-भक्ति के कवियों की कोटि के थे। उन्होंने कवित्त सवैयों में राधाकृष्ण तथा गोपियों के प्रेम की व्यंजना तो की ही है 'प्रेमवाटिका' में प्रेमतत्व का स्वतन्त्र निरूपण भी किया है। प्रेम के सम्बन्ध में इनकी अपनी अलग धारणा थी। रसखान का कहना है कि प्रेम वही है जो गुण, रूप, यौवन, धन आदि की अपेक्षा न रखता हो, जिसमें स्वार्थ की गंध तक न हो और जो कामना से रहित हो। ठीक भी है, किसी वस्तु की आशा करके स्वार्थवश किया हुआ प्रेम उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्वार्थ की सिद्धियां असिद्धि पर प्रेम का बढ़ना-घटना निर्भर रहेगा। और जो प्रेम बढ़-घट सकता है वह प्रेम नहीं कहला सकता, मोह या मित्रता भले ही कहलाये। शुद्ध

प्रेम धारण करने वाला प्रेमी अपने प्रिय से किसी प्रकार की आशा नहीं रखता, वह कामना रहित होता है। यह बात इस दोहे से स्पष्ट है –

बिनु गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रसखानि॥

प्रेम की इस स्वार्थहीनता को रसखान आगे चल कर और अधिक स्पष्ट करते हैं कि प्रेम एकांगी होना चाहिए अर्थात् प्रेमी का एकमात्र धर्म यही है कि वह प्रिय से प्रेम करे और उसे इस बात की इच्छा या प्रयत्न न करना चाहिए कि प्रिय भी उससे प्रेम करे। प्रत्येक दशा में प्रेमी प्रिय को सर्वस्व समझे।

इक अंगी बिनु कारन हिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रिय हि सर्वस्व जो, सोई प्रेम समान॥

रसखान ने प्रेम-मार्ग को बहुत सीधा भी कहा है और टेढ़ा भी। कमलनाल से भी क्षीण और खड्ग की धार से भी कराल बतलाते हैं।

इनके यह कहने का रहस्य यही हो सकता है कि एकांगी, सहज तथा स्वाभाविक प्रेम होना सरल नहीं है, बड़ा दुर्लभ है। यदि हुआ भी तो उसका अंत तक निर्वाह करना बड़ा कठिन है। बीच में तनिक भी मार्ग से हटे या भावना में तनिक भी शिथिलाई आई कि दोनों दीन से गये, विषयानन्द या ब्रह्मानन्द कुछ भी प्राप्त न हो सकेगा। इसीसे यह टेढ़ा और खड्ग की धार है। सीधा तथा कमलनाल से भी क्षीण इसलिए है कि है तो मन मानने की ही बात। मन में बैठ गई तो बैठ गई, चित्त पलट गया तो पलट गया। प्रेम प्राप्त करने के लिए तप या योग की भाँति किसी दुष्कर साधना की आवश्यता नहीं। हृदय को समझाने की बात है। यदि एक बार आपके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया और आनन्द मिलने लगा तो उत्तरोत्तर उसकी वृद्धि होती जायगी। ज्यों-ज्यों आनन्द बढ़ेगा त्यों-त्यों प्रेम दृढ़ होता जाएगा, आनंद में वृद्धि होती जाएगी। रसखान ने कहा है—

कमल तंतु सो छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो टेढो बहुरि, प्रेम-पन्थ अनिवार॥

अन्य कई प्रेमियों के उदाहरण देते हुए रसखान को ध्यान आया कि कृष्ण-प्रेमियों का दृष्टांत दिये बिना विषय अधूरा ही रहेगा, अतः इस प्रेम दशा को प्राप्त करने वालों का उन्होंने वर्णन किया —

जदपि जसोदा नंद अरु, ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम की, गोपी भई अनन्य॥

वास्तव में गोपियों के प्रेम को समझना भी किसी बिरले प्रेमी का ही काम है। गोपियों के प्रेम के आगे ग्वाल-बाल, नंद-यशोदा यहाँ तक कि स्वयं कृष्ण का प्रेम भी फीका पड़ जाता है। रसखान को पूरा विश्वास था कि उस प्रेम-रस का स्वाद अब संसार में किसी को प्राप्त नहीं हो सकता, इसीलिए वे कहते हैं—

वा रस की कछु माधुरी, ऊधो लहीं सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस अब दूजो को आहि॥

"प्रेम में नेम नहीं," यह प्रसिद्ध कहावत है। इस को मानने वाले रसखान भी थे। नियम तो वहीं रहता है जहाँ प्रेम के लिए कोई कारण अपेक्षित रहता है किन्तु शुद्ध और सहज प्रेम में नियमों का पालन हो ही कैसे सकता है?

रसखान ने मुनिवरों का प्रमाण देकर इस बात को कहा है कि प्रेम सब विकारों से रहित होता है, प्रेम रहते हुए भी ये विकार रहें तो हरि भी सविकार हो जाएंगे, प्रेम को हरि का स्वरूप देते हुए कहते हैं–

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप॥

रसखान ब्रजवासी भक्त-कवि थे। रसखान की भक्ति-भावना सूरदास की भक्ति-भावना जैसी ही है इनके श्रीकृष्ण भी ब्रह्म और शंकर से श्रेष्ठ हैं किंतु विष्णु से नहीं। रसखान ने भी कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि इनके श्रीकृष्ण का भी पार ब्रह्मा, शंकर, योगी, वेद तथा पुराण नहीं पाते, तथापि वे कबीर के निर्गुण ब्रह्म की कोटि के नहीं हैं। रसखान के एक छंद को सरसरी दृष्टि से देखने से भ्रम होता है कि इनके श्रीकृष्ण और

कबीर के निर्गुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है किन्तु बात ऐसी नहीं है। देखिये—

ब्रह्म में ढूँढ्यो पुरातन गानन बेद रिचा सुनि-
चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कहूँ वह कैसे सरूप औ कैसे
सुभायन।
हेरत हेरत हारि पर्यौ 'रसखानि' बतायो न लोग
लुगायन।
देखो दुरो वह कुँज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका
पायन।

रसखान का तात्पर्य यह है कि वह ब्रह्म जो निर्गुण-निराकार अगोचर है, वही अपने भक्तों के कल्याण के के लिए सगुण रूप धारण करके उन्हें आनन्द देत है। कबीर का ब्रह्म तो केवल अपनी इच्छा-शक्ति या कृपा द्वारा भक्तों का कल्याण करता है, कोई रूप धारण नहीं करता। अतः कबीर के ब्रह्म से रसखान के कृष्ण का अन्तर स्पष्ट है। यहाँ राधिका से भक्तजनों का तात्पर्य समझना चाहिए। रसखान के कृष्ण इतने उदार तथा करुणागार हैं कि वे केवल भक्तों के संकट दूर करके तथा उन्हें आनन्द देकर ही सन्तोष नहीं कर लेते, वरन् अपने को उनका दास तक बना लेते हैं, अपने से श्रेष्ठ अपने भक्तों को समझते हैं, तभी तो राधा के पैर लोटते हैं और ग्वालबालों को कंधे पर चढ़ा कर घूमते हैं। रसखान ने 'प्रेमवाटिका' में भी भक्तों को हरि से श्रेष्ठ बताया है। एक और स्थल पर कृष्ण को निर्गुण-निराकार बताते हुए भी उन्हें सगुण रूप में लाकर अहीर की छोकरियों द्वारा नचवाया है—

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटैं, पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै
नाच नचावैं॥

सूरदासजी ने जिस रुचि तथा तन्मयता के साथ उनकी बाललीलाओं का वर्णन किया है उस रुचि और तन्मयता के साथ उनकी यौवन-लीलाओं का वर्णन नहीं किया। रसखान ने सूरदास वाला पक्ष न लेकर कृष्ण की यौवन लीलाओं का ही वर्णन किया है। वात्सल्य ने रसखान को आकर्षित नहीं किया, वे तो प्रेम के दीवाने हैं।

बाल्यावस्था के उनके जो सवैये हैं वे यशोदा के सुख के विषय में हैं। कृष्ण की बाल-क्रीडा से यशोदा को अकथनीय आनन्द मिला। देखिए नीचे दिये हुए सवैये में कैसे कृष्ण के हाथ से कौए का रोटी छीन ले जाना वर्णित है—

धूर भरे अति सोभित स्यामजू,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना,
पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछोटी॥
वा छबि को 'रसखानि' विलोकत,
वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी,
हरि हाथ सौं ले गयो माखन रोटी॥

भक्त-गण अपने इष्ट-देव पर भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव रखते हैं, कोई भगवान को स्वामी रूप में, कोई सखा रूप में, कोई पति रूप में तथा कोई-कोई पुत्र रूप में भी मानते हैं। दास्य, सख्य तथा वात्सल्य आदि भावों में रसखान दास्य भाव को अंगीकार करने वाले थे। प्रायः दास्य भाव रखने वाले ही भक्त हुए हैं, सख्य या वात्सल्य सभाव वाले महात्मा इने गिने हुए हैं, कदाचित् इसी लिए रसखान ने भी वही मार्ग ग्रहण किया जो प्रायः सभी भक्तों द्वारा ग्रहण किया गया था, और जो सरल तथा स्वाभाविक था। अपने को श्रीकृष्ण पर न्योछावर करके रसखान उन पर अटल विश्वास भी रखते थे। उन्हें अपने इष्टदेव की शक्ति तथा भक्त वत्सलता पर पूर्ण विश्वास था:—

द्रोपदी औ गनिका गज गीध,
अजामिल सो कियो सोन निहारो।
गौतम गेहनी कैसी तरी,
प्रल्हाद को कैसे हर्यो दुख भारो॥
काहे को सोच करै 'रसखानि',
कहा करि है रविनंद बिचारो।
कौन की संक परी है जु माखन,
चाखन हारो है राखन हारो॥

इसी विश्वास के बल पर वे और किसी को कुछ नहीं समझते थे। किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का उन्हें तनिक भी ध्यान न था। कि हमें और किसी से क्या लेना देना? हमारे सारे संकट तो कृष्ण ही दूर करेंगे।

रसखान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों प्रकार के पदार्थों में से किसी के भी इच्छुक नहीं थे, साथ ही भक्तों की भाँति केवल प्रभु-पद-प्रीत से ही सन्तुष्ट भी न थे। वे इस प्रेम के अतिरिक्त और भी कुछ चाहते थे। पुष्टि मार्ग के अनुसार व्रज में कृष्ण तथा गोपियों की लीला नित्य हुआ करती है। रसखान उस नित्य-लीला में अपना समावेश चाहते थे; उनकी इच्छा थी कि हम तन-मन से कृष्ण-लीला में रम जायँ; कभी साथ छूटे नहीं। निम्नांकित सवैये से उनकी मुक्ति के प्रति अनिच्छा तथा प्रत्येक दशा में श्रीकृष्ण के संपर्क में रहने की इच्छा प्रकट होती है:—

मानुष हौं तो वही रसखानि,
बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरौ,
चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरी कौ जो,
धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं,
नित कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

अतः स्पष्ट है कि रसखान न तो मुक्ति की कामना करते थे और न केवल हृदय में भक्ति धारण करके मानसिक उपासना से सन्तुष्ट थे। वे सच्चे प्रेमी की भाँति प्रिय के साथ सदा रहने के इच्छुक थे। वे चाहते हैं कि चाहे मनुष्य, पशु, पक्षी, पत्थर या वृक्ष किसी भी रूप में रहें, पर कृष्ण का साहचर्य निरन्तर प्राप्त होता रहे। कृष्ण से सम्पर्क रखने वाली वस्तुओं पर उन्होंने तीनों लोकों का राज्य न्योछावर कर रखा था। कृष्ण प्रेम को ही सार बतलाते हुए वे कहते हैं कि यदि लीला पुरुषोत्तम भगवान कृष्ण के चरणों में प्रेम नहीं है तो संसार के सारे वैभव व्यर्थ हैं।

करील के कुंजों पर ऊँचे-ऊँचे स्वर्ण मंदिरों को न्यौछावर करने वाले प्रेमी रसखान अपने ढंग के निराले कवि हैं। तुलसीदासजी की भांति इन्होंने भी मानव-काव्य की रचना नहीं की। इनके काव्य-जगत् में केवल चार की सत्ता थी और वे हैं कृष्ण, बांसुरी गोपिकाएँ और भक्त या दर्शक (स्वयं रसखान)।

कृष्ण की लीला भूमि गोकुल, यमुना-तट, वन, पर्वत तथा कुंजों से रसखान को कितना प्रेम था यह 'मानुष हौं तो वही रसखानि' वाले सवैये से स्पष्ट है। निम्नलिखित पंक्तियों में भी धाम का वर्णन है—

'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों व्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करील के कुँजन ऊपर वारौं॥

बंशी बजाने के साथ-साथ कृष्ण के गोधन गाने का भी वर्णन कई छन्दों में है। गोधन गान-विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु नाम बदल जाने के कारण पता नहीं चलता कि अब किस गान को गोधन कहें। कदाचित् बिरहा की कोटि का कोई गान रहा होगा अथवा बहुत सम्भव है कि बिरहा ही गोधन का स्थानापन्न हो, क्योंकि ग्वालों का मुख्य गान अब भी बिरहा ही है जिसे गाय चराते समय या यों ही वे तन्मय होकर गाते हैं।

रसखान की काव्य भाषा व्रज है जो उस समय काव्य सिंहासन पर आरूढ़ थी। अवधी भाषा के प्रतिनिधि तथा पोषक महाकवि तुलसीदासजी भी व्रज भाषा में कविता करने के लोभ को संवरण न कर सके थे।

व्रजभाषा में एक विचित्र सरलता तथा आकर्षण होता है, एक विचित्र मिठास होती है। इस भाषा का एक विशेष गुण इसकी पाचन-शक्ति भी है। संस्कृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्द बड़ी सरलता से अपने में मिला लेती है। उस पर भी विशेषता यह है कि वे शब्द व्रजभाषा के साँचे में ही ढल जाते हैं।

व्रजभाषा के तीन ही कवि ऐसे हैं जिनकी भाषा परिमार्जित तथा सुव्यवस्थित है, वे हैं—रसखान, बिहारी

तथा घनानन्द। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि सूर का नाम इस तालिका में सम्मिलित नहीं किया गया है क्योंकि वास्तविक बात तो यह है कि सूरदासजी ने जितनी शक्ति भाव-द्योतन की ओर लगाई है, उतनी भाषा-सौष्ठव की ओर नहीं लगाई। व्रजभाषा के अन्तिम कवि बा. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने एक स्थान पर कहा है कि व्रजभाषा का व्याकरण बनाना हो तो रसखान, बिहारी, घनानंद का अध्ययन करना चाहिए। रसखान की न तो व्यवस्था ही कड़ी है न भाषा ही उतनी साहित्यिक है तथा न लाक्षणिक प्रयोग ही अधिक हैं। उनकी भाषा में व्रज की प्रकृत माधुरी आ गई है। रसखान को कृत्रिम माधुर्य उत्पन्न करने का प्रयास नहीं करना पड़ा, बोलचाल के ही शब्दों को ही ग्रहण करने के कारण उनकी भाषा स्वतः मधुर हो गई है।

रसखान की भाषा का दूसरा प्रधान गुण भाषा-प्रवाह है। बोलचाल की भाषा जब कुछ परिष्कृत रूप में आती है तब उसमें एक प्रवाह आ जाता है। इनकी भाषा में प्रवाह आने के कुछ और भी कारण हैं। रसखान ने घनानंद की भाँति अंतर्वृत्तियों की छानबीन नहीं की, प्रत्युत रूप का ब्राह्य वर्णन ही किया है, अतः सीधा विषय होने के कारण भी भाषा में कुछ प्रभाव आ गया है। बिना अर्थ पर ध्यान दिये इनके सवैयों को पढ़ने मात्र से एक प्रकार का आनन्द मिलता है। पढ़ने में किसी प्रकार की रुकावट नहीं मालूम होती, परवर्ती शब्द स्वतः उच्चरित होते चलते हैं। रसखान के भाषा-प्रवाह का तीसरा कारण है उनका छन्द चुनाव। अधिकतर उन्होंने मत्तगयंद सवैये लिखे हैं। इस छंद का ऐसा नाम कदाचित् इसकी सुन्दर गति के ही कारण पड़ा है। एक तो हाथी की चाल यों हो मस्तानी होती है, उस पर मदमस्त हाथी की चाल का क्या पूछना? रसखान ने मनहरण कवित्त भी लिखे हैं। नाम ही उनका मनहरण है। यदि मनहरण छंद द्वारा मनहरण भाषा (व्रज) में मनहरण विषय (कृष्ण-लीला) वर्णित किया जाय तो क्या आश्चर्य है यदि वह सबका मनहरण करले। रसखान के सवैयों का प्रवाह देखिए—

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा
कहूँ तू न गई वह ठैया।
या व्रज की बनिता जिहिं देखि कै
वारहि प्रानन लेहिं बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै
कछु चेटक सो जु करयौ जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह
रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥

विषय के प्रतिपादन में रसखान ने अत्यन्त सीधा मार्ग ग्रहण किया है। उनके भाव अत्यन्त स्पष्ट हैं। चमत्कार की ओर उनकी रुचि नहीं अलंकारों की ओर उनका ध्यान गया ही नहीं। वे स्वयं भावमग्न होकर दूसरों को भी भावमग्न करना चाहते थे, यही कारण है कि भाषा-चमत्कार के चक्कर में न तो वे ही पड़े और न दूसरों को डाला। अतः उनकी भाषा में अलंकारों अथवा चमत्कारपूर्ण स्थलों की भरमार नहीं है। अलंकारों की ओर ध्यान न देते हुए भी उनकी भाषा में स्वतः कुछ अलंकार आ गये हैं, जो भाषा को सजाने के साथ-साथ रसोद्रेक में भी सहायक हुए हैं। इन अलंकारों में अनुप्रास मुख्य हैं। स्थान-स्थान पर अनुप्रास होने पर भी यह नहीं भासित होता कि भूषण कवि की भाँति वे बलात् लाकर बैठाये गये हैं।

अनुप्रास—दोऊन परैं पैयां, दोऊ लेत हैं बलैया,
इन्हें भूलि गई गैयां उन्हें गागर उठाइबो।

इसमें पैयां, बलैया और गैयां का कितना स्वभाविक अनुप्रास है। वही स्वाभाविकता इस अनुप्रास में भी है:—

गाइगो तान जमाइगो नेह
रिझाइगो प्रान चराइगो गैया।

दो एक स्थलों पर यमक भी आ गया है। "या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी," में भी मध्यम श्रेणी का यमक है। क्योंकि दूसरे अधरान में अधर और न अलग-अलग शब्द है। पहला अधरान अधर (होंठ) का बहुवचन और दूसरे अधरान का अर्थ होठों में न (धरूंगी) है।

इसी तरह श्लेष, पुनरुक्ति-प्रकाश, सन्देह आदि अलंकारों का भी सफल और सुन्दर प्रयोग हुआ है।

रसखान में भावों की पूर्ण व्यंजना पूर्णतया पाई जाती है इसीमें कोई विशेष चमत्कार न रहने पर भी उनका आदर पंडितजन और साधारणजन दोनों प्रकार के लोगों में हुआ। यह बात नहीं है कि रसखान में प्रतिभा या क्षमता नहीं थी, वरन् पारंगत होते हुए भी उन्होंने सरलता का मार्ग ग्रहण किया था। वे बनावटी शोभा के पक्षपाती नहीं थे।

रसखान की रचना बलात्कृत या परिश्रम-साध्य नहीं विदित होती, वरन् स्वाभाविक रूप में हृदय-स्रोत से निर्झरित-सी लगती है। विरले ही ऐसे कवि होते हैं जो पंडितजन और सामान्य जनता दोनों से आदर प्राप्त कर सकें, क्योंकि इसके लिए विशेष व्यक्तित्व की आवश्यकता है।

एक दृष्टि से हिन्दी साहित्य में रसखान का स्थान विशेष महत्व का है और वह दृष्टि है विस्मृत-प्राय परम्परागत रचना-शैली को नव जीवन देना। ब्रह्म और भाटों की कवित्त सवैया वाली जो परम्परा आदिकाल से चली आती थी, वह भक्ति-काल में आकर लुप्त सी हुई जा रही थी। कृष्णभक्ति शाखा में गीत तथा पदों का ही अधिक प्रचार रहा। ऐसे समय में रसखान ने कवित्त-सवैयों में अपना कृष्ण-प्रेम व्यक्त किया। रसखान ने दिखा दिया कि कवित्त-सवैयों में भी वही छटा, वही रस और वही सुघराई आ सकती है जो पदों के द्वारा आती है।

अपने स्वरूप का लय जितना रसखान ने किया है उतना हिन्दू मुसलमान कोई भी नहीं कर सका। यों तो अनेक मुसलमान हिन्दू देवताओं के भक्त हुए हैं, कवि भी हुए हैं, किन्तु जिस प्रकार मुसलमानीपन त्याग रसखान ने किया है उस प्रकार अन्य कोई मुसलमान नहीं कर सका। हिन्दू-संस्कृति-प्रेमी जायसी से भी विदेशीपन नहीं निकल सका। अनेक मुसलमानों ने मन लगाकर कृष्ण का गुणगान किया, किन्तु अपनी रंगत न छोड़ सके। रसखान ही ऐसे हुए हैं जो किसी भी हिन्दू भक्त से कम नहीं मालूम होते। यदि बताया न जाय कि वे मुसलमान थे तो उनके सवैयों को सुनकर कोई विश्वास नहीं कर सकता कि वे हिन्दू नहीं थे।

इनके काव्य में विशेष महत्व की वस्तु शब्द-माधुर्य है। इस शब्द-माधुर्य का इतना प्रभाव पड़ा कि, सरस कविता सुनने के इच्छुक कहने लगे कोई रसखान सुनाओ। रमणीयता और सौन्दर्य बोध का योग इनकी कविता में बड़ा जबर्दस्त है, इसी योग के कारण इनकी कविता में सरसता तथा आकर्षण शक्ति आ गई है।

ख्याति की दृष्टि से पंडितजन और साधारण जनता दोनों में प्रतिष्ठा पाने की दृष्टि से, भाव-व्यंजना की दृष्टि से, स्वाभाविकता की दृष्टि से, प्रचलित काव्य-रचना पद्धति को छोड़कर प्राचीन कवित्त सवैया पद्धति की परम्परा ग्रहण करने की दृष्टि से भक्ति-भावना की दृष्टि से तथा विदेशीपन के त्याग की दृष्टि से रसखान हिन्दी साहित्य में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। ये हिन्दी-काव्य गगन में सब से पृथक् ऐसे ज्योतिष्पिंड हैं, जिनकी ज्योति तब तक भारतखंड को प्रकाशित करती रहेगी जब तक हिन्दी-साहित्य का अस्तित्व रहेगा। पता—राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, वर्धा

तमिल

श्री योगी शुद्धानंद भारती
अनुवादक श्री इलाचंद जोशी

१

सिंहनाद कर उठें जय हिन्द ! जय हिन्द
बेधड़क बढ़े चलें वीर बांकुरे हम !
शंख और तुरह का भीषण निनाद हो
सत्य से सत्य का युद्ध जीतते चलें !

२

धर्म चक्र की ध्वजा, हाथ में लिये हुए
कोटि कोटि वीरों की चिर भूमि यह !
अवतारों से युत औ, दिव्य दया अमृत सिक्त देश
आप्लावित आध्यात्मिक प्रेम से यह !

३

तीन दिशाओं से मोती बरसाता हुआ
जन के गणतन्त्र का सिन्धु जय-घोष करे
यह पवित्र जन-भूमि महात्मा गांधी की
जिसमें नदियों की वीणा गाती 'ओम शान्ति' !

४

प्रकृति महोद्रेक की हमारी इस धरती पर
बहती हैं दुग्ध मधु फल रस की धाराएँ
मृग-मयूर कोकिल ये सब के सब मुग्ध
भारत की देवियों का अकलुष सौंदर्य देख !

५

अनुबम की हिंस्र अग्नि ठंडी पड़ जाती है
शत्रुओं का क्रोध ज्वार सहज शान्त पड़ जाता,
अवतारी कृष्ण बुद्ध के सद् उपदेश सुन
पाषाणों का उर भी करुणा से जाता गल !

६

अणु के विस्फोटों से हम को भय कैसे हो ?
आसुरिक शक्ति विजय कैसे पा सकती है ?
आत्म ज्ञान शुद्ध चेतना से बलयुक्त हम....
इनकी प्राचीरें सब पल में ढह जाएँगी !

७

नेहरू के पंचशील युक्त और गांधी की
निर्भय निष्ठा के मानस से हम प्रेरित हैं
बुद्ध का लिए हम अष्टांग मार्ग, इस जग में
स्थापित करने आए शान्ति और महाशन्ति

८

अब अकाल क्या है गण राज्य में ?
नहीं शत्रु हर सकता है स्वतन्त्रता को अब
झंझा से सूर्य नहीं नष्ट कभी हो सकता
वीरां सिंहनाद करो जय हिन्दी ! जय हिन्दी !

९

देश हित हमारा हित जन जीवन निज जीवन
देश सम्पदा हो तो सम्पदा हमारी है
देशमान हित हम सब मान सहित जीवित हैं
देश के लिये अपना प्राण भी समर्पित है !

१०

सह अस्तित्व युक्त जनता का गण राज्य
चारों दिशाएँ मिलती हैं सम भाव से
नील नभ चंदोवे तले एक प्राण से हम रहते
हम कहते एक विश्व एक मानवता है
जय हिन्द जय हिन्द ! जय हिन्द जय हिन्द !
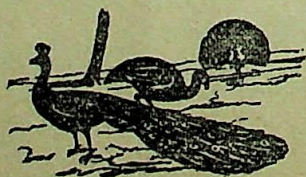
वाकाटक प्रवरसेन विरचित सेतुबन्ध महाकाव्य

अनुवादक—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी

★

तीसरा आश्वास

तो ते कइमाअङ्गे रूढ़विसाअमअभाविओमीलन्ते।
आलाणक्खम्भेसु व बाहूसु सिलाअलट्ठिएसु णिसण्णे ॥१॥
आहासइ सुग्गीवो णिअअरवाहि फुडणिन्तजसणिग्घासम्
धीराहिं सारगरुअं दन्तुज्जोआहि णिम्मलत्थं वअणम् ॥२॥

तदनन्तर कपि रूपी हाथियों से जिनके नेत्र उत्कट विषाद रूपी मद व्याप्त होने के कारण विस्फारित हो रहे हैं और जो शिलाओं पर टिके बाहुओं रूपी हस्तीशाला के स्तम्भों का आश्रय लिये हैं, ऐसे सुग्रीव ने (कपियों के प्रति) धैयपूर्वक ओजस्वी वचन कहे जिनके स्वकीय उच्चारण से यश का स्पष्ट घोष निःसृत हो रहा है, तथा जिन्होंने दाँतों की चमक से निर्मल अर्थ ग्रहण किया है।

धरणिधरणे भुअ च्चिअ महणम्मि सुरासुरा खअम्मि समुद्दा।
हन्तव्वम्मि दहमुहे एण्हिं तुम्हे त्थ महुमहस्स सहाआ ॥३॥

पृथिवी को (वराह अवतार के समय) धारण करने में विष्णु की सहायक केवल (उनकी) भुजाएँ थीं, समुद्र-मन्थन में देव और असुर थे, प्रलय में समुद्र था तथा अब दशमुख-वध के कार्य में आप सहायक हों।

मा सासअसोडीरं कह वि णिअत्तन्तसँमुहसंठविअपअम्
आअअवित्थक्कन्तं पणअन्तं व सुअणं परुम्हाह जसम् ॥४॥

आप यश को, जो मैत्री में प्रवृत्त सत्पुरुष (राम) के समान शाश्वत अहंकारयुक्त है, जिसने झिझकते हुए आगे पग रख दिया है और जो (सामने) आया खड़ा है, किसी भी प्रकार मलिन (राम के पक्ष में खिन्न) न करें।

रक्खसवहदुव्वोज्झो कज्जारम्भो समुद्दलङ्घणगरुओ।
पढुमं च्चिअ रहुवइणा उवरिं हिअअ तुलिओ भरोव्व विलइओ ॥५॥

रघुपति ने पहले ही (मन की तुला) पर बोझ के समान तोल कर कार्यभार, जिसमें समुद्र लाँघने का भारीपन है और राक्षसों के वध की दुर्वाह्यता है, (सक्षमता के कारण आप पर) डाल दिया है।

तुम्ह च्चिअ एस भरो आणामेत्तप्फलो पाहुत्तणसद्दो।
अरुणो छाआवहणो विसअं विअसन्ति अप्पणा कमलसरा ॥६॥

प्रभुता शब्द की सार्थकता केवल आज्ञा देने में ही है और कार्यभार तो यह आपका ही है। (सूर्य का सारथी) अरुण (केवल उसकी) कांति (आज्ञा) को पहुँचाता है और स्वयं तो कमलों से युक्त सरोवर ही विमल विकसित होते हैं।

तरिउं णहु णवर इमं वेलावणबउलकुसुमवासिअसुरहिम्।
हत्थउडेहि समत्था तुम्हें पाउं पि फलरसं व समुद्दम् ॥७॥

आप इस समुद्र को जो तीर पर स्थित वन के बकुल-सुमनों के सुवास से सुगन्धित है, केवल पार करने में ही नहीं, फल के रस के समान हाथ के संपुटों से पीने में भी समर्थ हैं।

चिरआलकङ्खिआणं धुआवमाणणिअलुण्णमन्तमुहाणम्।
एसो णवर अवसरो असरिससमसीसबन्धण-विमोक्खाणम् ॥

चिर काल से जिसकी आकांक्षा थी (शौर्य में अपनी) बराबरी न कर सकने वालों के साथ (बाँधने वाले) शीर्ष-बंधन (नियोजित करने की रस्सी या

सम्मान-सूचक शीर्ष पट्ट-बन्ध) से मुक्ति का और मुख में से अपमान (के गोले) को फेंक कर उन्नत मुख होने का यही एकमात्र अवसर है।

ते विरला सप्पुरिसा जे अभणन्ता घटेन्ति कज्जालावे।
थोअ च्चिअ ते वि दुमा जे अमुणिअकुसुमणिग्गमा
देन्ति फलम् ।।९।।

वे सत्पुरुष बिरले हैं, जो विना बखान किये कार्यों को पूर्ण करते हैं और वे वृक्ष भी थोड़े ही होते हैं, जिनमें सुमनों का खिलना जाना ही नहीं जाता, किंतु फल देते हैं।

खिएणं चावम्मि करं चिरकालुक्कण्ठिअं अमरिसम्मि
मणम्
मा दा देउ रहुवई बाणाहिमुहिं च बाहगरुइं दिट्ठिम्
।।१०।।

ऐसा न हो कि रघुपति धनुष पर अपना क्षीण हाथ डालें, चिरकाल से उत्कण्ठित मन को क्रोधाविष्ट करें और आँसुओं से भारी हुई दृष्टि बाण पर डालें।

ओवग्गउ तुम्ह जसो दहवअणपआवपत्थिवपरिग्गहिअम्
विलुलिअसमुद्दरसणं णहभवणन्तेउरं दिसावहुणिवहम्
।।११।।

आपका यश जिसे दशमुख के प्रताप रूपी राजा ने बन्दी कर रखा है, आकाश रूपी प्रासाद के अन्तःपुर में समुद्र रूपी चपल मेखलाओं वाली दिग्वधुओं का अधिरोहण करे।

जं साहसंण कीरइ तं दअमाणेन जीविअं किर दइअम्।
जो अपडिमुक्कसुकओ सो वि गणज्जइ जगम्मि
जीअन्तमुओ ।।१२।।

जो साहस नहीं करता, उसका (दूसरों की) दया का पात्र बनता जीवन वस्तुतः दयनीय ही है। उपकार का बदला जिसने नहीं दिया, वह भी संसार में जीवित ही मरा गिना जाता है।

किं व ण आणह एअं कज्जं परिपेलवं पि जह परिणामे।
देइ परं संमोहं कुसुमं विसपाअवस्स व मलिज्जन्तम् ॥१३॥

अथवा क्या आप यह नहीं जानते कि सुकर कार्य परिणाम में विषवृक्ष के पुष्प के समान होता है जो मर्दन किये जाने में पूर्ण अचेतन कर देता है?

विहडन्तं वि समत्था ववसाअं पुरिसदुग्गमं णेन्ति वहम्।
भुवणन्तरविक्खम्भं दिअसअरो विहडिएक्कचक्कं व
रहम् ॥१४॥

समर्थ व्यक्ति बिगड़ते हुए कार्य को मनुष्य के लिए दुर्गम मार्ग पर भी पूरा करते हैं, जैसे आकाश तल के विस्तार को दिनकर उस रथ से पार कर लेता है जिसका एक पहिया अलग हो गया है।

कअकज्जे तालसमे अइरा पेच्छइ भुए अणुत्तालसमे।
णिहुओ राअसहाओ पडिवक्खस्स अ अवेउ
राअसहाओ ॥१५॥

आप शीघ्र (अपनी) ताल वृक्ष के समान (विशाल) भुजाओं को कृत-कार्य देखें जिनके समान उद्भट भुजाएँ अन्य नहीं हैं। उनमें शूरता सुस्थिर हो और शत्रु का राजत्व उसे छोड़ जाए।

संखोहिअमअरहरो संभन्तुव्वत्तदिट्ठरक्खसलोओ ।
वेलाअडमुज्झन्ते अह णे हसइ हिअएण मारुअतणओ
॥१६॥

मारुत तनय, जिनने समुद्र को आन्दोलित किया है तथा राक्षसों के समाज को भ्रान्त एवं आकुल देखा है, हमारा, जो समुद्र के किनारे ही हतप्रभ हो रहे हैं निश्चय ही हृदय से उपहास करते हैं।

अव्वोच्छिण्णपसरिओ अहिअं उद्धाइ फुरिअसूरच्छाओ।
उच्छाहो सुभडाणं बिसमक्खलिओ महाणईण व
सोत्तो ॥१७॥

सुभटों का संकट में विचलित हुआ उत्साह, शौर्य की स्फुरित कान्ति से मंडित और अव्यवधानित प्रसार करता अधिक उमड़ चलता है, जिस प्रकार विषम स्थलों पर गिरी महानदी की धारा सूर्य की स्फुरित आभा लिये और अखण्डित प्रभावित होती अधिक उमड़ चलती है।

माणेण परिट्ठविआ कुलपरिवाडिघडिआ अणण्णोअपुव्वा।
चिन्तेउं पि ण तीरइ ओहुप्पन्ती परेण णिअअच्छाआ
॥१८॥

अपनी छाया अर्थात् मान-मर्यादा (नाव के एक भाग) जिसमें सर्वत्र गौरव प्रतिष्ठित है (जो प्रमाण के

अनुसार भरी गई है), जिसका निर्माण वंशानुक्रम से हुआ है और जो पहले कभी नहीं झुकी, उस पर शत्रु द्वारा आक्रमण किया जा रहा है, यह सोचा भी नहीं जा सकता।

परिवड्ढन्तुच्छाहो विअलिअरणमच्छरेहिँ अप्पत्तगुणो।
अअसक्कन्तोसरिओ कड्ढिज्जइ दुक्करं भडतणसद्दो ॥१६॥

वह सुभटता शब्द बड़ी कठिनाई से (कड़ी भूमि की जुताई के समान) अर्जित किया जाता है, जिसके गुण वह नहीं जान पाता; जिस कारण भूमि में (पहुँचकर) शत्रुता का भाव तिरोहित हो गया है और जो (सुभटता का विरुद) उस व्यक्ति से दूर भागता है जिस पर अपयश छा गया है।

आहिअसमराअमणा वसणम्मि अ उच्छवे अ समराअमणा
अवसाअअविसमत्था धीरच्चिअ होन्ति संसए वि समत्था ॥२०॥

विपत्ति एवं उल्लास में जिनके मन एक रस रहते हैं और युद्धावसर के आगमन का जो स्वागत करते हैं, वे धैर्यवान ही विना बुलाये आये संकट की वस्तुस्थिति की शंकास्पदता में भी सफल होते हैं।

ववसाअसप्पिवासा कह ते हत्थट्ठिअं ण पाहेन्ति जसम्।
जे जीविअसंदेहे विसं भुजंग व्व उव्वमन्ति अमरिसम् ॥२१॥

प्राणों का संशय उपस्थित होने पर भुजंग के विषवमन करने के समान जो रोष प्रकट करते हैं, पराक्रम करने की पिपासा-युक्त वे हाथ पर रखे यश को कैसे पान नहीं करेंगे?

सीहा सहन्ति बन्धं उक्खअदाढा चिरं धरेन्ति विसहरा।
ण उण जिअन्ति पडिहआ अक्खण्डिअववसिआ खणं पि समत्था ॥२२॥

सिंह बन्धन को सहन कर लेते हैं, डाढ़ें उखाड़ लिये जाने पर विषधर भी अधिक काल तक जीवित रहते हैं, किन्तु अव्याहत पराक्रम समर्थ व्यक्ति पराजित होकर क्षण-भर भी जीवित नहीं रहते।

अकअत्थपडिणिअत्ता कह सँमुहालोअमेत्तपडिसंक्कन्तम्।
दप्पणअलेसु व ठिअं णिअअं देच्छिह पिआमुहेसु विसाअम् ॥२३॥

असफल होकर लौटे आप प्रियतमाओं के दर्पणतल जैसे मुखों पर सामने दिखने-मात्र से संक्रमित होकर ठहर गये अपने विषाद को कैसे देखेंगे?

णिज्जन्ति चिरपअत्ता समुद्दगहिरा व पडिपहं णइसोत्ता।
तीरेन्ति णिअत्तेउं असमाणिअपेसणा ण उण सप्पुरिसा ॥२४॥

चिर काल से प्रवाहित नदियों की समुद्र-जैसी गंभीर धाराओं को (बाँध बना कर) मार्ग बदल कर बहाया जाता है, परन्तु सत्पुरुषों को जब तक वे नियोजित कार्य की पूर्ति न कर लें, वापस लौटाना शक्य नहीं होता।

जो लंघिज्जइ रइणा जो वि खविज्जइ खआणलेण वि बहुसो।
कह सो उइअपरिहओ दुत्तारो त्ति पवआण भण्णउ उअही ॥२५॥

जिस समुद्र को अचल पर्वत वाची नाम-युक्त रवि लाँघ जाता है, जिसे, यद्यपि वह जल का भंडार है, क्षय युक्त नाम वाला प्रलयानल भी बहुशः पीड़ित करता है, और इस प्रकार जिसका पराभव उपस्थित है, आप यह कैसे कहेंगे कि वह उदधि नावगामी (अथवा वायुगामी) वाचक नाम-युक्त वानरों द्वारा पार किये जाने में कठिन है?

चिन्तिज्जउ दाव इमं कुलववएसक्खमं वहन्ताण जसम्।
लज्जाइ समुद्दस्स वि दोण्ह वि किं होइ दुक्करं बोलेउम् ॥२६॥

तब यह विचार कीजिए कि कुल के निदर्शन में सक्षम यश को धारण करने वालों के लिए लज्जा और समुद्र, इन दोनों में से किसका उल्लंघन करना कठिन होता है?

किरणासणिं रहुसुए सुहस्स किर णासणिं विमुञ्चउ मा दा।
सेलससारअमे हो तुम्हे जेऊण चन्दसारअमेहो ॥२७॥

सुनिए, दोनों राघव, जो चन्द्रमा और शरदऋतु के मेघ के युग्म के समान हैं (वज्रपात करने का जिनका स्वभाव नहीं है), कहीं आपको, जो पर्वतों से भी

अधिक बलवान हैं, जीतने के लिए (मिलन) सुखों को नष्ट करने वाले किरण रूपी वज्र का प्रहार न करें।

बन्धवरोहब्भहिओ होइ परो वि विणएण सेविज्जन्तो।
किं उण कओवआरो णिक्कारणणिद्धबन्धवो दासरही ॥२८॥

विनय-पूर्वक सेवा किये जाने पर शत्रु भी स्नेह में बान्धवों से भी अधिक बढ़ जाता है, फिर दाशरथि राम तो उपकार कर चुके हैं और विना कारण स्नेही मित्र हैं।

अइरपरूढंव्वलआ समरुच्छाहे उदुम्मि व विलम्बन्ते।
अज्ज वि दाव मह इमा मउलेइ च्चिअ फलंण दावेइ सिरी ॥२६॥

हाल ही में प्रसरित हुई बेल के समान मेरी राजलक्ष्मी रूपी लता मानो युद्धोत्साह रूपी ऋतु (काल) में विलम्ब होने के कारण आज भी केवल मुकुलित ही हो रही है और उसका फलवती होना दिखाई नहीं देता।

कच्चिरमेत्तं व ठिइ एअ विसंवाइआ ण मोच्छिहि रामम्।
कमलम्मि समुप्पण्णा तं च्चिअ रअणीसु किं ण मुञ्चइ लच्छी ॥३०॥

इस प्रकार विलुब्ध किया गया धैर्य कितनी अधिक देर तक राम को न छोडेगा? क्या लक्ष्मी (शोभा), जिसका जन्म कमल से ही हुआ है, रात्रियों में उन्हें छोड़ नहीं जाती?

सअलुज्जोइअवसुहे समत्थजिअलोअवित्थरन्तपआवे।
ठाइ ण चिरं रविम्मि व बिहाणपडिआ वि मइलदा सप्पुरिसे ॥३१॥

जो सम्पूर्ण पृथिवी को आलोकित करता है और समस्त जीवलोक पर अपने तेज का विस्तार करता है उस सूर्य की प्रभात-कालीन मंदता के समान ही सत्पुरुष पर दैवयोग से आ पडी मन्दता भी अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती।

सप्पुरिसपाअडवहं पढमं जं राहवेण अम्हासु कअम्।
होज्ज व ण होज्ज व समं अम्हेहिं कअं पि किं उण अकीरन्तम् ॥३२॥

राघव ने, सत्पुरुष के द्वारा सुविज्ञात रूप से प्रवृत्त जो (उपकार) पहले ही हमारे प्रति कर दिया है, हमारे द्वारा किया गया (उपकार) उसके बराबर हो भी सकता है और नहीं भी, फिर जो किया नहीं जा रहा उसका तो कहना ही क्या?

राहवपत्थिज्जन्तो उद्धो दीसिहइ केच्चिरं व दहमुहो।
दूरन्तंपेच्छिअव्वो सिहरपउन्तविअड्डासणि व्व वणदुमो ॥३३॥

राघव-द्वारा घेरा जा रहा दशमुख, वन के उस वृक्ष के समान, जो बहुत दूर से देखा जा सकता है और जिसके शिखर पर भयंकर वज्रपात हो रहा है, कितनी देर तक खड़ा दिखाई देगा?

बालाअवं व एत्तं धुअअम्बालाअवंसुणिवहच्छाअम्।
कइसेण्णं रअणिअरा तमरअणिअर व्व पेच्छिउं पि अओग्गा ॥३४॥

प्रभात-कालीन धूप के समान और दहकते अरुणाभ अंगारों के स्फुलिंगों की प्रभायुक्त आती हुई बानर-सेना को अन्धकार की धूल के समूह-तुल्य निशाचर देखने में भी सक्षम नहीं है।

गुरुअम्मि वि पडिवक्खे होन्ति भडा अहिअवारिअप्पडिऊला।
पडिगअगन्धा इद्धा उद्धङ्क सरुद्धमत्थअ व्व गइन्दा ॥३५॥

प्रतिपक्ष अधिक बलवान होने पर भी योद्धा उन गजराजों के समान, जिन्हें दूसरे हाथी की गन्ध आ गयी है और जिनका मस्तक उठे हुए अंकुश से रोका गया है, अधिक रोके जाने पर भी विरोध करते हैं।

विसमम्मि वि अविसण्णो धारेइ धुरं धुरंधरो च्चिअ णवरम्।
किं दिणअरोवराए दिणस्स होइ अवलम्बणं ससिबिम्बम् ॥३६॥

संकटकाल में भी कार्यभार को केवल धुरंधर ही विषाद-हीन रहकर धारण करता है। सूर्य-ग्रहण में क्या दिन को चन्द्रमा का बिम्ब सहारा देता है?

मुक्कसलिला जलहरा अहिणव दिण्णफला अ पाअवणिवहा।
लहुआ वि होन्ति गरुआ समरमुहोहरिअमण्डलग्गा अ भुआ ॥३७॥

जल बरसा चुके बादलों का, हाल ही में फल दे चुके वृक्ष-समूहों का और युद्ध-सम्मुख खड्गपात कर चुकी भुजाओं का यद्यपि बोझ हलका हो जाता है, तथापि उन्हें गौरव प्राप्त होता है।

दप्पं ण सहन्ति भुआ पहरणकज्जसुलहा धरेन्ति महिहरा।
वित्थिण्णो गअणवहो णिज्जइ कीस गुरुअत्तणं पडिवक्खो ॥३८॥

(आपकी) भुजाओं को (शत्रु का) दर्प असह्य है, शस्त्र के रूप में उपयोग के हेतु सुलभ पर्वत विद्यमान हैं और आकाश का विस्तृत मार्ग है, फिर वह क्या है जो शत्रु को गौरवास्पद बनाये हुए है?

धीरं परिरक्खन्ता गरुअं पि भरं धरेन्ति णवर सुउरिसा।
ठाणं चिअ अमुअन्ता णीसेसं तिहुअणं खवेन्ति रविअरा ॥३९॥

केवल सत्पुरुष ही धैर्य की रक्षा करते हुए भारी कार्य-भार का भी निर्वाह करते हैं। (धैर्य की तो बात क्या), स्थान भी न छोड़ कर सूर्य की किरणें समस्त त्रिभुवन को तृप्त करती हैं।

काअरपडिमुक्कधुरं जिणन्ति पत्थाणलङ्घिअग्गक्खन्धा।
पढमं ता णिअअबलं पच्छा पहरेहिं सुउउरिसा पडिवक्खम् ॥४०॥

सुपुरुष पहले तो अपनी सेना को ही, जिसमें कायरों ने कार्यभार का त्याग किया है, प्रस्थान के समय ही उसके अग्रभाग को लाँघ कर जीतते हैं और तत्पश्चात् शस्त्रों-द्वारा शत्रु पर विजय प्राप्त करते हैं।

अणेन्ति मङ्गलाइं अल्लिअइ सिरी जसो पवढ्ढइ पुरओ
पडिवणणरणुच्छाहे पडिवक्खुद्धरणपत्थिअम्मि सुउरिसे ॥४१॥

जिसे युद्धोत्साह उत्पन्न हो गया है शत्रु का विनाश करने के लिए प्रस्थित उस सत्पुरुष के मंगल पीछे-पीछे चलते हैं, लक्ष्मी उसका आलिंगन करती है और यश उसके आगे-आगे बढ़ता है।

वच्चन्ता अइभूमिं कड्डिअसुहडासिवत्तवन्थावडिआ।
णवर ण चलन्ति बीअं लुअवक्खा महिहरव्व वेराबन्धा ॥४२॥

पराकाष्ठा को प्राप्त होते और सुभट की खड्गलता के सामने आ गये वैर के केवल वे सम्बन्ध ही अन्य पर संक्रमित नहीं होते (संक्रमण शक्ति से हीन) पर्वतों के समान जिसके पंख कटे हुए हैं। (जिनका कोई अपना पक्ष नहीं है)।

ता सोअइ रहुतणओ ताव अ सीआ वि हत्थपल्हत्थमुही
ताव अ धरइ दहमुहो जाव विसाएण वो तुलिज्जइ धीरम् ॥४३॥

तभी तक राघव शोच करते हैं। सीता भी तभी तक हाथ पर मुख टिकाये (शोक मग्न) है और तभी तक दशमुख भी जीवित है जब तक आपका धैर्य विषाद के केवल समतुल्य है।

अण्णो अण्णस्स मणो तुम्ह ण आणे अणाहिओ मह अप्पा।
णिव्वण्णन्तस्स इमं दररूढवणप्पसाहणं हणुमन्तम् ॥४४॥

पराया मन तो पराया ही है, अतः मैं आपके मन के बारे में नहीं जानता, परंतु मेरी आत्मा इस हनुमान को, जो कहीं कहीं लगे घावों से अलंकृत है, देख-देख कर व्यथाहीन है।

पडिवक्खस्स अ लच्छिअं आसाएन्तएणं
णिअअकुलस्स अ कित्तिअं आसाएन्तएणम्।
मरणं पि वरं लद्धअं णअणिम्माणएणं
पुरिसेण चिरं जीविअं ण अ णिम्माणएणम् ॥४५॥

शत्रु की लक्ष्मी का आस्वादन करते हुए और अपनी वंश-परंपरागत कीर्ति को अर्जित करते हुए नीति का निर्माण करने वाले को प्राप्त हुई मृत्यु भी उत्तम है, किन्तु जिसने सम्मान खो दिया है उस पुरुष का दीर्घ-जीवन भी श्रेष्ठ नहीं है।

एअ वि सिरीअ दिट्ठआ के सरलच्छिआए
करकमलस्स अ छिक्कआ केसरलच्छिआए।
मुज्झन्ति सविण्णाणआ समरसंमाणअम्मि
एअ ममम्मि भणन्तए समरसामणम्मि ॥४६॥

जब लक्ष्मी इस प्रकार सामने खड़ी देखती हो और करकमल की कान्ति केसर से स्पर्श करती हो तथा जब युद्ध में मान देने वाला और युद्ध का अभिमानी मैं

इस प्रकार कह रहा हूँ, तब भी तो कौन ज्ञानवान होंगे जिन्हें मोह हो ?

मा सोइज्जउ दुहिश्रा सीश्रा लोश्रएणं
णलिणि व्व समोलुग्गश्रा सीश्रालोश्रएणम्।
दुहिए राहवहिश्रए कामइलन्तश्रम्मि
जीविश्रम्मि श्रहिलोहिश्रा का मइलन्तश्रम्मि ॥४७॥
चन्दश्र व्व मेहमइलिए रश्रणीसारश्रम्मि
कमलश्रम्मि व हिमडड्ढए रश्रणीसारश्रम्मि।
दुहिए राहवहिश्रए भमरोश्रन्तश्रम्मि
कुसुमम्मि व पव्वाश्रए भमरोश्रन्तश्रम्मि ॥४८॥

हिम ऋतु के समान (प्रतिकूल) दीप्ति वाले राक्षसों में मुरझाई कमलिनी के समान सीता के दुखी होने पर ही शोच मत कीजिए, कारण कि राघव का हृदय जब दुखी एवं वियोग से क्लान्त हो, जब रात्रि के सारभूत चन्द्रमा के समान वह मेघ से मलिन हो, हिमदग्ध कमल के समान पराग रूपी सार से रहित हो और राघव के दुखी हृदय से भ्रम में रोदन फूट पड़ता हो, मानो सूखे हुए फूल से भ्रमर (रव करते) लौट जाते हों, तब अपयश से मलिन होते (अपने) जीवन में हमें क्या लोभ है ?

कइश्रा णु विरहविरइश्रदोब्बल्लपसाह-
णुज्झिश्राहरणाइं ।
णीसासवसपहोलिरलम्बालश्रमलिश्रपम्ह-
लकश्रोलाइं ॥४९॥
पिहुलणिश्रम्बश्रलकखलिश्रसिढिलवलश्र-
विवइण्णबाहुलश्राइं ।
दच्छाम परिश्रणत्थुश्रकश्रपेसणलज्जिश्रा
पिश्रकलत्ताइं ॥५०॥

अपना नियोजित कार्य कर आये हैं, इस कारण परिजनों-द्वारा स्तवन किये जाने और (उस स्तवन से) लज्जित होते हम अपनी उन प्रिय पत्नियों को कब देखेंगे जिनने आभूषणों का परित्याग कर दिया है, विरह-जन्य दौर्बल्य को ही प्रसाधन के रूप में धारण किया है, जिनकी लम्बी अलकें निःश्वास के वेग से डोलतीं रोमांचपूरित कपोलों का स्पर्श करती हैं और जिनकी बाँहें जिनमें चूड़ियाँ ढीली पड़ गयी हैं, पृथुल नितम्बों पर से फिसलकर (आलिंगन के लिए) फैल गयी हैं।

इश्र जाहे भणणन्तं ण चलइ चिन्ताभरोसिश्रन्तसरीरम्।
श्राश्रड्ढणणिच्चेट्ठं पङ्कक्खुत्तं व गश्रकुलं कइसेण्णम्॥
॥५१॥
तो फुडसद्दुद्धाइश्रवणदवभरिश्रगिरिकन्दराश्रारमुहो।
रिउविक्कममसहन्तो जम्पइ वाणरवई पुणो व
हसन्तो ॥५२॥

इस प्रकार कहे जाने पर जब उस आह्वान के प्रति निश्चेष्ट वानर सेना, जिसका शरीर चिन्ता के भार से दबा जा रहा था, कीचड़ में फँसे गज-समूह के समान आगे नहीं बढ़ी, तब वानर-राज ने, जिन्हें शत्रु का पराक्रम असह्य हो रहा था और जिनका मुख उस पर्वत-कंदरा जैसा दिखाई दे रहा था जिसमें से वनाग्नि तुमुल नाद के साथ ऊपर को भभक रही हो, अट्टहास करते हुए पुनः कहा।

इश्र श्रथिरसामत्थे श्रण्णस्स वि परिश्रणम्मि
को श्रासङ्घो।
तत्थ वि णाम दहमुहो तस्स ठिश्रो एस पडिहडो
मज्झ भुश्रो ॥५३॥

शत्रु के इन परिजनों के साथ, जिनका सामर्थ्य इस प्रकार विचलित है, (कोई) युद्ध करने की क्या इच्छा (करेगा)? वह भी (परमयोद्धा) दशमुख ? उसके विरुद्ध-युद्ध क्षम तो मेरी यह भुजा प्रस्तुत है।

श्रवहोश्रासम्मि महं हत्थश्रलाहश्रदलन्तपत्थि
श्रसलिलो।
जा ण णिश्रत्तइ उश्रही बोलीणं ताव होउ
वाणरसेण्णम्॥५४॥

मेरी हथेलियों के ताड़न से फटता हुआ दूर चला गया जल जब तक पुनः लौटकर नहीं आता, तब तक वानर-सेना समुद्र को पार कर जाए।

श्रहिश्राणं तो सहरे धरिश्रं मलश्रगिरिणो हसन्तो सिहरे।
गुरुभरविसमश्रंसेणं णेज्जामि भुएण जोश्रणसश्रं सेणम्॥
॥५५॥

शत्रुओं की निश्चिन्तता नष्ट करने के लिए मलय-गिरि के शिखर पर धारित सेना को मैं हँसता हुआ

इस भुजा से, जिसका कंधा गुरु भार से नीचा ऊँचा होगा, सौ योजन लिये जाता हूँ।

समुहमिलिएक्कमेक्के को इर आसण्णसंसअम्मि सहाओ।
जाव ण दिज्जइ दिट्ठी काअव्वं दाव होइ चिरणिव्वूढम् ॥५६॥

यह सुस्थापित ही है कि जब प्राण-संकट निकट ही आ गया हो, सामने आकर एकमेक भिड़ गया हो, तब कौन सहायक होता है। जब तक अपने कर्तव्य पर दृष्टि केन्द्रित नहीं की जाती, तब तक वह बहुत काल के लिए टल जाता है।

अह व महण्णवहुत्तं पत्थन्तस्स गअणं मह ण वहुत्तम्।
रुहिरवसामिसवत्तं हन्तूण व णिव्वुओ वसामि सवत्तम् ॥५७॥

अथवा जब महासागर की ओर मैं प्रस्थान करूँ, तब आकाश मेरे लिए बड़ा नहीं है। शत्रु को, जो रक्त, मांस और वसा से ही भरा है (हाड़ मांस का पुतला है), मारकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा।

णिसुढिज्जन्तभुअंगं मा मुज्झह मह सरोस-चलणक्कन्तम्।
जत्तो णमइ महिअलं तत्तो णाम सअलो पअट्टउ उअही ॥५८॥

आप हतप्रभ न हों, जब मेरे सरोष बढ़ते पदों के आघात से शेषनाग पतित हो रहा हो और पृथिवीतल झुके, तब तक सब समुद्र पार कर जाओ।

ओ जमलक्खम्भेहिँ व धरिएण भुहिएँ मह महोअहिमज्झे।
उम्मूलिआइएणं समइच्छउ विञ्झसंकमेण कइबलम् ॥ ॥५६॥

तथा उखाड़ कर लाये गये और महासागर के बीच मेरी स्तम्भयुग्म के तुल्य भुजाओं पर जल के पार जाने के यंत्र के समान धारित विन्ध्याचल पर से कपि सेना उस पार हो जाए।

विवलाअन्त भुअंगं उव्वत्ति अजलअरं बिहिएणसहिहरम्।
मुहमारुअविहुअजलं पेच्छइ रअणाअरं करेमि थलवहम् ॥६०॥

देखो, मैं इस रत्नाकर को, जिसके भुजंग भाग रहे होंगे, जलचर उद्भ्रान्त होंगे, पर्वत फट गये होंगे और (मेरे) मुख की फुफकारों से जिसका जल कम्पित होगा, स्थलपथ बनाये देता हूँ।

मज्झक्खुडिउम्मूलिअभुआभमाइअविमुक्कसेसद्धन्तम्।
एत्तोहुत्तसुवेलं तत्तोहुत्तमलअं करेमि समुद्दम् ॥६१॥

मैं समुद्र को ऐसा किये देता हूँ कि बीच में से खण्डित, उखाड़ा हुआ, भुजाओं से भ्रामित और अवशिष्ट आधा छोर छोड़ा हुआ सुवेल पर्वत इधर को तथा मलय उधर को अभिमुख होगा।

अह व सुवेलालग्गं पेच्छइ अज्जेअ भग्गरक्खसविडवम्।
सीआकिसलअसेसं मज्झ भुआअड्ढिअं लअं विअ लङ्कम् ॥६२॥

अथवा मेरी भुजा द्वारा खींची गयी लङ्का को आज ही उस लता के समान देखो जो सुवेल पर्वत से लिपटी हुई है, जिसके राक्षस रूपी विटप टूट गये हैं और केवल सीता रूपी किसलय अवशिष्ट रहे गये हैं।

ओ भग्गरक्खसदुमं णिहअदसाणणमइन्दसुहसंचारम्।
रामाणुराअमत्तो मलेमि लङ्कं वणत्थलिं व वणगओ ॥६३॥
(इअ सिरियवरसेणविइए कालिदासकए दहमुहवहे महाकव्वे तइओ आसासओ परिसमत्तो।)

और जिसके राक्षस-रूपी वृक्ष तोड़ दिये गये हैं, उस लङ्का को राम के अनुराग में मत्त हुए वन गज के समान मैं वनभूमि जैसी मर्दित किये देता हूं जिसमें दशानन रूपी मत्त गजेन्द्र के मारे जाने पर सुख से विचरण किया जा सकता है।

(इस प्रकार श्री प्रवरसेन विरचित कालिदास कृत दशमुखवध मदा काव्य में तीसरा आश्वास परिसमाप्त हुआ।)

पता—मंगल-प्रभात कार्यालय, लश्कर

असमिया

असम मेरा देश, मेरा प्राण

कवि—अम्बिकागिरि राय चौधुरी
अनु.—श्री भवानीप्रसाद मिश्र

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ सुनो उसका गान।

पुण्य भारत के समुन्नत भाल का टीका,
रूप है प्रत्येक जिसके सामने फीका,
दीप्ति उज्ज्वल स्वप्न नगरी का प्रभामय पुंज,
झलमलाते रंग रस आनन्द सुख का कुंज,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो उसका गान।

जहाँ द्वारे उषा के नित पटकुई खोले।
जहाँ पर्वत श्रेणियों पर सूर्य रंग घोले।
अरुण, चंपा की कली पर स्वर्ण बिखराता,
कर चुकाये बिना भारत का, नहीं आता।

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ सुनो उसका गान।

जहाँ लास्य अधीर निर्झर स्वरों की धारा,
कर रही है गुंजरित आकाश-पथ सारा,
जहाँ रुकते ही नहीं बढ़ते हुए सोते,
जहाँ ऐकाकार पर्वत वन भुवन होते।

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ सुनो उसका गान।

जहाँ सरिता, प्रीत के गाते हुये सौ गीत,
सिंधु से अभिसार की साधे हुए हैं रीत,
जहाँ स्नेहिल लहर छूती है अखिल के छोर,
जहाँ आशा से भरे हैं, पल, प्रहर, निशि भोर।

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ सुनो, उसका गान।

जहाँ बादल दल बदलते हैं हजारों रंग,
प्रकृति परिवर्तित जहाँ पर मौसमों के संग,
जहाँ सपनों की सरलता से सुमन खिलते,
तितलियों के वर्ण सुमनों से जहाँ मिलते।

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ सुनों, उसका गान।

जहाँ वर्षा ग्रीष्म को धोकर बहा देती,
जहाँ धरती धान से नजरें नहीं देती,
जहाँ फसलें, शरद् नभ भर गीत गाती हैं,
जीस्त की घड़ियां मरण पर जीत जाती हैं।

असम मेरा देश, मेरा प्राण।
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान॥
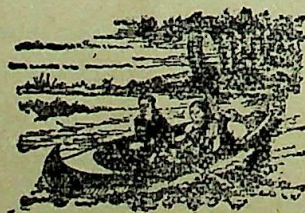
प्राचीन उज्जयिनी

(२)

श्री जुगलकिशोर रिटायर्ड इंजीनियर

ब्रह्मपुराण में वर्णन

यह पुराण पाँचवी सदी ई. पू. का कहा जाता है, तथापि उसमें बहुत बाद का भी उल्लेख है। पुराणवेत्ताओं के वंशज जिनका तात्कालिक घटनाओं से सम्बन्ध होता था आगे भी लिखते जाते थे, जैसा कि अन्यान्य पुराणों में पाया जाता है।

उपर्युक्त पुराण में अन्य तीर्थ-क्षेत्रों का उल्लेख होते हुए अवन्तिका क्षेत्र का बड़ा सुन्दर उल्लेख किया है। अध्याय ४३ व ४४ में से ४३ में श्री महाकाल व क्षिप्रा की महिमा का वर्णन है और ४४ में अवंतिका के राजा इन्द्रद्युम्न का वर्णन है और उसका सम्पूर्ण निवासियों के साथ दक्षिण समुद्र तट पर जाना कहा गया है। उज्जैन में इन्द्रद्युम्नेश्वर नाम का एक ८४ शिव-मन्दिरों के अन्तर्गत एक मन्दिर है जो मोदी के बाड़े के पास की गलियों में स्थित है जिसकी आराधना से उपर्युक्त राजा को फिर से स्वर्ग प्राप्त हुआ ऐसा कहा जाता है।

इस ब्रह्मपुराण के अन्तर्गत अवंतिका का वर्णन (हिन्दी अनुवाद) बड़ा सुन्दर, इतिहास के महान् विद्वान् श्री वासुदेवजी शास्त्री अग्रवाल ने ग्वालियर से निकलने वाली 'भारती' मासिक पत्रिका में कुछ समय पूर्व प्रकाशित कराया है उसके अनुसार अवंतिका की प्राचीन स्थिति क्या थी उस पर बड़ा ऐतिहासिक प्रकाश पड़ता है जो शिल्प-शास्त्रानुसार पहले नगर-रचना अन्तर्गत किये गये वर्णन से मिलता-जुलता है जिससे विशेष रूप से सत्यता प्रगट होती है। उस लेख का कुछ संक्षिप्त आशय निम्न पंक्तियों में दे रहे हैं।

उज्जैनी तीन परिखाओं में अलंकृत है। परिखाओं के भीतर उसके चारों ओर दृढ़ प्रकार है। प्रकार में स्थान-स्थान पर तोरण बने हैं, उन तोरण-द्वारों में यंत्र-संचालित कपाट हैं, जिनमें दृढ़ अर्गलाएँ लगती हैं। वह पुरी अनेक व्यापारियों से भरी है। वहाँ नाना प्रकार की व्यापारिक सामग्री का सुन्दर क्रय-विक्रय होता है। उसमें सुनिमक चतुष्पथ है। उसकी रथ्याओं में रम्य आपण या हाट हैं। रथ्याओं में से निकलने वाली वीथियाँ हैं जो भवन और गोपुरों में समलंकृत है। उन प्रासादों के विषय में कहा जाय तो मानों सुधा-धवलित साक्षात् मनोहर राजहंसों से प्रतीत होते हैं जो अट्टालिकाओं के रूप में अपनी चित्रग्रीवाएँ उन्नत किये हुए हैं। गीत और वादित से वे अलंकृत रहते हैं। नाना वर्ण के ध्वजों और पताकाओं से वे भवन समलंकृत हैं। उस नगरी में हस्ती-रथ अश्व और पदाति भरे हुए हैं। अनेक योद्धाओं से वे समाकीर्ण हैं। नाना जनपदों से चुन-चुन कर वहाँ लोग आकर बसे हैं। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अनेक द्वि-जातियों से वह नगरी सौभाग्यशाली है। उस समृद्ध पुरी को अनेक विद्वानों ने अलंकृत कर रखा है। वहाँ निर्धन, मूर्ख, रोगी और मलिन नहीं रहते। वहाँ के नागरिक, स्त्री और पुरुष सदा हृष्ट-पुष्ट और हँसमुख दिखाई देते हैं। रात-दिन पृथक्-पृथक् रूप की गोष्ठियों में हर्षित होकर क्रीड़ा करते हैं। सुन्दर वेशधारी वे पुरुष कानों में चमचमाते हुए कुण्डल पहनते हैं। ये अत्यन्त सुन्दर गुणवान और दिव्य अलंकारों से शोभित हैं, मानों साक्षात् कामदेव से प्रतीत होते हों। वे समस्त उत्तम

लक्षणों से युक्त हैं, उनके मस्तक पर सुन्दर लहराते केश हैं, उनके सुन्दर मुख हैं। उनकी भवजालरदार दृष्टियाँ दर्शनीय हैं। वे सब शास्त्रों के जानकार हैं साथ ही रणभूमि में शत्रु-वाहिनी का भेदन करने वाले हैं। वे सब रत्नों का दान करते हैं तथा नितान्त मनोरम प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त वर्णन के आगे भी नागरिक जनों का वर मणियों का बड़ा सुन्दर आँखों देखा उल्लेख किया गया है वह स्थानाभाव से हम छोड़ रहे हैं। जो समय की संस्कृति से भरा हुआ है। आगे कहते हैं—

उस अवंतिका नगरी में अनेक वन, उपवन और मनोरम उद्यान हैं, वहाँ अनेक देवालय हैं। वे अनेक कुसुमों से सुशोभित हैं और वहाँ के वृक्ष सदा फलों से झुके देखे जाते हैं, जिनके नामों का उल्लेख किया हुआ है, जिनमें चन्दन का भी उल्लेख है, जो अब भी बहुतायत से पाया जाता है और उन उद्यानों में नाना प्रकार के पक्षियों का भी उल्लेख किया गया है।

उस नगरी में अनेक सरोवर पुष्करिणी और अनेक जलाशय और सरिताएँ है। उनमें कुमुद, नीलोत्पल, रक्त कमल और अनेक प्रकार के पुष्प आमोद फैलाते हैं। वहाँ के सब जलाशय सब ऋतुओं में उज्वल रहते हैं, हंस, चक्रवाक, सारस, आदि जलाशयों को अपने कलरव से मुखरित करते हैं।

महाकाल मंदिर के पास शिव-कुंड है। क्षिप्रा पवित्र नदी पर विष्णु मंदिर है, जिनका नाम गोविन्द स्वामी है। वही विक्रम स्वामी नामक विष्णु का दूसरा विख्यात देवालय है। व और भी इन्द्रादि देवों के मंदिर वहाँ हैं। सप्त मात्रिकाओं का भी मंदिर है। इधर-उधर बिखरते हुए सप्त मात्रिकाओं के अवशेष देखने में आते है। उपर्युक्त मंदिरों की खोज क्षिप्रा के ऊपरी तट पर बने हुए स्थानों मंदिर से बनी मसजीद आदि की जाँच करने से अवश्य कुछ महत्वशाली अवशेष प्राप्त हो सकते है, ऐसा ख्याल है।

कुछ पुराने दरवाजे विख्यात है। जैसा पूर्व में देवास दरवाजा, दक्षिण में इन्दौर दरवाजा, पश्चिम में नदी दरवाजा, मध्य दक्षिण दरवाजा आदि कुछ तोड़ दिये गये है, कुछ स्थित हैं। चोखमें दरवाजों का भी उल्लेख किया गया है, जो महत्व शाली है। पक्का कोट टूट चुका है। तथापित उसके कुछ कुछ निशान कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

इस प्रकार उस रम्य नगरी में अठारह पुरों का एकत्र समावेश होने से उस नगरी का संस्थान बना है। उज्जैन में अब भी कई पुरे विख्यात है (जैसे अब्दालपुरा, नयापुरा आदि) जिसमें अनेक सुविस्तीर्ण चतुष्पथ हैं। इस प्रकार सर्व गुणों से भरी वह उज्जैनी है।

यहाँ कई प्रकार के नागरिक रहते हैं। भारत वर्ष की १४ विद्या व ६४ कलाओं का उल्लेख पाया जाता है। उसके अनुसार ब्रह्म विद्या व कला विधियों की सख्या उपर्युक्त संख्या कही गई है। ६४ कला शिल्प शास्त्र, शुक्र नीति, वात्सायन के काम-सूत्र, आदि में दो कलाओं के जुदा-जुदा प्रकार कहे गये हैं उन उपर्युक्त कला के खिलाडियों में सब ही प्रकार की कलाएँ अवतिका में उपस्थित थीं, ऐसा कहा जा सकता है। इधर उधर बिखरे अवशेषों से उत्तम-उत्तम कलाओं का वहाँ होना सिद्ध होता है।

इन्द्र द्युम्न

अब प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्मपुराण में वर्णित इन्द्र द्युम्न किस वंश का था और किस काल में अवंतिका का राजा था जिसने जगन्नाथ मंदिर बनवाया था, उसकी खोज करने पर हमें भारतवर्षीय चरित्र कोष (मराठी) श्री सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव प्रणीत के प्रथम भाग (प्राचीन) में निम्न ७ नाम इन्द्रद्युम्न के ऐतिहासिक मिलते हैं और एक नाम दूसरे भाग मध्य युगीन मिलता है।

१. इन्द्र द्युम्न—एक राजर्षि जो अपने पुण्य समाप्त होने पर मृत्यु-लोक में आया जो बड़ा यज्ञ करता था जिसके नाम से हिमालय पर इन्द्रद्युम्न नाम का सरोवर है (सम्भव है) यह वह इन्द्र द्युम्न हो जिसके नाम पर उज्जैनी में एक शिव-लिंग विख्यात है जिसका हमने पहले उल्लेख किया है, जिसे लिंग की उपासना से फिर स्वर्ग प्राप्त हुआ था।

२. कृत-युग में विष्णु-भक्त राजा जिसकी राजधानी उज्जैनी थी। जो ओड देशी पुरुषोतम क्षेत्र में श्री जगन्नाथजी के दर्शन को गया था। उस समय श्री जगन्नाथजी बालू में गुप्त हो गये थे। जब आकाश वाणी हुई थी कि निलान्द्री में जाकर तू आयोवेशण करेगा तब दर्शन होंगे। इसी ने अश्वमेध करके नरसिंह का बड़ा मंदिर बनवाया था। इसी ने समुद्र में से प्राप्त सुगन्धित वृक्ष के विष्णु, बलराम, सुदर्शन, सुभद्रा की मूर्तियाँ बनाकर स्थापना की जिसका स्कन्द-पुराण २२-७-२८ में उल्लेख है। यहाँ पर यह बात याद रखने की है कि "हिस्ट्री आफ आरकीटेकचर" श्री फएयुसन कृत के अनुसार श्री जगन्नाथ मंदिर का निर्माण लगभग १०७८ ई० सन् में गंगवश, जो विष्णु उपासक के द्वारा हुआ। अनन्तवर्मा छोटा गंगदेव के समय में भी कुछ काम हुआ है। जिसका समय १०७८-११४२ था और ब्रह्मपुराण ई० पू० ४०० का कहा गया है। उपर्युक्त नामों से ही उज्जैनी का सम्बन्ध होना सम्भव हो? जगन्नाथ मन्दिर में अति प्राचीनता का रेकार्ड पाया जाता है। अर्थात पू० ई० ३२०० का।

उपर्युक्त इन नामों के अलावा शेष ५ नामों से कोई संबंध न जान पड़ने से हम उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

आठवें नाम का इन्द्रद्युम्न महिपाल घराने का अंतिम राजा था। जिसका राज्यकाल ई० सं० ११६३ से ११६७ तक रहा है। जो मगध में राज्य करता था। इस प्रकार मुसलमानी आक्रमण होने से वह औन्द्रप्रांत में चला गया था जहाँ उसने मंदिर बनवाया था। जिसे महीन्द्रपाल अथवा महिपाल व मुधनवा भी कहा गया है। पाल घराने का उत्कर्ष ई० सं० ७६० से स० ११६० तक रहा है, जो महीन्द्रपाल पर खत्म होता है। जिसकी राजधानी माघोर व उसके बाद में पोन्ड वर्धन में थी। जिसे ही उपर्युक्त अनुसार इन्द्रद्युम्न भी कहा गया है और "हिस्ट्री आफ पाल" में शिलालेख के अनुसार गंगा मासिक पत्र मार्च सन् १६२६ में उल्लेख है। गंगवंश की, जिन्होंने समुद्रवर्तीय राज्य किया था, कई प्रकार की मुद्राएँ मिली हैं। पाल वंश ने दूर-दूरतक राज्य किया था जिनका ग्वालियर किले से बड़ा सम्बन्ध रहा है, जिसका उज्जैनी से भी सम्बंध होना स्वाभाविक हो सकता है। पाल वंशावली में महिपाल प्रथम का समय ४८ वर्ष राज्य काल और १०५६ बतलाया गया है। इससे जान पड़ता है कि इन्द्रद्युम्न नामधारी महिपाल दोयम होगा। उसी को महेन्द्रपाल सुधनवा आदि विशेषण दिये गये होने से ग्वालियर गज-टियर ३२०-२५ कुछवाह महिपाल और उसके नक्षों में स० ई० ११६५ तक का उल्लेख है जो सोहनपाल से शुरू होता है और तेजकरण पर पालवंश खत्म होता है। इसके आगे पालवंश नहीं था। इन्द्र शब्द अमर कोष में वनोषधि ४ वर्गों में अर्जुन वृक्ष के अर्थ में आया है जिससे इन्द्र द्युम्न शब्द का अर्थ अर्जुन वृक्ष लगाने वाले का होता है। अर्जुन वृक्ष धार जिले में बहुतायत से पाये जाते है। अर्जुन वृक्ष की लकड़ी कालिया की लकड़ी कहलाती है। जो बड़ी मजबूत होने से स्थंभों के काम में ली जाती है। जो क्षत्रीयवर्ण कही गई है। मकानों के खम्भों में सब तरफ़ पुराने मकानों में दिखती है। धारा नगरी का राजा अर्जुन वर्मन देव सन् १२११ तक रहा है जो निपुत्रिक था। इस कारण इसका राज्य परमारों की दूसरी शाखा में चला गया जो भेलसा व नर्मदा तरफ राज्य कर रहे थे।

अर्जुन वर्मन देव ने गुजरात के राजा का पराभव किया था उस विजय की स्मृति में राज्य गुरु बाल-सरस्वती मदन कवि ने "पारिजात मंजरी" नामक नाटिका की रचना की जो शिला-लेख पर खोदी हुई प्राप्त होकर पुराने सरस्वती मंदिर में रखी है। उस मूल संस्कृत से धार के महान् विद्वान श्री अनन्त वामन वाकणकरजी ने मूल सहित हिन्दी अनुवाद करके प्रकाशित किया है जिसका हम सार निम्न पंक्तियों में इस आशय से दे रहे हैं कि पाठकों को यह मालूम हो जावे कि जैसी प्राचीन स्थिति उज्जैनी की थी वैसी ही अर्जुन वर्मन देव के राज्य काल में थी। जब की उज्जैनी की खोज में खुदाई हो रही है जैसी ही धारा-नगरी

की की जावे तो बहु मूल्य सामग्री प्राप्त होने की आशा है, क्योंकि उज्जैनी के अनुसार ही धार की स्थापना सम्राट भोज के समय में हुई है जो शिल्प-शास्त्र-कर्ता था।

पारिजात मंजरी अर्थात् विजय-श्री

उपर्युक्त 'पारिजात मंजरी' नाटिका में सारूप उतना ही उल्लेख कर रहे जितना धारा नगरी की रचना से सम्बन्ध है। वैसे तो वह वाटिका बड़ी सुन्दर है और दिल लुभाने वाली है।

सूत्रधार नटी से कहता है प्रिय यहाँ एकत्रित हुए विद्वान परिषद ने मुझे आज्ञा दी है कि हम इस चैत्र पर्वणोपठवन इस धारा नगरी के शारदा देवी के मंदिर में राजगुरु मदन की "पारिजात मंजरी" नाटिका जिसका दूसरा नाम विजय श्री नाटिका है का अभिनय करें। वह कहता है कि इस धारा नगरी के विस्तीर्ण चार राज मार्ग हैं और उन पर ८४ चौपाटी हैं। उसमें एक विस्तृत पथ के मुख्य स्थान हैं उस पर शारदा देवी का प्रशस्त भवन है। इस भवन में ही इस नाटिका का अभिनय किया जाय, इस धारा नगरी का वर्णन करना कठिन है, जिसके कुछ साहित्य उद्यानादि का वर्णन करके नाटिका प्रारम्भ होती है।

उपसंहार

धारा नगरी और उज्जैनी की प्राचीन रचना सम्बंधी बातों पर प्रकाश डाल दिया गया है जिसकी सत्यता उन-उन स्थानों का जिनका उल्लेख किया है उनका गहरी नजर से अवलोकन करके खोज करने से ही प्रकट हो सकती है। यह उज्जैनी नगरी त्रिभुवन विख्यात उज्जैनी पति प्रद्योत् शिल्प शास्त्र निपुण ने बसाई है। (देखो भोज कृत समराङ्गण सूत्र धार=वास्तुशास्त्र द्वितीय श्लोक १०–ई० पू० ७००)

ब्रह्म पुराण में कही हुई उज्जैनी की प्राचीन स्थिति नाटकादि में वर्णन की हुई और हुएनसांग आदि यात्रियों ने उल्लेख किये हैं उनके अनुसार मुसलमानों के आक्रमणों के पहले तक वैसी ही थी यह भी उपर्युक्त विवरणों से भली भाँति ज्ञात हो सकता है और खास कर इन बातों की जानकारी के वास्ते कौटिल्य अर्थशास्त्र का अवलोकन आवश्यक है। (देखो अधिकरण २ अ० ५ प्रकरण ६३ और अधिकरण १ अध्याय २० प्रकरण १७ श्लोक २,१७ व २० आदि-आदि) जो भूल भुलैयों से भरा पड़ा है।

उन आक्रमणों के लगभग पाँच छः सौ वर्ष बाद उज्जैन नगरी के कुछ-कुछ मंदिरों का जीर्णोद्धार हुआ है। वह असली जगह पर भी हुआ हो तो उन स्थानों की ऊँची-ऊँची कुछ टेकरियों पर बने मंदरादि के नीचे असली जगह के आसपास संशोधन करने से कुछ लाभ हो सकेगा कुछ स्थान भूमि के नीचे गढ्ढों में स्थित हैं। उनकी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होगा।

ब्रह्म पुराणः— वर्णित इन्द्रद्युम्न के खास-खास नामों की स्थिति व काल का भी विस्तार से वर्णन कर दिया गया है। जो जगन्नाथ मंदिर से बनने का काल व उन वर्णित राजाओं का काल व अर्जुनवर्मनदेव धारा धीशक काल लगभग बारवीं सदी ही पड़ता है। उसके बाद मुसलमानों के आक्रमण हुए जान पड़ते हैं। उज्जैनी व धारा नगरी की पूर्व कालीन स्थिति क्या थी यह भी भली प्रकार पाठकगण जान सकेंगे।

अर्जुन वर्मनदेवी नपुत्र था इसके अलावा उसके सम्बन्ध में अन्य जानकारी नहीं मिलती है।' (देखो श्रीलेले कृत धारका इतिहास) किसी विशेष आक्रमण से भयभीत होकर उसने जगन्नाथपुरी में प्रवेश किया होगा ऐसा ही हमें जान पड़ता है जिसका विद्वानगण ही निर्णय कर सकते हैं।

पता—माधव नगर, उज्जैन

भोजपुरी लोक गीतों में—

उड़ि गइले हंसा, परल बाड़ी मटिया

प्रो० श्रीधर मिश्र

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कम से कम तीन महत्वपूर्ण क्षण आते हैं। प्रथम जब वह इस पृथ्वी पर आता है। यदि वह पुत्र है तो पैदा होते ही थाली बजती है, सोहर गाने की तैयारी होने लगती है और उसके बाद यथा-शक्ति अन्य उत्सव होते हैं। पुत्री है तो यह कहकर संतोष किया जाता है कि लक्ष्मी आई हैं। द्वितीय है विवाह का अवसर—इस समय तो खूब गीत गाये जाते हैं, बाजे बजते हैं, नाना भाँति से उछाह मनाया जाता है। तृतीय और अन्तिम क्षण है मृत्यु, जब व्यक्ति इस संसार से बिदा होता है; जो मुट्ठी बाँधे आया था, वह अब हाथ पसारे जा रहा है। इस समय करुण क्रन्दन होता है, किन्तु इसमें भी एक गीत होता है, एक कहानी होती है। बूढ़ों के मरने पर तो बाजे बजते हैं, गीत गाये जाते हैं, रामायण होती है। इस समय जो कुछ भी होता है, उससे इस जीवन की नश्वरता प्रगट होती है। प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है, कि मैंने कुछ नहीं किया। समय यों ही चला गया। केवल पश्चाताप—पश्चाताप।

भारतवर्ष के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे लोक-गीत मिलते हैं, जिनसे इस जीवन की निस्सारता प्रगट होती है। यह संसार केवल माया का जंजाल है, एक प्रपंच है। भोजपुरी में इस प्रकार के लोक-गीत अधिक मिलते हैं, जिन्हें 'निगु'न' कहते हैं, जो 'निगु'ण' शब्द से बना है। नाथों और योगियों के प्रधान केन्द्रों में से एक केन्द्र इसी क्षेत्र के गोरखपुर में था। आज भी वहाँ बाबा गोरखनाथ का मन्दिर है, जहाँ योगियों के समय से अनवरत दीप जल रहा है। "इसके सिवाय निर्गुनिया संतों की परम्परा को सर्वप्रथम सुव्यवस्थित रूप देने वाले तथा अपने पीछे आदि संत तक के नाम से विख्यात कबीर साहब के जन्म-स्थान का गौरव प्राप्त करने वाली भूमि भी इसी प्रदेश का एक अंग है।"[१] संत कबीर का अधिक समय काशी में ही व्यतीत हुआ था। संत रामानन्द का निवास-स्थान पटना (जिला गाजीपुर) था। बूला साहब तथा गुलाल साहब मुरकुड़ा जिला गाजीपुर के रहने वाले थे। संत शिवनारायण जिनके नाम पर शिवनारायण सम्प्रदाय आज तक प्रचलित है जिसके अनुयायी, लाहौर, काबुल, कलकत्ता, बम्बई तथा सुदूर दक्षिण अफ्रीका तक में पाये जाते हैं। इनका जन्म बलिया जिले के चंदवार गांव में हुआ था।[२] बलिया जिले के ही चंदाडीह गांव के निवासी रामचन्द्र पंडित भी थे जिनके शिष्य नवनिधिदास ने सीतारामी सम्प्रदाय का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त बाबा शिवराम, बाबा कीनाराम आदि कई संत भोजपुर प्रदेश में हुए हैं। ऊपर हमने देखा कि भोजपुर प्रदेश में इन संतों और निगु'णियों की अपनी एक परम्परा चली आ रही थी। इन संतों का भोजपुर की जनता पर अधिक प्रभाव है। अधिकतर लोकगीत मिलते हैं, जिनमें कबीर, शिवनारायण और संत श्यामबिहारी का नाम आता है।

---

१ "भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ"-परशुराम चतुर्वेदी। पृ० ७४।

२ वही। पृ० ७३।

'निगुन' नामक गीतों को अधिकतर चमार गाते हैं। इन गीतों के साथ अपनी मधुर बाँसुरी और 'चमरुआ बाजा' बजाते हैं, साथ ही नृत्य भी करते हैं। वास्तव में ये गीत बड़े ही मनोमुग्धकारी होते हैं। एक गीत में कहा गया है कि किसी स्त्री का आज गवना हुआ और दूसरे ही दिन उसका पति मर गया वह स्त्री कह रही है—'हे राम! हरि के वियोग के कारण में जीवित नहीं रह सकती। मैंने सरपत काटे, उनकी अरथी बनाई और अपने हरिजी को उन पर सुला दिया। हे सत्य की अरथी तुम वहाँ चली चलो जहाँ मेरे पिता स्नान कर रहे हैं।' पिता स्नान करके धोती धो रहे थे, उनकी नजर उस अरथी पर पड़ गई। उन्होंने कहा कि एक सुन्दर स्त्री बहती हुई आ रही है। वह स्त्री कहती है—'मेरे भाग्य में आग लग गई, मेरा कर्म जल गया। अपनी जानी-पहचानी बेटी को बाबा पहचान नहीं रहे हैं।" कबीरदास गा-गा कर कह रहे हैं कि—हे राम हमारी आशा पूर्ण करो, हमारे लिए इस संसार में जीवित रहना मुश्किल है।

आजु त गवनवा भइले, काल्ह पिया मरी गइले,
आहो मोरे रामा, हरि के वियोगवा हम ना जिअवी
हो राम।
कटली में नरखर बन्हली बेवनवा आहो मोर रामा,
ताहि पर हरिजी के सुताइले हो राम।

चली चल चली चल सत के बेवनवा,
आहो मोरे रामा जवना घटवा बाबा मोरे नहाले
हो राम।
धोतिया फिचति में परलि नजरिया,
आहो मोरे रामा सुनरी रे तिरियवा बहल आवे हो
राम।
अगिया लगली करम जरि गइले,
चिन्हइले बिटिइया बाबा नइखन चिन्हत हो राम।
गावे ले कबीरदास हमरो पूराव आस,
आहो मोरे रामा, जगवा जिअनवा मोरे लेखे दुलभ
हो राम।

ऊपर के लोक-गीत में यह दिखलाया गया है कि मानव-जीवन कितना क्षण-भंगुर है। इसका कोई ठिकाना नहीं है, कब रहेगा, कब नहीं। एक दिन पूर्व ही गवना हुआ था। उसके दिल में कितने अरमान होंगे, किन्तु दूसरे ही दिन वह विधवा हो जाती है। पिता भी अपनी बेटी को नहीं पहचानता है। वह भी सुन्दर स्त्री रूप में ही पहचानता है। इसलिए यह अनित्य संसार रहने योग्य नहीं है। जब चमार तन्मय होकर 'आहो मोरे रामा' गाने लगते हैं तो कलेजा दहला जाता है। इस संसार से, जीवन से एक विरक्ति हो जाती है।

इस जीवन के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या होने वाला है। आज हम हँस रहे हैं, खुशी मना रहे हैं तो कल भी खुशी मनावेंगे या रोवेंगे। इसकी गति विचित्र है। एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में उल्लेख है कि "पता नहीं, इस जीवन की क्या गति होगी। नदी के किनारे एक सूखा हुआ पाकर का पेड़ है, जिसमें न तो फल लगते हैं न फूल और न 'बत्तियाँ' ही।" यहां पर पाकर के पेड़ की उस समय की स्थिति की ओर संकेत है जब एक दिन उसकी छाया विशाल होगी। सैकड़ों पक्षी उस पर बसेरा लेते होंगे, उसकी शीतल छाया में राही विश्राम करते होंगे। उसी पाकर के पेड़ की एक दिन इस प्रकार की भी स्थिति हो जाती है जब कि उसमें फल, फूल, यहाँ तक कि बत्तियाँ भी नहीं लगतीं। अर्थात् यह सब आनन्द उल्लास एवँ वैभव आदि क्षणिक हैं। "मैंने सरपत काटे, उनकी अरथी बनाई। जीवात्मा रूपी हंस उड़ गया, केवल मिट्टी पड़ी हुई है। गुरु शिवनारायण समझा रहे हैं कि इस संसार में केवल संतों का मार्ग ही एक मात्र आधार है।" इसीसे हमारा कल्याण हो सकता है।

ना जानों ए राम कवनि होई हैं गतिया,
नदिया के नीरे-तीरे ठूँठि ए पकडिया,
नाहिं लागे फल-फूल नाहिं लागे बतिया। ना जानों। टेक
कटली में नरखर बन्हलो में टटिया,
उडि गईले हंसा परत बाड़ी मटिया। ना जानों। टेक

शिवनारायण गुरु कहि समुझावे,
संत के पंथ निज धारा। ना जानों। टेक।

'उड़ि गईले हंसा परल बाड़ी मटिया' पंक्ति में एक गंभीर अर्थ, एक चेतावनी तथा शिक्षा सन्निहित है। जब तक व्यक्ति में प्राण रहता है, आत्मा रहती है तभी तक उसके सगे-सम्बन्धी उसके पास रहते हैं, उसे अपना कहते हैं, किन्तु ज्योंहीं आत्मा-रूपी हंस उड़ जाता है, उस अपने सगे व्यक्ति को 'माटी' नाम से सम्बोधित करते हैं। अब यही रहता है कि इस 'माटी' को शीघ्रातिशीघ्र घर से निकाला जाय। यही है मानव-जीवन।

'भोजपुरी गीतों में कहीं-कहीं रहस्यवाद की बड़ी सुन्दर झलक है। भक्तिभाव से अपनेपन को भूलकर जब भक्त अपने हृदय के भावों को प्रकट करता है तब जिस कविता का उद्गम होता है वह काव्य-कला तथा दार्शनिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण होती है। रहस्य-वाद में प्रयुक्त प्रतीक सांसारिक होते हैं परन्तु उनसे अभिव्यक्त भाव पारलौकिक होता है।"[1] एक 'निर्गुन' में उस समय का वर्णन है जब व्यक्ति इस संसार से बिदा होता है। कोई व्यक्ति कह रहा है कि परमात्मा-रूप पति इस संसार रूपी नैहर से नाता छोडवाकर मुझको लिये जा रहा है। कच्चे बांस की डोली बनी है, प्रिय! उसी पर इस काया को सुलाये हुए लिये जा रहे हैं। चार कहारों ने मिलकर डोली उठायी, आगे-आगे प्रिय रास्ता दिखाते जाते हैं। (अरथी में चार व्यक्ति लगते हैं और डोली में भी चार कहार लगते हैं।)

मोरे नइहरवा से नतवा छोडवले जाला पियवा।
काँच ही बँसवा के डोलिया बनवले,
ताहि पर काया के सुतवले वाला पियवा।
चारि कहार मिलि डोलिया उठवले,
आगे-आगे रहिया देखवले जाला पियवा।

यह माना जाता है कि आरम्भ में बच्चा भगवान-स्वरूप होता है, बाद में ज्यों-ज्यों उसे ज्ञान होता जाता है, भगवान की छाया उस पर से उठती जाती है और वह सांसारिक माया-मोह में फँसता जाता है। एक गीत में जीवात्मा को स्मरण दिलाया गया है कि तू अपने बालपन की बातों को याद कर। जब तू नर्क-रूपी गर्भ में था, तूने ईश्वर से निवेदन किया, बार-बार वादा किया कि वसुधा में जाकर भक्ति करूँगा। जब तू नर्क से बाहर हुआ, माया ने तेरी दोनों आँखों को घेर लिया। संसार के माया-जाल गले को दबाने लगे, तू भव-जाल में फँस गया। तू अपने बालपन की बातों को याद कर। बालपन तो बचपन में ही व्यतीत हो गया, जब तरुण हुए, तो काम-वासना प्रज्वलित हो उठी, इस समय तो तूने जाति-बेजाति कुछ भी नहीं पहचाना। काम के वशीभूत होकर अँधा हो गया थे। अन्त में तुम पश्चाताप करोगे, जब यमराज आकर दरवाजे पर खड़े हो जावेंगे। उस समय देवी और देवता सभी झूंठे हो जावेंगे, जड़ी और बूटी भी झूठी हो जावेगी। कुछ भी काम नहीं आयेगा। श्याम बिहारी कहते हैं कि समझ-बूझकर हरि की शरण में जाओ, उस समय कोई अन्य सहायक नहीं होगा। निर्गुन इस प्रकार है—

चेत कर ए हंसा बालपन की बतिया।
जब तू रहल नरक वास में,
हरि से कइल मिनतिया।
बार-बार तुम कौल किया है,
वसुधा में करबो भगतिया। चेत कर। टेक।
जब नरक से बाहर भइल,
माया घेरे दूनो अँखिया।
पाँच पच्चीस गले चढ़ि बइठे,
परि गइल भव-जाल फँसिया। चेत कर।
बालापन बल ही में बीते,
जब तरुनापन छतिया।
नभ कवल जब इनरी जागे,
ना चिन्ह जतिया-बे जतिया। चेतकर।
अन्त काल में सोच पड़ेगा,
जब जम्हु घेरिहें दुआरिया।
देवी देव सब झूंठ होइ हैं,

[1] 'भोजपुरी ग्राम-गीत', बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ४४

झूठ होइहें जरिया से बूटिया। चेत कर।
श्याम बिहारी समुझि के गइ हरि,
कोई नहीं होइहें संघतिया। चेत कर।

वास्तव में हमारा सम्पूर्ण जीवन यों ही बीत जाता है। बाद में हम पश्चाताप करते हैं कि मैंने सुकर्म नहीं किया। निर्गुण संतों का अपना सिद्धान्त था कि देवी-देवता सभी झूठे हैं। इनका पूजन निरर्थक है, केवल एक अंधविश्वास है। इसकी ओर भी निर्देश है।

एक अन्य भोजपुरी निर्गुन है जिसमें कबीरदास का नाम आता है। जो इनकी 'उलट बाँसियों' के समान ही दुरूह है। इसमें कहा गया है कि हे रसिया! अब तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गई। पाँच कोस के अन्दर मंडप बनाया गया और पांच व्यक्ति बारात में आये। इमली (जिसके पत्ते बहुत ही छोटे होते हैं) के पत्तों का पतल बना, और उनके भोजन करने में सारी दाल बीत गई। मंडप में एक चर्खा मिला और कोहबर में एक टेकुआ तथा उसी कोहबर में पाँच पेवंद मिले। उनको सीने में सारी रात व्यतीत हो गयी मंडप जल गया, दुलहा मर गया और दुलहन सौभाग्य-वती हो गयी। कबीरदास कहते हैं कि हे संतों! सुनों, बारात प्रसन्न होकर जा रही है।

अब तहरी अकीलि भलइली राम रसिया।
पाँच कोस में मड़वा गड़ली,
पाँच जना अइले बरिअतिया।
इमली के पात के पतल बनवनी,
जेंवत बीतल सारी रतिया। टेक।
मड़वा में एक चरखा पवनीं,
कोहबर में एक टेकुआ। अब। टेक।
ओहि कोहबर पाँच पेवँना पवनी,
सीयत बीतल सारी रतिया। टेक।
मड़या जरि गये, दुलहा मरि गये,
दुलहिन भये एहिवतिया। टेक।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हरखि चले बरियतिया। टेक।

ऊपर के गीत में एक बात दूसरे के प्रतिकूल ही है। यही कबीर की उलटबाँसियों की विशेषता है। यहाँ जीवात्मा रूपी स्त्री का विवाह है और परमात्मा रूपी दुलहा, पाँच व्यक्तियों के साथ बारात आये हैं। जब व्यक्ति का दाह संस्कार होता है तो पाँच व्यक्ति ही शव की परिक्रमा करते हैं। जीवन भर वह माया-मोह के पेवँद जोड़ता रहता है। हम संसारी व्यक्ति की मृत्यु से दुखी होते हैं किन्तु वह जीवात्मा रूपी दुलहन सौभाग्यवती होती है, क्योंकि उसको परमात्मा-रूपी पति मिलता है।

हम भूल जाते हैं कि यह शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा। मानव अपने ही घमंड में चूर रहता है। एक 'निर्गुन' में कहा गया है कि हे मन! तुम क्यों दीवाने हुए हो? मनुष्य के शरीर को देखकर मत भूलो, यह एक दिन मिट्टी में मिल जाएगा। यह शरीर कागज की पुड़िया के समान कोमल है जो पानी की बूँद पड़ते ही गल जाती है, उसी भाँति यह शरीर क्षण-भंगुर है। इस शरीर को चन्दन-आदि सुगन्धित पदार्थों से मल-मलकर स्वच्छ किया, उसी शरीर पर एक दिन कौए चोंच चलाते हैं, जिसे देखकर सभी लोग घृणा करते हैं। इसलिए हे मन! तू घमंड न कर।

काहें रे मन, भयो दिवाना।
मानुख देंहि देखि जनि भूलो,
एक दिन माटी मिल जाना रे। काहें रे मन।
इ देंहिया कागद की पुड़िया,
बून पड़त भिहिला ना रे। काहें रे मन।
एहि देंहिया के मलि-मलि धोवलो,
चोवा-चनन लगाई रे।
ओहि देंहिया पर कागा भिनके,
देखत लोग घिनाई रे। काहें रे मन।

जिस भाँति शरीर का गर्व अनित्य है, उसी भाँति पूरी, मिठाई आदि व्यंजनों का भोजन निरर्थक है। इस जीवन का मूल-धन तो केवल राम-नाम है। कबीर दास कहते हैं कि हे मन। राम भजो, सोने में क्या रखा है? जब प्यास लगे तो मुझ से कहना, गंगा, जमुना और त्रिवेणी आदि नदियों में क्या रखा है!

जब भूख लगे तो मुझ से कहना, पूरी, मिठाई और बर्फी में क्या रखा है? कबीरदास कहते हैं कि हे संतों। सुनो, मरे हुए मुर्दे के लिए क्या रोना? जो व्यक्ति मर गया है, अब उसके लिए रोने से क्या लाभ है?

राम भज ए मन, रोअला में का बा।
प्यास लगे राजा हमरा से कहिह,
गंगा हो जमुनवा, तिरबेनि या का बा। राम भज।
भूखि लागे हो राजा हमरा से कहिह,
पूड़ी हो मिठाई, बरफिया में का बा। राम भज।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
मुअल मुरुदवा रोअला में का बा।

जब तक व्यक्ति का मन राम में नहीं रमा रहता है। तभी तक उसे पूरी, मिठाई और बर्फी की चिन्ता रहती है, गंगा, यमुना और त्रिवेणी के फेर में रहता है किन्तु जब ईश्वर में उसका दिल रत हो जाता है तो सब कुछ सहज हो जाता है। उसे राम के अतिरिक्त अन्य कुछ भाता ही नहीं।

एक गीत में जो 'निर्गुन' गाने से पहले गाया जाता है, जिसे 'पैर' कहते हैं, कहा गया है कि एक समय स्वयं हरि घोड़ा हुए और ब्रह्मा लगाम हुए। चाँद और सूरज उस घोड़े पर चढ़ने के लिए खड़े हुए और उस पर चतुर सुजान सवार हुए। सुन्दर शरीर पाकर हरि का नाम क्यों नहीं जपा? इसी पाप से तुम घोड़ा हुए और मुँह में लगाम पड़ी।

एक समय हरि घोड़ा भये,
ब्रह्मा भये लगाम।
चान सुरुज दोनों कड़वा भइले,
चढ़ि गए चतुर सुजान।
सुन्दर तनवा हो पाई के,
काहे ना भजल हरि नाम।
एहि पाप से घोड़ा भइल,
मुख में परल लगाम।

ऊपर के गीत से एक शिक्षा मिलती है कि सुन्दर शरीर पाने से कुछ नहीं होता है। यदि व्यक्ति हरि का नाम नहीं जपता है तो उसे जानवरों की योनि प्राप्त होती है, नाना प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

एक व्यक्ति इस चिन्ता में पड़ा है कि मैं संसार-रूपी सागर से किस भाँति पार होऊँगा? यह तो अगम है, इसमें माया, मोह, एवं दुख की अनेकों नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं। अस्सी कोस का रेगिस्तान है और अस्सी कोस अँधेरा है। उसके बाद चौरासी योजन के बाद यमराज रखवाली कर रहे हैं। कहा जाता है कि मनुष्य को चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। वह व्यक्ति अब पश्चात्ताप कर रहा है कि मैंने जोग, जप या तप कुछ भी नहीं किया और न गुरु की संगति की। मर जाने पर यमराज ने शरीर के ऊपर की खाल खिंचवा कर उसमें भूसा भरवा दिया। ऊपर से बढ़ई आरा चलाने लगे। मैंने न तो नौका देखी, न समय और न खेने वालों को। उस समय केवल प्रभु को गोहराने लगा—मैं मझधार में डूब रहा हूँ। हमारी पुकार सुन कर इन्द्रपुरी से प्रभु आ गए। कबीरदास कहते हैं कि हे साधो! सुनो, संत पार उतर गए।

भवसागर नदी बहुत अगम बहे,
कवना विधि उतरबि पार हो।
अस्सी कोस बालू का रेता,
अस्सी कोस अनिहारा जी।
अस्सी चार चौरासी जोजन,
जहाँ बसे जम्हु रखवारा जी।
जोग, जाप, तप, कछुहु ना कइनी
ना कुछु गुरु व्यवहारा जी।
खाल खइँचि जम्हु भूसा भरवले,
बढ़ई चलावे आरा जी।
ना देखो नाव, ना देखो बेरा।
ना देखो खेवनहारा जी।
ताहि अवसर प्रभु तोहिं गोहराऊँ
डूबत है मझधारा जी।
इन्द्रभुवन से प्रभु चलि अइले,

शब्द सुनि के हमारा जी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
संत उतरि गइले पारा जी।

गुरु की कृपा से ही जीव इस भव-सागर को पार करता है। इसलिए एक 'निगुर्न' में शिवनारायणदास कह रहे हैं कि जिसकी कृपा से मानव इस जगत् को पार करता है, उसी हरि का नाम प्यारा है। कमल का पत्ता जल में रहता है और जल में ही फैलता है, 'पसरता' है, किन्तु उसे स्पर्श नहीं करता। उसके पत्ते पर पानी भी नहीं रुकता है, वह पारे के समान ढलक जाता है। जल का बूँद फिर जल में ही गिर जाता है। वह न तो नमकीन होता है और न मीठा, अर्थात् उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता है। वह जैसा था वैसे ही फिर पानी में मिल जाता है। एक पतिव्रता स्त्री थी, उसने कभी भी पति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। वह स्वयं 'तर' गई और साथ-साथ कुल-परिवार को भी 'तार' दिया। एक योद्धा लड़ाई में जाकर पीछे पैर नहीं करता है। लड़ने में 'जिसकी रुचि है वह प्रेम से ललकारता है। एक नदी है, किन्तु चौरासी लाख धाराओं में वह बहती है। शिवनारायण दास कह रहे हैं कि गुरु ने परवाना भेजा। संत पार उतर गये।

जाकर रहती पार जगत में,
सो हरि नाम पियारा जी।
पुरइनि पत्र रहे जल भीतर,
जल ही में करत पसारा जी।
ताकर पत्र पानी नहिं परिछे,
ढरकि चले जइसें पारा जी।
जल का बूँद गिरे जल ही में,
ना खारा नाहिं मीठा जी।
तिरिया एक रहे पतिबरता,
पति के बचन नहीं टारा जी।
आपु तरे कुछु औरे तारे,
तार दिये कुल परिवारा जी।
सुरमा एक चढ़े रण ऊपर,
पीछे के पगु नहिं टारा जी।
जाकर सुरति है लड़ने का,
प्रेम देत ललकारा जी।
नदिया एक बहे बहुतेरा,
लाख चौरासी धारा जी।
शिवनारायण गुरु भेजे परवाना,
संत उतरि गइले पारा जी।

ऊपर का 'निगुर्न' प्राणी-मात्र के लिए शिक्षाप्रद है। व्यक्ति को कमल के समान इस संसार में रहना चाहिए, जो पानी में रहता है, किन्तु उसे स्पर्श नहीं करता है। वैसे ही हम इस संसार के माया, मोह, प्रपंच को स्पर्श न करें, अर्थात इनसे दूर ही रहें। स्त्री को पतिव्रता होनी चाहिए, वीर को कभी पीछे नहीं मुड़ना चाहिए। यदि इस संसार के माया-प्रपंच में फँस गये तो चौरासी लाख धाराओं में भ्रमण करना पड़ेगा।

ये चमार कहने के लिये नीच, असभ्य एवं मूर्ख हैं किन्तु इनके 'निगुर्न' कितने भाव-पूर्ण एवं अर्थ-पूर्ण हैं, जिनमें जीवन के सार सुरक्षित हैं। जब निगुर्न गाने वाले मस्त होकर 'गवना के दिन नियराइल ए सजनी' गाने लगते हैं तो सुनते ही बनता है। आवश्यकता तो इस बात की है कि इन लोक-गीतों को रेकार्ड करके इनकी स्वर लिपि तैयार की जाय। इधर प्रो॰ इंदुप्रकाश पाराडेय, प्रधान, हिन्दी-विभाग, एलफिन्स्टन कॉलेज, बम्बई, अवधी लोक-गीतों को रेकार्ड करके उनकी स्वर-लिपि तैयार कर रहे हैं। पाराडेयजी का कार्य स्तुत्य है और अन्य क्षेत्र वालों के लिये अनुकरणीय है। इन निगुर्नियों का कहना कितना सत्य है कि बाल्यावस्था बालपन में ही चली जाती है और जवानी काम-वासना में। एक दिन हंस उड़ जाता है और मिट्टी पड़ी रह जाती है।

'उड़ि गइले हंसा परल बाड़ी माटिया'

पता:—एलफिन्स्टन कॉलेज, बम्बई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों की विशेषताएँ

प्रो० परमेश्वरदत्त शर्मी

★

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य के निर्माताओं में से हैं। आप हृदय से कवि, मस्तिष्क से आलोचक तथा जीवन से अध्यापक हैं। आपने साहित्य के प्रायः सभी क्षेत्रों में लेखनी चलाई है। सम्पादक, अनुवादक, कवि तथा निबन्धकार से यद्यपि आपका समालोचक अधिक आदरणीय है, तथापि हिन्दी-निबंधों को प्रौढ़ता आपके निबन्धकार में ही प्राप्त हुई है। आपके हाथों में निबन्ध को जवानी मिली—प्रौढ़ता मिली—वह प्रौढ़ता जिसे जरा ज़रा भी नहीं व्यापती। एक एक निबन्ध हिन्दी गद्यशैली के विकास की शानदार मंजिल है, एक एक पैरा प्रगति और प्रौढ़ता के पथ पर बढ़ता हुआ एक सबल पग है, एक एक पंक्ति गंभीर चिंतन की साँस है और एक एक शब्द अभिव्यंजना का शाद्वल चित्र है।

गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबन्ध लेखकों की बुद्धि के मापने का पैमाना है। निबंध में स्वतन्त्र मानसिक चिन्तन और अनुभूतियों का निश्छल कथन विद्यमान रहता है। आत्म-प्रकाशन की पूर्णता निबंधों में ही पाई जाती है। व्यक्तिगत विचारों को कलात्मक सूत्र में पिरो कर काव्यात्मक रूप देने का प्रयास निबन्धों में ही रहता है। लेखक का सच्चा प्रतिबिम्ब निबन्धों के माध्यम से ही देखा जा सकता है। शुक्लजी निबंधों के स्वरूप की नस-नस से परिचित थे। उनके निबन्धों में जहाँ एक ओर उनका व्यक्तित्व झलकता है वहाँ दूसरी ओर उनका विषय अपनी पूर्णता को पा जाता है। शुक्लजी के निबंध शुक्लत्व की प्रतिमा-प्रभा से पूर्णतः ओतप्रोत हैं।

प्रौढ़ता की दृष्टि से शुक्लजी के निबंधों की दो कोटियाँ हैं एक प्रारम्भिक निबन्ध और दूसरे प्रौढ़ावस्था के निबंध। प्रारम्भिक निबन्धों में 'साहित्य' 'भाषा की शक्ति', 'उपन्यास', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिंदी' तथा 'मित्रता' प्रमुख हैं। प्रौढ़ावस्था के निबंध 'चिन्तामणि' 'त्रिवेणी' और 'रस मीमांसा' नामक पुस्तकों में संकलित हैं। इन निबन्धों में कुछ तो मनोवैज्ञानिक है और कुछ समीक्षात्मक।

चिन्तामणि शुक्लजी के निबन्धों का अमूल्य संग्रह है। यह हिन्दी का ही नहीं भारतीय साहित्य का गौरवमणि है। इसके निबन्ध किसी भी देश के विचारात्मक निबंधों की पहिली पंक्ति में आत्मविश्वास और गौरव के साथ रखे जा सकते हैं।

'चिन्तामणि' के दो भाग हैं:—प्रथम तथा द्वितीय दोनों भाग के निबन्धों का वर्गीकरण यदि किया जाय तो उनके तीन भेद हो सकते हैं: - मनोविकार-विषयक, २—साहित्य-सिद्धान्त-सम्बन्धी तथा ३—समीक्षात्मक। मनोवैज्ञानिक निबन्ध मनोविकारों के सम्बन्ध में लिखे गये हैं। इनमें उत्साह, श्रद्धा-भक्ति, करुणा, लज्जा और ग्लानि, लोभ और प्रीति, घृणा, ईर्ष्या, भय और क्रोध आते हैं। दूसरे वर्ग में 'कविता क्या है?', 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद', 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था', 'रसात्मक बोध के विविध रूप', 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य', 'रहस्यवाद और अभिव्यंजनावाद' आते हैं। तीसरे वर्ग के निबन्धों में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'तुलसी का भक्तिमार्ग' और

'मानस की धर्मभूमि' आते हैं। इन निबन्धों में शुक्लजी की समीक्षा-शैली का प्रौढ़तम रूप देखा जा सकता है।

त्रिवेणी नामक संग्रह में संकलित निबन्ध समालोचनात्मक हैं। 'मलिक मुहम्मद जायसी', 'महाकवि सूरदास' और 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक तीन निबन्ध इसमें सम्मिलित हैं। ये तीनों निबन्ध क्रमशः जायसी ग्रन्थावली, भ्रमरगीत-सार तथा तुलसी-ग्रंथावली की भूमिका के रूप में लिखे गये थे। व्यावहारिक आलोचना-पद्धति का सर्वोत्तम रूप इन निबन्धों में देखने को मिलता है।

सैद्धानिक समालोचना-सम्बन्धी शुक्लजी के विचारों का संचयन 'रस-मीमांसा' नामक संग्रह में हुआ है। यह संचयन शुक्लजी के सहयोगी पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उनकी मृत्यु के बाद किया है। इसमें शुक्लजी की रस-परम्परा के प्रति प्रगाढ़ आस्था के द्योतक उन निबन्धों को संग्रथित किया गया है, जिनका समावेश चिन्तामणि के समीक्षा-सिद्धान्त सम्बन्धी निबंधों में भी हो चुका है

शुक्लजी के निबंधों की विशेषताओं को हम पाँच दृष्टिकोणों से देखने की चेष्टा करेंगे:—विषय की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से, व्यक्तित्व की दृष्टि से और लेखक के जीवन-दर्शन की दृष्टि से।

विषय-सम्बन्धी विशेषताएँ:—

विषय-विधान में शुक्लजी का दृष्टिकोण विशुद्ध साहित्यिक है उन्होंने अपने निबन्धों के लिए ऐसे ही विषयों को चुना जो साहित्य से सम्बन्धित हों। केवल 'मित्रता' ही एक ऐसा निबन्ध है, जो उनके इस क्षेत्र से कहीं अलग कोटि निर्माण करता है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि शुक्लजी के जीवन में विविधता का अभाव था; किन्तु विविधता में एकांगिता के पक्षपाती थे और उस एकांगिता में पूर्णता चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने जिस का निरूपण किया है, वह उनकी लेखनी में ही पूर्ण हो गया। उसके आगे और कुछ करना या कहना शेष नहीं रह जाता। साहित्य का स्वरूप, साहित्य के भेदोपभेद, काव्य की परिधि और उसका विधेय, रस-सम्बन्धी विवेचना शुक्लजी में अपनी पूर्णता पा गये हैं। कुछ निबन्ध मनोविकारों से सम्बन्ध रखते हैं, जिनमें मनोविकारों की परिभाषा, स्वरूप, भेद, क्षेत्र, अन्य मनोविकारों से तुलना, उपयोगिता, आदि बातों का विद्वत्तापूर्ण उल्लेख किया गया है। आधुनिक साहित्यिक का विवेचन इतिहास, तुलना और मनोविज्ञान के आधार पर कर शुक्लजी ने पाश्चात्य एवं प्राच्य साहित्य-शास्त्र के समीक्षा-सिद्धान्तों का सुन्दर समन्वय किया है। 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' तथा 'अभिव्यंजनावाद' इसी कोटि के निबंध हैं।

२ भाषा-सम्बन्धी विशेषताएँ:—

शुक्लजी की भाषा भावों की सहचरी है। भावों की अभिव्यंजना उसका प्रधान लक्ष्य है। कसे हुए वाक्य भाव को संयत बनाये रखते हैं। प्रत्येक वाक्य इतना सटा हुआ रहता है कि बीच में से हट जाने से वह दरार का काम करता है। जैसेः—

"दण्ड कोप का ही एक विधान है। राज दण्ड राज कोप है, राज दण्ड लोक कोप और लोक कोप धर्म कोप।... ...ऐसा कोप राज कोप के महत्व और पवित्रता का अधिकारी नहीं हो सकता।"

(—चिन्तामणि भाग १ 'क्रोध' पृ. १३८)

इसी प्रकार शुक्लजी कहीं तुकदार वाक्यों का प्रयोग करते हैं, तो कहीं हेतु सूचक वाक्यों का। ऐसा वे इसलिए करते हैं जिससे भाषा में प्रभावात्मकता आ जाय। जैसे—इधर हम हाथ जोड़ेंगे उधर वे हाथ छोड़ेंगे।' 'यदि' और 'तो' की नियोजना भी वे इसी लिए करते हैं:—यदि कहीं सौंदर्य है। तो प्रफुल्लता ....महत्व है तो दीनता आदि।

संश्लिष्ट वर्णनों में भाषा में तत्समता का प्रेम शुक्लजी में विद्यमान है। यहाँ हिन्दी संस्कृत-बहुला बन गई है। जैसे—'जो केवल प्रफुल्ल-प्रसून-प्रसार के सौरभ-संचार, मकरन्द-लोलुप मधुप-गुंजार, कोकिल-कूजित-निकुंज और शीतल-सुख-स्पर्श समीर इत्यादि की ही चर्चा किया करते हैं, वे विषयी या भोग-लिप्सु हैं'—'कविता क्या है' पृष्ठ १४६; किन्तु सर्वत्र ऐसी भाषा

विद्यमान नहीं। अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि के लिए शुक्लजी ने गत, सेंतमेंत, धड़क, ढब, लत, निकम्मा, घिन आदि देशज शब्दों को अपनाया है तथा हक़ीक़त, ग़नीमत, महफ़िल, मजमा, फेहरिस्त, दास्तान, आदि उर्दू शब्दों का खुल कर प्रयोग किया है।

पारिभाषिक—शब्दों के निर्माण में भी शुक्लजी का बड़ा योग रहा है। आपने शक्ति-काव्य (Poetry as energy) प्रेषणीयता (Communicbaeility) जैसे अनेक शब्दों का निर्माण किया है, इससे आपके निबंधों की भाषा लाक्षणिक बन गई है।

आपकी भाषा में कहीं-कहीं व्याख्यानात्मकता का भी परिचय मिलता है। लोभियों को फटकारते हुए वे लिखते हैं—'लोभियों! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इंद्रिय-निग्रह, तुम्हारी मानापमान समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है; तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय विगर्हणीय है। तुम धन्य हो। तुम्हें धिक्कार है !!" (लोभ और प्रीति—८५)

शुक्लजी ने भाषा की अभिव्यंजनाशक्ति बढ़ाने के लिए कहीं-कहीं लोकोक्तियों और मुहावरे का बड़ा ही शिष्ट और मर्यादित प्रयोग किया है। 'भय' में 'हाथ पाँव टूटना' 'करुणा' में 'दाता से सूम भला, जो जल्दी देय जवाब' और 'ईर्ष्या' में 'कालो ह्ययं निरवधिः विपुलताच पृथ्वी, जैसे प्रयोग भाषा में रोचकता और प्रभाव पैदा कर देते हैं।

शुक्लजी की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी मूर्ति-विधायिनी शक्ति। 'प्रत्येक पद, प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द पुकार पुकार कर कह रहा है कि वह शुक्लजी की भट्टी का सिक्का है और इतना खरा है कि जहाँ चाहो वहाँ चलालो।'

३ शैली-संबंधी विशेषताएँ—शुक्लजी ने निबंधों में विषय विशेष के प्रतिपादन के लिए समीक्षात्मक एवं विवेचनात्मक प्रणालियों का आश्रय लिया है। साथ ही आपने गवेषणात्मक एवं भावात्मक शैलियों का समन्वय भी किया है।

समीक्षात्मक शैली में आपने विषय का स्वरूप निर्धारण कर उस पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है। सूरदास, तुलसीदास, जायसी और कविता के सम्बन्ध में आपने समीक्षा का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया है।

विवेचनात्मक शैली में आपके मनोविकार सम्बन्धी निबंध लिखे गये हैं। उनमें परिभाषाएँ इतनी स्पष्ट, मर्यादित और सही विधि से दी गई हैं कि विषय का स्वरूप सहज रूप में समझ में आ जाता है। जैसे—

१ श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।
२ भय जब स्वभावगत हो जाता है, तब कायरता कहलाता है।
३ दूसरों के दुख से दुःखी होने का नाम करुणा है।
४ रस-साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती है वह कविता है।

विवेचन-पद्धति के अन्तर्गत शुक्लजी तुलनात्मक प्रणाली को भी कभी-कभी अपनाते हैं। जैसे कपियों का स्वभाव रूख तोड़ना है, वैसे ही कवियों का स्वभाव शब्द तोड़ना मरोड़ना है या जो चिंतन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है, वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।

संक्षिप्तता शुक्लजी की शैली की तीसरी विशेषता है। पहिले सूत्र रूप में एक बात या विचार को रखते हैं और फिर उसकी व्याख्या स्पष्ट रूप में करते हैं। जैसे 'प्रेम दूसरों की आंखों नहीं देखता, अपनी आँखों देखता है।'

विषय को रोचक बनाने के लिये शुक्लजी शिष्ट हास्य और मार्मिक व्यंग्य की नियोजना अपने निबन्धों में करते चलते हैं। जैसे—"ऐसी जगमगाती विद्वन्मंडली के बीच मेरा कर्त्तव्य केवल अपने दोनों कान खुले रखने का था, न कि मुँह खोलने का।" यह व्यंग्य अमोघ है। प्रतिपक्षी के मर्म पर यह सीधा आघात करता है। 'महुआ के नाम लेने से बाबूपन में बट्टा लगता है' 'मुझे प्रकाश डालना तो आता नहीं' जैसे वाक्य में शिष्ट हास्य एवं मर्यादित व्यंग्य भी है। ऐसे हास-परिहास-विनोद-व्यंग्य से शुक्लजी के निबन्ध भरे पड़े हैं।

निबन्धों में विषय को स्पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं शुक्लजी ने कथात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'मानस की धर्म-भूमि' में इतिवृत्तात्मक प्रणाली को अपना कर शुक्लजी ने 'अभ्युदय' और 'निश्रेयस' की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है।

४-व्यक्तित्व-सम्बन्धी विशेषताएँ:—शुक्लजी के निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता है—व्यक्तित्व विधायिनी शक्ति। शुक्लजी के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं—गंभीरता, दृढ़ता, भावुकता, नैतिकता तथा हास्य एवं व्यंग्य। शुक्लजी के निबन्धों में ये गुण सर्वत्र विद्यमान हैं। 'रसात्मक बोध के विविध रूप' नामक निबन्ध में शुक्लजी का पूर्ण व्यक्तित्व निखर आया है। शैली और व्यक्तित्व का अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध शुक्लजी के सभी निबन्धों में देखा जा सकता है। उनके निबन्धों में उनकी बुद्धि ने उनके हृदय का साथ दिया है, अतः ये निबन्ध विचारात्मक होकर भी नीरस नहीं है, भावुकता से शून्य नहीं हैं। 'तुलसी की भावुकता' का निरूपण करते-करते शुक्लजी स्वयं भावुक बन जाते हैं और चित्रकूट-समाज के एक सामाजिक बन रसास्वादन करने लगते हैं। शुक्लजी के निबन्ध उनके व्यक्तित्व के दोनों छोरों को स्पर्श करते हैं।—उनकी दृढ़ता उनकी भावुकता की पूरक बन गई है। इस व्यक्तित्व में विषय और विषयी दोनों में एक रूपता है।

५-जीवन-दर्शन-संबंधी विशेषताएँ:—शुक्लजी के सभी निबन्ध विचारात्मक हैं, किन्तु उनका आदर्श है—लोक मंगल और समाज-संग्रह। उनका आदर्श है-लोकनायक तुलसी। शुक्लजी का जीवन-दर्शन इसीलिए तुलसी जैसा एकनिष्ठ, अडिग, सबल एवं संतुलित है। इसीसे उनके निबन्धों में स्पष्टता, सूक्ष्मता एवं साकारता है। शुक्लजी के निबन्ध जहाँ रसवाद का पोषण करते हैं, वहाँ मर्यादावाद का आश्रय ग्रहण कर विशुद्ध समीक्षात्मक दृष्टि से अपना स्वरूप प्रकट करते हैं। लेखक का जीवन-दर्शन शील, शक्ति और सौन्दर्य समन्वित लोक-कल्याणमयी भावना के प्रसार के लिये आतुर है, जिसका प्रस्फुरण उनके निबन्धों में हुआ है। यही कारण है शुक्लजी के निबन्ध रसवादी सीमा में ही, साहित्यिक बने रहने में ही, अपनी प्रतिष्ठा का अनुभव करते हैं।

उपसंहार:—शुक्लजी के निबन्ध इस प्रकार जीवन की गहन अनुभूति और प्रगाढ़ अध्ययन की अनुपम देन हैं। इनका समन्वयवादी दृष्टिकोण इन्हें उज्ज्वल मणि की भाँति जाज्वल्य कर देता है। इनमें जहाँ व्याख्याता का प्रभाव है, वहीं पारस्परिक वार्त्तालाप का आनन्द भी है। इनका रसास्वादन तो वे ही कर सकते हैं, जो इनके मूल रूप जल में अवगाहन करते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष को कोई प्रमाण नहीं। ये स्वानुभूति के विषय हैं! कबीर की पंक्तियाँ इनके लिये सार्थक है-

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी की बात।
दुलहा दुलहिन मिल गये, फीकी परी बरात॥
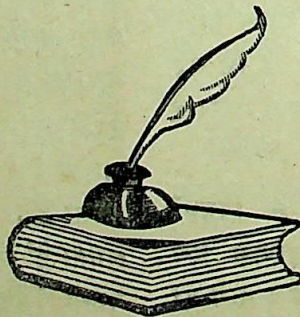
चांद से कह दो

श्री बसन्तीलाल "ऋतुराज"

चाँद से कह दो कि मुझको देखकर ना मुस्कराए।
बादलों की ओट में जाकर कहीं सो जाय रे।

आज पूनम की निशा है,
और पुलकित दस दिशा हैं,
सो गई सागर-सतह पर—
लहर तो स्वर्णिम-उषा है।

ज्वार से कह दो कि मुझको देखकर ना पग बढ़ाए।
लहर की इस मखमली-तह में कहीं खो जाय रे।

आज अँधियारी घिरी है,
नाव भी मेरी फिरी है,
मिल गया तम में सहारा—
तो किनारे पर तिरी है।

भँवर से कह दो कि मुझको देख ना लहरी उठाए।
बाढ़ के उठते हुए जल में कहीं खो जाय रे।

आज सन्ध्या अनमनी है,
वेदना पागल बनी है,
जल गये दीपक घरों में—
रात हीरक की कणी है।

सुबह से कह दो कि मुझको देखकर ना गीत गाए।
उषा के अरुणिम अधर में ही कहीं खो जाय रे।
चांद से कह दो ?——

पता:-मुसद्दीपुरा उज्जैन (म. प्र.)

—:—
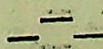
ये याद गीत सपने....!

श्री सरोजकुमार जैन

यह जो मेरे गीतों की छोटी सी दुनिया,
जिसमें मेरे मन का सारा संसार बसा—
कभी-कभी बोझिल हो जाया करती है।

(१)

यह जो मेरी मस्ती का गाना है,
मैं तो हूँ ही यह भी मस्ताना है;
रोकर सँहकर हर बार इसे गाता हूँ—
क्योंकि उम्र को मंजिल तक जाना है!
मेरा मन धरती सा बहुत बड़ा है,
मस्ती की यह कृषक दुल्हनियाँ देखो—
आते जाते गीतों की खेती बो जाया करती
कभी कभी बोझिल हो जाया करती है!

(२)

ये जो सपने कभी कभी आते हैं,
होनी, अनहोनी कुछ कह जाते हैं।
क्या जाने इनसे कैसा कुछ नाता है!
इनके गाये गीत बहुत भाते हैं।
यही आँखा जो इन सपनों का घर है,
मलता रह जाता मैं एक छला-सा—
क्योंकि सुबह निंदिया खो जाया करती है।
कभी कभी बोझिल हो जाया करती है।

(३)

यह आँख खुली है अब तक नहीं लगी है,
क्या याद किसी की आई ठगी ठगी है!
क्या जाने यह क्यों यूँ ही आजाती है!
शायद गीतों की लगती बहुत सगी है।
चंदा की उँगली पकड़े ठुमक ठुमककर,
ये याद, गीत, सपने सबही आते हैं—
जब सारी दुनिया सोजाया करती है।
कभी कभी बोझिल हो जाया करती है।

पता—१५।१५, बोझांकेट मार्केट इन्दौर शहर।

—:—

बादल और कवि
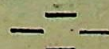
श्री हीरालाल पांडे 'हीरक'

बादल का अपना देश अभी तक अनजाना,
कवि का मंज़िल का छोर कहाँ कैसे पाना ?
पावस में बादल उमड़-घुमड़ कर आ जाते,
नभ की छाती पर हो अचेत से छा जाते।
धरती पर अंकुर हरयाले लहराते हैं,
स्वर ताल मधुरिमा से जग भर जाते हैं॥
जुगनू प्रकाश ले खोजा करता मनमाना,
कविकी मानसकी गतिको उसने पहिचाना।
बादल मस्ती में झूम-झूम इतराता है,
धरती श्यामा का इठलाना भा जाता है।
दो क्षण भी संभल न पाता बेचारा बादल,
इतने में फिर से एक झकोरा आता है॥
बादल की हालत का अनहोनी हो जाना,
कविके हर पहलूके चित्रों का खिंच जाना।
धरती-श्यामा का जीवन बादल का जीवन,
इठलाना खोना साथ-साथ हो जाता है।
पानी वाला बादल खारे आँसू भर-भर,
सब ओर निरंतर आँसू ही बरसाता है॥
बादल का जीवन यही कवि का जीवन,
दो कौड़ी लेकर बड़ा खजाना भर जाना।
दुनिया की गति को देख बदलते बादल भी,
सहसा छुप जाता लज्जा से भर जाता है।
उस ओर स्वयं बादल अनजाने ढ़ल जाता,
जिस ओर भाव का शीतल झोंका आता है॥
बादल का कवि बड़ा साधना का जीवन,
जीवन दे जग में नई ज़िन्दगी का लाना।
बादल जीवन भी क्या कोई जीवन है,
पानी का भरना पानी का ही ढोना है।
अनजान बने से सबके हित में खो जाना,
यह तो हीरे का पाकर ही खो देना है॥
पर बादल कवि की गति को वे ही जानेंगे,
'पानी होना' जिनने माना जीवन पाना।

पता-इंटर कॉलेज, भोपाल।

कू कू करती, पर फैलाती कोयलिया !

श्री वंशीधर रामावत

पिया बसै परदेश म्हारा वणी दिशा में जाजे ये।
पाती लिखइने लाजे संदेशो वेगो दीजे ये॥

बइयन में घट, पनघट खड़ी थी मेलो थो वणको भेष।
मटमैलो मुखड़ो,दुखड़ो झलके,बिखरया था वणका केश॥

गोरी गोरी गोरी को गोरो गोरो गात गरेरे हँस।
सावन घन बन बरसे नयन म्हारा जदसे गया वी परदेस॥

"साँपाँ ने छोड़ी दीदी काँचरी,नदियाँ ने छोड़ी रे कछार।"
कद लग जोऊँ वाट कोयलिया,पिवजी तो भूल्या ये करार॥

रिमझिम रिमझिम मैयो बरसे, नत नत बाढ़े पीर।
मझ-सावण में सेज सोवताँ, कूँण बँधावे धीर॥

घर आया लेवाने पामणाँ वी म्हारी सासुजी का प्यारा।
कीजे कोयलिया ! वेगा चल्या आवे नणदोई का हारा॥

ननदी बोले बोल कड़कता, हिवड़े लागेओ तीर।
हाय ! कोयलिया वेगी मिटावजे पागल मनवारी पीर॥

भरभादौ की रैण अँधेरी, कणविध धारूँ ए धीर।
बादल गरजे, बिजरी चमके, आँसुड़ारो बरसे ए नीर॥

वन वन मोर पपीहा बोले हिवड़े लग रही आग।
कद आवेगा म्हारा पीवजी, कद जागे सोया भाग॥

टक टक जोऊँ वाट सांवली, चाँदी भरी सारी रात।
चकवा चकवी तीरे बैठा, नो होवे हिरदारी बात॥

चमचम चमके चन्दो गगना हिरनी लूंबा खाय।
वेगा आजो म्हारा फूल गुलाबी, अब तो रह्यो नहिं जाय॥

गांधी-विद्यापीठ के समाचार

विद्यापीठ में प्रवेश प्राप्त छात्रों की संख्या

नाम कक्षा	संख्या	दि. १२-९-५७ को उपस्थित संख्या		निशुल्क विद्यार्थी संख्या
१. प्रथमा "क"	७२	५५		
२. ,, "ख"	६३	४६	१०	१३
३. ,, "ग"	६६	४५		
४. ,, "घ" महिला वर्ग	१५	१४	३	
५. मध्यमा "क"	४७	३५		
६. ,, "ख"	४३	३०	४	११
७. ,, "घ" महिला वर्ग	२८	२२	४	
८. उत्तमा प्रथम खंड	२४ ४ महिला	२०	३	२
९. ,, द्वितीय खंड	२३ ५ महिला	२३	१	
	३२१	२६३	२५	२६

गांधी विद्यापीठ में निम्नांकित विषयों का अध्ययन होता है।

साहित्य रत्नः—हिन्दी-साहित्य, मराठी, गुजराती, संस्कृत।

मध्यमाः—हिन्दी-साहित्य, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, भूगोल, मराठी, इतिहास, कृषि, गार्हस्थ्यशास्त्र (केवल महिलाओं के लिए।)

प्रथमाः—हिन्दी-साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित (अंक, रेखा, बीज,) नागरिक-शास्त्र, स्वास्थ्य-रक्षा, गार्हस्थ्यशास्त्र (केवल महिलाओं के लिए।)

अध्यापक मंडल

अ. नं.	नाम शिक्षक	शैक्षणिकयोग्यता
१	प्रो. कमलाशंकरजी मिश्र	एम. ए. साहित्यरत्न
२	प्रो. सी. डब्ल्यू डेविड	एम. ए. हिंदी, अंग्रेजी
३	प्रो. पी. डी. शर्मा	एम. ए. साहित्यरत्न काव्य तीर्थ
४	प्रो. ताराशंकरजी पाठक	एम. ए. एल. एल. बी, साहित्यरत्न, एल. एल. बी. टी
५	प्रो. रामचन्द्रजी 'चन्द्र'	एम. ए. हिंदी दर्शन साहित्यरत्न, एल. एल. बी
६	डा. एस. एन. पाटक	एम. ए. अर्थ, एम-काम, पी-एच. डी.
७	प्रो. मित्तल	एम. ए. हिन्दी
८	प्रो. भालचन्द्र जोशी	एम. ए. हिन्दी
९	प्रो. वालिम्बे	एम. ए. मराठी
१०	श्री सिद्धनाथ पोतदार	एम. ए. भूगोल
११	श्री महंत शेषनारायणदास	एम. ए., रत्न, बी. आय. एम. एस., आयुर्वेदाचार्य
१२	श्री महेन्द्र त्रिवेदी	एम. ए. एल. एल. बी., समाज शास्त्र
१३	श्री पं. नारायणदेवजी आर्य	साहित्यरत्न, सिद्धांत शास्त्री
१४	डा. श्याम परमार	एम. ए., पी-एच. डी.
१५	रामस्वरूप शुक्ल	व्ही.टी.सी., सा. रत्न, शिक्षा विशारद
१६	महेशकन्ठ तिवारी	एम. ए., हिन्दी, इतिहास, साहित्यरत्न
१७	गणेशदत्त ओझा	बी. ए.

(शेष पृष्ठ ६२१ पर)

सम्पादकीय
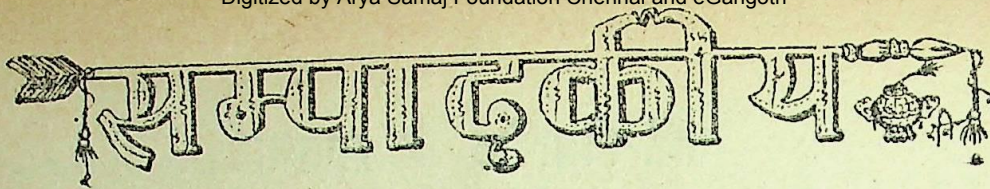
पंजाब का हिन्दी-आन्दोलन

पंजाब में हिन्दी-रक्षा-समिति द्वारा चलाया गया आन्दोलन दिन पर दिन उग्र रूप धारण करता जाता है और इसका प्रभाव अन्य प्रान्तों तक पहुँचने लगा है। कुछ उच्चकोटि के संसदीय तथा साहित्यिक महानुभावों के वक्तव्य इस आन्दोलन के विरोध में प्रकाशित हुए हैं तथा श्री घनश्यामसिंह गुप्त की ओर से उनके उत्तर देने का प्रयत्न भी किया गया है। श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी इस समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयत्न अपने कई भाषणों में किया है तथा इसे साम्प्रदायिक एवं हानिकर माना है। श्री गोपीचंद भार्गव तथा श्री श्री घनश्यामसिंह गुप्त में समझौता-वार्ता भी चल रही है, पर अभी तक उसका कोई परिणाम निकलता नहीं दीखता। किसी साधारण-सी बात के दो पहलू हो सकते हैं, फिर यह तो एक गम्भीर विषय है; अतः सरकार तथा उसके पक्ष के लोग एक दृष्टि से सोच सकते हैं, दूसरे लोग दूसरी दृष्टि से। सम्भव है कोई एक पक्ष ठीक हो, दूसरा गलत; यह भी सम्भव है कि दोनों में आंशिक सत्य हो। पर यह बात समझ में नहीं आती कि भाषा के आन्दोलन को साम्प्रदायिक क्यों माना जाने लगा है। यदि वह साम्प्रदायिक है तो उसकी साम्प्रदायिकता की नींव उस दिन पड़ी जिस दिन किसी 'इस्तान' की माँग की पूर्ति इस प्रकार करने का प्रयत्न किया गया। सीधी-सी बात यह है कि किसी को भी दूसरी भाषा सीखने को बलात् बाध्य ही क्यों किया जाए। आन्दोलन इसी मनोवृत्ति के विरुद्ध है। यदि इसके अतिरिक्त कोई अन्य बात है तो सिखिस्तान की माँग से लेकर सच्चर फर्मूला तथा अब तक के इतिहास को सरकार स्पष्ट शब्दों में जनता के सम्मुख रखे। यह दायित्व पंजाब-सरकार-मात्र का नहीं रह गया है, वरन् केन्द्रीय सरकार का है, क्योंकि भ्रांतियाँ सारे देश में फैल रही हैं और उनका सर्वत्र दुष्परिणाम सम्भव है। इस विषय की जाँच के लिए हम उच्च न्यायाधीश की माँग का समर्थन करते हैं, किसी भी उच्च-स्तरीय राजनीतिज्ञ के हाथों में देना उचित नहीं होगा। यदि कानून बनाकर प्रत्येक को दो भाषाएँ सीखने को बाध्य किया जाएगा तब भी सीखने वाले को यह विकल्प तो प्राप्त रहेगा कि वह अपने मन की भाषा सीखे। पाँच हिन्दी-प्रान्तों में भिन्न-भिन्न अन्य प्रांतीय भाषाएँ सीखने की सुविधा प्राप्त होगी, तब जिसके जो जी में आवेगा सीखेगा, सच्चर फॉर्मूला जैसी बाध्यता तो न होगी कि केवल एक ही भाषा सीखे। पूछा जा सकता है कि क्यों सीखें? आपको हमें बाध्य करने का क्या अधिकार है? इसका उत्तर अधिकार के आधार पर भले ही दे दिया जाए, न्याय के आधार पर नहीं दिया जा सकता। अतः आवश्यक है कि सरकार पहले पंजाब की स्थिति पर भरपूर प्रकाश डाले। इन वक्तव्यों से कुछ बनता नहीं दीखता; दूसरे उच्च न्यायालयीन जाँच करा के निपटारा कराया जाए, तथा सभी प्रान्तों में हिन्दी तथा हिन्दी प्रान्तों में अन्य प्रान्तीय भाषाएँ स्वेच्छा से सीखने का आयोजन किया जाए।

शहीदों का श्राद्ध

भाई बनारसीदास चतुर्वेदी एक सतत् जागरूक साहित्यिक और पत्रकार हैं। अपने साहित्य-सेवा-काल में आपने न जाने कितनी रिक्त दिशाओं की ओर इंगित किया है, कितने साहित्यिक आन्दोलनों का बीज वपन किया है, यह बात भुला देने की नहीं है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के शहीदों के लिए उनके हृदय में अगाध प्रेम, सम्मान और श्रद्धा है। उसी को व्यक्त करते हुए उन्होंने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में एक लेख लिखा है जो केवल विमर्श का विषय नहीं, कार्यरूप में परिणत करने का विषय है। उक्त लेख के कतिपय अंश हम यहाँ इस दृष्टि से उद्धृत करते हैं कि कलम के कोई धनी उनकी आवाज को सुनकर 'श्राद्ध' करने को उद्यत हो जाएँ।

"जब कभी स्वाधीनता-संग्राम के सिपाहियों के दर्शन हमें होते हैं, हमारा मस्तक उनके सामने झुक जाता है और हम यह अनुभव करने लगते हैं कि इन्हीं के पुण्य कार्यों का फल हम लोग भोग रहे हैं और जो स्थान न्यायतः उन्हें मिलने चाहिए थे, उन पर हम काबू कर बैठे हैं।

"हिंसात्मक अथवा अहिंसात्मक सिपाहियों में हम ने कभी भेद नहीं किया और हमारे हृदय में जितनी इज्जत भाई बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' या श्रीराम शर्मा की है, उतनी ही श्री भगवानदास माहौर और सदाशिव की भी है। यद्यपि अब हिंसा का उपयोग समय की गति के सर्वथा प्रतिकूल सिद्ध हो चुका है अणु बम के युग में हिंसा की बात भी करना महज़ हिमाक़त है, या यों कहिए कि सर्वनाश को निमन्त्रण देना है, तथापि पिछले सभी हिंसात्मक आन्दोलनों को निरर्थक अथवा निन्दनीय ठहराना ऐतिहासिक सत्य का गला घोंट देना है, और यह ग़लती एक ओर से नहीं, दोनों ओर से होती रही है। हमारे साम्यवादी मित्रों ने कभी भी सत्याग्रह-संग्राम तथा महात्मा गांधी की शहादत को उचित महत्त्व नहीं दिया; और अमर शहीद नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के महान् प्रयत्न की तो वे निरन्तर खिल्ली ही उड़ाते रहे। साम्यवादियों के उस वीभत्स कार्टून को लोग अभी भी नहीं भूले, जब कि सुभाष बाबू को हिटलर की बिल्ली के रूप में प्रदर्शित किया गया था। इस अवांछनीय पारस्परिक गलतफहमी का दुष्परिणाम यह हुआ है कि इस देश के शहीदों की छीछालेदर होती रही है और उन्हें विधिवत् श्रद्धांजलि भी अर्पित नहीं की जा सकी।

"अभी सन् १८५७ की शताब्दी के लिए जो कुछ हुआ है वह निस्सन्देह अत्यन्त प्रशंसनीय है, पर उसे इस महान् यज्ञ का अथ ही मानना चाहिए, इति नहीं।

"जब तक दस-बारह बन्धुओं की मंडली इस महान् यज्ञ को हाथ में नहीं लेती, तब तक यह अधूरा ही पड़ा रहेगा। इस विषय में हमें भूतपूर्व क्रान्तिकारियों से अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। वे अपना कर्तव्य पालन कर चुके हैं। यातनाओं तथा कष्टों के स्नातक वे कभी के बन चुके और उनमें से अधिकांश व्यक्तियों का जीवन-संघर्ष अब भी ज्यों-त्यों विद्यमान है। क्रांतिकारियों के एक महान् नेता ने हम से कहा—"आप मुझ से अपने अनुभव लिखने के लिए कहते हैं। यह सब शक्ति का अपव्यय होगा—वक्त की बर्बादी।"

"उन के इस कथन से हमें दुःख अवश्य हुआ, पर आश्चर्य नहीं। स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद जो दस वर्ष व्यतीत हुए हैं, उनमें हमने भूतपूर्व क्रान्तिकारियों के प्रति उस सहृदयता का बर्ताव नहीं किया, जिसके कि वे पूर्णतया अधिकारी थे।

× × × ×

"बिस्मिल के आत्मचरित को पढ़ते हुए रह-रह कर एक विचार हमारे मन में उत्पन्न होता रहा—"क्या कारण है कि शहीद बिस्मिल की इस महत्वपूर्ण रचना को लोग बिलकुल ही भूल गये, जब कि चेकोस्लोवाकिया के शहीद लेखक फूचिक के आत्म-चरित 'फांसी के तख्ते से' का अनुवाद भारत की नौ भाषाओं में हो गया है?

"अपनी शहादत के तीन दिन पहले तक का वृत्तान्त बिस्मिल ने लिखा था। क्या भाषा, क्या भाव और क्या शैली—तीनों दृष्टियों से वह आत्मचरित एक प्रथम कोटि की चीज है। वस्तुतः शहीद लोग अमर हैं, हम कृतघ्न लोग उन्हें विस्मृति के गढ़े में ढकेल कर मार डालने का निन्दनीय प्रयत्न करते हैं।

"स्वाधीनता-संग्राम के वास्तविक इतिहास का बहुत-सा मसाला तो उसके अनेक योद्धाओं के स्वर्गवास के कारण सदा के लिए नष्ट हो गया और जो शेष बच रहा है, वह भी धीरे-धीरे नष्ट हो जायगा। सरकारों द्वारा लिखाये गये इतिहासों को हम विशेष महत्व नहीं देते। उनके सजीव होने की कल्पना करना कठिन है।

"इस प्रश्न पर सर्व-प्रथम स्वयं भूतपूर्व क्रान्तिकारियों को विचार करना चाहिए। क्या उनमें से दो-चार भी ऐसे न निकलेंगे, जो इस यज्ञ की पूर्ति के लिए अपने समय का एक अच्छा भाग अर्पित कर सकें?

"पहला आवश्यक कार्य तो यह है कि जो भी सामग्री—ग्रंथ, लेख, चिठ्ठियाँ चित्र इत्यादि—इकट्ठे किये जा सकें किये जाएँ और उनको किसी जगह पर सुरक्षित रख दिया जाए। भिन्न-भिन्न राज्यों द्वारा एकत्र सामग्री की नकल यदि मिल सके तो ले लेनी चाहिए। तत्पश्चात् ग्रन्थ अथवा छोटी छोटी पुस्तिकाओं के लिखाने और छपाने पर विचार किया जा सकता सकता है। वर्तमान परिस्थिति में इस बात की आशा करना व्यर्थ होगा कि कोई महानुभाव इस पुण्य कार्य के लिए कोई बड़ी रकम प्रदान करेंगे। न हमारे नेताओं के हृदय में इस प्रकार की कोई उत्कट भावना है और न साधन-सम्पन्न व्यक्ति ही इसके महत्व को समझते हैं। फिर भी कुछ पत्रों के विशेषांक तो निकाले ही जा सकते हैं।"

श्री बनारसीदासजी के इस सुझाव के हेतु हम हृदय से आभारी हैं, तथा आशा और विश्वास करते हैं इस ओर उचित कदम उठाया जायगा।

राज्यों के शिक्षा मन्त्रियों के सम्मेलन की मुख्य सिफारिशें

राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों का दो दिन का सम्मेलन २१ सितम्बर को समाप्त हो गया। आयोजन आयोग की शिक्षा-सम्बन्धी समिति ने ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों के लिए अधिक से अधिक तीसरी आयोजना के अन्त तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने की जो सिफारिश की उसका इस सम्मेलन में समर्थन किया गया। केन्द्रीय शिक्षा एवं गवेषणा मन्त्री, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की।

इस सम्मेलन में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार करने के लिए भी कई सिफारिशें की गयी हैं। राज्यों के शिक्षा-मन्त्रियों ने यह स्वीकार किया कि वे विश्वविद्यालयों में ३ साल का डिग्री कोर्स चलाने के बारे में देशमुख समिति की सिफारिशों को अमल में लाने के लिए आर्थिक स्थिति का अध्ययन करेंगे। सम्मेलन में बहुमत दो साल के डिग्री कोर्स के स्थान पर तीन साल का कोर्स चलाने के पक्ष में था। इस सम्बन्ध में सम्मेलन ने अपने संकल्प में कहा है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा में सुधार के लिए तीन साल का डिग्री कोर्स चलाने की सिफारिश को अमल में लाना आवश्यक है।

सम्मेलन का यह दृढ़ मत था कि प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा तक के शैक्षिक पुनर्गठन का जो रूप तैयार किया गया है, उसको दूसरी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में निर्धारित धन की सहायता से वास्तविक रूप देना चाहिए।

सम्मेलन में इस बात पर भी विचार किया गया कि ग्रामीण उच्च शिक्षा संस्थाओं के स्नातकों को नौकरी के लिए मान्यता दी जाए अथवा नहीं। यह निश्चय किया गया कि कुछ तरह की सरकारी नौकरियों के लिये उन्हें मान्यता देने के प्रश्न पर विचार करने के लिए संघीय लोक सेवा आयोग के एक सदस्य की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की जाय। ग्रमीण उच्च शिक्षा-सम्बन्धी राष्ट्रीय परिषद द्वारा दिये गये डिप्लोमों को एक स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए विश्वविद्यालयों की बी० ए० की डिग्री के बराबर मानने के प्रश्न पर भी विचार किया गया और इसका निर्णय अन्तर्विश्वविद्यालय मंडल तथा प्रत्येक विश्वविद्यालय पर छोड़ दिया गया।

पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर सम्मेलन में विस्तार से बातचीत हुई। जिन राज्यों में यह प्रयोग शुरु किया जा चुका है उनके प्रतिनिधियों ने अपने यहाँ की स्थिति सामने रखी। सामान्यतः सम्मेलन का यह मत था कि पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण से छात्रों और उनके माता-पिता दोनों का ही लाभ है क्योंकि इस प्रकार सस्ते दामों में अच्छी किताबें मिल सकेंगी।

यह फैसला किया गया कि प्रत्येक राज्य अपने यहाँ की स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए अपने

ढंग से यह प्रयोग करे, किन्तु इस बात को ध्यान में रखे कि इस प्रकार अच्छी किताबें सस्ते दामों में उपलब्ध हों।

सम्मेलन ने हिन्दी-शिक्षा-समिति की सिफारिशों पर भी विचार किया। समिति ने जुलाई १९५७ की अपनी बैठक में सिफारिश की थी, कि केन्द्रीय सरकार को अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार के लिए अखिल भारतीय हिन्दी-संगठनों को सीधा अनुदान देना चाहिए, क्योंकि बहुत सी राज्य-सरकारें हिन्दी-प्रचार-सम्बन्धी अपनी योजनाओं को पूरा करने में असमर्थ रही हैं। इस सम्बन्ध में सम्मेलन ने अंतिम निर्णय यह किया कि वर्तमान व्यवस्था कम से कम एक वर्ष और चलाई जाय तथा अहिन्दी भाषा-भाषी राज्यों को हिन्दी-प्रचार के लिए और अधिक प्रयत्न करने चाहिए। चालू व्यवस्था यह है कि केन्द्रीय सरकार अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी-प्रचार के लिए सम्बद्ध राज्य-सरकारों को सहायता देती है और राज्य सरकारें अपनी योजनानुसार कार्य करने में स्वतन्त्र हैं।

प्राविधिक शिक्षा देने के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की जो कमी है उसे पूरा करने के लिए सम्मेलन ने अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-परिषद के प्रस्ताव स्वीकार कर लिये हैं। तदनुसार ३०० रुपये से ४०० रु० मासिक तक की १०० और २५० रु० से ३०० रु० मासिक तक की २०० छात्रवृत्तियाँ प्राविधिक प्रशिक्षण के लिए दी जाएँगी।

सम्मेलन में मैसूर राज्य के शिक्षा-मन्त्री ने भाषायी अल्पसंख्यकों के शिक्षा-सम्बन्धी हितों की सुरक्षा का प्रश्न भी उठाया। सम्मेलन ने निश्चय किया कि इस सम्बन्ध में अगर कोई राज्य अपनी निश्चित योजना बनाएगा तो केन्द्र अवश्य सहायता देगा।

सम्मेलन ने हर राज्य में एक-एक समिति नियुक्त करने की सिफारिश की जो देखे कि दूसरी आयोजना में विभिन्न शिक्षा योजनाओं की कितनी प्रगति हुई है इसका उद्देश्य यह है कि इस दिशा में अगर कोई बाधा रह गई है तो उसे दूर किया जाए।

इन दिशाओं में सुझाये गए विषयों का हम स्वागत करते हैं, पर अद्यावधि सम्पूर्ण देश के लिए नवीन शिक्षा-परिपाटी की ओर ध्यान न जाना आश्चर्य की बात है; तब और भी अधिक, जब वर्तमान शिक्षा प्रणाली को सभी दृष्टियों से दूषित माना जाता है।

स्वास्थ्य-मंत्रालय

भारत-सरकार के स्वास्थ्य-मन्त्रालय का संक्षिप्त विवरण (१९५६-५७) हमें प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार केन्द्रीय स्वास्थ्य-मन्त्रालय के नीचे लिखे मुख्य कार्य हैं:—

१ अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्पर्क और पत्तन-निरोधालयों का प्रशासन।

२ केन्द्रीय स्वास्थ्य संस्थाओं आदि का प्रशासन।

३ चिकित्सा अनुसंधान में परिवर्धन करना।

४ राज्य सरकारों और सम्बन्धित परिनियत परिषदों के परामर्श से नियमों का परिवर्धन करना और चिकित्सा, औषध, दंत और उपचारिक व्यवसायों का विकास और इन व्यवसायों के लिये शिक्षा के यथेष्ठ स्तरों का निर्धारण करना और उन्हें लागू करना।

५ राज्य सरकारों की सलाह से औषधस्तरों का निर्धारण और पालन करना और खाद्य मिलावट पर रोक लगाना।

६ खास-खास स्वास्थ्य समस्याओं की जाँच में परिवर्धन व उस दिशा में की गई चेष्टाओं का समन्वय और चिकित्सा विज्ञानों व स्वास्थ्य प्रशासन के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करना और उसका आदान-प्रदान।

७ स्थानिक स्वायत्त शासन के विषयों पर व्यवसायिक तथा साधारण लोगों में चाव पैदा करने और उन्हें इन विषयों की शिक्षा देने के उद्देश्य से स्थानिक स्वायत्त शासन की केन्द्रीय परिषद द्वारा और दूसरे तरीकों से पंचायत तथा अन्य स्थानिक निकायों की समस्याओं पर चर्चाएँ और जानकारी के आदान-प्रदान में परिवर्द्धन करना, अनुसंधान कार्यों को प्रोत्सा-

इन देना और इन मामलों में नीति विषयक मोटी-मोटी बातों की राज्य सरकारों को सिफारिश करना और खास कर सम्पूर्ण देश में स्थानिक स्वायत्त शासन के विकास का ढाँचा निर्धारित करना। अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त चिकित्सा मंत्रालय ने अनेक संस्थाओं और विभागों का संचालन अपने हाथ में लिया है जैसे अखिल भारतीय चिकित्सा विज्ञान संस्था की स्थापना एक स्वावलम्बी निकाय के रूप में अखिल भारतीय चिकित्सा विज्ञान संस्था अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत १५ नवम्बर १९५६ से की गयी।

जबलपुर, कानपुर, जामनगर, रांची, भोपाल, कालीकट में नये मेडीकल कालेज खोले गये, तथा डेंटल कालेजों को खोल कर वर्तमान कालेजों का विस्तार किया गया।

विलिंगडन अस्पताल और उपचर्यागृह, नई दिल्ली, सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली, कलावती शरण शिशु अस्पताल, लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज इन संस्थाओं में अनेक प्रकार के विस्तार किये गये।

पिछड़े क्षेत्रों में प्रसूति एवं शिशु कल्याण केन्द्र खोले गये तथा सामुदायिक परियोजना-क्षेत्रों में स्वास्थ्य सर्वेक्षण कराया गया मेहतरों और सफाई मजदूरों का स्वास्थ्य सर्वेक्षण भी किया गया।

अस्वस्थता सर्वेक्षण कराते हुए ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्र खोले गये। स्वास्थ्य शिक्षा का आयोजन किया गया। स्वास्थ्य शिक्षा के लिए निम्नलिखित व्यवस्था का विचार है—

(१) मासिक स्वास्थ्य बुलेटिनों का प्रकाशन।

(२) सामयिक स्वास्थ्य संकेतों का प्रेषण।

(३) रेडियो वार्ता।

(४) फिल्मों और फिल्म स्ट्राइपों के सूचीपत्र का प्रकाशन।

(५) स्वास्थ्य-शिक्षा फिल्मों का उत्पादन।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो की संस्थापना के लिये व्यवस्थाएँ हैं और इस प्रयोजन के लिए १७.७५ लाख रुपये की व्यवस्था की गई है। इस ब्यूरो के प्रस्ताविक भवन के लिये नक्शों और अनुमानित खर्चों की स्वीकृति दी चुकी है और उसका निर्माण जारी कर दिया गया है।

दिल्ली में आबादी की तीव्र वृद्धि व अत्यधिक जन-समुदाय के कारण गन्दी बस्तियों का निर्माण हुआ जिससे उन क्षेत्रों में रहन-सहन की स्थितियाँ, वहाँ के निवासियों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और चरित्र के लिये अहितकर हो गयीं। उस समय निजी अधिकृत गन्दे क्षेत्रों में जल-संभरण, टट्टियों आदि जैसी सुधार की व्यवस्था के लिये और न जायदादों पर ही कब्जा करने और छिन्न-भिन्न घरों को तोड़ने के लिये कोई ऐसी शक्तियां थीं। जमींदारों द्वारा गन्दी बस्तियों के निवासियों को हटाये जाने पर रोकथाम के लिये भी शक्तियाँ जरूरी समझी गयीं। अतः सभी संघ-राज्य क्षेत्रों के लिये (अंडमान व निकोबार तथा लक्की द्वीप मिनिकाय और अमीन-दीवि द्वीपों को छोड़कर) एक विस्तृत विधान जरूरी समझा गया और तदनुसार गन्दी बस्ती क्षेत्र (सुधार व सफाई) अधिनियम १९५६ (१९५६ का ९६) पारित किया गया। साथ ही महा दिल्ली के लिए अन्तरिम जनरल-प्लान स्वीकृत किया गया।

राष्ट्रीय मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में जारी रखा जा रहा है। दूसरी योजना की अवधि में इस कार्यक्रम के लिए २७ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है जिसमें केन्द्रीय सरकार के हिस्से का खर्च १४ करोड़ और राज्यों के हिस्से का १३ करोड़ रुपये है।

राष्ट्रीय फाइलेरिया नियंत्रण का कार्यक्रम भी दूसरी पंचवर्षीय योजना को अवधि में जारी रहेगा।

भारतीय मलेरिया संस्था, दिल्ली में नवम्बर, १९५५ से ३१ अक्टूबर, १९५६ के दौरान में इन्डोनेलिया से आये ४२ मेडिकल अफसरों, १३२ मलेरिया फाइलेरिया इन्सपैक्टरों, १० एन्टामालोजिस्टों, ११ इंजीनियरों और ११ कन्ट्रोलियरों को प्रशिक्षित किया गया। इसके अलावा इथोपिया, नेपाल और इन्डोनेसिया

के प्रत्येक दो उम्मीदवारों और अफगानिस्तान के १ उम्मीदवार के मलेरिया-विज्ञान में एक अल्पकालिक विशेष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का प्रबन्ध किया गया था। मलेरिया व फाइलेरिया के विभिन्न पहलूओं पर प्रयोगशाला और क्षेत्र अनुसांधानिक कार्यगति नियमित रूप से चलाई गई।

परिवार-नियोजन तथा विश्व-स्वास्थ्य संगठन और संयुक्त राष्ट्र शिशु निधि (यूनिसिफ) से संबंधित कार्य में उचित सहयोग दिया जा रहा है तथा कष्ट-निवारण, क्षय निवारण, मानसिक चिकित्सा की दिशा में यह महत्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं। पर आँकड़ों के देखने से पता चलता है कि आयुर्वेद की ओर जितना ध्यान देना चाहिए उतना नहीं दिया जा रहा है। करोड़ों में संपूर्ण देश पर केवल ६० लाख की रकम विशेष महत्व नहीं रखती इस दिशा में अनुसंधानों की भी उपेक्षा रही है। हम आशा करते हैं कि इस महत्वपूर्ण दिशा में भी कार्य किया जायगा।

हिन्दी कहानीकार संसद

श्री लाडलीमोहन सहायक मन्त्री हिन्दी कहानीकार संसद ८५ भाटवाड़ा मेरठ से सूचित करते हैं कि—"हिन्दी कहानीकारों के हितों की रक्षा और उनकी कला के समुचित विकास के लिए एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना की गई है। इस संस्था का नाम 'हिन्दी कहानीकार संसद' है, और हिन्दी के ख्यातिप्राप्त कहानीकार इसके वर्तमान मन्त्री तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', नई दिल्ली, के सम्पादक श्री बाँकेबिहारी भटनागर कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। स्वभावतः संसद का प्रधान कार्यालय इस समय ८५ भाटवाड़ा, मेरठ, में स्थापित है। हिन्दी के कहानीकारों को चाहिए कि संस्था की श्रीवृद्धि में योग दें और हिन्दी कहानीकला के विकास के लिये संगठित प्रयास करें। पन्दरह नए पैसे के डाकटिकिटों के साथ उद्देश्य-परिपत्र तथा विधान आदि के लिये प्रधान कार्यालय को लिखने का कष्ट करें।" हम इस संस्था का हृदय से स्वागत करते तथा श्रीवृद्धि की कामना करते हैं।

(पृष्ठ ६१५ का शेष)

१८	लक्ष्मीकान्त द्विवेदी	बी. ए. साहित्यरत्न
१९	ब्रह्मादेवी गुप्ता	साहित्यरत्न
२०	चन्द्रारानी सिंह	एम. ए. हिन्दी
२१	हरिकृष्ण गौड़ जोशी	आयुर्वेदरत्न, आयुर्वेदाचार्य, बी. आय. एम. एस. साहित्यरत्न
२२	राजेश्वरप्रसाद एडला	एम. ए., इतिहास, राजनीति, बी. टी.
२३	पुखराजमल बापना	साहित्यरत्न
२४	रामनाथ उपाध्याय	साहित्यरत्न
२५	अमृतलाल राव	बी. ए., विशारद
२६	प्रबोधकुमार राय	साहित्यरत्न
२७	रमाकान्तजी शास्त्री	
२८	गुलाबचन्द जैन	साहित्यरत्न
२९	गोवर्धनलाल ओझा	एम. ए., बी. एस. सी., एल. एल. बी.
३०	शिवमंगल तिवारी	एम. ए. साहित्यरत्न
३१	सुरेन्द्रकुमार तेनगुरिया	इंटर, साहित्यरत्न
३२	मनोहरसिंह चावला	बी. एस. सी., एल. एल. बी
३३	कान्तीलाल शर्मा	बी. ए.
३४	जानकीप्रसाद पुरोहित	
३५	नगेन्द्रप्रसाद आजाद	
३६	सुधाकरजी शास्त्री	
३७	चौबेजी	बी. ए., साहित्यरत्न
३८	लक्ष्मणसिंह चौहान	साहित्यरत्न
३९	शेषनारायण चौहान रजिस्ट्रार	साहित्यरत्न, साहित्यालंकार
४०	व्ही. आर. ढोकले उपधिष्ठाता	एम. ए. बी. टी.
४१	गोविंदलालजी शास्त्री अधिष्ठाता	

शेषनारायण चौहान
रजिस्ट्रार
श्री म. भा. हिं. सा. समिति,
इन्दौर.

गोविन्दलाल
अधिष्ठाता
गांधी विद्यापीठ,
इन्दौर.

हिन्दी के विकास कार्य के लिये समिति का सहयोग लिया जायगा

— राज्यपाल पाटसकर

यह सही है कि मातृ-भाषा पर सबको अभिमान है और यह होना स्वाभाविक भी है। हमें हिन्दी को उदार एवं परिष्कृत करने की नितान्त आवश्यकता है। हिन्दी साहित्य के विकास के लिए समिति से अवश्य ही सहयोग लिया जायगा। —राज्यपाल पाटसकर

तारीख २१ सितम्बर १९५७ को प्रातः १०:५० बजे मध्यप्रदेश शासन के परम श्रेष्ठ राज्यपाल माननीय श्री हरि विनायक पाटसकर समिति भवन में पधारे। समिति के उपाध्यक्ष एवं भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री श्रीमान मनोहरसिंहजी मेहता, समिति के प्रधान मन्त्री प्रो० कमलाशंकरजी मिश्र, समिति के अन्य मन्त्री गण एवं अन्य गणमान्य सदस्यों ने मोटर से उतरते ही आपका अभिवादन किया। राज्यपाल महोदय ने सर्वप्रथम समिति मुद्रणालय का निरीक्षण किया। मुद्रणालय में प्रेस-मन्त्री श्री पी. डी. शर्मा के साथ ही मैनेजर श्री उमाशंकरजी जोशी तथा भागीरथजी दुबे ने पुष्प-मालाओं से स्वागत किया। परमश्रेष्ठ राज्यपाल महोदय ने मुद्रणालय की व्यवस्था पर संतोष व्यक्त किया। तदुपरान्त आपने समिति पुस्तकालय का निरीक्षण किया। पुस्तकालय मन्त्री श्री वसन्तसिंह जौहरी ने पुस्तकालय के प्रत्येक विभाग से आपको अवगत कराया। मंच पर 'वंदे मातरम्' राष्ट्रीय गीत, समिति द्वारा संचालित गांधी विद्यापीठ की बालिकाओं द्वारा गाये जाने के उपरान्त राज्यपाल महोदय ने समिति के शिलान्यासकर्ता विश्ववन्द्य पूज्य महात्मा गाँधीजी के चित्र को एवं समिति के आदि संस्थापक डा० सरजूप्रसादजी की प्रतिमा को फूल-हार पहनाया। अध्यक्ष श्रीमान मनोहरसिंहजी मेहता ने अपने प्रारम्भिक सारगर्भित संक्षिप्त भाषण में समिति की गतिविधियों एवं कार्य-कलापों पर प्रकाश डाला। आपने कहा कि सन् १९१५ में स्व. डॉ. साहब सरजूप्रसादजी की प्रेरणा से इस समिति की स्थापना की गई। ३० मार्च १९१८ को इसके भवन का शिलान्यास म० गांधीजी के कर-कमलों द्वारा किया गया एवं इसी माह में राष्ट्रभाषा साहित्य सम्मेलन बम्बई और गुजराती साहित्य सम्मेलन सूरत के अधिवेशनों में, समिति की ओर से सम्मिलित उसके प्रतिनिधियों के प्रयत्नों द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने के प्रस्ताव स्वीकृत किये।

इस प्रकार लगातार ४१ वर्षों में समिति ने देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा का अटूट प्रचार किया। आज भी समिति मध्यप्रदेश में प्रायः सबसे प्राचीन सबल संस्था है और भविष्य में भी सेवाएं करने को सक्षम है।

मा० पाटसकर का भाषण

मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्कर ने अपने भाषण में कहा कि जिस हिन्दी के कार्य को आपने गांधीजी के सभापतित्व में आगे बढ़ाया और उसके लिए पूर्व से ही कल्पना की थी कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी इसमें किसी प्रकार की कोई शंका नहीं है। हिन्दी के प्रति उन्होंके मन में शंका हो सकती है जो अपने मन में विकाररखते हों, नहीं तो राष्ट्र-भाषा के रूप में हिन्दी के प्रति शंकाओं और कुशंकाओं की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। स्वराज्य के बाद अंग्रेजी से हमारी राष्ट्र कोई दुश्मनी नहीं है। एक

के लिये एक भाषा होना आवश्यक है और वह हमारी भाषा है हिन्दी जिसे परिष्कृत करने की नितान्त आवश्यकता है।

आगे राज्यपाल महोदय ने कहा कि देश में कई भाषाएं हैं मगर उसके लिये विवाद या झगड़ा करना अच्छा नहीं है। कहा जा सकता है कि हमें भाषा के वाद में न पड़ कर एक राष्ट्र बनाना है। यह सही है कि मातृभाषा पर सभी को अभिमान है और यह होना स्वाभाविक भी है। संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है।

अन्त में राज्यपाल महोदय ने समिति को विश्वास दिलाया कि हिन्दी साहित्य के विकास में समिति से अवश्य सहयोग लिया जायगा।

राज्यपाल श्री पाटस्कर के भाषण के पश्चात समिति के प्रधान मन्त्री श्री कमलाशंकरजी मिश्र ने राज्यपाल तथा आगत महानुभावों का आभार मानते हुए कहा कि शासन जैसा भी सहयोग चाहेगा वैसा ही सहयोग समिति हमेशा देने को तत्पर है।

कार्यक्रम में मेयर श्री इश्वरचंद जैन, सौ कमलाबाई किबे हस्तीमलजी जैन, सेठ बद्रीलालजी भोलाराम, प्रो. चन्द्रजी, लक्ष्मणसिंह चौहान, माधवराव खुटाल, श्रीकृष्ण खंडेलवाल, डा. देवेन्द्रकुमार जैन, प्रो. मित्तल, मोहनलाल उपाध्याय निर्मोही हुकमचंदजी पाटनी आदि महानुभाव उपस्थित थे।

मैं राष्ट्र-भाषा हिन्दी की उपेक्षा कदापि सहन नहीं कर सकता
पंजाब के आन्दोलन से हिन्दी का हित नहीं

—सेठ गोविन्ददास

श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति द्वारा ता. २८ सितम्बर १९५७ को आयोजित एक विचार गोष्ठी में अपने विचार व्यक्त करते हुवे हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध नाटककार एवं मध्यप्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सेठ गोविंददासजी ने हिन्दी राज्य भाषा की समस्या पर प्रकाश डाला सेठजी ने कहा कि जब संविधान सभा ने सर्वानुमति से हिन्दी को राज्य भाषा बनाने का निर्णय किया है तो उस समय विरोध में किसी ने आवाज नहीं उठाई साथ ही अन्य किसी भाषा को राज भाषा बनाने का भी सुझाव नहीं दिया। संविधान में १४ भाषाओं को राष्ट्रभाषा सम्बोधित किया गया है। हिन्दी केवल राज भाषा रहेगी। हिन्दी को किसी पर थोपा नहीं जाना चाहिए। और अन्य सभी प्रान्तीय भाषाओं को विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त होना चाहिये। सेठजी ने कहा कि छात्रों को मुख्य रूप से तीन भाषाएँ सीखनी चाहिये-(१) हिन्दी (२) मातृ भाषा और (३) अंग्रेजी।

पारिभाषिक शब्दों के प्रश्न पर सेठजी ने कहा कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्री मौलाना आजाद ने एक बार यह सुझाव दिया था कि अंग्रेजी के प्राविधिक शब्द ले लेना चाहिये। उस समय उन्हें यह कहा गया कि यदि अंग्रेजी के लाखों शब्द इस तरह लिए गये तो भाषा का स्वरूप ही बदल जायेगा। संस्कृत भाषा इतनी समृद्ध है कि उसमें से सभी आवश्यक प्राविधिक शब्द बनाये जा सकते हैं। टेकनीकल शब्द केवल छः देशों में ही प्रचलित है। थाईलेंड जैसे छोटे से मुल्क ने संस्कृत से पारिभाषिक शब्द लिए है। प्रत्येक मुल्क के अपने शब्द अलग है।

साहित्य के विकास के सम्बन्ध में बोलते हुवे सेठजी ने कहा कि जहाँ अन्य कार्य पर करोड़ों रुपये व्यय हो रहे हैं वहाँ साहित्य कार्य के लिए यदि केन्द्र ५

करोड़ रु. अलग निकाल दे तो अनुचित नहीं होगा।

मध्य प्रदेश में हिन्दी के प्रश्न पर बोलते हुवे सेठजी ने शासन पर अवहेलना का आरोप लगाया और कहा कि श्री रविशंकरजी शुक्ल के निधन के बाद इस हिन्दी भाषी राज्य में हिन्दी का कार्य शिथिल पड़ गया है। इस सम्बन्ध में मैंने मुख्य मन्त्री डा. काटजू से भी चर्चा की है। और कुछ सुधार भी हुआ है। यदि शासकीय कार्यों में अंग्रेजी को पुनः थोपने का प्रयत्न किया गया तो मैं व्यापक आन्दोलन छेड़ दूंगा।

पंजाब के हिन्दी आन्दोलन पर बोलते हुवे सेठजी ने कहा कि मुझे इस आन्दोलन से हिन्दी का हित दिखाई नहीं देता उसके पीछे कतिपय साम्प्रदायवादियों का हाथ प्रतीत होता है। मैं तो चाहता हूँ कि सब प्रान्तों में उनकी अपनी प्रान्तीय भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम अवश्य बने, हाँ केन्द्रीय शासन और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा हिन्दी ही होना चाहिये।

प्रेम और उदारता से हिन्दी का प्रचार होना चाहिये

सेठजी के भाषण के पूर्व सौ. कमला बाई किबे ने कहा कि स्वतन्त्र भारत में अब हिन्दी को समृद्धि और विकास की ओर ले जाने का उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है। भाषा कार्य एवं व्यवहार व्यक्तित्व के बल चलते हैं। हिन्दी साहित्य का प्रश्न केवल इस प्रान्त तक ही सीमित नहीं है। अब समिति जैसी प्राचीन संस्था को प्रेम और आदर के साथ इसका प्रचार करना चाहिये।

समाचार पत्र दिशादान दे

सूर एक अध्ययन के रचियता बाबू शिखरचंदजी जैन ने हिन्दी सगठन पर बल देते हुवे दैनिक व साप्ताहिक पत्रों से हिन्दी की वर्तमान समस्या पर अग्रलेख लिखकर दिशा दान देने का अनुरोध किया।

हिन्दी की असमानता को पूर्ण करना होगा

प्रो. ताराशंकरजी पाठक ने कहा कि हिन्दी साहित्य का समस्या केवल प्रान्त की समस्या ही नहीं है वरन देश की समस्या है। प्रान्तीय भाषाओं का आदर करते हुवे हमे हिन्दी की असमानता को पूर्ण करना होगा। हिन्दी की वे कमिया जैसे आज के हिन्दी नाटकों में जहाँ अभिनयात्मकता है वहाँ साहित्यिकता नहीं और जहाँ साहित्यिकता है वहाँ अभिनयात्मकता नहीं। हमें भाषा के स्वरूप को कुछ अंशों में स्थिर करना होगा। यद्यपि भाषा का स्वरूप स्थिर नहीं किया जा सकता तथापि समय सापेक्ष में भाषा का स्वरूप एक निश्चिति पर पहुँचाया जा सकता है। हिन्दी में आवश्यकता है जनरूचि को आकृष्ट करने की और उसी प्रकार के साहित्य का निर्माण होना चाहिये।

प्रेम और त्याग ही नहीं विवेक भी चाहिये

अन्त में दैनिक नई दुनिया के प्रधान सम्पादक श्री राहुलजी बारपुते ने कहा कि मध्यप्रदेश जैसे विशाल प्रान्त की साहित्य समस्या केवल प्रान्त की ही नहीं वरन देशकी समस्या है। हिन्दी की जिस समस्या को आज की समस्या समझी जाती है वह वास्तविक समस्या नहीं है। वास्तविक समस्या तो उसकी याने भाषा को सक्षम बनाने की है। हिन्दी समृद्ध कैसे हो यह एक समस्या अवश्य है। हिन्दी प्रचार के लिए प्रेम और त्याग की ही आवश्यकता नहीं, विवेक की भी आवश्यकता है। हमें हिन्दी में विश्व स्तर की रचनाओं को जन्म देना होगा यद्यपि इसमें कुछ समय लगेगा। फिर भी हमें अपनी ओर से सतर्क रहना चाहिये केवल भावुकता के बल पर हम हिन्दी को सक्षम नहीं बना सकते उसके लिए हमें पर्याप्त विवेक की आवश्यकता है।

समारोह में सर्वश्री डा. श्याम परमार, प्रो. चन्द्रजी, प्रो. मित्तल, अवधप्रसादजी शुक्ला, क्षेत्रीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री श्री बाबूलालजी पाटोदी, म. तु. क्लाथ मार्केट अशो. के अध्यक्ष श्री राजमलजी जैन, राजेन्द्र माथुर, हस्तीमलजी जैन, हुकमचंदजी पाटनी, डा. मदनलाल रावल, शंभुनाथ सक्सेना ग्वालियर, भीष्मसिंह चौहान, बलराम पगारे, कस्तूरचंदजी सेठी, महेश सार्वजनिक वाचनालय के प्रधान मंत्री श्री माणकचंद पलोड़, जिला कांग्रेस के किशनलाल गुप्ता, नरसिंहदास चौधरी आदि नगर के गणमान्य सज्जन तथा नगर के सभी पत्रकार बन्धु उपस्थित थे।

क्रिश्चियन कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. सी. डब्ल्यू डेविड ने एक पत्र द्वारा निम्न सुझाव आज की गोष्ठी के सम्बन्ध में दिये हैं:—

मुझे खेद है कि मैं गोष्ठी में भाग न ले सका समय परिवर्तन हो जाने के कारण मैं न आ सका। श्रद्धेय सेठ गोविन्ददासजी माननीय मित्र मेहताजी और प्रचार मन्त्रीजी से क्षमा-प्रार्थना है। मुझे पता नहीं कि क्या विचार विनिमय हुआ? मध्यप्रदेश का साहित्यिक पुनर्निर्माण आवश्यक है इसमें दो मत नहीं है। अनेक दिशाओं में इसका विचार किया जा सकता है मैं अपने सुझाव बिन्दु रूप में ही प्रस्तुत कर रहा हूँ।

१—प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

भोपाल में कुछ प्रतिनिधियों की बैठक कुछ समय पूर्व हुई थी। उसका कार्य कितना आगे बढ़ा उससे मैं अनभिज्ञ हूँ। यदि विशेष कुछ नहीं हुआ है तो शीघ्रातिशीघ्र भोपाल साहित्य सम्मेलन-विंध साहित्य सम्मेलन-मध्य भारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन और महाकोशल हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीन-तीन प्रतिनिधियों की बैठक बुलाई जाय और उसमें एकीकरण का स्वरूप निर्धारित किया जाय। भोपाल साहित्य सम्मेलन के मन्त्री महोदय इसके संयोजक हों। यह एक अस्थाई विधान तैयार कर शीघ्र उसके आधार पर विराट सम्मेलन का आयोजन करें जिसमें एकीकरण हो जाय और प्रान्तीय सम्मेलन का स्वरूप प्रदान किया जाय।

सारे प्रान्त में छः क्षेत्र बनाये जाय। ग्वालियर, इंदौर, भोपाल, जबलपुर, रायपुर और रींवा क्षेत्रों के इन नामों पर कोई आग्रह न हों। इन क्षेत्रीय सम्मेलन का अधिवेशन २ वर्ष में एक बार और प्रान्तीय सम्मेलन का ३ वर्ष में एक बार हो। यह आवश्यक नहीं कि इन दोनों के कार्यालय उपर्युक्त नगरों में ही हो। प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन का केन्द्र भोपाल स्वीकृत किया जाय।

२—प्रवृत्तियाँ और संस्थान

आज हिन्दी भाषा और साहित्य की जो अनेक संस्थाएँ है उनका विचार प्रान्तीय स्तर पर होना आवश्यक है प्रान्त में शोध संस्थान-प्रकाशन एवं वितरण संस्थान साहित्यकार संस्थान आदि चाहिये। सुझाव विचारार्थ ये हैं—

शोध संस्थान—जबलपुर में हो और उसे पहले सुदृढ़ बनाकर बाद में दूसरा शोध संस्थान निर्माण करे।

प्रकाशन और वितरण संस्थान—इन्दौर में रखा जाय और मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इसका केन्द्र हो सकती है।

साहित्यकार संसद—म. भा. हिन्दी साहित्य सभा ग्वालियर को यह कार्य सौंपा जा सकता है।

अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी मिशनरी कार्य संस्थान—रायपुर।

लोक साहित्य संस्थान—रीवा।

इनमें से प्रत्येक के लिए योजना बद्धता गंभीर विचार विनियम करना आवश्यक होगा।

(३) हिन्दी को ग्रामों में अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए प्रति वर्ष एक हिन्दी प्रचार टीम का निर्माण किया जाय उसमें एक हिन्दी प्रचारक, एक कवि गायक और तीन-चार व्यक्तियों द्वारा एक, दो एकांकी नाटक खेलने वाले हों। यह टीम अहिन्दी प्रांतों में भी प्रचारार्थ जा सकती है।

संख्या १ में जो एकीकरण समिति बने वह एक तीन सदस्यों की अस्थाई समिति बनाये। उसका कार्य होगा कि प्रान्त में जितनी साहित्यिक संस्थाएँ हैं उनकी प्रवृत्तियों और अर्थ का एक संक्षिप्त लेखा प्रस्तुत करें। प्रान्त में साहित्यिक संस्थाएँ कितना धन एकत्र कर सकती है और कितने धन की आवश्यकता उपरोक्त समग्र प्रवृत्तियों के लिए आवश्यक होगा। साथ ही यह विचार करें कि किस रूप में आज सामान्य जनता से छोटा दान विशाल पैमाने पर एकत्र किया जा सकता है। और शासन से क्या प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे मानस और हृदय में ऐसी उदार प्रान्तीय भावना का विकास आवश्यक है। जिसमें हम अपने शहर का ही नहीं समग्र प्रान्त की उन्नति का ध्यान रखकर विचार करें।

समिति के प्रधान मंत्री श्री कमलाशंकरजी मिश्र ने श्री सेठजी का स्वागत करते हुवे 'वीणा' भेंट की। विचार गोष्ठी की अध्यक्षता श्री मनोहरसिंहजी मेहता ने की तथा अंत में उपस्थित जनता तथा अतिथि महोदय का आभार माना।

जगन्नाथ वियाणी
प्रचार-मन्त्री

'वीणा'

रजिस्टर्ड नं. जे. ८७

अनुक्रम संख्या..........

श्रीमान् संपादक "गुरुकुल पत्रिका"
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार
(उ० प्र०)

मुद्रक एवं प्रकाशक—पं० उमाशंकर जोशी मैनेजर, श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति प्रेस, इन्दौर.

श्री म.भा. हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर की मासिक मुख-पत्रिका

वीणा

सम्पादक :
कमलाशंकर मिश्र
[illegible]न्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

विषय-सूची

★

वर्ष ३१] फरवरी १९५८ [अङ्क ४
फाल्गुन विक्रम संवत २०१४
शक संवत् १८७९
वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति का ॥)

वीणा

श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर की मुख-पत्रिका

तेरे गुन-गौरव सुनाऊँ आजु भूतल पै, यातें मातु सारदे सुधारि निज 'वीणा' तू।

वर्ष ३१ | फाल्गुन संवत् २०१४, फरवरी सन् १९५८ | अंक ४

उद्बोधन

श्री 'बटुक' चतुर्वेदी

★

इतना दर्द समेटो जिसके बल पर सचमुच जी सको,
इतनी प्यास समेटो जन-जन के अभाव को पी सको।
केवल जनम-जनम मर जाना कोई अर्थ नहीं रखता-
इतना धैर्य रखो जो हर दिल के घावों को सी सको।

ऐसे चलो कि मंजिल तक तो आसानी से चल सको,
ऐसे बहो कि भावों में बहते बहते भी रुक सको।
यह तो पागलपन ही होगा चाहे जब खिलना मुर्झाना,
इतना साहस रखो प्रात की किरणों के सँग खिल सको।

इतना गाओ, ऐसा गाओ सुनने वाला कह उठे,
इतना दर्द न गाओ गायक! जीना मुश्किल हो उठे।
वीराने में बैठे आँसू ढुलकाने का क्या मतलब-
इतना रोओ ऐसा रोओ सारी जगती रो उठे।

पता—भृगु-निवास, रामपुरा, भोपाल

वीणा-धारिणी के प्रति

श्री परमेश्वर 'द्विरेफ'

★

तेरे प्रकाश के मंडल में प्रत्यूप-कमल से लोक जगे

अंचल के युगल उरोजों में
निःशेष सुधा के कलश भरे
भारानत युगल नितम्बों पर
अगणित भू-गोल, ख-गोल धरे

तेरे भीने सुषमा-मुख पर मधु-वर्षिणि, सौ सौ सूर्य उगे

तेरे कमलों-से चरणों में
कुंकुम के शाश्वत प्रात मिले
किंजल्क असीम सुवास लिये
नीचे असंख्य जलजात खिले

स्वर्गंगा का नत राजहंस, जिसकी छवि से शतचंद्र लगे

तेरी वीणा के तारों से
जीवन-संगीत अनंत झरे
वाणी के प्रामृत स्रोतों से
कविता-कानन के वृन्त हरे

अंगुलियों में स्थापत्य, शिल्प, चित्रों के दिव्याधार पगे

तेरे पद-तल छू लेने को
लहरों के लक्ष विवर्त खुले
तेरे आवाहन, चिन्तन से
मृत, असत्, अपावन, तमस, डुले

धाराप्रवाह नवझंकृति पर संसृति के अपलक नयन लगे

पता—पिलानी (राजस्थान)

गीत

श्री मोहन 'अवस्थी'

गीत में प्राण तो गूँजते हैं हमारे,
मगर प्राण को स्वर तुम्हीं ने दिया है।

अतुल रंग लेकर भले ही खिले,
पर बिना गंध के फूल की ज़िदगी क्या ?
कभी उच्च आकाश तक उठ न पाए
अगतिमान उस धूल की ज़िंदगी क्या ?

प्रकाशित सकल व्योम मैं कर रहा हूँ,
मगर ज्योति-निर्झर तुम्हीं ने दिया है।
मगर प्राण को स्वर तुम्हीं ने दिया है॥

मिलाओ मुझे वह पथिक जो न थकता,
धनी-निर्धनी या गुणी-निर्गुणी हो,
सुनाओ मुझे एक ऐसी कहानी,
न तुमने कही हो न मैंने सुनी हो।

नया राग मैं विश्व में खोजता हूँ
मगर खोज का वर तुम्हीं ने दिया है।
मगर प्राण को स्वर तुम्हीं ने दिया है॥

मुझे किस तरह भीत जीवन करे यह
कि जब मौत से मैं निडर हो चुका हूँ ?
भला विश्व में किस तरह लीन होऊँ
कि जब आप में मैं स्वयं खो चुका हूँ।

पपीहा हुआ हूँ अमर-स्वाँति का मैं
मगर रूप-जलधर तुम्हीं ने दिया है।
मगर प्राण को स्वर तुम्हीं ने दिया है॥

पता—११०, डायमंड जुबिली, प्रयाग

एक लघुतम कथा—

६३ से ३६

प्रो० चन्द्र

आज अपना सौभाग्य ही समझिए जो 'विनोद' जी और 'प्रमोद' जी लगभग एक साथ ही पधारे। निवासी तो वे दोनों एक ही नगर के हैं, और वैसे 'विनोद' जी में 'प्रमोद' जी और 'प्रमोद' जी में 'विनोद' जी निवास करते हैं, पर पधारे वे दोनों विरोधी दिशाओं से थे। एक पूरब से तो दूसरे पश्चिम से। एक दूसरे को मेरे यहाँ देखकर दोनों एक साथ बोल पड़े—'अरे तुम!' फिर दोनों ने ही जैसे कि उत्तर दे लिया कि हम दोनों एक दूसरे से अलग हैं भी कहाँ, और हो भी कैसे सकते हैं।

इन दोनों के विषय को लेकर सुना बहुत था, आज प्रत्यक्ष देखने का अवसर आया, निश्चय एक जान दो शरीर थे वे दोनों, जैसे कि एक ही हरिणी के दो शावक हों।

मार्ग की श्रान्ति और क्लान्ति से विमुक्त हो स्नान-भोजनादि से निवृत्त हुए और चढ़ती दोपहरी में मैंने आग्रह प्रस्तुत कर दिया—तो 'विनोद' जी हो जाए कोई नई-पुरानी।"

"पहिले 'प्रमोद' जी की रचना होगी।"

"नहीं-नहीं, पहिले 'विनोद' जी की" 'प्रमोद' जी ने आग्रह किया।

विनोदजी ने तनिक ऊपर को खिसककर तकिये का सहारा ले आरम्भ की क्रियाएँ सम्पादित कीं-यानी खाँसना मठारना, भौंहों के बाँकपन को और बल देकर दृष्टि किंचित् ऊँची कर सोचने का उपक्रम। सहसा गुन-गुनाये—

"आज हमारे भाग जागे........।"

मधुर कंठ ने उल्लास-सिक्त हो आनंद की वर्षा कर दी। मुख से अनायास वाह-वाह की झड़ी लग गई। अब प्रमोदजी की बारी आई, उन्होंने मन्द स्वर में गुन-गुनाया—"रुन झुन रुन झुन पायल बाजी।" गीत बड़ा ही मधुर था, फिर रुन झुन रुन झुन के साथ कवि-कंठ ने भी वही ध्वनि चित्र-प्रस्तुत कर दिया। अनायास मेरे मुख से वाह-वाह की झड़ी लग गई। इस बीच 'विनोद' जी तकिये का सहारा को त्याग जमकर बैठ गये थे। उन्होंने 'प्रमोद' जी की रचना की सराहना तो भरपूर की, पर उनके उठ बैठने की मुद्रा से लगा कि उन्होंने किसी की चुनौती स्वीकार कर ली है। उन्होंने गीत उठाया—

"उस चितवन पर क्या न वार दूँ
खंजन, कमल, भ्रमर चातकि के
दल के दल एक साथ हार दूँ
....
....
...."

गीत जमा, पर उतना नहीं जितना 'प्रमोद' जी का। इस कारण अपेक्षया वाह-वाही में कमी रह गई। 'विनोद' जी किंचित् कुंठित तो हो ही रहे थे, मेरे मुख से सहसा निकल गया—बहुत सुन्दर गीत था विनोदजी, पर क्षमा करें, कुछ रीतिकालीन पुट आ गया।" वाक्य समाप्त होते-होते 'विनोद' जी का चेहरा तमतमा आया, बोले—"और—'रुन झुन रुन झुन पायल बाजी' में वह पुट नहीं था क्या?'

"मेरे विचार से तो नहीं था।"

"भला कैसे नहीं था? और आज ऐसा कौन-सा कवि है, 'पन्त', 'निराला', 'प्रसाद' तक रीतिकाल की

उत्सर्ग

श्री देवेन्द्रनारायण वर्मा

मिट्टी के सूखे-से तन में
गीली साँसें सींच....!

यह काया ज्वाला-सी जलती
रोमावलि अंगार उगलती
बहा पवन पुरवैया के स्वर
ला पावस-घन खींच...!

भर जाने दे हृदय थलाथल
दिखे चतुर्दिक बस जल-ही-जल
भर-भर नयन-कटोरों से
मरुथल में अश्रु उलीच...!

तृप्ति तृप्ति देने से बुझती
प्यास नहीं पीने से बुझती
झर जाने दे स्वप्न दृगों के
पलक न पलकें मींच...!

ऐसी बहे उमड़कर सुरसरि
पत्थर तक हो जाएँ उर्वर
सूख जाय तू, डूब जाय पर
जग जीवन-रस बीच....!

पता—सिंधिया स्कूल, फोर्ट, ग्वालियर (म. प्र)

प्रवृत्तियों को पखार-निखारकर प्रस्तुत करते रहते हैं, 'अंचल', गिरजा', 'सुमन' की बात छोड़ो।"

"पर भैया, इसमें चिढ़ने की क्या बात है? मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी रचना श्रेष्ठ थी।" प्रमोद ने कहा।

"अच्छा-अच्छा तुम भी व्यंग्य करोगे, मुझे आशा न थी। चार अक्षर जोड़ चले हो तो महाकवि बन गये। अभी दस-बीस साल सिखाऊँगा कविता करना तुम्हें।"

"देखो भैया, मैं चुप हूँ, मैंने कुछ कहा नहीं है; पर यदि यही बात है तो जब सिखाने लायक हो जाओगे तब सीख लूँगा।"

"अच्छा यह बात है! इतना घमंड!! घमंड तो बाबू—"

"किसी का नहीं रहा, यही न।"

"मेरी बात काटते हो!"

× × ×

दोनों कवि तिरसठ होकर आये थे, छत्तीस होकर गये, जो पूरब से आये थे वह पश्चिम को, और जो पश्चिम से आये थे वह पूरब को। अहं का यह भाण्ड मेरे सिर ही फूटना था, दुर्भाग्य!

कला का स्वरूप
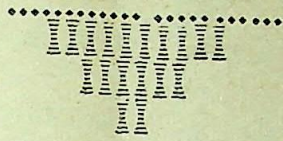
डा० रामानन्द तिवारी

भारतीय काव्य-शास्त्र और पश्चिमी सौंदर्य-शास्त्र दोनों में कला और काव्य के सौन्दर्य और आनन्द का विवेचन प्रायः व्यक्ति को उनका आश्रय मानकर किया गया है। दोनों की दृष्टि में कला और काव्य व्यक्तिगत अध्यवसाय हैं तथा व्यक्ति के आश्रय में ही उनके सौंदर्य और आनन्द की अनुभूति होती है। हमारे मत में समात्मभाव मानवीय और सांस्कृतिक जीवन की मौलिक स्थिति है। समात्मभाव व्यक्तित्व के अनिश्चित बिंदुओं का आत्मीयता और परस्पर भावसम्प्रेषण का चिन्मय भाव है। दम्पति और सुहृदों के सम्बन्ध में यह भाव हमारे व्यवहार में चरितार्थ होता है। अन्य सामाजिक सम्बन्धों में भी इसका विस्तार सम्भव है। समात्मभाव वेदान्त के निर्विकल्प कैवल्य तथा मनोवैज्ञानिक व्यक्तिवाद दोनों से भिन्न है। यह वेदान्त की जीवन्मुक्ति के अधिक निकट है जिसमें कैवल्य और व्यक्तिवाद दोनों का सामंजस्य है। कैवल्य अनुभव की एक असाधारण और अनिर्वचनीय स्थिति है। वह समात्मभाव का तात्विक आधार हो सकती है। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक व्यक्तिवाद भी जीवन और व्यवहार का यथार्थ है। हमारा अनुरोध केवल इतना ही है कि व्यक्तित्व के एकान्त की स्थिति में कलात्मक सौंदर्य और आनन्द का उदय नहीं होता। व्यक्तित्वों की अनेकता में समात्मभाव उत्पन्न होने पर ही सौन्दर्य और आनन्द का स्फोट होता है। दो या अधिक चेतनाओं के बिन्दु जब किसी वस्तु अथवा भाव के प्रति समान भाव से स्पन्दित होते हैं तो चेतनाओं का यह सामंजस्य ही समात्मभाव है। इस समात्मभाव में ही कला और काव्य का सौंदर्य स्फुटित होता है। सौंदर्य व्यक्ति की एकान्त अनुभूति में उदित नहीं होता। एकान्त में भी हम वस्तुओं, जीवों और अनुपस्थित व्यक्तियों के साथ बन्धुभाव की स्थापना करते हैं। काव्य में यह भावना ओतप्रोत है। इस समात्मभाव में ही जीवन की आकृतियों की व्यंजना होती है, जिसे सामान्यतः अभिव्यक्ति कह सकते हैं। विज्ञान और दर्शन में अवगति का अर्थतत्व अभिव्यक्ति के समान होता है। अर्थ और अभिप्राय की सममेयता अभिधा का क्षेत्र है। आकृति अर्थ का अनिर्वचनीय अतिशय है, जिसकी अभिव्यक्ति समात्मभाव की स्थिति में ही होती है। समात्मभाव की स्थिति में आकृति की व्यंजना कला और काव्य के सौन्दर्य का मूल स्रोत है। बाह्यनिमित्तों, सामाजिक अनेकत्व और कलाकृतियों का महत्व प्रमाणित करने के साथ-साथ समात्मभाव का सिद्धान्त काव्य-शास्त्र की अनेक जटिल समस्याओं का अधिक संगत समाधान प्रस्तुत करता है।

यह समात्मभाव ही कला और संस्कृति का बीज है। रस और सौन्दर्यमयी अनुभूति का यही वास्तविक रूप है। क्रोचे की व्यक्तिगत कलानुभूति एक प्रत्याहार मात्र है। वह एक क्षणिक भाव है जो कलाकार को रचना के पूर्वकाल में उसी प्रकार प्राप्त होता है जिस प्रकार अध्यात्मवादी को समाधि के क्षणों में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। दोनों ही स्थितियों को व्यक्तिगत मानना भ्रांतिपूर्ण है। व्यक्ति के परिच्छेद की सीमाएँ

उस अनुभूति में विलीन हो जाती हैं। विषय के साथ तादात्म्य होने पर विषयी का व्यक्तित्व भी तिरोहित हो जाता है। इस अनुभूति में भी समात्मता का भाव अन्तर्निहित है। इसी भाव के साक्षात्कार की साधना आन्तरिक अभिव्यक्ति को वहिर्मुख बनाकर कलाकृतियों को जन्म देती हैं। यदि वह व्यक्तिगत और आंतरिक अनुभूति ही कला का मूल और पूर्ण स्वरूप होती तो कलाकारों को उसी से पूर्ण सन्तोष होता और वाह्य अभिव्यक्ति की आकांक्षा न होती। इसके विपरीत कला की वाह्य अभिव्यक्ति की सम्पत्ति अनन्त है। यह भी कहा जा सकता है कि सामाजिक समात्मभाव में सौन्दर्य और आनन्द की जो आंतरिक अनुभूति होती है वह आंतरिक अभिव्यक्ति का अधिक स्वाभाविक, स्वस्थ और स्थायी रूप है। संभवतः अभिव्यक्ति का यही रूप कला और काव्य का वास्तविक स्वरूप है। कला का यही स्वरूप क्रोचे के प्रत्याहार की अपेक्षा कलाकृतियों में उसकी वाह्य अभिव्यक्ति और सामाजिक सम्बन्धों में उसकी संगति के अधिक अनुरूप है।

वस्तुतः आत्मिक भाव की संगति में ही कलात्मक सौन्दर्य का बीज और अन्य सभी संगतियों का आधार है। क्रोचे ने जिसे अभिव्यक्ति कहा है वह वस्तुतः व्यक्तिगत अनुभूति ही है। क्रोचे दोनों को एकाकार मानते हैं। उन्होंने अभिव्यक्ति के स्वरूप को सक्रिय माना है, अतः उनकी अनुभूति भी सक्रिय है, सक्रिय होने के कारण वह अभिव्यक्ति से एकाकार है। किन्तु वस्तुतः क्रोचे की यह अनुभूति अवगति के अधिक निकट है। चेतना का धर्म होने के कारण अवगति भी पूर्णतः अक्रिय नहीं है। सामान्य अवगति और क्रोचे की कलानुभूति में एक समानता है कि सामाजिक उदासीनता दोनों का लक्षण है। कलानुभूति में विषय के साथ तन्मयता हो जाती है और उसकी वस्तुनिष्ठ पराधीनता तथा वहिर्मुखता का विलय हो जाता है। यदि अवगति जाग्रति है तो हम कलानुभूति को स्वप्न की अवस्था कह सकते हैं। वह स्वप्न के समान क्षणिक भी है। स्वप्न जीवन का एक अंग अवश्य है किन्तु जाग्रति ही जीवन का मुख्य रूप है। जीवन्मुक्ति जाग्रत व्यवहार में अध्यात्म की अनुभूति के अन्वय को महत्त्वपूर्ण मानती है। वस्तुतः सामाजिक एकात्मभाव ही अध्यात्म और कला का जीवित रूप है। समाधि और क्रोचे की कलानुभूति को साधना की असाधारण स्थिति का पद दिया जा सकता है।

समात्मभाव की सम्भूति में ही कला का वास्तविक सौन्दर्य और आनन्द उदित होता है। इस संभूति की सहज संमति में कला और संस्कृति की अन्य सभी संगतियों का सूत्र है। क्रोचे की कलानुभूति के आकार की कल्पना करना कठिन है। समात्मभाव की सम्भूति के आकार में व्यक्ति, विषय और व्यक्तियों के व्यवहार की सक्रिय और सहज संगति होती है। आन्तरिक अनुभूति का मर्म सभी आकारों से अभिन्न होता है। अभिव्यक्ति का यही रूप कला का जीवित और स्थायी स्वरूप है। क्रोचे की कलानुभूति भी इस अभिव्यक्ति में साकार होने के लिए उत्सुक रहती है। स्वप्न (कल्पना) की तन्मयता में तिरोहित होने के कारण कलानुभूति के मर्म में अन्तर्निहित इस वास्तविक अभिव्यक्ति के अस्तित्व का आभास क्रोचे को नहीं हुआ। इसीलिए वे और उनके अनुयायी इसे गौण मानते हैं। प्रकृति के सौन्दर्य दर्शन और चित्रकला को अधिक महत्त्व देने के कारण यह भ्रान्ति सम्भव होती है। नृत्य, संगीत और काव्य को महत्त्व देने पर एकात्मकता की सम्भूति ही कला की अभिव्यक्ति का वास्तविक स्वरूप प्रतीत होती है। बालकों के जीवन और प्राचीन जातियों की संस्कृति में हम इस अभिव्यक्ति का साक्षात् रूप देख सकते हैं। बालकों के सामूहिक उत्सव जो बड़ों को उपद्रव प्रतीत होते हैं तथा प्राचीन जातियों के लोकोत्सव जो आज असभ्य कहलाते हैं, कला के वास्तविक और जीवित रूप हैं। उनमें नृत्य, संगीत, काव्य आदि की सक्रिय संगति होती है तथा समात्मभाव की सम्भूति कलात्मक सौंदर्य के आनन्द को अनन्त समृद्धि प्रदान करती है।

क्रोचे के मत में कलाकारों के कलात्मक साधन को असाधारण और क्षणिक अवस्था को अधिक

महत्व दिया गया है। इसीलिए इस मत में समात्मक की सम्भूति से अनुप्राणित लोक की सामान्य और स्थायी कलावृत्ति की उपेक्षा हुई है। इतना अवश्य है कि एक प्रत्याहार के रूप में ही सही, किन्तु कलाकार की साधना की असाधारण और क्षणिक अवस्था समस्त प्राकृतिक परिच्छेदों से युक्त रूप में स्पष्ट हुई है। ज्ञात नहीं किस आधार पर इसे व्यक्तिगत माना जा सकता है। कदाचित् अनुमान ही इसका साधन है। सामाजिक समात्मभाव के प्रति उदासीनता भी इस अनुमान में सहायक है। क्रोचे के विपरीत भारतीय काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध रसवाद में मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रकृति की सीमाओं में ही पूर्ण मानने की भुल हुई है। दोनों ही मत व्यक्तिवादी हैं। दोनों ही सामाजिक समात्मभाव की संभूति के मर्म को समझने में असमर्थ रहे। किन्तु जहाँ क्रोचे की कलानुभूति व्यक्तिगत होते हुए भी समस्त प्राकृतिक परिच्छेदों से अतीत है वहाँ भारतीय काव्य शास्त्र की रसानुभूति रति आदि के मनोभावों से अवच्छिन्न तथा शारीरिक अनुभावों से अनुगत है। भारतीय रसवाद का मूल उपनिषदों के अध्यात्मवाद में है जिसके अनुसार ब्रह्म रसस्वरूप है। किन्तु काव्य-शास्त्र के मनोवैज्ञानिक रसवाद की उपनिषदों के अध्यात्मवाद से समुचित संगति नहीं है। काव्य-शास्त्र के रसवाद की व्यक्तिनिष्ठता इस संगति के मार्ग में प्रमुख बाधा है। इस संगति का एक-मात्र सूत्र सामाजिक समात्मभाव की सम्भूति है। कामशास्त्र से प्रभावित भारतीय काव्य-शास्त्र इस सम्भूति के मर्म को समझने में असमर्थ रहा। काम के प्राकृतिक धर्म में भी समात्मभाव का मौलिक रस प्रकृति और संस्कृति की संध्या की रचना करता है। किन्तु कामशास्त्र के विलासप्रधान हो जाने के कारण उसमें प्रभावित संस्कृति और काव्य में काम का वह मौलिक मर्म भी तिरोहित हो गया। फल यह हुआ कि काव्यशास्त्र का रसवाद व्यक्तिगत और प्राकृतिक बन गया। उपनिषदों के आध्यात्मिक रसवाद के साथ समन्वय के सोपान इस भ्रांति में विरोहित हो गये।

अंशतः भिन्न होते हुए भी क्रोचे और भारतीय काव्य-शास्त्र के रसवाद में समानता है। ऊपर इस समानता का संकेत किया जा चुका है। व्यक्तिवाद और सामाजिक समात्मभाव की उपेक्षा इन दोनों मतों में समान है, इसीलिए दोनों ही मत कला और काव्य के क्षेत्र में रूप और अभिव्यक्ति की प्रधानता के प्रेरक हुए। क्रोचे की कलानुभूति प्राकृतिक परिच्छेदों से अतीत और उनके प्रति उदासीन है। यह उदासीनता जो वाह्य अभिव्यक्ति के उपकरणों के प्रति कला को उदासीन बनाती है, रूप-तत्व से अभिन्न है। फिर भी क्रोचे के प्रभाव से आधुनिक पश्चिमी कला और काव्य में अभिव्यक्ति को हीं प्रधानता रही है। भारतीय रसवाद व्यक्तिनिष्ठता और सामाजिक समात्मभाव के प्रति उदासीनता में क्रोचे के मत के समान होते हुए भी व्यक्तित्व की प्राकृतिक वृत्तियों में निरूढ़ था। अतः यद्यपि उसने भी भारतीय काव्य में रूप और अभिव्यक्ति की प्रधानता का ही पथ प्रशस्त किया, किन्तु प्राकृतिक वृत्तियों में रसवाद के निरूढ़ रहने के कारण वह पश्चिमी कला और काव्य के समान वाह्य अभिव्यक्ति के प्राकृतिक उपकरणों के प्रति उदासीन न रह सका। यही कारण है कि रूप-प्रधान होते हुए भी कालिदास में शृंगार की ही प्रधानता है। मनोवैज्ञानिक संगति के कारण यह रसवाद कामशास्त्र से इतना आक्रान्त है कि काव्य-शास्त्र में गुण अलंकार आदि की व्याख्या के प्रसंग में आवश्यक न होते हुए भी प्रायः शृंगार के ही उदाहरण दिये गये हैं। 'निश्शेषच्युत' 'उन्नत पयोधरं हृष्वा' आदि के अतिरिक्त हमारे आचार्य लक्षण, व्यंजना आदि की कल्पना ही नहीं कर सकते। काव्य-शास्त्र के रसवाद की प्रकृतिनिरूढ़ता के कारण उपनिषदों के आध्यात्मिक रसवाद से उसकी समुचित संगति नही है। इस सीमा के कारण अन्य संगतियों को सम्भव बनाने के लिए साधारणीकरण आदि की विकल कल्पनायें काव्यशास्त्र में आवश्यक हुईं।

अस्तु, सामाजिक समात्मभाव की सम्मूति ही कलात्मक अभिव्यक्ति का वास्तविक स्वरूप है। इसी अभिव्यक्ति में कला का सौंदर्य अन्तर में स्फुटित होता है तथा बाह्य कलारूपों में साकार होने के लिए उत्सुक होता है। सौंदर्य के इसी रूप में शिवम् का भी बीज है। वस्तुतः आन्तरिक अभिव्यक्ति के

समात्मभाव में अहंभाव के बिन्दुओं में व्यक्तिगत सामंजस्य होता है। यह सामंजस्य ही सौंदर्य का सामान्य आकार है। किन्तु व्यवहार और बाह्य अभिव्यक्ति की दृष्टि से किसी भी अहंभाव के बिन्दु को हम सापेक्ष केन्द्र मान सकते हैं और समात्मभाव की सम्भूति को इस केन्द्र की अभिव्यक्ति कह सकते हैं। यह एक ऐसा समृद्ध भाव है जिसमें सभी बिन्दु अपने को कलाकार तथा इस अभिव्यक्ति में कृतार्थ मान सकते हैं। किसी सुन्दर दृश्य को देखने पर जब हम अपने किसी आत्मीय को अपनी सौंदर्य अनुभूति में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करते हैं तो यह सापेक्ष केन्द्रभाव अधिक स्पष्ट होता है, यद्यपि समात्मभाव की सम्भूति में ही सौंदर्य की अभिव्यक्ति का भाव पूर्ण होता है।

इसी प्रकार 'पर' की सापेक्ष केन्द्रीयता की दृष्टि से आत्मदान ही शिवम् है। जिस प्रकार सापेक्ष दृष्टि से अभिव्यक्ति का रूप अपनी अनुभूति में भाग लेने के लिए दूसरों को आमंत्रित करना है उसी प्रकार आत्मदान का सापेक्ष रूप दूसरों के भाव में भाग लेना है। वस्तुतः दोनों स्थितियों में अधिक अन्तर नहीं हैं। इसीलिए शक्ति-तन्त्रों में शिव और शक्ति (सुन्दरी) को अभिन्न तथा दोनों को सुन्दरम् माना है। शिव ही शक्ति और शक्ति ही शिव है, सुन्दरम् ही शिवम् और शिवम् ही सुन्दरम् है।

वस्तुतः सत्य के व्यापक स्वरूप में शिवम् और सुन्दरम् का भी समाहार है। केवल सत्ता और सिद्धान्त सत्य के उदासीन और प्रत्याहृत रूप हैं। सृजनमुखी बनकर सत्ता पूर्णतर सत्य का निर्माण करती है। सृजन ही जीवन के सत्य का मूल रूप है। शक्तितन्त्रों में शक्ति की सृजनात्मिका जगदम्बा के रूप में उपासना होती है। शिव की सत्ता भी प्रकृति के सृजनधर्म में साकार और सजीव हुई है। इसी सृजन के सत्य में प्रकृति की सत्ता का सौंदर्य साकार हुआ है। प्रकृति के सृजन में विश्व-जीवन का मंगल भी अन्वित है। अतः सत्य और सुन्दर होने के साथ-साथ सृजन ही शिवम् भी है। इस सुन्दरम् और शिवम् के सृजनात्मक रूप में सत्ता की उदासीनता और एकान्तभाव की नीरसता समात्मभाव की सम्भूति में परिणत हो जाती है।

भारतीय काव्य-शास्त्र के रसवाद में प्राकृतिक वृत्तियों का आधार मानने के कारण प्राकृतिक रस की सम्भावना अधिक है। उसमें सृजन का सौंदर्य और आनन्द नहीं है, किन्तु व्यक्तिगत संवेदना का सुख अवश्य है। किन्तु क्रोचे के आत्मनिलीन तथा एकान्त और आन्तरिक अभिव्यक्तिवाद में न प्राकृतिक सुख है और न समात्मभाव की सम्भूति का सांस्कृतिक आनन्द है। चेतना की यह पूर्ण अन्तर्मुखता योग की समाधि की भाँति है। योग-दर्शन इसे आनन्दमय नहीं मानता। वेदान्त ने ब्रह्मावगम को आनन्दमय माना है। किन्तु सत्य यह है कि आत्मा की व्यापकता के आधार पर एकात्मभाव की सम्भूति ही आनन्द का रहस्य है। यह एकान्तभाव में सम्भव नहीं है। इसीलिए सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति को अकेला जीवन आनन्दमय न लगा और उन्होंने बहुरूप प्रजा की सृष्टि की तथा उसमें प्रवेश कर आनन्द का लाभ किया। प्रजापति का सृष्टि के रूपों में प्रवेश एकात्मभाव का ही सूचक है।

क्रोचे के कलाकार की स्थिति उपनिषदों के प्रजापति के बहुत कुछ समान है। प्रजापति के समान अकेला होने के कारण क्रोचे के कलाकार के भी नीरस होने की आशंका है। अन्तर केवल इतना ही है कि अन्तर्निलीन होते हुए भी क्रोचे ने कलात्मक अनुभूति को सक्रिय और सृजनात्मक माना है। आन्तरिक अनुमति की अवस्थाओं का विवेचन कठिन है। यह कल्पना नहीं की जा सकती कि क्रोचे की आन्तरिक अभिव्यक्ति का सृजनात्मक रूप क्या होगा। भाव, रूप और वस्तु में मूर्त होता है। सम्भव है उपनिषदों के प्रजापति की भाँति एकाकी भी सृजन में समर्थ हो। किन्तु लोक में जीवन और कला दोनों में ही यह संगत नहीं जान पड़ता। प्रकृति में मिथुन से ही सृष्टि होती है। भावलोक में भी परस्पर समात्मभाव की सम्भूति में ही सृजन का सूत्र है। यह समात्मभाव एकत्व में नहीं वरन् अनेकत्व के अद्वैत में सम्भव है। इसीलिए वेदान्त के विधाताओं ने अपने सिद्धान्त को अद्वैतवाद का नाम दिया है। कला और काव्य भाव का सृजन है। वह अनेक

चिद्बिन्दुओं के समात्मभाव की सम्भूति में ही सम्भव हो सकता है। इसी में आनन्द का स्रोत है। जीवन में हम इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। भारतवर्ष के प्राचीन लोक-काव्य और लोक-पर्वों का रूप इसी सिद्धान्त पर आश्रित है। भारतीय काव्य काव्यशास्त्र का रसवाद मनोवैज्ञानिक व्यक्तिवाद में निरूढ़ रहने के कारण उपनिषदों के आध्यात्मिक रसवाद को भूल गया। उसमें प्राकृतिक सुख तो है, किन्तु समात्मभाव का सृजनात्मक आनन्द नहीं है। क्रोचे की कलानुभूति सृजनात्मक होते हुए भी व्यक्तिगत है। किन्तु जीवन और कला में समात्मभाव की सम्भूति में ही सृजनात्मक अभिव्यक्ति सौंदर्य और आनन्द का स्रोत बनती है।

जिस प्रकार अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख होते ही अवगति का आमन्त्रण सुन्दरम् का विधान करता है, उसी प्रकार आत्मदान में प्रवृत्त होते ही यह सृजनात्मक अभिव्यक्ति शिवम् में साकार होती है। दोनों ही सृजनात्मक हैं। भाव और रूपों का सृजन दोनों में विभाजन के द्वारा भावसमृद्धि का सिद्धान्त सामान्य है। दोनों में समात्मभाव की सम्भूति में अहंकार का विस्तार होता है। चिद्बिन्दु की सापेक्षता की दृष्टि से हम इनमें कुछ भेद कर सकते हैं, यद्यपि ये भेद भी सापेक्ष ही हैं। इस सापेक्षता की दृष्टि से हम सुन्दरम् में अपने भाव का वितरण दूसरों को करते हैं और शिवम् में दूसरों के भाव में आत्मदान का अनुयोग देकर उसे समृद्ध बनाते हैं। अभिव्यक्ति में रूप की प्रधानता है। रूप में ही भाव साकार होते हैं। इसीलिए अभिव्यक्ति-प्रधान कला और काव्य में रूप का महत्व अधिक रहा है। शिवम् में भाव की प्रधानता है। रूप उसमें अनायास अन्वित होता है। रूप रचना अवश्य है, किन्तु स्वयं रचनात्मक नहीं है। इसके विपरीत भाव रचनात्मक है। वस्तुतः भाव का सृजन आत्मदान द्वारा स्रष्टाओं का सृजन है। अतः भाव का सृजन-सृजन की परम्परा का निर्माण करता है। प्रकृति और संस्कृति दोनों में सृजन का यही वास्तविक रूप है। यही परम्परा सुन्दरम् की संरक्षक है। अतः यही शिवम् का पूर्ण रूप है। शक्ति की सृजनात्मक कल्पना तथा शिवकथा में संतति के महत्व का यही रहस्य है। जीवन में शिशु का जन्म ही कला और काव्य का सर्वोत्तम रूप है। यह स्रष्टाओं का सृजन है। इसकी अभिव्यक्ति में सौंदर्य सहज अन्वित है। संतति के निर्माण की परम्परा में आत्मदान का शिवम् साकार होता है। कला और काव्य में इसी सृजनात्मक भावयोग का अन्वय अभिव्यक्ति के सुन्दरम् को शिवम् बनाता है।

प्रज्ञा-सूत्र और कहावत

डा० कन्हैयालाल सहल

अंग्रेजी का Aphorism शब्द ग्रीक Aphorismos से निकला है जिसका अर्थ है "परिभाषा देना" Apo का अर्थ है 'से' और Horos का अर्थ है 'सीमा।' इस प्रकार Aphorism का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ हुआ, किसी विचार-बिन्दु को सीमाबद्ध करके उसका लक्षण निर्धारित करना अर्थात् उसे निश्चयात्मक रूप देना। प्रज्ञा-सूत्र एक प्रकार की ऐसी संक्षिप्त और सारगर्भित उक्ति है जिसमें किसी महत्वपूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति हुई हो।[1] कहावत और प्रज्ञा-सूत्र में मुख्य अन्तर यह है कि कहावत का सम्बन्ध सामान्य जनता से है, वह लोक की उक्ति अर्थात् लोकोक्ति है, जब कि प्रज्ञा-सूत्र का सम्बन्ध विद्वानों अथवा प्राज्ञों से है, वह प्राज्ञों की उक्ति अथवा प्राज्ञोक्ति है।

पाश्चात्य देशों में प्रज्ञा-सूत्रों का जन्मदाता विश्व-विख्यात ग्रीक वैद्य हीपोक्रेटस था, जो ईसा के ४६० वर्ष पहले हुआ था; किन्तु भारतवर्ष में सूत्रों की परम्परा बहुत प्राचीन है। हीपोक्रेटस से भी हजारों वर्ष पहले इस देश में सूत्रों की रचना होती आई है। ब्रह्म-ज्ञान तथा उस समय की अन्यान्य विद्याओं की रचना सूत्रों के रूप में हुई थी। अपने यहाँ सूत्र शब्द की व्याख्या निम्नलिखित रूप में की गई है।

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवत् विश्वतो मुखम्।
अस्तोभं आनवद्यैच सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

अर्थात् सूत्र उसे कहते हैं जिसमें थोड़े अक्षर हों, अस्पष्टता न हो, अर्थ-गौरव से युक्त हो, विश्वतोमुखी हो, जिसमें पुनरावर्तन न हो और जो निर्दोष हो।

भारतीय ग्रंथों को देखते हुए सूत्रों के दो वर्ग निर्धारित किये जा सकते हैं। १. प्रज्ञा-सूत्र और २. विद्या-सूत्र।

प्रज्ञा-सूत्रों का सम्बन्ध है आध्यात्मिक ज्ञान, धार्मिक तथा नैतिक उपदेश आदि से जब कि विद्या-सूत्रों का सम्बन्ध ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, नाट्य आदि विद्याओं से है। यहाँ प्रज्ञा-सूत्र तथा विद्या-सूत्रों के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

प्रज्ञा-सूत्र

१. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति २. विद्ययाऽमृतमश्नुते। ३. अध्यात्मविद्या विद्यानाम् ४. आचारः प्रथमो धर्मः ५. यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति।

विद्या-सूत्र

नाट्यशास्त्रकार भरत मुनि का प्रसिद्ध रस-सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारि संयोगात् रसनिष्पत्तिः' विद्या-सूत्र के उदाहरण-स्वरूप रखा जा सकता है। इसी प्रकार योगाद्रूढिर्बलीयसी जैसे शास्त्रीय न्याय भी जिनका व्याकरण से सम्बन्ध है, विद्या-सूत्र के अन्तर्गत हैं।

प्रज्ञा-सूत्र और व्यावहार-सूत्र

बहुत से लोग ऐसे हैं जो प्रज्ञा-सूत्रों और व्यवहार-सूत्रों (Maxims) को एक ही समझते हैं, किन्तु

---

1 Aphorism is a short prithy statement containing a truth of general import.
(A Treasury of English Aphorisms by Logan Pearsall Smith, p. 44)

वास्तव में इन दोनों शब्दों में बड़ा अन्तर है। Maxim व्यवहार-सूत्र लेटिन शब्द Maxima से निकला है, जिसका अर्थ है सबसे बड़ा। अंग्रेजी शब्द-कोश में सर्वाधिक गुरुतापूर्ण उक्ति को, Maxim की संज्ञा दी गई है। प्रज्ञा-सूत्र (Aphorism) और व्यवहार-सूत्र (Maxim) दोनों ही जीवन की किसी सचाई को प्रकट करते हैं, किन्तु दोनों की पद्धति भिन्न-भिन्न है। प्रज्ञा-सूत्र विचार को लेकर प्रवृत्त होता है तथा व्यवहार-सूत्र का सम्बन्ध आचार-व्यवहार से है। प्रज्ञा-सूत्र तथा व्यवहार सूत्र दोनों का एक-एक उदाहरण लीजिए।

शेक्सपीयर की प्रसिद्ध पँक्ति Eminent posts make great men greater and little men less प्रज्ञा-सूत्र हैं, जब कि when in doubt, keep silent यह व्यावहारिक दृष्टि से शिक्षाप्रद होने के कारण एक व्यवहार-सूत्र है।

मर्मोक्ति और प्रज्ञा-सूत्र

पाश्चात्य देशों में प्रथम श्रेणी के मर्मोक्तिकार के रूप में La Rochefou Cauld ला राशफाकु का नाम अत्यन्त विख्यात है। अपनी मर्मोक्तियों द्वारा इन्होंने फ्रांसीसी-साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया है। मर्मोक्तियों के अतिरिक्त इन्होंने करीब ७०० व्यवहार-सूत्रों की भी सृष्टि की है, जिनका विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। ये मर्मोक्तियाँ तथा व्यवहार-सूत्र जितने संक्षिप्त हैं, उतनी ही विशुद्ध और ललित है उनकी अभिव्यक्ति। मानव-स्वभाव की गूढ़ता को प्रदर्शित करने में ये बेजोड़ सिद्ध हुए हैं।[१]

किसी ऐसी चुभती हुई उक्ति को जो अपने पीछे एक प्रकार की चटक छोड़ जाय मर्मोक्ति कहते हैं।[२] चुभन (Point) और चटक (Sting) मर्मोक्ति के ये दो प्राण-बिन्दु हैं। संक्षिप्तता और ललित भाषा यदि मर्मोक्ति का शरीर है तो चुभन और चटक इसकी अर्थ-चातुर्य रूप आत्मा है। किसी ने कहा है कि मधुमक्खी में जो गुण होते हैं वे ही गुण मर्मोक्ति के लिए अनिवार्य हैं। छोटी-सी मधुर देह और पूँछ में डंक ये ही मधुमक्खी की विशेषताएँ हैं जो मर्मोक्ति में भी मिलती हैं।[१] मर्मोक्ति में डंक से तात्पर्य उसकी चटक से है।

अंग्रेजी में जिसे Epigram (मर्मोक्ति) कहते हैं उसका सम्बन्ध विद्या-सूत्रों से न होकर प्रज्ञा-सूत्रों से है, किन्तु प्रज्ञा-सूत्र और मर्मोक्ति में भी अन्तर है। प्रज्ञा-सूत्र के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह चुभीली अथवा धारदार हो, किन्तु मर्मोक्ति के लिए ऐसा होना अनिवार्य है।

विषय के स्पष्टीकरण के हेतु कुछ मर्मोक्तियों के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) कविता जिसके वश में है, जो कविता के वश हैं वही कवि है। कवि नर्मद।

(ख) जहाँ आशा निराशा बन जाती है वहाँ निराशा ही आशा का रूप धारण कर लेती है। श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी

---

१ चबराकियानु तत्वदर्शन फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता। पृष्ठ ८३।

2 Any saying of a pointed character and a sting in its tail is an Ehigram.

1 The qualities rare in a bee that we meet,
In an epigram never should fail
The body should always be little and sweet,
And sting should be left in its tail.
That is an epigram a dwarfish whole,
Its body brevity, and wit its soul.

(Quoted in Stevenson's Book of Proverbs, Maxims and Familiar phrases p. 704)

(ग) संयम विना तलवार राक्षस को और तलवार विना संयम साधु को शोभा देता है। धूमकेतु

(घ) यह स्पष्ट है कि कोई उपन्यास इतना बुरा नहीं हो सकता कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। हाँ, यह अवश्य संभव है कि कोई उपन्यास इतना अच्छा हो कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। जॉर्ज बर्नर्डशॉ

(ङ) जो मनुष्य यह कहता है कि उसने जीवन को समाप्त कर दिया है उसका तात्पर्य सामान्यतः यह होता है कि जीवन ने ही उसे समाप्त कर दिया है। ऑस्कर वाइल्ड।

संस्कृत-साहित्य में सूत्र, सूक्ति, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, नर्मोक्ति, मर्मोक्ति, मुक्तक तथा सुभाषित आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। किन्तु सुभाषित एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसमें प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र तथा मर्मोक्ति आदि सभी का समावेश किया जा सकता है। संस्कृत के सुभाषितों में से इन तीनों का एक-एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

प्रज्ञा-सूत्र

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम् अर्थात् धर्म का तत्व गुफा में छिपा हुआ है।

व्यवहार-सूत्र

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्-भारवि अर्थात् सहसा कोई काम नहीं करना चाहिए क्योंकि अविवेक आपत्तियों का परम पद है।

मर्मोक्ति

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः [1]

अर्थात् हमने भोग नहीं भोगे, हम ही भोग लिये गये, हमने तप नहीं तपा, हम ही तप्त हो गये, काल नहीं व्यतीत हुआ, हम ही व्यतीत हो गये, तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, हम ही जीर्ण हो गये। उक्त श्लोक की प्रत्येक पंक्ति एक-एक मर्मोक्ति है।

प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति

ऊपर की पंक्तियों में प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र और मर्मोक्ति इन तीनों के पारस्परिक अन्तर को सोदाहरण दिखलाने का प्रयास किया गया है, किन्तु बाङ्ला प्रवाद के विद्वान् सम्पादक श्री सुशीलकुमार दे ने सभी प्रकार की ऊक्तियों को लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति इन दो वर्गों में विभक्त कर दोनों के सम्बन्ध में जो अपने विचार प्रकट किये हैं, वे अत्यन्त मननीय हैं। उन्हीं के शब्दों में प्राज्ञोक्ति जिसे लेटिन में कहते हैं, हमेशा लोकोक्ति का रूप धारण नहीं कर लेती। प्राज्ञोक्ति में ज्ञानी के ज्ञान का निष्कर्ष हमें मिलता है, वह सुचिंतित होता है और प्रायः उपदेश-मूलक नीति वाक्य के रूप में देखा जाता है किन्तु प्रवाद या लोकोक्ति पाण्डित्य, चिंतन तथा उपदेशात्मकता को लेकर अग्रसर नहीं होती। लोकोक्ति तो स्वतः प्रसूत होती है, और सरस तथा संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त होती है, किन्तु प्राज्ञोक्ति ज्ञान और चिंतन के परिपक्व फल के रूप में देखी जाती है। नीति-शिक्षा, तत्व-ज्ञान और उच्च आदर्श लोकोक्तियों के प्रेरक हेतु नहीं है। [2]

लोकोक्ति और नीति-वाक्य प्राज्ञोक्ति में अनेक बार एक बड़ा अन्तर यह देखा जाता है कि प्राज्ञोक्ति नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नहीं है [3] और लोकोक्ति व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का नहीं। [4] विषय के स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित साखी पर विचार कीजियेः—

जो तोकौं कांटा बुवै, ताहि बोहि तू फूल।
तो कौं फूल के फूल हैं, वाको है तिरशूल॥

(शेष पृष्ठ १६३ पर)

१ वैराग्यशतक (भर्तृहरि)
२ बाङ्ला प्रवाद श्री सुशीलकुमार दे द्वितिय संस्करण पृष्ठ ४
३ नैतिक जगतेर सत्य हइले ओ व्यावहारिक जगतेर तथ्य नय वही पृष्ठ ४
४ व्यावहारिक जगतेर तथ्य हइले ओ नैतिक जगतेर सत्य नय वही पृष्ठ २

भक्ति--काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

★

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

संवत् १३७५ से १७०० तक का काल हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' के नाम से प्रख्यात है। वास्तव में समग्र हिन्दी-प्रदेशों की सर्वप्रमुख चेतना इस समय भक्ति ही थी, जिसने घोर राजनीतिक पराभव और सामाजिक असंगठन के युग में भी जनता को जीवन का उत्साह नहीं खोने दिया। जिस प्रकार जीवन के क्षेत्र में भक्ति एक संयोजक और प्रेरक शक्ति के रूप में अवतरित हुई, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी उसने उच्चतर भाव-भूमि और पीयूष-कला का मणि-कांचन संयोग समुपस्थित कर दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप कविता-लता अभूतपूर्व समृद्धि से लहलहा उठी। साहित्य को राज-दरबारों की संकीर्ण परिधि से निकालकर जन-समाज की वस्तु बनाने का श्रेय भी भक्ति-आन्दोलन को ही प्राप्त है, क्योंकि उसके निर्बल पड़ते ही साहित्य पुनः एक सीमित दायरे में आबद्ध हो गया और आश्रय-दाताओं के विलास के चषक भरे जाने लगे। इस काल में एक ओर कबीर जैसे क्रांत द्रष्टा और जायसी जैसे प्रेम-विह्वल कवि हुए तो दूसरी ओर सूर जैसे तन्मय भक्त और तुलसी जैसे समन्वयवादी साधक भी, जिन्होंने यह उद्बाहु उद्घोषणा की कि अलंकार और चमत्कार-प्रदर्शन आदि गौण वस्तुएँ हैं, प्रमुख तत्व है वक्तव्य की उदात्तता। सचमुच वही साहित्य महान् है, जिसमें मानव-कल्याण का चरम आदर्श निहित हो! अतः इस काल की अभिधा 'हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण युग' सर्वथा सार्थक ही है।

किन्तु साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से भक्ति-काव्य जितना महत्वपूर्ण है, ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से उसके आविर्भाव के कारण उतने ही विवादास्पद भी हैं। आज से लगभग अड़सठ वर्ष पूर्व सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ नॉर्दर्न हिन्दोस्तान' में भक्ति-काव्य की चर्चा करते हुए कहा— "कोई भी मनुष्य, जिसे पन्द्रहवीं और बाद की शताब्दियों का साहित्य पढ़ने का मौका मिला है, उस भारी व्यवधान को लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकता, जो पुरानी और नई धार्मिक भावनाओं में विद्यमान है। हम अपने को एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं, जो उन सब आन्दोलनों से कहीं व्यापक और विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी भी देखा है। यहाँ तक कि वह बौद्ध-धर्म के आंदोलन से भी व्यापक और विशाल है, क्योंकि उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। इस युग में धर्म, ज्ञान का नहीं, बल्कि भावावेश का विषय हो गया था। यहाँ से हम साधना और प्रेमोल्लास के ऐसे देश में आते हैं और ऐसी आत्माओं का साक्षात्कार करते हैं, जो काशी के दिग्गज पण्डितों की जाति की नहीं हैं, बल्कि जिनकी समता मध्ययुग के क्लेयर बक्स, टॉमस-ए-कैंपिन और सेंट थेरिसा से है।" आगे चलकर ग्रियर्सन महोदय ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह भावावेश और प्रेमोल्लास ईसाइयत की देन है। ईसवी सन् की दूसरी या तीसरी शताब्दी में नेष्टोरियन ईसाई मद्रास प्रांत के कुछ हिस्सों में आ बसे थे, जिनकी भावना ही जन-समाज में फैल गयी और बाद में रामानुजाचार्य और दूसरे आचार्यों की प्रेरणा का उत्स बनी। इतना ही नहीं, गोपालकृष्ण का जीवन-वृत्त भी क्राइस्ट से प्रभावित बतलाया गया है।

ग्रियर्सन का यह मत आज शोध की कसौटी पर पूरी तरह भ्रांत सिद्ध हो चुका है। यह अवश्य सही है कि दूसरी-तीसरी शताब्दी के आसपास कुछ नेष्टोरियन ईसाई दक्षिण भारत में आ बसे थे और एकाध मठ भी उन्होंने स्थापित किये थे, पर उनका मतवाद लोक में अधिक प्रचलित कभी नहीं हो सका और उससे रामानुजाचार्य के प्रेरणा प्राप्त करने की बात तो नितांत अबुद्धि-गम्य एवं इतिहास-विरुद्ध है। विद्वानों ने ईसाई भारतीयों के साथ भारतीय भक्तों की तुलना करते हुए विस्तारपूर्वक दोनों का अन्तर दिखलाया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"यद्यपि ईसाई धर्म भक्ति-प्रधान है तथापि मूल हिब्रू संस्कारों का वह परित्याग नहीं कर सका है। सेमेटिक विश्वास के कारण खुदा बहिश्त या स्वर्ग नामक एक कल्पित देवलोक में रहते हैं। उनके हाथों से खिसककर जो मंत्र गिर पड़ा था, वह पाप-मय हो गया था। वही मंत्र है संसार। इस पाप-भूमि पर मनुष्य वास करता है, वह स्वयं पाप-रूप है। ....साधना के एक सिरे पर है यह दुःख, पाप, अपूर्णता; और दूसरे सिरे पर है उपनिषदों का आनंद, अमृत तथा पूर्णता। पहला है मध्ययुग के ईसाई धर्म भाव का उत्स और दूसरा वैष्णव-भक्ति का उद्गम-स्थान। दोनों के मूल में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक का रास्ता है 'दुःख', दूसरे का 'लीला' एक के प्रेम का कारण है पाप-बोध, दूसरे का आनन्द-केलि. एक का लक्ष्य है स्वर्ग और मर्त्य के व्यवधान को भर देना और दूसरे का ब्रह्मांड में व्याप्त अव्यवहित, पूर्ण एकरस ब्रह्म को उसकी लीला की संकीर्णता में उपलब्ध करना। दोनों एकदम अलग चीज हैं।" (सूर-साहित्य, पृ० ६०) इस प्रकार दोनों दो सर्वथा भिन्न परम्पराओं की उपज है और उनमें साम्य केवल ऊपरी और आकस्मिक है। दूसरी ओर विचारकों का एक दल तो यहाँ तक कहने का साहस करता है कि मध्ययुगीन भक्ति-विह्वलता तो ईसाई मत की देन नहीं ही है, उल्टे, ईसाइयों का भक्तिवाद ही महायानियों के संपर्क का परिणाम है। और यह मत इसलिए भी बहुत असंगत नहीं जान पड़ता कि ईसा मसीह के जन्म के पूर्व बौद्धों का अस्तित्व पश्चिमी एशिया में सिद्ध हो चुका है। अस्तु,

दूसरी ओर भक्ति-साहित्य के आविर्भाव के कारणों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'इतिहास' में लिखा है—"देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। उसके सामने ही देव-मंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्त्ति तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। इतने भारी राजनीतिक उलट-फेर के पीछे हिंदू जन-समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" (हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पृष्ठ ६०)

यह बात और भी विचित्र है कि उत्तर भारत में जब विदेशी आक्रमणकारी देवालय ध्वस्त कर रहे थे तो अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्ति का स्वर ऊँचा किया गया। यदि भक्ति-आंदोलन इस्लामी आक्रमण की प्रतिक्रिया ही है तो पहले उसे सिंध में जोर पकड़ना चाहिए था और तब उत्तर भारत में; पर सर्वप्रथम वह प्रकटित हुआ दक्षिण में, जिस पर अलाउद्दीन से पहले (संवत् १३६३-६४) किसी ने आक्रमण करने की बात भी नहीं सोची थी। दूसरी बात यह कि सोमनाथ मंदिर तोड़े जाने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया यह हो सकती है कि उस भगवान की शक्ति पर से लोगों की आस्था उठ जाए जो स्वयं अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि देवालयों का गिराया जाना और मूर्त्तियों का ध्वस्त होना देखकर जनता और भी अधिक विश्वास के साथ उनसे चिपट जाए। आगे चलकर शुक्लजी ने भी स्वीकार किया है कि भक्ति आंदोलन की लहर दक्षिण से आई थी और 'उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिन्दु-मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति-मार्ग की भावना कुछ

लोगों में जगाई', पर अपने ब्राह्मण दृष्टिकोण के कारण वे भक्ति के अवैदिक उत्स को पूरी सहानुभूति के साथ नहीं देख सके। वस्तुतः भक्ति की लहर न तो किसी विदेशी भावधारा का अनुकरण थी और न किसी विजातीय आक्रमण की अस्वाभाविक प्रतिक्रिया; क्योंकि दोनों ही स्थितियों में उसमें ऐसी सरसता, संजीवनी शक्ति, तेजस्विता और संदीप्ति का आना असम्भव था वह भारतीय धर्मसाधना की स्वकीय विशेषता थी, भारत की मिट्टी की अपनी पैदावार। उसके विकास में बाहरी परिस्थितियों ने कुछ सहायता भले ही प्रदान की हो, किन्तु उसके उद्भव में इनकी कोई विध्यात्मक देन नहीं स्वीकृत की जा सकती। यहाँ तक कि कबीर आदि की जिन ब्राह्मण धर्म-विरोधी और खंडनात्मक उक्तियों पर इस्लाम की छाया मानी जाती है, वे भी वस्तुतः सिद्धों और नाथ-पंथियों की परम्परा का विकास ही हैं, किसी विदेशी भावधारा का अंधानुकरण-मात्र नहीं। आचार्य क्षितिमोहनसेन ने अपनी पुस्तक दादू' में सिद्ध कवियों की ऐसी अनेक उक्तियाँ समानान्तर उद्धृत की हैं, जिनका संतों की वाणियों से केवल भाव-धारा का ही नहीं, शब्दावली का भी आश्चर्यजनक साम्य है।

भक्ति-भावना के उद्गम के सम्बन्ध में प्रायः पद्म और भागवत पुराणों में आए हुए एक आख्यान का उल्लेख किया जाता है, जिसमें भक्ति नारद मुनि से कहती है—"मेरा जन्म द्राविड़ देश में हुआ था, कर्णाट देश में बड़ी हुई, महाराष्ट्र देश में किंचित् काल तक वास किया और गुजरात में आकर जीर्णता को प्राप्त हुई।" यथा—

> उत्पन्ना द्राविड़े चाहं कर्णाटे वृद्धि मागता।
> स्थिता किंचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतांगता॥
>
> —पद्म पुराण

कुछ इससे ही मिलती-जुलती कबीर-पंथियों में प्रचलित वह उक्ति भी है, जिसमें कहा गया है—

> भगती द्राविड़ ऊपजी लाए रामानन्द।
> परगट कियो कबीर ने सात द्वीप नौ खंड॥

इस आधार पर यह अनुमान लगाना सर्वथा युक्ति-संगत है कि भक्ति का आविर्भाव दक्षिण में हुआ और उसका शास्त्रीय समर्थन और प्रचार बाद में चलकर उत्तर भारत में हुआ। दक्षिण में जिस समाज में भक्ति-भावना का उद्गम माना जाता है, वह द्राविड़ों का समाज था। यह आर्येतर जाति थी और इसके रस्म-रिवाज और धार्मिक विश्वास आदि भी अवैदिक थे। दिनकरजी ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में कहा है—"अपने मूल रूप में भक्ति आर्येतर प्रवृत्ति थी और वह आर्यों और द्राविड़ों के भारत आगमन से पहले से ही भारतीय जनता में विद्यमान थी। चूँकि द्राविड़ भारत में आर्यों से पहले आये, इसलिए भक्ति-तत्व पहले द्राविड़ धर्म में समाविष्ट हुआ; वैदिक आर्यों में भक्ति का प्रस्फुटित रूप नहीं मिलता, क्योंकि उनका धर्म हवन और यज्ञ तक ही सीमित था।" (पृष्ठ-२८६)

मोहन-जोदड़ों की खुदाइयों में प्रतिमा-पूजन का पूर्व रूप पाकर विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि इन स्थानों में रहने वाली आर्येतर जातियाँ भी द्राविड़ों से ही संबद्ध थीं। लेकिन बाद में किसी आधिभौतिक विपत्ति या शत्रुओं के निरन्तर आक्रमण के कारण उन्हें दक्षिण में शरण लेने के लिए विवश होना पड़ा और इस प्रकार सैंधव सभ्यता का अवशेष क्रमशः आर्य-सभ्यता में विलीन हो गया। आज के हिन्दू-जीवन में वह अवशेष यक्ष-पूजा या ऐसे ही कुछ अनुष्ठानों में ढूँढने से ही मिल सकता है। पर दक्षिण की द्राविड़ सभ्यता अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित, संगठित एवं शक्ति-सम्पन्न थी और वहाँ के सामाजिक जीवन का विकास भी अप्रतिहत गति से होता जा रहा था। इसलिए उसका प्रत्यक्ष प्रभाव आर्य-जीवन पर पड़ा। भक्ति-आंदोलन एक ऐसा ही प्रभाव था। (देखिए, भक्तिकाल की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि—प्रो॰ मोतीसिंह; अवंतिका, काव्यालोचनांक, १९५४)

आर्यों का समाज पुरुष-प्रधान था। अतः इसमें चिंतन, ज्ञान और कर्मकांड की प्रधानता थी। वेदों में सबसे अधिक महिमा 'यजन' की बतलाई गई है, जिसमें नर-बलि तक का विधान मिलता है। यह कर्मकांड

की चरम सीमा थी। इसीलिए आर्यों के धार्मिक अनुष्ठान प्रायः ब्राह्मणों द्वारा संपादित होते थे। पर सिंधु घाटी का यक्ष-किन्नर समाज और दक्षिण का द्राविड़ समाज मातृमूलक था। इस समाज में नारियों को प्रधानता थी और परिवार की मुखिया भी नारी ही होती थी। अतः यह समाज तथा संस्कृति कोमल तथा भावना-प्रवण थी। इसका यह अर्थ नहीं कि इस समाज में आर्यों की भाँति युद्ध-विग्रह नहीं होते थे, किंतु इन बाहरी संघर्षों के अंतराल में कोमल भावनाओं का तार भी अनुस्यूत था। इस बात के प्रमाण तो महाभारत में भी ढूँढ निकाले जा सकते हैं कि जिस समय सिंधु और मद्र देशों में पुत्र के रहने पर भी भागिनेय राज्य का अधिकारी हुआ करता था। पंडितों का ऐसा विश्वास है कि नारियों की इस प्रधानता के कारण ही समाज में शिव और विष्णु की पूजा गृहीत हुई होगी। जब द्राविड़ों और आर्यों का संपर्क बढ़ा और द्राविड़ जाति की स्त्रियाँ आर्य परिवारों में आने लगीं तो स्वभावतः उनके साथ उनकी उपासना-पद्धति का भी आर्यों के समाज में प्रवेश हो गया। आरम्भ में इस वैयक्तिकता-प्रधान भावुकतापूर्ण उपासना प्रणाली को ब्राह्मणों ने प्रश्रय नहीं दिया और इसका प्रचार रोकने की भी चेष्टा की गई। इसके प्रचुर संकेत स्कंद, वामन, लिंग, कूर्म आदि अनेक पुराणों में मिलते हैं। उदाहरणार्थ वामन पुराण में एक कथा आती है कि एक बार शिव ब्रह्मचारी वेश में मुनियों के तपोवन में आये। उन्हें देख कर मुनि-पत्नियाँ कामार्त हो उठीं और भाँति-भाँति के निर्लज्ज आचरण करने लगीं। मुनिगण अपनी पत्नियों के इस व्यवहार से क्षुब्ध हो उठे और वे डंडे और पत्थर लेकर (काष्ठपाषाण पाशायः) शिव को मारने के लिए दौड़ पड़े। इतना ही नहीं उन्होंने कुपित होकर शिव को भीषण शाप दे डाला, जिसके परिणाम-स्वरूप शिव का लिंग भू-पतित हुआ और तभी से लिंग-पूजा का विधान चल पड़ा। (वामन पुराण अध्याय ४३, श्लोक ५१-७१) भृगु ने विष्णु की छाती में पाद-प्रहार किया था यह आख्यान तो सर्वविदित ही है। इसके अतिरिक्त विष्णु और उनके अवतारों का श्यामवर्ण भी एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। इस प्रकार आर्य-जीवन में वैदिकों के न चाहने पर भी भक्ति के मूल तत्वों का प्रवेश संभव हो गया और आर्य और आर्येतर जातियों के सम्मिलन के प्रगाढ़ होने के साथ-साथ भक्ति की नींव भी सुदृढ़ होती गई। आज भी विष्णु-पूजा तो नहीं, पर शिव-पूजा अधिकतर स्त्रियों में ही प्रचलित है।

इस भक्ति-भावना के प्रचार में दक्षिण की देवदासी प्रथा का भी कुछ न कुछ योग अवश्य रहा है। द्राविड़ समाज में बहुत दिनों तक यह प्रथा थी कि माता-पिता अपनी प्रथम कन्या किसी मन्दिर में जाकर देव-मूर्ति को समर्पित कर आते थे। ये देवदासियाँ मन्दिरों में ही पालित होती थीं और आजीवन कुमारी रह कर माधुर्य भाव से मूर्ति की आराधना करती थीं। अब तक दक्षिण में देव-प्रतिमा के साथ अधिकांश नृत्य की मुद्रा में नारी मूर्तियाँ ही उत्कीर्ण मिलती हैं। धीरे-धीरे इस प्रकार की प्रार्थना पुरुषों-द्वारा भी की जाने लगी और एक प्रकार की प्रेम-विह्वलता और आत्मसमर्पण-मूलक भक्ति का विकास हुआ। इस भक्ति-भावना का सबसे स्पष्ट रूप 'आलवार' भक्तों में दीख पड़ता है जिनका समय ईसा की तीसरी शताब्दि से लेकर नवीं शताब्दि तक निर्धारित किया गया है। इन आलवारों की संख्या बारह बतलाई जाती है और क्रम से इनके नाम हैं—प्वायगयी, भूतत्तार, पे, तिरुमलिसई, नम्म, मधुर कवि, कुल शेखर, अंदाल, तोडर, डिप्पोडी, तिरुप्पन और तिरुमगई। इनमें कम से कम नौ तो अवश्य ही ऐतिहासिक व्यक्ति है। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध आलवार का नाम नम्म अथवा शठकोप है, जिनकी रचना शठकोपनिषद् दक्षिण में अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती है। प्रायः ये सभी आलवार-समाज की निचली जातियों में उत्पन्न हुए थे और इनमें पुरुषों के साथ 'अंदाल' नामक एक देवदासी भी थी जिसके गीतों में प्रेम की कुछ वैसी ही विकलता, तीव्रता और तड़प पाई जाती है जैसी आगे चल कर लगभग नौ शताब्दि बाद मीरा के पदों में देखने को मिली। अंदाल ने मीरा की भाँति ही अपने को कृष्ण की प्रियतमा मान कर प्रिय के साथ अभिसार

की कामना की है। एक स्थान पर उसने स्पष्ट कहा है अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गई हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त किसी को पति नहीं बना सकती।'

इन आलवार भक्तों की भक्ति इतनी निष्काम; प्रखर तथा तन्मयतापूर्ण थी कि अनेक ब्राह्मण भी इनकी शिष्य-परम्परा में दीक्षित हुए। इन्होंने एकांत-निष्ठा, आत्मसमर्पण और प्रणति का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण अपनी रचनाओं-द्वारा उपस्थित किया। इन आलवारों के भक्तिभाव-पूर्ण गीतों का सबसे पहले संकलन दसवीं शताब्दी में नाथ मुनि नामक एक आचार्य द्वारा 'नालियर प्रबन्धम्' के नाम से किया गया जिसे तमिल वेद भी कहते हैं ! श्री संप्रदाय के प्रवर्तक यामुनाचार्य इन्हीं नाथ मुनि के पौत्र थे, जिनसे प्रेरणा लेकर रामानुजाचार्य ने अपना विशिष्टाद्वैत सिद्धांत प्रचारित किया। रामानुज के पार्श्ववर्ती आचार्यों निंबार्क, मध्ववल्लभ ने भी आलवारों के ऐकांतिक आत्मसमर्पण से प्रेरणा ली, एवं भक्ति के क्षेत्र में समता का आग्रह दिखलाते हुए भी सामाजिक मर्यादा का निर्वाह किया। आलवारों का प्रपत्तिमूलक कर्म एक प्रकार से जन-समाज की वस्तु था जिसे, वैष्णवाचार्यों ने उठा कर पांडित्य के स्तर पर पहुँचा दिया। इस तरह शास्त्र की उंगली पकड़ कर यह धारा दक्षिण के पाषाणी पठारों के प्रक्षालन के उपरान्त उत्तर भारत की शस्य-श्यामला वसुन्धरा का भी अभि-सिंचन करने लगी, यद्यपि उत्तर में आचार्यों के प्रभाव से इसके दार्शनिक रूप का ही प्रचार अधिक हुआ। राज-नीतिक अशांति से उद्विग्न और सामाजिक वैषम्य से जर्जर उत्तर का वातावरण भी अब तक इसके प्रचार के लिए सर्वथा उपयुक्त बन चुका था। इसीलिए इसके प्रचार-प्रसार में विशेष बाधा न आई और ज्ञानप्रधान शुष्क विचारकों के हृदय को आविल करती हुई भक्ति की स्रोतस्विनी शीघ्र ही उत्तर-दक्षिण सर्वत्र समान रूप से लोकप्रिय हुई।

भक्ति का उद्भव द्रविड़ देशों में हुआ और वह दक्षिण से ही उत्तर भारत में आई इसका एक यह भी प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है कि भक्ति के सिद्धांत को बहुमान देने वाले रामानुज से वल्लभ तक (रामानंद को छोड़ कर) जितने भी आचार्य हुए वे सब दक्षिण के ही थे। रामानंद भी जिनका जन्म प्रयाग के आसपास कहीं बतलाया जाता है, दक्षिण की भाव-परम्परा के समर्थ वाहक होने के कारण दक्षिण की ही आध्यात्मिक संतान कहे जाएँगे। और तो और, मध्ययुग के सर्वाधिक शक्तिशाली पुराण भागवत के विषय में भी कुछ विद्वानों की धारणा है कि उसकी रचना कहीं दक्षिण में केरल के निकट हुई होगी, क्योंकि उसमें वर्णित अनेक लताएँ एवं पुष्प वृंदावन के आसपास नहीं, दक्षिण में ही पाये जाते हैं। इस प्रकार इस भावधारा का मूल स्रोत आर्येतर सिद्ध होने से इस भावधारा की महत्ता नहीं घटती। संस्कृतियों का यह संगम सर्वथा स्वाभाविक है, जो जीवंत समाजों के बीच बराबर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों से संघटित होता रहता है। इसकी स्वीकृति आर्य-संस्कृति की जीवंतता और ग्राहिका शक्ति की परिचायिका है।

अनमेल साथी

श्री वीरेन्द्र शर्मा

गया बहुत से द्वार मगर तुम जैसा साथी मिला न कोई ॥

चित्र हजारों देखे, सबने आ मुझको बहलाना चाहा।
नाम तुम्हारा लेकर दुनिया ने मुझको बहकाना चाहा ॥

पर कैसे संभव होगा यह रोम रोम के दर्पण मेरे।
जिसका मूल्य न कोई दे पाया ऐसे हो कंचन मेरे ॥

तुम्हें देखने को निर्मोही किसके आगे शीश झुकाऊँ।
ऐसी पीर मुझे दे रूठे बेहद चाही कभी न खोई ॥१॥

रुठवाये तो तुम साँसों से सूना हो जाएगा जीवन।
हँसी चुराने वाला पलकों को दे जाएगा आँसू-कण ॥

सुख मुझसे रिश्ते नाते सब मिटा मिटाकर दूर रहेगा।
कितनी भी हो व्यथा वेदना मन दुनिया से नहीं कहेगा ॥

यह कैसा उपहास किया है मुझसे ओ मेरे! वरदानी।
आते आते नींद चुराई जाते जाते पलक भिगोई ॥२॥

चाँद सुलाने वाली बोलो रात बिताऊँगा क्या कहकर।
सारी उम्र गुजर जाएगी बेसुध होकर गुमसुम रहकर ॥

अपना कह बहलाने वाला शायद कोई नहीं मिलेगा।
राह अँधेरी हो जाएगी जब जब दीपक नहीं जलेगा ॥

मुझसे यहाँ अभागा कोई शायद नहीं दूसरा होगा।
तुमसे नेह लगाया-क्या है जीवन से चंचलता खोई ॥३॥

पता-श्री सोहनलाल, कोतवाली, देहरादून।
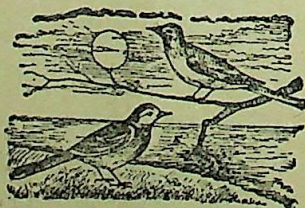
शाहजहाँ-कालीन अवधी के अज्ञात कवि-रामचन्द्र

डॉ. शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों को रामचन्द्र नामक तीन कवि देखने को मिलेंगे। एक का उल्लेख पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" (सं० २००७), पृ० ३७२ में किया है। ये रीतिकालीन कवि थे जिनका समय संवत् १८४० के आसपास माना जा सकता है। इनकी एकमात्र कृति 'चरण चन्द्रिका' है जिसमें भक्ति-रस के ६२ कवित्त हैं। (भाषा महिम्न के लेखक काशीवासी मनियारसिंह ने अपने को रामचन्द्र पंडित का चाकर बताया है और भाषा महिम्न का रचना काल सं० १८४१ है) दूसरे रामचन्द्र कवि वे हैं जिनका उल्लेख मिश्र-बंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' के पृ० ४६६ में किया है। वे इन्हें साकी (बनारस) वासी 'रायविनोद' ग्रन्थ के रचयिता एवं पद्मराग के शिष्य मानते हैं। किन्तु अगरचन्दजी नाहटा ने 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग २' के पृष्ठ १५६ में मिश्रबधुओं की भूल की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि वास्तव में सक्की नगर सिंध प्रान्त में है और रामचन्द्र के लिखे ग्रन्थ का नाम रामविनोद और उनके गुरू का नाम पद्मरंग था। इन्होंने उन्हें खतरगच्छीय जिनसिंह सूरि, शिष्य पद्मकीर्ति, शिष्य पद्मरंग का शिष्य बताते हुए उनके ग्रन्थों में राम विनोद (लेखन काल सं० १७२०) मिगसर सुदि १३ बुधवार सक्की नगर), वैद्यविनोद (सं० १७२६ वै० सु० १५ मरोट) सामुद्रिक भाषा (सं० १७२२ माघ वदी ६ मेहरा) तथा दश पचबखाण स्तवन (सं० १७२१ पौष सुदी १०), मूलदेव चौपाई (सं० १७११ फागण, नवहर), समेदशिखर स्तवन (सं० १७५०) तथा बिकानेर आदिनाथ स्तवन (सं० १७३० जेठ सुदी १३) के नाम गिनाये हैं। 'मिश्रबंधु विनोद' में उनके एक अन्य ग्रंथ 'जम्बू चौपाई का भी उल्लेख है। तीसरे रामचन्द्र कवि, द्वितीय के नाम से (अगरचन्द नाहटा कृत राजस्थान में हिन्दी ग्रंथों की खोज पृ० १५७) प्रसिद्ध हैं जिनकी लिखी 'रत्न परीक्षा दीपिका' मिली है, किन्तु कवि का अधिक विवरण प्राप्त नहीं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के संग्रहालय में संस्कृत भाषा के कवि रामचन्द्र की एक कृति 'राधाविनोद' प्राप्य है। किन्तु जिन रामचन्द्र का परिचय एवं कृतित्व हम यहाँ उद्धृत करने जा रहे हैं, वे उपर्युक्त में से कोई भी नहीं हैं, यद्यपि रामविनोद एवं वैद्यविनोद के लेखक से उनका काल मेल खाता है। इन रामचन्द्र कवि की कृतियों की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे एकडला (जनपद फतेहपुर) निवासी रावत ओम् प्रकाशसिंह के यहाँ से प्राप्त हुई हैं जो महिरावन कथा तथा प्रमोद कथा की हैं और जिनके प्रतिलिपि काल संवत् १७४७ ही हैं। महिरावन कथा का रचना काल सं० १७१६ प्रमोद कथा का सं० १७१५ है।

परिचयः—स्वतन्त्र रूप से रामचन्द्र कवि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं, किन्तु उन्हीं की कृतियों के आधार पर हमें कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है। 'महिरावन कथा' के प्रारंभ में वे लिखते हैं कि उनका जन्म अचलगढ़ के राजपूत वंश की गौर कुरी में हुआ था। उसका गोत्र कौसिल था; यद्यपि उन्होंने अपने

माता-पिता की वंदना की है तथापि उनके नाम नहीं बताये। अपने गुरु का भी स्मरण उन्होंने अनाम रूप में किया है। 'प्रमोद कथा' में भी इन्हीं बातों की पुष्टि हुई है। उदाहरणार्थ:-

रामचन्द्र रजपूत कहावै,
हर्षि-हर्षि के सौ गुन गावै
अहै गौर पुनि कुरी प्रवाना,
कौसिल गोत ताहि को जाना
गढ़ प्रचल के वासी अहीं,
नाम कुरी सब आपन कहीं

° ° °

विनवी मात-पिता के चरना, रामचन्द्र हो तोरी सरना

° ° °

विनवी गुरु के वचन अपारा,
ग्यान बुधि और गुन संचारा
गुर के बचन गुपित में पाए,
तेहि समीप में हरि जस गाए

—'महि रावन कथा'

रामचन्द्र रजपूत सुजानी,
अहै गौर जो कुरी बखानी
गढ़ प्रचल पुनि अस्थाना,
कौसिल गोत पुनि आपु बखाना

° ° °

संवरों मात-पिता सिर नाई, जिन्हु संवरे दुख पातल जाई

° ° °

संवरों गुरु के बंदौं पांय; औ जालपा संवारों जग माय

—'प्रमोद कथा'

प्रचल गढ़ कहां है, इसकी ठीक से पुष्टि नहीं हो सकती, किन्तु अनुमानतः यह मध्यप्रदेश का कोई स्थान होगा। कवि ने अपने ग्रन्थों की तिथियाँ बड़े ही स्पष्ट शब्दों में लिखी हैं, जिससे उनके रचना-कालों में कोई संदेह नहीं उठता। उन्होंने अपने काल के राजा शाहजहाँ का उल्लेख ही नहीं किया, वरन् उसके राज्य की कतिपय विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। यथा:—

पुनि कछु बचन राय के साने,
साहिजहां दिल्ली सुलताने
एक छत्र राजु बिधाते दीन्हा,
गौश्र सिंह एक ग्रह महं कीन्हा
दुष्ट जने राखा नहिं काहू,
जौ ग्रासे धावा तस राहू
राजा राय सबहिं मम संका,
जो राजा रावन है लंका
धर्म समीप न्याउ बहु करहीं,
राउ रंक जो कछू न गनहीं
साहिजहां दिल्ली पति, धन्य धन्य सुलतान
जाकी आन चहुँ दिसि, राउ रंक सब मान ॥५॥

—'महिरावन कथा'

साहिजहां दिल्ली सुल्ताना, चहूँ खंड पृथिमी मो जाना
जहांगीर का पुत्र जो आही, चहूँ खंड फिरी दोहाई
चारिउ खंड अपने बस कीन्हा, दिल्ली अस्थान बैठकु कीन्हा

—प्रमोद कथा

"महिरावन" का रचना-काल चैत बदी द्वितीया, सोमवार संवत् १८१६ है और "प्रमोद कथा" का पूस सुदी नौमी सोमवार सम्वत् १८१५। "महिरावन की कथा" का रचना-उद्देश्य लिखते हुए कवि ने बताया है कि कलियुग के प्रभाव से पीड़ित हो उसने कृष्ण की शरण ली। रात्रि में कृष्ण ने उसकी बाँह पकड़ी उसने 'हरियश' का गान किया।

रैनि समै मोहि निंद्रा आई,
कलि के कर्म देखि पछिताई
क्रिस्न आइ गहि बांह उठाई,
तब में हरि निजु दरिसन पाई
हरि जसु तब में गावा, जग के कर्म बिचारि।
जग की चलनि निहारि कै, तब में आपु संभार॥

कवि रामचन्द्र कृष्ण के भक्त थे। 'हर्षि-हर्षि कैसो गुन गावै' से इसकी पुष्टि होती है। 'प्रमोद कथा' में विस्तार से उन्होंने कृष्ण-स्तुति की है:—

तुम जगदीश जगत के, अवर न दूसर कोइ,
काह जानि हौं बरनौं, जो बरनै सम होइ।

० ० ०

जे नर भगति कृष्ण की, तिन्हहु नहीं भो भीर,
सकल पृथिमी उदर बसि, वोह हरि गहिर गंभीर।

रामचन्द्र तुअ अस्तुति करई,
केस छोरि के पायन परई

अहो कृष्ण मैं तुअ मनु लावा,
मोहिं अबूझ कहं दरस देखावा

तुअ महिना कछु करिअ अनूपा,
बदनु नाहिं नाहीं पै रूपा

तुअ महिमा कर प्रलै नाहीं,
कृष्ण भगति मोरे मन माहीं

तुअ माया मैं अछरु पावौं,
मैं अबूझ तुम्हका मनु लावौं

तुअ प्रभु अगम अगोचर, अलख जोति जगदीस,
रामचन्द्र तोहि बिनवै, केस छोरि कै सीस।

कवि रामचन्द्र ने 'प्रमोद कथा' में अपने आप को साधुओं का पिछलगुआ कहा है और अपने पूर्व के सभी कवियों को प्रणाम किया:—

सब साधुन कर पछा लेऊँ,
तब परगट होइ हरि जसु लेऊँ

सब कबिन कहं हमारे प्रनामू,
तुम्ह पीछे है मोर कछु कामू

तुम कवि सो जिन्ह ग्यान विचारा,
हम पुनि पीछा लीन तुम्हारा

० ० ०

कुछु प्रसाद मैं हरि जसु लीन्हा, सब साधन कर पाछू लीन्हा

महिरावन कथा:—संक्षेप में, सर्व-प्रथम रामचन्द्रजी के जन्म से बनवास तक की कथा का उल्लेख करते हुए सीता-हरण और हनुमान का दूत बनकर जाने का वर्णन आया है। फिर अंगद का पाँव रोपना, विभीषण को लंकेसुर की पदवी देना, समुद्रोल्लंघन तथा राम-रावण-युद्ध का वर्णन है। मंदोदरी रावण को जिस प्रकार समझाती है, उसका उल्लेख देखें:—

तवहिं मंदोदरि बिनवै सेवा, मानहु वचन हमारे देवा
एक बचन तुम्ह बाचा लेहू, रामचन्द्र कहँ सीता देहू
एक त्रिया उनके संग अहा, रावन देहु मंदोदरि कहा
तुम्ह स्वामी मोरे प्रति अंगा, हौं नौजोबनि तुम्हरे संगा
सीता देहु जगत जस पावहु, त्रिया छोरि जग-बंद कहावौ

किन्तु रावण इसके प्रत्युत्तर में कहता है, "हौं चाहौं परलोक संवारा, जूझ राम सन करहुँ अपारा।" तभी रावन ने रामचन्द्र के वध के लिए पान का बीड़ा बाँटा। लपक कर महिरावण ने रामचन्द्र-लक्ष्मण के मारने का बीड़ा उठा लिया और अत्यन्त गर्व से कहा:—

तौ महिरावन नाउं कहाऊँ, तपसिन बांधि घरै लै आऊँ

इस संवाद से चारों ओर प्रसन्नता छा गई। बाजे बजने लगे। चिन्तातुर हो विभीषण ने इस खबर को रामचन्द्रजी तक पहुँचाना श्रेयस्कर समझा। किन्तु वहाँ पहुँचने पर हनुमानजी से पता चला कि दोनों भाई थकान के कारण सोये हुए हैं। विभीषण ने संपूर्ण वृत्तान्त हनुमानजी से कह सुनाया। हनुमानजी ने अहंकार और क्रोध में कह डाला कि उनके रहते कोई भय नहीं। विभीषण के चले जाने पर हनुमानजी ने वज्रकोट का निर्माण किया और उसके भीतर राम-लक्ष्मण को सुला दिया। उसका वर्णन कवि की वाणी से सुनें:—

नर सुर राकस देखि डेराहीं, जानहु नगर पार्वत आहीं,
गढ़ के निकट कोउ ना जाई, जानहु सर्प दौरि कै खाई।

जहां पवन नहिं संचरै, रवि ससि देखि न चीन्ह,
धन्य-धन्य तुअ हनुवंत, बज्रकोट जिन्ह कीन्ह।

सवा पहर रात्रि जाने पर महिरावन ने रामचन्द्र की सेना में प्रवेश किया, किन्तु राम-लक्ष्मण को कहीं न पाकर हताश हुआ। अन्ततः उसे बज्रकोट दिखा। ऐसी माया देखकर उसे समझते देर न लगी कि विभीषण की यह करतूत है; अतः छद्मवेष धारण कर हनुमानजी के सम्मुख उपस्थित हुआ, उनके बल-विक्रम की चर्चा प्रारम्भ की और रामजी के दर्शन करने की

अनुमति चाही। भ्रम-वश हनुमानजी ने कोट में उन्हें प्रवेश करने दिया, किन्तु महिरावन ने पुनः राक्षस का रूप धारण किया और दोनों भाइयों को सोते हुए उठाकर पाताल के रास्ते से अपने घर जा पहुँचा। अपने आप को वहाँ देखकर रामचन्द्रजी चिन्तित हुए और लक्ष्मण से अपनी विपत्तियों का वर्णन करने लगे। तब लक्ष्मण के मुख से, कवि, चिन्ता न करने और कर्म की प्रधानता का उपदेश दिलाता है :—

कर्म रेख कबहूँ नहिं मिटई राउ रंक बहु कर्म जो करई।

राम लक्ष्मण के हरण से असुरों में प्रसन्नता व्याप्त हो गई। महिरावण ने तभी घोषणा की कि शीघ्र ही चण्डिका देवी के मंदिर में दोनों भाइयों की बलि होगी। फिर क्या था, उत्सव मनाया जाने लगा। प्रातः होते ही जाम्बवन्त आदि वानर-गण रामचन्द्रजी के दर्शनों के लिए आये। तभी विभीषण भी आते दिखाई पड़े। हनुमानजी ने पूछा कल तुम अन्दर तो गये थे किन्तु वापस कहाँ से गये। विभीषण को छल समझते देर न लगी। रामचन्द्रजी को कहीं न देख कर हनुमान अत्यधिक चिन्तित हुए। उग्र रूप धारण कर सूर्य और चन्द्रमा को त्रासित करने लगे, किन्तु कहीं भी पता न पाकर अधीर हो गये और विलाप करने लगे—

सीस धुनै कर हृदै ठेठावै, कबहुंक राम-राम गोहरावै
कबहुँक केस तोरि के रोवै, कबहुँक नर बंदर मुख जोवै
कबहुँक बोलि उठै रघुनाथा, कबहुंक पाहन मारै माथा
दुओ चाखु बरिसत जनु मेहा, संवरि-संवरि रगुनाथ सनेहा

अन्त में जब उन्होंने धरती को पूंछ में लपेट कर फेंक दिया तो वह गाय का रूप धर कर आई और सारा मर्म खुल गया। हनुमानजी पाताल के मार्ग से रवाना हुए। रास्ते में दो पर्वत मिले। किन्तु गिरगिट का रूप धर कर यत्न से चण्डी के दरबार तक पहुँचे। एक ही पद प्रहार से चण्डी को पाताल पहुँचा दिया और जो मालिन मण्डप लीपने गई थी उसकी नाक काट ली। महिरावन के पास रक्त से रंजित मालिन ने आकर कहा कि चण्डिका अत्यन्त क्षुधित है। फलतः नाना प्रकार के व्यंजन बनवा कर पहुँचाए जाने लगे, जिन्हें हनुमानजी खाते गये। अन्त में महिरावन ने क्रोधित होकर राम-लक्ष्मण की बलि की आज्ञा दी। रानी ने महिरावन को अत्यन्त करुण स्वर में समझाया—

भगति हेतु मन उपजाएऊ,
दशरथ कुँअर छोड़ि दे राऊ।
एक इन्ह बन मां बहु दुख पायेउ,
पुनि तुम्ह बाँधि कै ग्रह लै आयेउ।
एक इनकी तिरिया हरि लीन्हीं,
दोसरे विपति विधाता दीन्ही।
छाड़हु कंत जीव रघु राखहु,
राम दरस निजु मन मो चाखहु।

जब रामचन्द्र की बलि होने जा रही थी तो महिरावन ने प्रश्न किया 'बोलो तुम किस इष्ट का स्मरण करना चाहते हो!' रामचन्द्रजी ने कहा 'यदि मेरे भाई तुम्हारी करतूति को जान पाएँगे तो तुम्हारा नाश कर देंगे। यदि हनुमान को हमारी सुधि मिली तो वह तुम्हारी भुजाओं के खंड-खंड कर देंगे। किंतु अब तुम्हारे आगे हमारी कौन बसात? हमारा वध कर दो।'

तभी हनुमानजी गाज कर बाहर निकले, महिरावन को दोनों जंघाओं पर रख कर उसके अंग-अंग विदीर्ण कर दिये। तब अनेक राक्षस मिल कर हनुमान जी से लड़ने लगे। उन्होंने सबों को मार डाला। तब रामचन्द्रजी ने अपने बन्धन खोलने को कहा तो हनुमानजी ने विनय भाव से कहा—'मैं पहले लक्ष्मण के बन्धन काट रहा हूँ ये आपको मुक्त करेंगे। मैं तो आपका सेवक हूँ।' फिर जमकातरि तोड़ कर राम-लक्ष्मण को बाहर ले आये। सभी वानर राम-लक्ष्मण के दर्शन से बहुत प्रसन्न हुए।

कवि ने अन्त में लिखा है कि राम की कथा अनंत है। यही नहीं कृष्ण के बजाय अब वे—'हर्खि हर्खि रघुनन्दन गावैं।' रामचन्द्रजी का स्मरण करते हैं।

'प्रमोद कथा' में जहाँ कृष्ण की भक्ति को महत्व दिया गया है वहीं 'महिरावन' में रामचन्द्र की भक्ति को। 'रामचरित्र' के माहात्म्य का वर्णन करते हुए वे अन्त में लिखते हैं कि—जो कोई रामचरित्र सुनता है उसे परम पद मिलता है। उसे सोलह हजार तीर्थों के स्नान का फल मिलता है। महिरावन की कथा सुन कर लोग वैकुण्ठपुरी जावेंगे।

संपूर्ण काव्य अत्यधिक विस्तृत नहीं। पाँच-पाँच चौपाइयों के बाद एक-एक दोहे का क्रम आया है। कुल ६१ दोहे हैं। ऐसी शैली देख कर हमें ईश्वरदास तथा सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों की याद आती है। भाषा विशुद्ध अवधी है। ठेठ शब्दों का खुल कर प्रयोग है। जिससे कवि की भाषा जनता की भाषा के अधिक निकट है। एक ही साथ कृष्ण और राम के यश गाने वाले इस कवि को इतना तो महत्व प्रदान ही किया जा सकता है कि १७ वीं शती में राम-काव्य की रचना कर राम काव्य में वृद्धि की। यद्यपि काव्य का नाम 'महिरावन' है और कवि ने एक साधारण-सी घटना को चुन कर अपने काव्य का विषय बनाया है, किन्तु उसमें राम का वर्णन अधिक है, महिरावन का कम जिससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि का उद्देश्य राम-चरित्र का गायन था, महिरावन के पराक्रम का वर्णन नहीं। वैसे महिरावन-कथा कोई नवीन योजना नहीं। तुलसीदासजी ने 'हनुमान-चालीसा' की एक पंक्ति में इस प्रकार कहा है—'पैठि पताल तोड़ि जमकातरि, महिरावन के भुजा उपारे।' बस यही कथा का ढाँचा 'महिरावन' की कथा का मूलाधार है। वैसे रामचरित-मानस में यह कथा नहीं आती, किंतु क्षेपकों के रूप में कतिपय प्रतियों में यह कथा वर्तमान है। स्वतन्त्र रूप से इस घटना पर एक सूक्ष्म काव्य की रचना 'रामचरित्र' के विकास को दिखाने का एक लघु प्रयास है। मुगल शासन-काल में राम-भक्ति ने जो जोर पकड़ा वह सभी को ज्ञात है। संत सूरजदास का 'रामजन्म' भी एक ऐसा ही काव्य है। कथा के कहने में जो विशिष्टताएँ दिखाई हैं, वे रामचन्द्रजी का मानवीय रूप, राक्षसी प्रवृत्तियों के समक्ष उनका नमन, हनुमान की एकनिष्ठा तथा पराक्रमशीलता के साथ ही भूल होने पर पश्चात्ताप। वे इन सबका अंकन करने में अत्यन्त सफल हुए हैं। अनेक स्थलों पर तुलसीदासजी की कविता की स्पष्ट छाप दीख पड़ती है, किन्तु कवि ने न तो खुल कर उनका नाम लिया है और न आभार ही प्रदर्शित किया है; फिर भी संपूर्ण काव्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि तुलसी के परवर्ती कवि होने के नाते बहुत-सी बातों का प्रभाव उन पर पड़ा है।

प्रमोद कथा—कथा के प्रारम्भ में गणेशजी, काश्मीर की रानी, जालपा देवी, अम्बिका माता, हिंगुलाज की देवी, सरस्वती देवी, माता, पिता तथा गुरु की वन्दना की है। फिर आदि-ज्योति करतार की बन्दना प्रायः उसी शैली में की गई है जिसमें कवि जायसी ने अपने "पद्मावत" में की है।

संवरौं आदि जोति करतारा,
जिन्ह एह कीन्ह सकल संसारा

कीन्हिहिं धरती और अकासू,
कीन्हेहिं तरुवर औ कबिलासू

कीन्हेहिं सात दीप नौ खंडा,
कीन्हेहिं प्रिथमी औ ब्रह्मण्डा

कीन्हेहिं चन्द्र सूर्य औतारा,
कीन्हेह मेघ अखंडित धारा

कीन्हेस पुर्ख औ नारि सयानी,
कीन्हेसि सकल सिद्धि सब झारी

कीन्हेस बरन बरन औतारा,
ऊँच नीच औ रुद्र कुमारा

* * *

दीन्हे स्रवन सुनै कहं बैना,
जग देखौं कहं दीन्हे नैना

दीन्हेसि पग जो तीरथ करई,
नासि दीन्ह जो गंध बसाई

रसना दीन्ह जो हरि जसु गावै,
हिदै दीन्हि जो मनु समुझावै

दीन्हेसि दसन जो बिहंसै लोई,
दीन्हेसि रूप जगत महँ मोहीं
दीन्हेसि अभरन षोड सिंगारा,
दीन्हेसि मोह छोह बहु अपारा
दीन्हेसि नर कहं बेद बताई,
अहंकार ते नरकहिं जाई
दीन्हेसि भोग रोग सब भारी,
दीन्हेसि पापु भरमु सब भारी

\+ + +

"प्रमोद कथा" में स्फुट विषयों पर विचार होने के साथ-साथ कृष्ण-भक्ति की पुष्टि की गई है। इसमें कृष्ण की स्तुति के पश्चात् कर्म-लक्षण, नारि-पुरुष लक्षण, सपूत लक्षण, मेत्र लक्षण, ज्ञान लक्षण, दान-उपमा, मूर्ख लक्षण, स्वास्थ्य, गीता अर्थ, रुद्र महिमा और कृष्ण स्तुति नामक प्रकरण आये हैं। दोहे-चौपाइयों में लिखा अवधी का यह स्फुट काव्य ग्रंथ 'महिरावन-कथा' की कथा-शैली से भिन्न है। प्रति दोहे के पूर्व ५ चौपाईयों के बजाय ७, ६, ११, १३ पंक्तियाँ तक आई हैं। वर्ण्य विषयों पर कवि ने बड़ी गंभीरता से विचार किया है किन्तु मूल उद्देश्य ईश्वर की सत्ता है, कर्म की प्रधानता और सबों के ऊपर कृष्ण भगवान की श्रेष्ठता सिद्ध करना है। उदाहरणार्थ, विभिन्न प्रकरणों के नमूने दिये जा रहे हैं—

अलख रूप मैं बरनौ तहूँ,
वहि अनंत है लिपित न कहूँ
कँवल पत्र जो जल मां रहई,
जल महं पत्र जो लिपित न होई
ना वह देव न दानौ आही,
ना वह पसु पंछिन मैं ताहीं
ना वह पुरुखे ना वह नारी,
ना वह स्रवन, सीस नहिं हारी
—(ब्रह्म निरूपण)

कर्म लिखा सो अजगुत करई,
कर्म लिखा सो कैसे टरई
कर्महीन जो बन महं आवै,
मूल जो खोइ बहुरि घरु आवै
कर्म हीन जो खेती करई,
बरद मरै की सूखा परई
—(कर्म लक्षण)

त्रिया परखियै पर घर जाई,
आप गोपित होइ बात सुनाई
त्रिया सोइ जिन्ह आपति चीन्हा,
अपने पुर्ख सदा रितु दीन्हा

\+ + +

पर घर जाइ न पुर्ख सयाना,
पर घर जाइ सो होइ अयाना
पुर्ख अपन पौरुखी सोई,
जो कलि महं बड़ पुर्खा होई

\+ + +

पुत्र सोइ परिवार समैटे, बिना पुर्ख को राखै मोटै

\+ + +

धन्न बिना नर पतंग समाना,
धन बिनु त्रिया करै अपमाना
धन बिनु मित्र प्रीति जो तोरै;
मात पिता धन बिनु मुख मोरै

\+ + +

भेषहिं सों सब संका मानै,
राउ रंक कछु आप न मानै
भेषहिं सो सब पृथमी मोही,
कलि के रूप भेष है सोही।
भेषहिं सो बैरागी होई,
बिना भेष को पूजै लोई

\+ + +

ज्ञानी सो जो धर्म करावै, कृष्ण तंत निजु बात बुझावै

\+ + +

दानी सो जो चतुर सयाना, वित्त समान देइ जो दाना

\+ + +

खोजी सो जो खोज करावै,
अर्थ लेइ कै विद्या पावै
खोजी सो जिन्ह ग्यानु बिचारा,
बिना खोज नर मूढ़ गंवारा

खोजी सो जिन्ह कृष्ण बिचारा,
बिन खोजे को लखै अपारा

\+ + +

मूरुख सो जिन आपु न जाना,
बहुत गरब तिन्ह मन मो आना
मूरुख सो जिन हरिनहिं चीन्हा,
सरबसु आप विश्व कहं दीन्हा

\+ + +

जागहिं बपुरे लोग बटाऊ,
रैन दीन्ह जिन पन्थ चलाऊ
जागहिं जिन घर छुधा बिआपी,
जागहिं पुरबिन जनम के पापी
जागहिं पहरू औ कोटवारा,
जागहिं तरूनी विरह की झारा
जागहिं सो नर सोग बिआपै,
घर की नारि भईं जस संपै

\+ + +

सोवहिं जिनके सोच न होई,
सुखिआ जग महं सौवै लोई
की सोवहिं राजा कर पूता,
की सोवहिं जोगी अवधूता
सोवहिं जे नर कृष्ण न जानैं,
बहुत मूढ़ तिन निद्रा ठानै

\+ + +

कृष्ण जन्म तुम मथुरा लीन्हा,
नंद महरि के आस्रम कीन्हा
नंद महरि कै गाय चराई,
दधि घृत भंजन माखन खाई
कृष्ण रूप बहु दानौ मारे,
पुनि आपुन बैकुंठ सिधारे
अगम पंथ खांडे की धारा,
तहाँ बसत जगदीश हमारा
एहि पंथ निबहै नर सोई,
कृष्ण भगति जिन्ह साधे होई

\+ + +

इसके अतिरिक्त शुकदेव उत्पत्ति की कथा, विष्णु के चौरासी अवतारों तथा राजा हरिश्चन्द्र आदि की कथाओं की विशद व्याख्या भी की गई है। सच्चेप में "प्रमोद कथा" को हम नीति-संग्रह या सद्विचार-सम्मुचय कह सकते है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रामचन्द्र एक भक्त कवि थे जिन्होंने कृष्ण-भक्ति के साथ-साथ रामचन्द्रजी के यश का भी गान किया। संभव है कि अब भी उनके अन्य ग्रन्थ अज्ञात हों। अवधी भाषा के सँवारने में ऐसे भक्त कवियों का विशिष्ट हाथ रहा है।

पताः—२५, अशोक नगर, इलाहबाद

गीत

श्री सुधेश

★

मैं ने दुलराया सदा तुम्हारी भूलों को
मेरी भूलों पर तुम को प्यार नहीं आया।

यह मिट्टी का तन है जर्जर है दुर्बल है,
यह चंचल मन है पीड़ाओं से बोझिल है,
क्या अचरज है जो पथ में पाँव भटक जाए
मन का दर्पण चोटों से कभी चटक जाए;

मैं तेरे सपनों की थाती पर इतराया
लेकिन तुम को मेरा संसार नहीं भाया।

आखिर मानव ही हूँ कोई भगवान नहीं,
मानव की मजबूरी से तुम अनजान नहीं,
मुझको अपनी कमजोरी से इन्कार नहीं;
लेकिन पथ पर रुक जाना तो स्वीकार नहीं;

थक गई उमरिया भी अविरल चलते-चलते
लेकिन अब तक तेरा ही द्वार नहीं आया।

जिन का जग दुश्मन है उनको अपनाता हूँ,
जिन से दुनिया रूठी मैं उन्हें मनाता हूँ,
चाहे सारी दुनिया मेरा उपहास करे,
धरती पर कोई तो मेरा बिश्वास करे;

मैंने गाया मानव के ही दुख दर्दों को
अपनी पीड़ा को तो इक बार नहीं गाया।

पता—२११/२ पद्मनगर, किशनगंज, दिल्ली-६

गीत

श्री ब्रजेन्द्र राकेश

★

भिगो गई स्वप्नों को सुधि की मैथिल पुरवाई,
इसीलिए, कल, मुझे रातभर नींद नहीं आई।

यूँ, तो जग में सबसे बोला-चाला जाता है,
और 'गैर' भी कुछ क्षण को 'अपनत्व' निभाता है,
पर तुमसे रिश्ता कुछ ऐसा है, जो, तुमको ही—
साँस-अटारी पर चढ़ मन आवाज लगाता है।

किन्तु द्वार से, कल, न तुम्हारी पग-ध्वनि टकराई,
डुबो गई स्याही में मन को गम की परछाँई।

जगा गई सोये से घावों को मखमूर हवा,
नजर तुम्हारी मुझको घर-घर कर आई रुसवा,
पड़े याचनाओं के हारे पाँवों में छाले
किया न, फिर भी, तुमसे मेरे आँसू ने शिकवा।

किन्तु तुम्हारी अँसुअल पाती, जब, मुझ तक आई
तरल भावना का उजलापन बाँध गई काई।

'विरहा' से मेरी वंशी का मादक स्वर ऊबा,
चिन्तन की लहरों में मेरा अल्हड़ मन डूबा,
प्राणों के मरघट पर सोई मुर्दा खुशियों पर
रात-रात भर रोया शिशुवत्, भावुक मंसूबा।

जिसे निरखकर शशि-नखतों की अँखियाँ भर आई
रात-रात भर जली, चिता-सी, रुपहल जुनहाई

पता—'युवक-साहित्य-संसद' नाला पीपलमंडी, आगरा।

वाकाटक प्रवरसेन विरचित सेतुबन्ध महाकाव्य

अनुवादक—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी

★

(पाँचवाँ आश्वास क्रमागत)

जलपव्वाडिअमुक्का खणमेत्तत्यइअयाअडिअवित्थारा।
होन्ति पसणक्खुहिआ मूअल्लइअमुहला समूहावत्ता ॥४१॥

समुद्र के भ्रमर, जो उन पर उछल कर गिरी जल राशि से मिट गये हैं, क्षणमात्र रुककर पुनः विस्तार प्राप्त करते हैं, वे शान्त होने के पश्चात् पुनः विक्षुब्ध होते हैं और मौन होने के पश्चात् पुनः कोलाहल करते हैं।

वलमाणुव्वत्तन्तो एक्कं चिरआलपीडिअं सिढिलेन्तो।
बीएण व याआले पासेण णिसउम्मि पउत्तो उवही ॥४२॥

समुद्र तिरछा होकर ऊपर उठ रहा है, मानो अपने चिरकाल से पीडित एक पखवाड़े को अवकाश देने के लिए दूसरे पार्श्व के भर पाताल (रूपी शय्या) पर लेटने को प्रवृत्त हुआ है।

सरवेअगलत्यल्लिअसुवेलरुब्भन्तसाअरद्धत्यइअम्।
ओसरिअदाहिणदिसं दीसइ उक्खण्डिएक्कपासं व णहम् ॥४३॥

वाणों के वेग-द्वारा गर्दनियाए और सुवेल पर्वत से जा टकराये समुद्र के आधे भाग से आच्छादित आकाश जिसकी दक्षिण दिशा तिरोहित हो गयी है, ऐसा दिखाई देता है मानो उसका एक पार्श्व खण्डित हो गया है।

आइवराहेण वि जे अद्दिट्ठा मन्दरेण वि अणालिद्धा।
खुहिआ ते वि भअअरा आवाआलगहिरा समुद्दोद्देसा ॥४४॥

समुद्र के जो पाताल तक गहरे भयंकर प्रदेश आदि-वराह ने भी नहीं देखे थे और मन्दराचल ने भी जिनका स्पर्श नहीं किया था, वे भी व्याकुल हुए।

एक्केक्कम्मि वलोन्तो बाणप्पहरविवरे णहणिरालम्बे।
खअकालाणलभीओ पडइ रसन्तो रसाअले व्व समुद्दो ॥४५॥

वाण के प्रहार से उत्पन्न हुए एक-एक विवर में होकर जो आकाश के समान शून्य है, समुद्र (का जल) तिरछा होकर कोलाहल करता हुआ, मानो प्रलय-कालीन अग्नि से भयभीत, रसातल में गिरता है।

दीसन्ति दिट्ठमहणा पुट्ठिपडिट्ठिअपलोट्टमन्दरसिहरा।
आसाइआमअरसा बाणदढप्पहरमुच्छिआ तिमिमच्छा ॥४६॥

तिमिनामक (विशाल) मत्स्य, जो (समुद्र का) मंथन देख चुके हैं, मन्दराचल के शिखर जिनकी पीठ पर ही ढुलकते रहे हैं और जिनने (उस समय) अमृत-रस का आस्वादन किया है, वाणों के दृढ़ प्रहार से मूर्च्छित दिखाई देते हैं।

उक्खित्तमहावत्ता दरदड्ढविवण्ण विद्दुमरअकलुसा।
आवाआलवलन्ता दीसन्ति महाभुअंगणीसासवहा ॥४७॥

महाभुजंगों के निःश्वास के (समुद्र से ऊपर निकलने के) मार्ग, जो पाताल से बल खाते उत्पन्न हो रहे हैं, जिनने विशाल भ्रमरों को ऊपर उछाला है और जो झुलसने से रंगहीन हुई विद्रुम की रज से मटमैले हैं, दिखाई देते हैं।

वेवइ पेम्मणिअलिअं सरसंदट्ठघणिओवऊहणसुहिअम्।
जीएण एक्कमेक्कं परिरक्खन्तवलिअं भुअंगमिहुणम् ॥४८॥

प्रणयपाश में निबद्ध भुजंग-दम्पति, जिन्हें (एक

ही) बाण से विद्ध होने के कारण आलिंगन का सौभाग्य-सुख मिला है, और जो एक दूसरे की (अपने) प्राणों के द्वारा रक्षा करने के प्रयास में (परस्पर) लिपटे हैं, काँपते हैं।

मोडिअविदुमविडवा धावन्ति जलम्मि मणिणिहंस-
णणिसिआ।
सिप्पिउडमज्भणिग्गअमुहलग्गत्थोरमुत्तिआ रामसरा ॥४६॥

राम के वाण, जिनने मूँगे के वृक्षों को ध्वस्त किया है, जो मणियों से घर्षित होकर पैने हो गये हैं और सीप के सम्पुट के बीच में से निकलने के कारण जिनके अग्रभाग पर बड़े-बडे मोती लगे हैं, पानी में द्रुतगति से संचरित हैं।

विसवेओ व्व पसरिओ जं जं अहिलेइ वहलधूमुप्पीडो।
कज्जलइज्जइ तं तं रुहिरं व महोअहिस्स विद्दुमवेढम् ॥५०॥

विपुल धूम-पुंज विषवेग के समान फैला है और वह विद्रुम के, महोदधि के रुधिर तुल्य, जिस-जिस समूह से मिलता है, उसे ही काजल-जैसा बना देता है।

खुहिअसमुद्दुप्पइआ बाणुक्खित्तपडिएक्कवित्थअवक्खा।
विसमभरोणअसिहरा णहद्धवन्थवलिआ पडन्ति महिहरा ॥५१॥

क्षुभित समुद्र से उड़ चले पर्वत, जिनका फैला हुआ एक पंख वाण से कट कर गिर गया है, संतुलन बिगड़ जाने से आकाश के अच्छे मार्ग से शिखर झुकाय तिरछे होकर (समुद्र में) गिरते हैं।

छिण्णविवइण्णभोआ कण्ठपडिट्ठविअजीविआगअरोसा।
दिट्ठीहि बाणणिवहे डहिऊण मुअन्ति जीविआइँ भुअंगा ॥५२॥

भुजंग, जिनके कटे हुए फन सर्वत्र बिखरे हैं और प्राण कण्ठगत होने से जिन्हें रोष उत्पन्न हुआ है, वाण-समूहों को दृष्टि से जलाकर प्राणों को छोड़ते हैं।

आऊरेइ रसन्तो उक्खडिअभुअगभोअपब्भाराइं।
सरमुहगलत्थणुक्खअसेलद्धाणविवरोअराइ हुअवहो ॥५३॥

वाणों के फलों द्वारा पर्वतों का मूल प्रदेश बलपूर्वक खोद दिये जाने से उत्पन्न हुए विवर रूपी उदरों को, जिनके भुजंग के फनों जैसे (उर्ध्व) प्रदेश टूट कर अलग हो गये हैं, कोलाहल करती अग्नि (उनमें जल प्रवेश करे उससे पहले ही) आपूरित करती है।

भिण्णुव्वूढजलअरा दरदिण्णमहातरंगगिरिअडघाआ।
छिण्णपडिउद्धविद्धा फुडन्ति माअङ्गमअरदन्तप्फडिहा ॥५४॥

जल-हस्तियों के (वाणों से) कट कर गिरे और ऊपर फिक गये लट्ठे जैसे (दीर्घ) दाँत, जो (स्वयं में) विद्ध जलचरों को अधर में ले गये हैं और जिनने (उछाले जाते समय) महातरंग रूपी पर्वत-तटों पर किंचित् आघात किया है, (अधर में) जलकर चटकते हैं।

जालालोअविमुहिअं सलिलतरंगपरिसक्कणपरिक्खलि-
अम्।
परिहरइ विद्दुमवणं धूमाहअअम्बलोअणं मीणउलम् ॥५५॥

पानी की तरंगों के तीव्र वेग से स्थानच्युत हुआ मीन-समूह, जिसके नेत्र धुँए से पीड़ित होकर लाल हो गये हैं और जो ज्वालाओं की चकाचौंध से भ्रान्त हो गया है, विद्रुम वन का (उसे ज्वाला-बन समझ कर) परित्याग करता है।

उव्वत्तोअरधवला दरणिग्गअडड्ढजमलजीहाणिवहा।
संघेन्ति उप्पअन्ता थोरतरङ्गविअडन्तराइ भुअंगा ॥५६॥

ऊपर उतराते भुजंग, जो उदर ऊपर को पलट जाने से श्वेत (दिख रहे) हैं और जिनकी जली हुई दुहरी जिह्वाएँ कुछ बाहर निकल पड़ी हैं, विशाल तरंगों के विस्तृत अन्तरों को (अपने लम्बे और घने छितरे शरीरों से) जोड़ रहे हैं।

दीसन्ति दरुत्तिण्णा हुआसणुत्तत्तवाअमअणीसन्दा।
पक्कग्गाहग्गहङ्कुसविसमसमक्कन्तमत्थआ करिमअरा ॥५७॥

जलहस्ती, जिनका स्रवित मद अग्नि के भीषण ताप से सूख गया है और जिनके मस्तकों पर जलसिंहों

के अंकुश-रूपी नखों ने विषम आक्रमण किया है, जल से ऊपर अध निकले दिख ई देते हैं।

घोलइ गओणिअत्तं विसमट्ठिअमणिसिलाअलपलोट्टन्तम्।
झिज्जन्तसलिलविहलं वेलापुलिणगमणूसुअं सङ्खउलम्
॥५८॥

जल के क्षीण होने के क्रम से व्याकुल और समुद्र की बालुका-मय तट-भूमि पर जाने के लिए उत्सुक शंखों का समूह ऊँची-नीची मणि-शिलाओं के तल पर लुढ़कता, आगे बढ़ता और (पथ न मिलने से) लौटता-भटकता है।

मुक्कसमुद्दच्छंगा पक्खक्खेवेहिँ संभमसमुप्पइआ।
अब्भुत्तेन्ति महिहरा एक्कक्कमसिहरसंठिअं सिहिणिवहम्
॥५९॥

आकुलता में ऊपर को उड़े और समुद्र का अंक छोड़ गये पर्वत (आकाश में) पंखों के संचालन-द्वारा एक दूसरे के शिखरों पर लगे अग्नि-समूहों को अधिक प्रज्वलित करते हैं।

विहलुव्वत्तभुअंगा हिएणमहासुरसिरुप्पआणगम्भीरा।
मूलुत्थाङ्गिअरअणा णेन्ति रसन्ता रसाअलजलुप्पीडा
॥६०॥

रसातल की जलराशियाँ, जिनमें व्याकुल भुजंग उलटे हो गये हैं, जो महान् असुरों के कटे हुए सिर उनमें निकल पड़ने से भीषण हैं और जो अपने उद्गम-स्थल से रत्नों को ऊपर उठा लाई हैं, कोलाहल करती फूट पड़ी हैं।

बाणणिहाउच्छित्ता हुअवहजालाहउप्पवन्तप्फेणा।
अद्दन्ति णहअले चिअ मारुअभिण्णलहुआ सलिल-
कल्लोला ॥६१॥

वाणों के आघात से ऊपर उछाल दी गयी जल की उत्तप्त लहरें, अग्नि की ज्वालाओं के संताप से जिन पर झाग निकल रहा है तथा वायु से छिन्न-भिन्न होने के कारण जो छोटे खण्डों में बट गयी हैं, अधरतल में ही सूख जाती हैं।

णिव्वूढविसत्थवआ भोआऊडढणगलन्तगमणुच्छाहा।
तुङ्गतरङ्गक्खालिआ विसमुव्वत्तोअरा वलन्ति भुअंगा
॥६२॥

उत्तुंग तरंगों द्वारा (तीर पर) छोड़ दिये गये भुजंग, जिनका विष निःश्रप झड़ गया है, जिनका चलने का उत्साह शरीर को खींचने में क्षीण हो रहा है और पलट कर जिनका उदर प्रदेश ऊपर हो गया है, बल खाते हैं।

वेवन्ति णिएणआणं सरणिवहच्छिएणसङ्खविहडि-
अवलआ।
हत्थ व्व उअहिणिमिआ मुक्करवक्कन्दणिवडिआण
तरङ्गा ॥६३॥

उच्च स्वर से क्रन्दन कर गिरती नदियों की तरंगें, समुद्र पर (उस पर आने वाले प्रहारों को स्वयं पर लेने के लिए) नियोजित हाथों के समान, वाण-समूहों द्वारा विच्छिन्न हुए शंखों के रूप में जिनकी चूड़ियाँ फूट गयी हैं, काँपती हैं।

हुअवहमरिअणिअम्बा जलअरसंदट्ठवक्खउडऽग्गभारा।
चिरसंणिरोहमसिणा दुक्खेण णहं समुप्पअन्ति महिहरा
॥६४॥

पर्वत, जिनके निम्न भागों (नितम्बों) में अग्नि व्याप्त हो गयी है, जिनके पक्ष पुटों के अग्रभाग को जलचरों ने कुतर दिया है और जो बहुत काल से (इन्द्र के भय से समुद्र के) निरोध में रहने के कारण अक्षम हो गये हैं, अत्यन्त कष्ट पूर्वक आकाश को उड़ते हैं।

जलइ जलन्तजलअरं भमइ भमन्तमणिविद्दुमलआजालम्।
रसइ रसन्तावत्तं भिज्जइ भिज्जन्तपव्वअं उअहिजलम्
॥६५॥

समुद्र का जल, उससे जल रहे जलचरों के साथ जलता है, आकुल भटक रहे मणियों और विद्रुम-लताओं के समूह के साथ भटकता है, नाद कर रहे आवर्त्त के साथ (आर्त) नाद करता है और खण्ड-खण्ड हो रहे पर्वतों के साथ विदीर्ण होता है।

आवत्तविवरभमिरो मलअमणिसिलाअलक्खलिअसंचारो
घोलिरतरंगविसमो जह दीसइ साअरो तहेअ हुअवहो
॥६६॥

समुद्र जैसा-जैसा आवर्तों के विवर में चक्कर खाता, मलय पर्वत की मणि-शिलाओं के तल पर गिरता पड़ता, चलता और लड़खड़ाती तरंगों के रूप में ऊँचा-नीचा दिखाई देता है, (उसमें सर्वत्र प्रज्वलित) अग्नि भी वैसी ही दिखाई देती है।

रहसपलित्तुच्छलिओ जे च्चिअ पडिवेइ मलअवण-
वित्थारे।
विज्झाअग्गिअत्तन्तो ते च्चेअ पुणो वि विज्झवेइ समुद्दो
॥६७॥

वेगपूर्वक उछले जलते हुए समुद्र से मलय पर्वत के वन के जिन-जिन विस्तृत अंचलों में आग लग जाती है लौटते समय जब उसकी अग्नि बुझ जाती है, वह उनको ही पुनः बुझा देता है।

उत्थम्भिअमअरहरो मअरवसामिसविसंखलसिहाणिवहो।
णिवहणिसुद्धमहिहरो महिहरकूडविअडो विअम्भइ
जलणो ॥६८॥

अग्नि, जिसने समुद्र को ऊपर उठा दिया है; जिसकी ज्वालाओं का समूह, मकरों की वसा एवं माँस से विश्रृंखलित है, जिसने पर्वतों को ढहा दिया है और जो गिरि शिखरों जैसी उत्ताल है, वर्धित होती है।

जलणुत्थघिंअमूला बाणुक्खित्तपडिअत्तणिसुम्भन्ता।
णिवडन्ति जलुप्पीडा पडिलोमागअपडन्तविअडावत्ता
॥६९॥

जलराशियाँ जिसको अग्नि ने उनके आधार स्थल से उखाड़ दिया है, बाणों द्वारा अधर में उछाली जाने के पश्चात् जो पलट कर अधोमुख गिराई जा रही हैं और गिरते समय विस्तृत भँवर जिनमें (तल पलट जाने से) उलटे पड़ रहे (दिखाई देते) हैं, पुनः समुद्र में गिरती हैं।

धूमाइ जलइ विहडइ ठाणं सिढिलेइ मलइ मलउच्छङ्गम्।
धीरस्स पढमइण्हं तह वि हु रअणाअरो ण भजइ पसरम्।
॥७०॥

रत्नाकर से धुआँ उठता है, वह जलता है, खंड-खंड होता है, आधार-स्थल को छोड़-छोड़ देता है, और मलयाचल की गोद में गिर-गिर पड़ता है, किन्तु फिर भी (अपने) विस्तार में जो धीरता का लक्षण है उसका ह्रास नहीं करता।

भुवइंदलोअणाणं फुट्टन्ताण अ तिमीण साअरमज्झे।
संवत्तजलहराण व रामसराणलहआण णीहरइ
रओ ॥७१॥

राम के बाणों की अग्नि से भरे समुद्र के बीच फट रहे भुजंगराजों के नेत्रों और निमि मत्स्यों का रव प्रलयकालीन मेघों (के कड़कने) के समान प्रतिध्वनित करता है।

मुहपुञ्जिअग्गिणिवहा धूमसिहाणिहणिराअअड्ढि-
असलिला।
णिवडन्ति णहुक्खित्ता पलउक्काद्दण्डसंणिहा णइसोत्ता
॥७२॥

आकाश में उछाली नदियों की धाराएँ, जिनके मुखों में अग्निसमूह पुंजित हुआ है और जिसका जल खिंच कर धूम-शिखाओं के समान लम्बा हो गया है प्रलयकाल के उल्का-दण्डों के समान नीचे गिरती हैं।

अट्टन्तसलिलणिवहो थोअत्थोअपडिमुक्कपुलिणुच्छङ्गो।
दीसइ ओसक्कन्तो मग्गाहुत्तो पअं पअं व समुद्दो ॥७३॥

समुद्र जिसकी सलिल राशियाँ सूख रही हैं और जो तट भूमि के अंक को थोड़ा-थोड़ा छोड़ रहा है मार्ग की ओर अभिमुख रहते (पग-पग) पीछे हटता दिखाई देता है।

जलणणिवहम्मि सलिलं साणलणिवहुच्छलन्तसलिलम्मि
णहम्।
सलिलणिवहोत्थअम्मि अ अत्थाअइ णहअले
दसदिसाअक्कम ॥७४॥

ज्वाला-मालाओं में जल, ज्वाला-मालाओं सहित उछले जल में आकाश और जल राशियों से आच्छादित आकाश-तल में दिशा मण्डल तिरोहित होता है।

सिहिणा पअविज्जन्ते आअट्टन्तम्मि वित्थए जलणिवहे।
जाआ गिम्हविलम्बिअरविरहचक्कमसिणा समुद्दावत्ता
॥७५॥

विस्तृत जल-राशि में, जिसे अग्नि द्वारा छुनकाया और भ्रमित किया जा रहा हैं, समुद्र के भ्रमर ग्रीष्म में मन्द गति से घूमते सूर्य के रथ के पहिये के समान धीमे हो गये हैं।

णिव्वडिअधूमणिवहो उद्घाइअमरगअप्पाहो मिलिअसिहो।
वित्थिण्णम्मि सआलोमइलिओ व्व घोलइ जलणो ।७६।

अग्नि, जिससे धूम-पुंज अब संलग्न नहीं रहा है और जिसकी शिखाओं में उछली मरकत मणियों की प्रभा मिली हुई हैं, मानो सेवार से मलिन हुई विस्तृत समुद्र में घूमती है।

जलइ वलवाणलो विअ फुट्टइ सेलो व्व रामबाहिओ।
रसइ जलओ व्व उअही खुहिओ लंघेइ मारुओ व्व णहअलम् ।।७७।

राम के बाण से अभिहत क्षुब्ध समुद्र बड़वानल के समान जलता है, पर्वत के समान फटता है, घन के समान घोर शब्द करता है और वायु के समान आकाशतल का उल्लंघन करता है।

होइ थिमिअम्मि थिमिओ वलइ वलन्तम्मि विहडइ विसंघडिए।
परिवड्ढिअम्मि वड्ढइ सलिले झणम्मि णवरं झिज्जइ जलणो ।।७८।।

सलिल के स्तब्ध होने पर अग्नि स्तब्ध होती है, उसमें आवर्त पड़ने पर चक्कर खाती है उसके छिन्न-भिन्न होने पर बिखरती है, परिवर्धित होने पर बढ़ती है और क्षीण होने पर क्षीण ही होती है।

रामसराणलपअविअझिज्जन्तोअहिविहत्ततडविच्छेआ।
ते च्चिअ तइवित्थारा तुंगा दीसन्ति दीवमण्डलिबन्धा ।।७६।।

द्वीपों की पूर्वतन शृंखला ही, जिनके तट-प्रदेश राम के बाणों की अग्नि-द्वारा उत्तप्त समुद्र के क्षीण होने से अधिक दिखाई देने लगे हैं, यद्यपि उनका विस्तार उतना ही है, ऊँची दिखाई देती हैं।

इअ दाविअपाआलं जलणासिहावट्टमाणजलसंघाअम्।
रामो दलिअमहिहरं खविअभुअंगणिवहं खवेइ समुद्दम ।।८०।।

राम इस प्रकार समुद्र का क्षय करते हैं, जिसमें पाताल दिखाई देने लगा है जिसकी जलराशि अग्नि-द्वारा घुमाई जा रही है, जिसके पर्वत छार-छार हो गये हैं और जिसका सर्प-समूह नष्ट हो गया है।

जलपब्भारपलोट्टिअभमन्तसंखउलविहलमुक्ककक्कन्दम्।
फुडिअवडवामुहाणलपलित्तदरदड्ढसंचरन्तविसहरम् ८१

जिसमें जल के अग्रभाग (तट) पर शंखों का लुढ़कता और भटकता व्याकुल समूह फूट-फूट कर क्रन्दन कर रहा है, जिसमें (शराघातों से) विस्फोटित दग्ध हुए झुलसे विषधर भटकते हैं।

झिज्जन्तजलालोइअकिरणमुणिज्जन्तरअणपव्वअसिहरम्।
थोरतरंगकराहअदिसालआभग्गपडिअजलहरविडवम् ८२

जिसमें जल क्षीण हो रहा है। इस कारण मणि-पर्वतों के शिखरों की अवस्थिति का (उनकी) किरणें दिखाई पड़ने से अवबोध हो रहा है। तरंगों रूपी स्थूल बाहुओं से ताड़ित मेघ रूपी वृक्ष, जिनकी दिशाएँ रूपी लताएं टूट गई हैं जिसमें गिर पड़े हैं।

साणलसरणिद्दारिअसकेसरुज्जलिअसीहमअरक्खन्धम्।
आसण्णभिअविसटरवेढिअकरिमअरथवलदन्तप्फलिहम् ।८३।।

जिसके समुद्री सिंहों के अग्निबाण द्वारा विच्छिन्न कन्धों की केसर से आग की लपटें उठ रही हैं, जिसके जल-हस्तियों के परिघ जैसे विशाल धवल दाँतों से समीपस्थ भयभीत विषधर लिपट गये हैं।

धुअपव्वअसिहर पडन्तमणिसिलाभग्गविद्दुम लआवेढम्।
दरडड्ढविसहरुज्झिअविसपङ्कक्खुत्तविहलकरिम अरउलम् ॥८४॥

जिसकी वलयित विद्रुम लताएँ थर-थराते पर्वत शिखरों से मणिशिलाओं के गिरने के कारण टूट गयी हैं; जिसका जल हस्तियों का समूह झुलसे हुए विषधरों द्वारा उगले विष के पंक में फँसा व्याकुल है;

रुन्दावत्तपहोलिरवेलावडिएक्कमेक्कभिण्णमहिहरम्।
णहअरुविलग्गवेविरधूमलआविसमलंघिअदिसाआलम्। ॥८५॥

जिसके विशाल आवर्तों द्वारा घुमाये गये और तट

(शेष पृष्ठ १६४ पर)

गीत

श्री दामोदर प्रसाद शर्मा

★

चरण-रज चूम लेने दो ।
निमिष-भर झूम लेने दो ॥
युगों से यह तपस्या प्राण का दीपक जलाती है ।
झुका है भक्ति-रत हो शीष,
लोचन अधमुँदे से हैं ।
सुनाए पीर क्या अपनी,
कि जिसके स्वर रुंधे से हैं ।
भटकते मेघ से कुंतल,
पवन से उड़ रहा आँचल,
तुम्हारे द्वार विरहिन नेह की आशा लगाती है ।
युगों से यह तपस्या प्राण का दीपक जलाती है ॥
चढ़े दो सीढ़ियाँ कैसे ?
जलज पद-चिह्न हैं केवल ।
कहाँ पर प्राण बसते हैं,
कि इसके प्राण हैं बेकल ॥
प्रकट जो रूप हो जाए,
हृदय के घाव धो जाएँ ॥
युगल-कर थाम लो मोहन तुम्हें मीरा बुलाती है ।
युगों से यह तपस्या प्राण का दीपक जलाती है ॥
सुना है भक्त पर हो आपदा,
तुम दौड़ आते हो ।
सहस्त्रों स्वर्ग के बन्धन,
निमिष में तोड़ आते हो ॥
विगत से दर्द दूना है ।
कि मन्दिर आज सूना है ॥
चले आओ तुम्हारी राह पर पलकें बिछाती है ।
युगों से यह तपस्या प्राण का दीपक जलाती है ॥

पता—दामोदर प्रसाद शर्मा, नयाबाजार लश्कर (म. प्र.)

गीत

श्री मनोहर 'अभय'

★

बजी श्याम की बावरी बाँसुरी
मगर मैं खड़ी की खड़ी रह गई !

नयन खोले रही आश की काकली ।
प्रीति की नींद में नींद बढ़ती गई ॥
आह की रागिनी थी कसक से भरी ।
प्राण की वेदना प्राण चढ़ती गई ॥

साँस उलझी रही रूपके जाल में ।
आह के ज्वाल में हिम पिघलती गई ॥
बहुत ढूंढा मगर मैं कहाँ पासकी ।
चाँदनी रात मेरी ढुलकती गई ॥

साँवरे तो छिपे के छिपे ही रहे ।
बावरी मैं न जाने कहाँ तक फिरी ॥
पाँव पीड़ा चढ़ी शूल मेरे लगे ।
ठोकरों पर निकल साँस मेरी गिरी ॥

अचल था समर्पण प्रणय-द्वार पर ।
बीतती थी मधुर रात आशा-भरी ॥
नयन मूँदे मगर मैं पड़ी रह गई ।
मगर मैं खड़ी की खड़ी रह गई !

पता—६/४७३ हिन्दी प्रचार सभा सदर, मथुरा

महाकवि 'अकबर' इलाहाबादी और उनकी शायरी

विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र"

इस संसार में मैं तीन को महान् और सर्वोत्कृष्ट मानता हूँ। एक परमात्मा, दूसरे संत-महात्मा और तीसरे कवि यानी शायर। वेद में ईश्वर को कवि नाम से सम्बोधित किया गया है यथा—'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू' अतएव काव्य साहित्य का ही नहीं, इस संसार का आत्मा माना गया है।

मानवीय आनन्दानुभूति के साथ ही काव्य की उत्पत्ति मानी जाती है। काव्य-स्रष्टा किसी भी भाषा अथवा देश का क्यों न हो, वह सुरसरि के उद्गम गंगोत्री की भाँति वन्दनीय तथा अभिनन्दनीय है।

काव्य-मन्दाकिनी की अजस्र धारा इस भूलोक में कब से प्रवाहित है इसका लेखा-जोखा दे सकना सर्वथा असम्भव है। इस पुण्यधारा को निरन्तर प्रवहमान रखने वाले ऐसे अगणित व्यक्ति हो गये हैं जिनका साहित्य के इतिहास-पृष्ठों पर नाम तक नहीं है और न भविष्य में होने की कोई आशा ही है।

कवि-कंठ से वाणी काव्य बन कर फूट निकली थी और सदा-सदा के लिए वह वायु में विलीन होकर रह गई। चिरकालोपरान्त जब लिखने की कला का प्रादुर्भाव हुआ तब कवियों की रसमयी रचनाएँ पत्रों, भोजपत्रों, धातुपत्रों और शिलाखंडों पर अंकित की जाने लगीं, इस प्रकार कवि और काव्य के एक अधूरे इतिहास का जन्म हुआ।

इस परम्परा में कवि-वरेण्य अकबर इलाहाबादी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। आपकी सरस रचना सर्वसुगम और सीधी-सादी भाषा में, सर्वसाधारण के मन पर सीधा तथा गहरा प्रभाव डालती है। हिन्दी-जगत् में काव्य-मनीषी मैथिलीशरणजी का जो स्थान है, उर्दू में वही महाकवि अकबर इलाहाबादी का है। कविवर अकबर के पद्यों की भाषा सीमित होकर भी असीम हो गई है। उनकी रचना में फारसी, अरबी, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अँग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का गुम्फन उसे हृदयग्राही बना देता है।

महाकवि अकबर का जन्म इलाहाबाद के समीप बारा नामक गाँव में रिजवी वंश के सैयद अल्ताफ-हुसेन के घर सन् १८४६ ई० में हुआ था। आप बचपन से ही बड़े होनहार थे। अपनी २१ वर्ष की उम्र में आपने वकालत पास करके कार्य आरम्भ कर दिया था। दो वर्ष बाद आपको नायब तहसीलदार का पद प्राप्त हुआ। अपनी कार्य-कुशलता और बुद्धि-विचक्षणता के कारण दूसरे ही वर्ष आपको हायकोर्ट में 'रीडर' के पद पर नियुक्त कर दिया गया। सन् १८८१ में वे मुंसिफ के पद पर काम करने लगे और सात वर्ष बाद 'सदर-उल-सदूर' के पद पर पहुँच गये। चार साल बाद अदालत-खफ़ीफ़ा के जज नियुक्त हुए और १८९४ ई० में डिस्ट्रिक्ट सेशन जज हो गये। इस प्रकार ब्रिटिश हुकूमत की नौकरी करते हुए सन् १९०२ में पेंशन पर रिटायर हो गये। आपने १९ वर्ष तक

पेंशन प्राप्त की। वैसे तो वे नौकरी के समय में भी शायरी करते थे, किंतु सेवा-निवृत्ति के बाद उन्होंने अबाध रूप से काव्य-सर्जन किया। कविवर अकबर का जीवन सेवा-निवृत्ति के बाद कष्टमय और दुःखों से भरा बीता। पत्नी तथा तरुण पुत्र की मृत्यु ने बुढ़ापे में उन्हें जर्जर बना डाला था। मोतियाबिन्द हो जाने से उन्हें दिखने भी कम लगा था।

यद्यपि उनका पार्थिव शरीर आज इस भूमि के उदर में सोया हुआ है किन्तु उसका काव्य पृथ्वी पर उनके नाम को अमर बनाये हुए है, वह मिर्जा गालिब, उस्ताद जौक, मीर और इकबाल की भाँति आज भी चिर अमर हैं। वे बड़े ही निर्भीक स्वभाव के थे उनके अन्तिम दिनों के काव्य का मुलाहजा कीजिए, फ़रमाते हैं—

कहाँ के गौज और कहाँ के गाँधी ?
आ गई अब तो मौत की आँधी।

किस्सा यों है कि इलाहाबाद के मि० गाउज ने यह मान कर कि जनाब अकबर हमारे पेंशनर हैं, उनसे असहयोग आन्दोलन के विरुद्ध कुछ लिखाया जाय अपने एक कर्मचारी को उनके पास भेजा। हजरत बीमार थे, उन्होंने टका-सा जवाब दे दिया कि—

कहाँ के गौज कहाँ के गाँधी ?
आ गई अब तो मौत की आँधी।

कवि ने इसमें श्लेषालंकार का आश्रय लिया है। जिसमें अपनी और ब्रिटिश शासन दोनों की मौत की ओर संकेत है। वे सदा से ईश्वर के प्रति परम निष्ठावान् थे, उनके चन्द अशआर पेश हैं, जिनमें ईश्वर के प्रति उनकी आस्था छलछलाती स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। कहा है—

अगर मिला नहीं, मिलने का आसरा तो है,
हमें इसी में है तस्कीने दिल (संतोष) खुदा तो है।

खुदा है, इसी में कवि को सन्तोष है, भले ही वह मिले या न मिले, आगे फ़रमाते हैं:—

नहीं है काम ज़ुबाँ का, अब दोआ के सिवा,
नज़र किसी पै नहीं है मेरी, खुदा के सिवा।

अर्थ स्पष्ट है। और सुनिए:—

खुदा के बाब (प्रकरण) में, यह गौर क्या है,
खुदा खुदा (स्वयंभू) है, और क्या है।
खुदा से माँग, जो माँगना है ऐ अकबर,
यह वही दर (द्वार) है कि, ज़िल्लत (अपमान)
नहीं सवाल के बाद।

मज़हब की परिभाषा में महाकवि ने अपने उदार और विशाल हृदय का परिचय दिया है। उन्होंने कहा है:—

पंडत को भी सलाम और मौलवी को भी,
मज़हब न चाहिए, मुझे ईमान चाहिए।

ईमान-रहित मज़हब को वे मनुष्य के लिए श्रेयस्कर नहीं मानते थे। कहते हैं:—

रक्खो जो मुक़ाबिल, उसके सारा आलम्
दुनिया बखुदा (ईश्वर को साक्षी करके) है,
एक ज़र्रे से भी कम।

उन्हें हिंदू और मुसलमानों के मज़हब में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता था। ऐसा प्रतीत होता है मानों महाकवि के कंठ से महात्मा कबीरदास का स्वर प्रस्फुटित हो उठा है, वे कहते हैं—

"आता है वज्द (आनंद) मुझको, हर दीन की अदा पर।
मस्जिद में नाचता हूँ, नाक़ूस (शंख) की सदा (ध्वनि) पर॥"

फ़रमाया है:—

"हिंदू व मुस्लिम एक हैं दोनों,
यानी यह दोनों एशियायी हैं,
हमवतन, हमज़ुबानो, हम किस्मत,
क्यों न कहदूँ कि भाई-भाई हैं।"

लड़ें क्यों हिन्दुओं से हम ? यहीं, के अन्न से पनपे हैं,
हमारी भी दोआ यह है कि, गंगाजी की बढ़ती हो।

गोवध को वे बहुत बुरा समझते थे। वे मुसलमानों को नसीहत देते हैं कि:—

"बेहतर यही है कि फेर लें, आँखों को गाय से,
क्या फ़ायदा है, रोज़ की इस हाय-हाय से।"

समाज-सुधार के क्षेत्र में वे बड़े ही सजग थे। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर उन्होंने बड़े ही मज़ेदार व्यंग कसे हैं। सुनिए, फ़रमाते हैं:—

"तालीम जो दी जाती है, वो क्या है, फ़क़त बाज़ारी है।
जो अक्ल सिखाई जाती है, वो क्या है, फ़क़त सरकारी है॥"

हम क्या कहें अहबाब, क्या कारे नुमायाँ कर गये।
बी. ए. किया नौकर हुए, पैंशन मिली फिर मर गये॥
बेपास को तो सास की भी अब नहीं है आस,
मौक़ूफ़ शादियाँ हैं अब इम्तहान पर।

ग्रेज्यूएटों की खिल्ली उड़ाते हुए आप फ़रमाते हैं:—

बी॰ ए॰ को कमाल कामयाबी है यही।
सर्विस के लगाव से मुअज्जिज़ बनना॥

और कहते हैं:—

गुज़र उनका हुआ कब, आलमे अल्लाह अकबर में,
पले कालिज के चक्कर में, मरे साहब के दफ्तर में।

ऐसी शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध कवि के मन में विद्रोह का झंझावात उठता है, वे ज़ोरदार वाणी में कह उठते हैं:—

हम ऐसी कुल किताबें, क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के, बाप को ख़ब्ती समझते हैं॥

पूँजीवाद और पूँजी-पतियों के प्रति कवि के हृदय में एक टीस है, वे कहते हैं:—

हम फ़क़ीर अपनी फ़क़ीरी में, शबोरोज़ हैं मस्त,
तुझको शाह मुबारक रहे शाही तेरी।

एक के दस बनाने की फिक्र में सख्ती से वसूली करने वालों पर कैसी फब्ती कसी है—

सेठजी को फिक्र थी, एक-एक के दस-दस कीजिए।
मौत आ पहुँची कि, हजरत जान वापस कीजिए॥

समाज-सुधार-विषयक उनके क्रान्तिकारी विचार थे। परन्तु वे मग़रिबी ढंग के सुधारों के एकदम विरोधी थे। पर्दे के सम्बन्ध में उनके कुछ चुभते हुए व्यंग्य सुनिए, फर्माते हैं:—

फर्ज औरत पर नहीं चार दीवारी की क़ैद,
हो अगर जब्ते (काबू) नजर और खुददारी (स्वाभिमान) की कैद।
नज़र में तीरगी है, और रगों में नातवानी है,
ज़रूरत क्या है पर्दे की, जहाँ बम्बे का पानी है।

और सुनिए:—

पूछा जब उनसे, अपना पर्दा वो क्या हुआ?
कहने लगीं कि अक़्ल पै, मर्दों के पड़ गया।
पर्दा उठ जाने से अख़लाकी तरक़्क़ी क़ौम की,
जो समझते हैं यक़ीनन अक़्ल से फ़ारिग़ हैं।

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में, देखिए उन्होंने कैसी सरल भाषा में अपने विचारों को व्यक्त किया है।

तालीम लड़कियों की जरूरी तो है मगर,
खातूनेख़ाना (गृहदेवी) हों, वो सभा की परी न हों।

वर्तमान लीडरी पर आपके कुछ व्यंग्यात्मक पद्य बड़े ही मज़ेदार हैं। फ़रमाते हैं:—

लीडरों की धूम है, फ़ॉलोअर कोई नहीं,
सब तो जनरल हैं यहाँ, आख़िर सिपाही कौन है?

और सुनिए:—

कौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ,
लीडरों को ग़म है बहुत, मगर आराम के साथ।

चुनाव-चक्कर को देखकर कवि कब चुप बैठने वाले थे? वे कह उठे:—

मेम्बरी से आप पर तो वार्निश हो जायगी,
कौम की हालत में कुछ तो, इससे जिला (चमक) हो जायगी।

एक दिल्लगी है वक्त गुजरने के वास्ते,
देखो तो मेम्बरों के जरा हेर-फेर को।
ऐसी कमेटियों से है, फल का उम्मीदवार,
अकबर दरख्त समझा है पत्तों के ढेर को।

वोटों के सम्बन्ध में भी जरा उनके विचारों को सुन लीजिए, कहते हैं:—

कौम के दिल में खोट है पैदा
अच्छे अच्छे हैं व्होट पै शैदा
भाई भाई में हाथापाई
सेल्फ गव्हर्नमेंट आगे आई
पाँव का होश न, अब फिक्र न सिर की
वोट की धुन में, बनगये फिरकी

उनके युग के महापुरुष महात्मा गाँधी को वे कैसे भूल सकते थे। उनके सम्बन्ध में जो उन्होंने रचनाएँ कीं, उनमें से दो पद्य सुनिए:—

गाँधी में सब भलाई, लेकिन वो महज़।
साहब में सब बुराई, लेकिन वो खूब चौकस।
न साहब को मारो, न साहब से माँगो,
मचाते रहो गुल, पिटो और माँगो,
खूब यह बात कही, उनसे, पुकारो पुकारो उसको,
बद दुआ साँप को क्या देते हो मारो उसको।

हमारी नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन प्रायः दिसम्बर के अन्त में ही हुआ करते हैं। कवि इसे पसन्द नहीं करता था। उसके अन्तर से प्रस्फुटित काव्य देखिए कैसा मीठा चुभता व्यंग है।

हो दिसम्बर में मुबारक, यह उछल-कूद आपको,
खून मुझ में भी है लेकिन, मुझ को फागुन चाहिए।

ब्रिटिश शासन में भारत की परतन्त्रता का आपने अपने इस शैर में देखिए किस खूबी से सजीव चित्रण किया है। कहते हैः—

इतनी आज़ादी भी ग़नीमत है,साँस लेता हूँ,बात करता हूँ।
शेख साहब खुदा से डरते हैं, मैं तो अँग्रेज से ही डरता हूँ।

भारत की ग़रीबी का दिग्दर्शन आपके इन पद्यों में देखिए, किस खूबी से कराया गया हैः—

मज़हब ने पुकारा अय अकबर,
अल्लाह नहीं तो कुछ भी नहीं,
यारों ने कहा यह क़ौल ग़लत,
तनखाह नहीं तो कुछ भी नहीं।

नहीं कुछ इसकी पुसिश, उल्फ़ते अल्लाह कितनी है ?
यही सब पूछते हैं "आपकी तनखवाह कितनी है ?"

अब आप महाकवि के सरल किन्तु सरस कुछ फ़ुटकर काव्य का रसास्वादन कीजिए, कहते हैं:—

क़सीदे से न चलता है, न दोहे से चलता है
समझ लो खूब कि कारे सल्तनत, लोहे से चलता है।

यहाँ लोह दो अर्थों में प्रयुक्त है। एक हथियार और दूसरा है लोह लेखनी, क़लम। और सुनिए,

शौक़ पैदा कर दिया बंगले का और पतलून का,
वो मसल है कि, मुफलिसी में आटा गीला कर दिया
हैं अमल अच्छे मगर, दर्वाज़ए जन्नत हैं बन्द,
कर चुके हैं पास लेकिन, नौकरी मिलती नहीं।

कालिज में धूम मच रही है, पास पास की।
ओहदों से सदा आ रही है, दूर दूर की।

पेंशन-परस्त भारतीयों की देखिए, कैसी खिल्ली उड़ाई हैः—

वाह क्या है धज मेरे भोले की
शक्ल कोले की, हैट सोले की।

टलुओं के लिए आप सिखावन देते हैं किः—

ग़फ़लत को छोड़ दीजिए, कुछ काम कीजिए।
इल्मी हुनर से नाम का, अंजाम कीजिए,
गर कुछ नहीं तो हज़रते अकबर का क़ौल है
मुर्दों के साथ कब्र में आराम कीजिए।

हाँ में हाँ मिलाने वाले जी-हुज़ूरों को आप फटकारते हुए फ़रमाते हैः—

मैंने माना कि तुम्हारी, नहीं सुनता कोई,
सुर मिलाना, क्या तुम्हें फ़र्ज़ है शैतान के साथ।
औरों की कही हुई जो दोहराते हैं,
वो ग्रामोफोन की तरह गाते हैं।

संसार की प्रवृत्ति किधर है, आपके इस पद्य से स्पष्ट हो जाता है, कहते हैं:—

बूट डासन ने बनाया, मैंने एक मज़मूँ लिखा,
मुल्क में मज़मूँ न फैला, और जूता चल गया।

तंग दिल वालों के लिए लिखा हैः—

रकबा तुम्हारे गाँव का मीलों हुआ तो क्या ?
रकबा तुम्हारे दिल का तो, दो इंच भी नहीं।

कवि ने जिस रस का स्पर्श किया, उसी में उसकी धारा प्रवाहित कर दिखाई। शृँगार रस से उन्होंने अपने को बहुत दूर रखा है, फिर भी आपने जो कुछ लिखा है वह कमाल है। देखिए हसीनों का कैसा सुन्दर चित्रण हैः—

हया से सिर झुका लेना, अदा से मुस्करा देना,
हसीनों को भी कितना सहल है, बिजली गिरा देना

और सुनिएः—

जब कहता हूँ, मरता हूँ मेरी जान मैं तुम पर,
फ़रमाते हैं मरते हो तो मर क्यों नहीं जाते ?

(शेष पृष्ठ १६४ पर)

(शेष पृष्ठ १६८ से आगे)

यह कबीर की एक सूक्ति है जिसमें नैतिक जगत् का सत्य होते हुए व्यावहारिक जगत् का तथ्य नहीं है। अर्थात् यथार्थ जगत् में इस सूक्ति के अनुसार आचरण बहुत कम देखने में आता है। इसी प्रकार कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिए: —

१ पराई पीर परदेस बराबर अर्थात् परदेश के आदमी की यदि कोई चिन्ता करे तो पराये दुख की करे, दूसरे के कष्टों की सभी उपेक्षा करते हैं।

२ दूसरे की थाली में घी घणो दीखे अर्थात् दूसरे की थाली में घी अधिक दिखलाई पड़ता है।

३ से आप आप की रोटयां के नीचे आंच लगा अर्थात् सब अपनी-अपनी रोटियों के नीचे आंच लगाते हैं। +

उक्त लोकोक्तियों में व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य नहीं मिलता।

ऊपर के तुलनात्मक उदाहरणों से स्पष्ट है कि लोकोक्ति नैतिक ज्ञान नहीं है, वह है सांसारिक ज्ञान, लोकोक्ति परोक्ष चिन्तन नहीं है, वह है प्रत्यक्ष अनुभूति। लोकोक्ति न तो काव्य है, न तत्व-चिन्तन है, न नीति-प्रचार है, यह तो सांसारिक ज्ञान की प्रत्यक्ष अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

लोकोक्तियाँ ग्राम्य होती हैं, यह कहना भी ठीक नहीं। शहरों की अपेक्षा ग्रामों में ही लोकोक्तियों का विशेष निर्माण तथा प्रचार देखा जाता है, किन्तु इसी कारण लोकोक्तियों को ग्राम्य करार देना उचित नहीं। अवश्य ही लोकोक्तियों की भाषा जोरदार होती है क्योंकि जीवन की घनिष्टता से उनका सम्बन्ध रहता है, अनेक कहावतों में सत्य को खुल्लमखुल्ला प्रकट कर दिया जाता है। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि लोकोक्तियों की सफलता उनके वर्ण्य विषय पर उतनी निर्भर नहीं करती, जितनी उनकी सफलता पर, उनकी अभिव्यक्ति की भंगिमा पर, सहज बुद्धि के चमत्कार पर, तथा संक्षिप्त एवं साभिप्राय प्रयोगों की सार्थकता पर निर्भर करती है।

किन्तु कभी-कभी प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति में अन्तर मालूम करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। संस्कृत के महाकाव्यों में अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त अनेक प्राज्ञोक्तियाँ उपलब्ध हैं। हो सकता है कि उनमें से कुछ उक्तियाँ प्रचलित जनश्रुतियों के संस्कृत रूपान्तर हों और शेष कवियों द्वारा स्वयं निर्मित हों। जो उक्तियाँ कवियों-द्वारा निर्मित हैं, वे लोक की उक्तियाँ नहीं हैं, इसलिए हम उनको लोकोक्तियाँ नहीं कह सकते, उन्हें प्राज्ञोक्तियों के नाम से अभिहित करना ही समीचीन होगा। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में वस्तुतः कहावत (प्रॉवर्ब) केवल लोकोक्ति नहीं है, तुलसीदासजी की अनेक पंक्तियाँ कहावत बन गई हैं। उन्हें लोकोक्तियाँ नहीं कहा जा सकता; वे प्राज्ञोक्तियाँ हैं जो लोक में साहित्य के माध्यम से प्रचलित हुई हैं। डा० द्विवेदी ने कहावत शब्द में लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति दोनों का अन्तर्भाव कर इस शब्द को और भी व्यापकता प्रदान कर दी है।

स्टीवेंसन ने लोकोक्ति और Maxim (व्यवहार-सूत्र) के अन्तर को स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि व्यवहार-सूत्र किसी सामान्य सत्य अथवा आचार व्यवहार की अभिव्यक्ति है। या मार्विन के शब्दों में यह कहावत तो है, किन्तु है झिनगे की अवस्था में। उगने पर ही झिनगा उड़ सकता है, इसी प्रकार व्यवहार-सूत्र लोकोक्ति का रूप तभी धारण करता है

+ मिलाइये—

Russian. The burden is light on the shoulder of another.

French. One has always enough strength to bear the misfortune of one's friends.

Latin. Men cut through from other men's leather

Italian. Every one drains water to his own mill.

जब इसको लोक-हृदय ने स्वीकार कर लिया हो और वह सर्वसाधारण में प्रचलित हो गया हो। +

व्यवहार-सूत्र इकट्ठे किये हुए सिक्के हैं जब कि लोकोक्तियों को प्रचलित सिक्कों के नाम से अभिहित किया जा सकता है। व्यवहार-सूत्र यदि प्रचलित न हों तो केवल पुस्तकों की शोभा बढ़ाते हैं, जब कि लोकोक्तियाँ जनता की जिह्वा पर नृत्य करती रहती हैं।

ऊपर जो बात व्यवहार-सूत्र और लोकोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में कही गई है, वही लोकोक्ति तथा प्रज्ञा-सूत्र अथवा मर्मोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। किसी भी उक्ति को, चाहे वह प्राज्ञोक्ति (Aphorirm) हो, आचारोक्ति (Maxim) हो अथवा मर्मोक्ति (Eprigram) हो, लोकोक्ति की संज्ञा तभी मिल सकेगी जब लोक-मानस उसे स्वीकार कर ले, अन्यथा नहीं।

\+ Maxim is the sententious expression of some general truth, rule of conduct, that it is a proverb in the caterpillar stage, as Marvin puts it and that it becomes a proverb when it gets its wings by winning popular acceptance and flutters out highways and by-ways of the world.

(Introductory Note to Steverson's Book of Proverbs, Maxims and Familiar Phrasies.)

(पृष्ठ १८७ का शेष)

पर गिरे पर्वत परस्पर (टकराकर) फूट गये हैं; जिसमें उठी लहराती धूमलताओं ने, जो आकाश रूपी वृक्ष पर चढ़ी हैं, अपने अभ्यस्थित प्रसार से दिशा-मंडल का उल्लंघन किया है;

पक्खपरिरक्खणुट्ठिअसरणिवहाहअदिसापइण्णमहिहरम्।
फुडिअजलमज्झणिग्गअफुडरअणुज्जोअसंघिउब्भड
विवरम् ॥८६॥

(अपने) पंखों को बचाने के लिए उड़े (और तदनंतर) बाण-समूहों से आहत जिसके पर्वत दिशाओं में बिखरे हैं; जिसके विस्तृत फटे हुए जल के बीच से निकल पड़ी रत्नों की प्रभा से संकुलित हैं;

हुअवहपडित्तगोविअणिअअणुम्हाविसएठुलमहग्गाहम्।
परिवड्ढिएक्कमेक्काणुराअसरपहरणिव्वलिअसंखउलम्
॥८७॥

(इअ सिरि पवरसेणविरइए कालिदासकए दसमुहवहे महाकव्वे पंचमो आसासओ परिसमत्तो।)

जिसके विशाल ग्राह, जिनने अपने नेत्रों को अग्नि से जलने से (बन्द कर) बचाया है, उष्णता से व्याकुल भटकते हैं और जिसके शब्दों का, जिनका एक दूसरे के प्रति अनुराग अत्यन्त बढ़ा है उनका समूह बाणों के प्रहार से छिन्न-भिन्न हो गया है।

(इस प्रकार श्री प्रवरसेन विरचित कालिदास कृत दशमुख वध महाकाव्य में पाँचवाँ आश्वास परिसमाप्त हुआ।)

[पृष्ठ १६२ का शेष]

ग्राम वासियों के मनोभाव का चित्रण देखिए, आपने किस खूबी के साथ किया है।

धुन देश की थी जिसमें, गाता था एक देहाती।
बिस्कुट से है मुलायम, पूरी हो या चपाती।

जरा शहरी लोगों का चित्र भी आपके काव्य में देखिए:—

आदम छुटे बहिश्त से गेहूं के वास्ते,
मस्ज़िद से हम निकल गए, बिस्कुट की चाट में।

कैसा सुन्दर चित्रण है। देहाती अपनी चपाती को बिस्कुट से श्रेष्ठ मानता है तो शहरी बिस्कुट को इबादत से अधिक महत्व देता है। अपनी रचनाओं पर स्वयं कवि को फख्र है। जो काव्य बनाने वाले को पसन्द नहीं वह दूसरों पर अपना क्या प्रभाव डाल सकता है? वे कहते हैं—

क्यों कर न शेरे अकबर आए न पसंद सबको।
ये रंग ही नया है कूचा ही दूसरा है॥

महाकवि अकबर इलाहबादी के सम्बन्ध में एक अन्ट कवि कहते हैं—

तेरे बाद अकबर, कहाँ ऐसी नज्में?
वो दिल ही न होंगे कि यह आह निकले।

कुछ ऐसे भी होते हैं ?

श्री सत्यनारायण श्रीवास्तव

★

विदेशों में अधिकतर यह पाया जाता है कि महान् साहित्यिकों के साहित्य पर उतना ही लिखा-पढ़ा जाता है जितना कि उनके जीवन तथा उसके रहस्य के सम्बन्धों में ! भारतवर्ष में भी कतिपय साहित्यिकों का ध्यान इस ओर गया है और उन्होंने इस ओर गंभीर साहित्य का सृजन भी किया है, परन्तु उतना नहीं लिखा-पढ़ा गया जितना कि लिखा जाना चाहिए था। मध्य-प्रदेश प्रान्त ने साहित्य-क्षेत्र में अत्यंत प्रगति की है और भविष्य में हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में इसका स्थान प्रमुख रहेगा, ऐसी आशा की जाती है। प्रान्त में कई साहित्यिक-विभूतियाँ ऐसी हैं जिनके जीवन और दैनिक दिनचर्या के सम्बन्ध में जनता और साहित्य-प्रेमियों को अधिक जानकारी नहीं है। जो कुछ मालूम कर पाया हूँ उसका संक्षिप्त अंश ही दे पा रहा हूँ।

+ + +

हिन्दी साहित्य के आलोचक व साहित्यिक मासिक पत्रिका "सरस्वती" के भूतपूर्व सम्पादक श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी मध्यप्रदेश के खैरागढ़ नगर में रहते हैं। एक बार आप पर इतना अधिक आर्थिक संकट आया कि उसने प्रान्त के समस्त साहित्यिकों के सम्मुख एक समस्या खड़ी कर दी। जबलपुर के साहित्यिकों ने जब आपके लिए कोष एकत्रित किया तब कहीं आप अपना इलाज करा पाये। अभी-अभी खैरागढ़ में आपको जो राज-घराने की ओर से एक मकान रहने के लिए मिला था वह छीन लिया गया जिससे आपके सम्मुख एक संकट उपस्थित हो गया है। श्री बख्शी जी इतने सीधे-सादे और भोले-भाले हैं कि भारत के कई प्रकाशकों ने आपको खूब ठगा है और अभी ठगते जा रहे हैं। बख्शीजी को बीड़ी पीने का तथा सिनेमा देखने का अत्यंत शौक है।

+ + +

साहित्य-वाचस्पति पंडित माखनलाल चतुर्वेदी इस समय जहाँ एक ओर वृद्धावस्था के कारण परेशान हैं वहाँ वे रोगों के भी शिकार हैं; परन्तु साहित्य-सृजन निरन्तर करते जाते हैं। आपके पास स्वर्गीय उत्तमसिंह तोमर द्वारा बनाया गया "भेड़ाघाट" के प्राकृतिक दृश्यों का एक तैल चित्र है जो कि स्वयं में अपने आप बोलता है। अगर कोई उसे देख लें तो एकटक देखता ही रहे। कुछ दिनों पूर्व जब मेरी आपसे भेंट हुई थी तब आपने बताया कि मेरे मरने के बाद इस चित्र को काशी नागरी-प्रचारणी-सभा में लगाया जाय ऐसी हार्दिक इच्छा है। इस चित्र को माँगने वाले कई हैं परन्तु चतुर्वेदीजी किसी को देते नहीं है। वे साहित्यिक तो हैं ही परन्तु आपका राजनीति में भी उतना ही दखल, है और बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि उनकी ३० बार खानातलाशियाँ भूमिगत क्रांतिकारियों को शरण देने के कारण हुई। आज भी आप कांग्रेस के सदस्य हैं।

+ + +

हिन्दी में "उमर खय्याम" का सफल अनुवाद अगर किसी ने किया है तो वे जबलपुर के स्वर्गीय पंडित केशवप्रसाद पाठक हैं। उमर खय्याम का आप पर ऐसा गंभीर प्रभाव पड़ा कि दिन-रात सुरापान करते रहते थे। मृत्यु भयावनी कैसे आई और क्या उसका कारण अधिक सुरापान ही था, यह तो डाक्टरों ने नहीं बताया, परन्तु सभी परिचित जानते हैं कि पाठक जी का सुरापान सीमा लाँघ चुका था। आर्थिक उलझनें

अधिक थीं और वे इतनी बढ़ीं कि छिन्दवाड़ा सेनोटेरियम से जब आपकी लाश जबलपुर लाई गई तो निगमाध्यक्ष पंडित भवानीप्रसाद तिवारी और पाठक जी के परम मित्र श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव गुप्तचुप कोष एकत्रित कर रहे थे। आज एक बड़ा परिवार आप अपने पीछे छोड़ गये हैं जिसके जीवन-निर्वाह की जटिल समस्या है। निजी मकान भी हाथ से जाता रहा और उनके बच्चों की क्या स्थिति है यह कोई जबलपुर के भातयालपुरा वार्ड में आकर देखे।

+ + +

जब कभी मध्यप्रदेश में हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखा जायगा तब यह वैसे हो सकता है कि श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव को कोई भूल जाए। सिद्धान्तों पर अटल और प्रचार से दूर श्रीवास्तवजी वृद्धावस्था में भी खोज पर खोज किये जा रहे हैं। हास्य में आपने जो कुछ लिखा वह "जड़वाते ऊँट" छोटी सी पुस्तिका में संग्रहीत है जिसे पढ़कर लगता है कि प्रान्त श्रीवास्तवजी को पाकर गौरवान्वित है और सुनकर तो बड़ी देर तक कहकहे लगते हैं। अगर कोई अन्य प्रान्त का साहित्यिक जबलपुर आये और ऐतिहासिक मदनमहल तथा प्राकृतिक भेड़ाघाट देखकर लौट पड़े तो गलती करेगा। वह अगर साहित्यिक श्रीवास्तवजी से बिना मिले चला जायगा तो उसकी यात्रा अपूर्ण है। श्रीवास्तवजी के ही प्रयासों का फल है कि स्वर्गीय इन्द्रबहादुर खरे और स्व० पंडित केशवप्रसाद पाठक के काव्य-संग्रह प्रकाशित होकर सामने आये। महाकवि "गालिब" पर आपकी खोज हिन्दी-साहित्य को देन हैं, परन्तु एक बुराई इस खोज ने दी है कि गालिब के समान आप भी बहरे हो गये हैं।

+ + +

"गीताञ्जली" के प्रसिद्ध अनुगायक और सुप्रसिद्ध कवि पंडित भवानीप्रसाद तिवारी से आज कौन ऐसा है जो कि श्रद्धा न करता हो, उन्हें पहिचानता न हो। आप साहित्य और राजनीतिक के दो घोड़ों पर सवार हैं। भावुक, गंभीर, मस्त, फक्कड़, और चिन्तनशील स्वभाव के कारण आप जन-जन के बीच प्रिय हैं। पाँच बार आप जबलपुर कॉरपोरेशन के "मेयर" पद को सुशोभित कर चुके हैं। आप इतने व्यस्त रहते हैं कि यह पता नहीं चल पाता कि कब कविता लिख लेते हैं। जब घोर निशीथ में सारा विश्व निन्द्रा के वशीभूत रहता है तब पंडितजी साहित्य और राजनीति का गंभीर-चिन्तन करते है। संगीत के इतने प्रेमी कि कई रातें जागते बीत जायें पर उससे तृप्त न हों। थोड़ी आदतें खराब हैं कि महीने में एकाध दिन नहा लिए, वह भी अगर किसी के विशेष आग्रह किया तब! अन्यथा पूरी गरमी बीत जाय पानी के दर्शन नहीं। प्रातःकाल हर मनुष्य की दिन-चर्या में दाँतों का माँजना नियम है पर पंडितजी के लिए नहीं है। कभी-कभी महीनों दाँत साफ नहीं करते हैं। प्रकृति के नियमों के विरुद्ध रहते हुए भी आपकी स्मरण-शक्ति इतनी अधिक है कि दाँतों तले अंगुलि दबानी पड़ती है। साहित्य और राजनीति के अतिरिक्त सामाजिक व्यवस्था पर भी आप गंभीर विचार करके उसमें परिवर्तन करने के उत्सुक रहते है और किये भी है। गीताञ्जली का अनुवाद करते-करते आप इतने गंभीर हो गये है कि कभी-कभी इस गंभीरता पर स्वयं खीज उठते हैं, पर जितनी आप में गंभीरता है उतनी ही मस्ती और दीवानगी जिसकी चर्चा सारे जहाँ में है।

+ + +

यही वह मध्य-प्रदेश है जहाँ प्रसिद्ध कवियत्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की मृत्यु मुर्गी के छोटे बच्चे को बचाने के हेतु मोटर दुर्घटना में हो गई। स्वर्गीय इन्द्रबहादुर खरे और स्व० विनयकुमार भारती के काव्य-संग्रह उनकी मृत्यु के बाद ही प्रकाशित हो पाए। श्री रामेश्वर गुरु जो कि "कुमार हृदय" के नाम से कविताएँ लिखते हैं मंच पर से कभी भी कविता पाठ करते हुए नहीं पाए गये। और कविता ऐसी जनवादी और प्रगतिशील रहती है कि पढ़कर रोमांच हो उठता है। मध्यभारत के साहित्यिक श्री नटवरलाल

(शेष २०३ पृष्ठ पर)

हिन्दी-उपन्यास
(प्राप्तियाँ और अभाव)

श्री कैलाशचन्द्र पन्त

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा हिन्दी-उपन्यासों ने गत चार दशकों में जो प्रगति की है, वह पर्याप्त सन्तोषजनक कही जा सकती है। यद्यपि अंग्रेजी, फ्रांसीसी और रूसी उपन्यासों की तुलना में हमारा उपन्यास-साहित्य अपरिपक्व ही है, पर यह नहीं भूला जा सकता कि वह अपने शैशव काल में है, उसका साहित्यिक विकास मुंशी प्रेमचन्द से ही प्रारम्भ होता है।

उपन्यास में जीवन के विस्तारपूर्ण चित्रण के लिए स्थान प्राप्त रहता है। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी में युगीन भावनाओं की अभिव्यक्ति की छटपटाहट ने लेखकों को उपन्यास की ओर अधिक आकृष्ट किया। साहित्य में उपन्यास की इस प्रतिष्ठा से आतंकित होकर यह आशंका व्यक्त की जाती रही कि कविता और नाटकों के विकास में उपन्यास व्यवधान सिद्ध होगा, परन्तु अब तक यह आशंका निर्मूल ही सिद्ध हुई है।

हिन्दी में उपन्यासों का प्रारम्भ आधुनिक काल के प्रथम उत्थान से ही हो गया था, परन्तु प्रेमचन्दजी के पूर्व तक के सभी उपन्यास, इस विधा के विकास के इतिहास की सामग्री की दृष्टि से ही अपना महत्व रखते हैं। उपन्यासों के लिए प्रशस्त पथ का निर्माण करने वाले प्रेमचन्दजी ही थे।

विश्व-साहित्य के उन प्रमुख उपन्यासों की ओर, जो बीसवीं शताब्दी से पहिले लिखे गये थे, दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि उनमें मनुष्य की आत्मान्वेषी वृत्ति का चित्रण ही इष्ट रहा और आत्मान्वेषण की यही वृत्ति पात्रों को सजीवता या सप्राणता प्रदान करती रही। यह परम्परा बीसवीं शताब्दी में लक्षित नहीं होती। इस शताब्दी के उपन्यासों में मानव पक्ष की कमी और मतवादों के प्रचार का आधिक्य ही दिखाई देता है।

मुंशी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में मानव-पक्ष को बल देने का प्रयत्न किया है, लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए गाँधीवादी आदर्शों के प्रति उनकी गहरी आस्था ने, उनके उपन्यासों को भी प्रभावित किया। कहीं-कहीं प्रेमचन्दजी के कलाकार पर उनका उपदेशक रूप हावी हो गया है। मानव-जीवन का चित्रण करते हुए जब वे राजनीतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए सजग रहते हैं, तब वे एक उपदेशक-मात्र बन कर ही रह जाते हैं। 'प्रेमाश्रम' में जहाँ उनका उपदेशक रूप मुखर हो उठा है वहाँ 'गोदान' में वे महान् कलाकार के रूप में उपस्थित हुए हैं। प्रेमचन्दजी का सर्वाधिक महत्व इस बात में है कि उन्होंने उपन्यासकारों का ध्यान देश और समाज की ओर आकर्षित किया। इसके अतिरिक्त परवर्ती लेखकों को कला के परिष्कार की सामग्री देकर उनका मार्ग दर्शन भी किया। इसीलिए प्रेमचन्द जी हिन्दी-उपन्यासों के विकास में एक मंज़िल हैं।

प्रेमचन्दजी और उनके समकालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में सामाजिक स्थिति के निरूपण की ओर अधिक ध्यान दिया। समाज की कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों पर इन लेखकों ने तीखे व्यंग्य किये और जाग्रति का शंखनाद किया। पर इन लेखकों में मानव-मन का विश्लेषण कम दिखाई देता है। इसी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर परवर्ती लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी आदि उपन्यासकारों ने पात्रों के मनोवैज्ञानिक विकास

की ओर अधिक ध्यान दिया। 'परख' और 'सुनीता' 'शेखर एक जीवनी' 'संन्यासी' उपन्यास इसी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को लिये हुए हैं। इन लेखकों पर मनोविश्लेषण के विद्वान् फ्रॉयड का बहुत अधिक प्रभाव है। फ्रॉयड के सिद्धांतों का निरूपण करने के उत्साह कीं झोंक में कथावस्तु की स्वाभाविकता का ध्यान ही इन्हें नहीं रहा।

हमारे उपन्यासों में गांधीवादी विचारों के साथ ही मार्क्सवादी मान्यताओं का भी समावेश हुआ। यशपाल, रांगेयराघव, यज्ञदत्त शर्मा और कृष्णचन्दर, आदि लेखक इन विचारों के वाहक बने। इन उपन्यासकारों की दृष्टि विशुद्ध कलाकार की नहीं रह सकी। इनके उपन्यासों में किसी राजनीतिक उद्देश्य पूर्ति का तीव्र आग्रह लक्षित होता है। यशपाल की कला के संबंध में दो मत नहीं हो सकते। उनकी पकड़ बहुत पैनी है। पर जहाँ वे परिस्थिति और वातावरण को अपने रंग में रँग कर उपस्थित करने का दुराग्रह करते हैं, वहीं उपन्यासों में अस्वाभाविकता आ जाती है और कथावस्तु बोझिल हो जाती है।

राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का विभाजन, यथार्थ और आदर्श की दो भिन्न धाराओं में हुआ। यथार्थवादी लेखकों ने देश और समाज के अंधकार-पूर्ण पक्ष पर प्रकाश डाला। इनका उद्देश्य यदि सत्य का उद्घाटन-मात्र होता तब तो निस्संदेह प्रशंसनीय कार्य होता, परन्तु पश्चिम की नई धारा से प्रभावित ये विद्वान लेखक सामाजिक स्थिति की प्रकृति और विकृति में भेद नहीं कर पाये; परिणाम-स्वरूप प्राचीनता से इन्हें घृणा रही—इनका दृष्टिकोण एकपक्षीय ही रहा।

यथार्थ के नाम पर उपन्यासों में पुरुष और नारी के सनातन सम्बन्ध-विशेष चर्चा के विषय रहे। इन सम्बन्धों के स्वरूप पर उपन्यासकारों ने अपने विचार प्रस्तुत किये। उपन्यासों की कथा-वस्तु कुछ भी हो, उसके विकास को गति देने के लिए पुरुष और नारी के सम्बन्धों की विवेचना का माध्यम ग्रहण किया गया। यही कारण है कि हमारे उपन्यासों में विषय-विवेचन की गहराई का अभाव है और अधिकांश उपन्यास जीवन-दर्शन की सतह पर तैरते दृष्टिगोचर होते हैं।

इतिहास से कथावस्तु की सामग्री प्राप्त करने के लिए उपन्यासकारों में वह उत्साह नहीं दिखाई देता जो नाटककारों में रहा। उपन्यास में भारत के गौरवशाली अतीत के वैभवपूर्ण पृष्ठों का अंकन बहुत ही प्रभावोत्पादक होता। साथ ही मध्ययुग के भारत का स्वतन्त्रता के लिए सतत संघर्ष का चित्र भी अत्यन्त सजीव होता। आचार्य चतुरसेन ने अतीत से वैभवशाली और वृन्दावन लाल वर्मा ने मध्ययुग से सामग्री का संचय किया है, पर दोनों इस दिशा में आगे नहीं बढ़े। वर्माजी से कुछ अधिक आशा थी पर एक तो वे बुन्देलखण्ड की परिधि में ऐसे बँध गये हैं कि उन्हें राजस्थान और महाराष्ट्र के संघर्षों की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला और दूसरे वचन-पूर्ति के उद्देश्य से 'अहिल्याबाई' जैसा उपन्यास लिख कर वे हिन्दी-संसार को निराश कर चुके हैं। भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिये हुए कल्पना पर आधारित एक श्रेष्ठ उपन्यास है। श्री चतुरसेन का 'सोमनाथ' उनकी पूर्वकृति 'वैशाली की नगरवधू' से अपेक्षाकृत अच्छा उपन्यास है। 'वयं रक्षामः' एक पौराणिक उपन्यास है और इस उपन्यास की कथा-वस्तु और कला का विवेचन न करते हुए यह कहना उचित होगा कि यह उपन्यासों में एक नया मोड़ है। वैद्य गुरुदत्त ने भी इतिहास पर दृष्टि डाली है, पर प्रचारात्मक भावना के आधिक्य ने उनके उपन्यासों को विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं रहने दिया है।

"बहती रेता" और 'लुढ़कते पत्थर" अच्छे उपन्यास हैं। इस प्रसंग में सत्यकाम विद्यालंकार का "आचार्य चाणक्य" यशपाल की "दिव्या" का उल्लेख कर देना उचित होगा। ये उपन्यास भी ऐतिहासिक उपन्यासों की दिशा में अच्छे प्रयत्न हैं, पर हमें यह स्वीकार करने में झिझक नहीं होनी चाहिए कि केवल "गढ़ कुंडार", "मृगनयनी", "सोमनाथ", "चित्र लेखा" और "आचार्य चाणक्य" ही हमारे

लिए गर्व की वस्तु नहीं हो सकते। ऐतिहासिक उपन्यासों की दिशा में बहुत प्रयत्न शेष है।

आत्म-कथात्मक उपन्यासों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का "बाणभट्ट की आत्म-कथा" एक अनुपम कृति है। 'अज्ञेय' का "शेखर : एक जीवनी" प्रथम भाग तो शुद्ध संस्मरण है दूसरे भाग में कथा कुछ संबद्ध है। ऐसा लगता है कि लेखक औपन्यासिकता की किंचित् मात्र भी पर्वाह नहीं करता, केवल स्वतः के अथाह ज्ञान और जीवन-दर्शन का परिचय देने के लिए सजग है। इस दिशा में हमारा उपन्यास-साहित्य बिल्कुल ही सूना है। शरद बाबू का "श्रीकान्त" और डिकेन्स का "डेविड कॉपर फील्ड" हमारे मार्ग-दर्शन के लिए अच्छी सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

अब तो हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में विस्तार हो गया है। नये-नये प्रयोग, नई टेकनीक और नई विचारधाराओं का समावेश उनमें हो रहा है। 'आत्म विज्ञान' (Telepathy) को उपन्यासों में स्थान मिल रहा है। आंचलिक उपन्यासों में भाषा को नये लोक-संस्कार मिले हैं। "बया का घोंसला और साँप", "मैला आँचल", "बूँद और समुद्र", "बालू के टीले", "समिधा", "मरीचिका" आदि उपन्यास इस दिशा में अच्छे प्रयत्न हैं। बाल-साहित्य 'दादी की कहानियों' के ढंग पर धर्मवीर 'भारती' ने "सूरज का सातवाँ घोड़ा" नामक एक अच्छा प्रयोग सामने रखा है।

इन प्राप्तियों और अभावों के साथ ही सर्वाधिक खटकने वाली बात उपन्यासों में स्वस्थ हास्य का अभाव है। वैज्ञानिक उपन्यास भी नगण्य हैं। गुरुदत्त का "सहस्त्रबाहु" एक अच्छा उपन्यास होता, यदि लेखक उसे सेक्स-बहुल होने से बचाता। प्रकृति को प्रतीक रूप में उपन्यसों में ग्रहण नहीं किया गया। सर्वयुगीन समस्याओं का चिन्तन भी हमारे उपन्यासकारों को इष्ट नहीं रहा। उन्यासों के माध्यम से अमर होने वाले चरित्र भी उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।

हमारे उपन्यासकारों ने पुरुष और नारी के सम्बन्धों को एक बँधी हुई दृष्टि से ही देखा है। इन सम्बन्धों को एक नहीं अनेक रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रेम के स्वरूप का अंकन करने में भी उपन्यासकारों ने संकुचित दृष्टिकोण से ही काम लिया है; उसके साधना-पक्ष की उपेक्षा ही की गई है। सेक्स-भावना का उदात्तीकरण भी दृष्टिगत नहीं होता। वह मनुष्य को सदैव पतन के गर्त में ही नहीं गिराती, वरन् अनेक बार उसे ऊँचा उठाने में भी सहायक होती है। यहाँ पर "गुनाहों का देवता" नामक उपन्यास का उल्लेख कर देना उचित होगा। धर्मवीर भारती की यह अमर कृति उपन्यासों की अग्रिम पंक्ति में निस्संकोच ली जा सकती है। इसमें उपन्यासकार ने प्रेम के विशाल स्वरूप के दर्शन सफलतापूर्वक कराये हैं। लेकिन उपन्यास के नायक-नायिका का उन्नयन करने में वह पूर्णतः सफल नहीं हो सका है। 'सुधा' की मृत्यु और 'चन्दर' का पतन, दोनों की पृष्ठभूमि में सेक्स भावना ही कार्य कर रही। उपन्यासकार इस भावना का उदात्तीकरण कर, दोनों ही पात्रों का भिन्न रूप से उन्नयन कर सकता था। सेक्स भावना के उदात्त रूप के दर्शन हम उपन्यास की एक अन्य पात्र 'गेसू' में कर सकते हैं। पर इसे उपन्यास की आंशिक सफलता ही कहा जा सकता है, क्योंकि पूरे उपन्यास में 'सुधा' और 'चन्दर' छाये हुए हैं।

यह समय है जब कि हमें मानवतावादी भावनाओं के प्रसार के साथ ही उपन्यासों में मानव-पक्ष को अधिक बल देना है, व्यष्टि से उठकर समष्टि तक पहुँचना है। मनुष्य की विभिन्न वृत्तियों के विकास में 'सेक्स' के योगदान को समझकर उसे उसके उदात्त रूप में ग्रहण करना है। जीवन अबाध गति से भिन्न-भिन्न धाराओं में प्रवाहित हो रहा है। किन्हीं सँकरी गलियों में बँधा हुआ नहीं है। जीवन का दर्शन उसके विस्तृत रूप में ही करना चाहिए। जीवन में न तो सब कुछ बुरा है—और न सब कुछ अच्छा। जो कुछ है वही एक गुत्थी है-जीवन का रहस्य है-जिसे सुलझाना उपन्यासकारों का कर्त्तव्य हो जाता है, क्योंकि उपन्यास जीवन का चित्र है।

——

खेल के मैदान से (जनवरी १९५८)

श्री देवीसिंह

क्रिकेट

२३ जनवरी से जोन्सबर्ग में आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रिका का प्रथम क्रिकेट टेस्ट मैच आरम्भ हुआ टॉस जीतकर दक्षिण अफ्रिका ने खेलना आरम्भ किया और दूसरे दिन के अन्त तक ४७० रन ९ विकेट्स पर बनाये, जैक मेक्लू ने १०८ रन बनाये और जॉन वैट ने ११५ रन बनाकर ४७० रन का पहाड़ खड़ा कर दिया। आस्ट्रेलिया के तेज गोलंदाज़ मैकीफ़ ने प्रथम प्रवेश में १२५ रन पर ५ विकेट्स लेकर आश्चर्य-जनक कार्य किया। आस्ट्रेलिया ने प्रथम दाव में ३६८ रन बनाकर आशा से अच्छा उत्तर दिया, बैनोद ने १२६ रन बनाये। दक्षिण अफ्रिका दूसरे दाव में केवल २०१ रन ही बना सकी। आस्ट्रेलिया को जीत के लिए ३०४ रन बनाने थे और समय था २४० मिनट का; किन्तु आस्ट्रेलिया केवल १६३ रन ३ विकेट्स पर बना सकी। इस प्रकार इस प्रथम टेस्ट में कोई परिणाम नहीं निकल सका। आस्ट्रेलिया ने हारी हुई बाज़ी को जीत में बदलने के जो प्रयत्न किये, वे खेल की कला की दृष्टि से श्रेष्ठ थे।

× × ×

मध्य-झोन का राष्ट्रीय चैम्पियनशिप का मेच मध्य-प्रदेश और विदर्भ के बीच हुआ, विदर्भ ने पहले दाव में २४० रन बनाये। मध्यप्रदेश ने २४४ रन ६ विकेट्स पर बनाकर, ५ पाइन्ट प्राप्त किये। विदर्भ ने दूसरे दाव में १६१ रन ८ विकेट पर बनाये। मध्य-प्रदेश ने दूसरे दाव में ११६ रन २ विकेट्स पर बनाये। प्रकाश नायडू डाक्टर निवसरकर तथा श्री बक्षी मध्य-प्रदेश के लिए अच्छा खेले और विदर्भ की ओर से केशरी ने अच्छी बल्लेबाज़ी का प्रदर्शन किया।

मध्य झोन का दूसरा मैच उत्तर-प्रदेश तथा राजस्थान के बीच उदयपुर में खेला गया, राजस्थान ने पहले दाव में ४४८ रन बनाये; उत्तर में उत्तर-प्रदेश ने २७४ रन प्रथम दाव में तथा १४२ रन ५ विकेट्स पर बनाकर मैच ड्रॉ किया। राजस्थान ने पहले दाव की जीत पर ५ पाइन्ट तथा तेज खेलने के कारण १ बोनस पाइन्ट अर्जित किया।

× × ×

तारीख ३१ से केप-टाऊन में आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रिका का दूसरा क्रिकेट टेस्ट-मैच आरम्भ हुआ। टॉस जीतकर आस्ट्रेलिया ने प्रथम दाव में ४४९ रन बनाये इसमें मेक डोल्ड के ९९ रन तथा बुर्की के १८९ रन प्रमुख थे। दक्षिण अफ्रिका के टॉप-फिल्ड ने १२० रन में ५ खिलाड़ियों को आऊट किया। दक्षिण-अफ्रिका ने पहले दाव में २०९ रन बनाकर "फालो ऑन" प्राप्त किया, दूसरे दाव में केवल ९९ रन ही बना सके। इस प्रकार आस्ट्रेलिया दूसरा टेस्ट मैच जीतकर इस प्रयास में "वन-अप" हो गया।

× × ×

मध्य-झोन का एक और मैच राजस्थान और मध्यप्रदेश का हुआ। राजस्थान पहले दाव में २६१ रन बनाकर आऊट हो गया। मध्य-प्रदेश पहले दाव में १७७ रन ही बना पाया। राजस्थान ने दूसरे दाव में २१४ रन ६ विकेट्स पर बनाकर दाव समाप्ति की घोषणा की। मध्य-प्रदेश ने दूसरे दाव में १५० रन ५ विकेट्स बनाये। बक्षी ६० रन बनाकर अच्छे खेले। इस प्रकार राजस्थान को ६ पाइन्ट मिले।

पश्चिमी-झोन की स्कूलस् टीम ने दक्षिणी झोन की स्कूलस् टीम को ११ जनवरी को हैदराबाद में ४ विकेटस् से हरा कर फाइनल जीत लिया और गत

वर्ष की विजय को स्थायी रखने में सफल हो गयी। मैच की रन संख्या इस प्रकार है। दक्षिण झोन २७३ और १३० रन। पश्चमी झोन २६३ और ११७ रन ६ विकेट्स पर।

तारीख ६ को झोन का अन्तिम मैच उदयपुर में राजस्थान तथा विदर्भ के बीच आरम्भ हुआ। राजस्थान ने पहले खेल कर ६१५ रन का पहाड़ खड़ा कर दिया। विनू मकड़ २२० रन बनाकर व्यक्तिगत स्कोर में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुए। विदर्भ ने पहले दाव में २४३ और दूसरे में २५७ रन ४ विकेटस् पर बनाये इस प्रकार राजस्थान को ६ पाइन्ट मिले। राजस्थान मध्य-झोन का १८ पाइन्ट बनाकर विजेता रहा।

× × ×

तारीख १७ को ब्रिज टाऊन में वेस्ट-इण्डिज तथा पाकिस्तान के बीच प्रथम क्रिकेट टेस्ट-मैच आरम्भ हुआ। वेस्ट-इण्डिज ने प्रथम दाव में ५७६ रन ६ विकेट्स पर बनाये और खेल समाप्ति की घोषणा की। हन्टर ने टेस्ब-मैच के प्रथम प्रवेश में १४२ रन बनाये। विक्स् ने १६७ रन बनाये। पाकिस्तान प्रथम दाव में १०६ रन ही बना सका और दूसरे दाव में उसने ६५७ रन ८ विकेट पर बनाकर संसार को आश्चर्य में डाल दिया। पाकिस्तान के २३ वर्षीय हनीफ मोहम्मद ने ३३७ रन बनाकर विश्व क्रिकेट टेस्ट मैच में दूसरा स्थान प्राप्त किया। आपका १६ घण्टे १३ मिनट खेलते रहना भी विश्व-रिकार्ड है। मैच 'ड्रॉ' रहा।

× × ×

तारीख २५ जनवरी को इन्दौर में मुश्ताकअली के सम्मान में पुरानी होल्कर टीम और क्रिकेट-बोर्ड-प्रेसीडेन्ट टीम का मैच आरम्भ हुआ। होल्कर टीम ने प्रथम दाव में ३८७ रन बनाये। डा. निवसरकर के ८७, हजारे के ६०, हनुमंतसिंह के ५८ तथा जगदाले के ७०, मुख्य स्कोर रहे। जगदाले के ७० रन में १ "छक्का" भी था। प्रेसीडेन्ट टीम के प्रथम दाव में ३७० रन बने। मन्कड तथा मंत्री अच्छा खेले। होल्कर ने दूसरे दाव में २७४ रन बनाये। डाक्टर निवसरकर ने अच्छी बल्लेबाज़ी का प्रदर्शन किया। प्रेसीडेन्ट टीम ने ३१४ रन सात विकेट पर बना कर जीत प्राप्त की। उमरीगर, मंत्री तथा सलीम दूर्रानी बहुत ही अच्छा खेले, उमरीगर के १०० रन खेल की उच्चतम कला का प्रदर्शन था।

टेबल-टेनिस

तारीख २४ से कोलम्बो में २० वीं राष्ट्रीय टेबल-टेनिस प्रतियोगिता आरम्भ हुई। बम्बई ने महाराष्ट्र को ३-१ मैच से हराकर जैलक्ष्मी कप स्त्रियों के विभाग में जीत लिया; बालकों के विभाग में देहली की टीम ने बम्बई की टीम को ३-२ मैच से हराकर रामानुज-कप जीत कर गत वर्ष की विजय को स्थायी रखा। पुरुषों के विभाग में बम्बई ने बंगाल को ५-२ से हराया। इस जीत में बम्बई ने दोनों मैच जे. एम. बनर्जी से हारे। इस २२ वर्षीय युवक ने एशिया के चैम्पियन सुधीर ठकरसी को हराया। तारीख ३१ को पुरुषों के सिंगल्स में गौतम दीवान ने बी. एस. खम्बाता को फाइनल में हरा कर राष्ट्रीय-चैम्पियन शिप जीत कर गत वर्ष की विजय को स्थायी रखा। परिणाम इस प्रकार है:— २१-१५, १६-२१, २१-१२ तथा ११-१७।

टेनिस

मैलबोर्न में तारीख २५ से विश्व-विख्यात डेविस कप का फाइनल मैच अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के बीच खेला गया। आस्ट्रेलिया गत वर्ष का विजेता था। प्रथम दिन के दो मेच के परिणाम आस्ट्रेलिया की विजय के सूचक हैं। प्रथम मेच में अस्लेकूपर ने विक-ससेक्स् को ३-६, ७-५, ६-१, १-६, ६-३ से हरा दिया। दूसरे मेच में एन्डरसन ने मेकी को ६-३, ७-५, ३-६, ७-९, ६-३ से हरा कर जीत की दिशा की ओर प्रगति की। दूसरे दिन आस्ट्रेलिया के मारलीन रोज और माल एन्डरसन विक ससेक्स और मैकी को ६-४, ६-४, ८-६ पर हरा कर डेविस-कप आस्ट्रेलिया में एक साल के लिये रखने के अधिकारी हो गए। इस प्रतियोगिता में सोलहवीं बार आस्ट्रेलिया और अमेरिका फाइनल में खेले और दोनों राष्ट्रों ने डेविस कप आठ-आठ बार जीता है। आस्ट्रेलिया के होड और रोजवाल के पेशेवर खिलाड़ी होने के पश्चात् खेल के आलोचकों का मत था कि इस वर्ष आस्ट्रेलिया गत वर्ष की विजय को स्थायी नहीं रख सकेगा।

आस्ट्रेलिया के टेनिस 'कोच' हेरीहॉपमन बधाई के पात्र हैं जिन्होंने राष्ट्र के लिए इतने अच्छे खिलाड़ी तैयार किये और सफलता प्राप्त की।

× × ×

कलकत्ता में ता० २४ से राष्ट्रीय-टेनिस प्रतियोगिता आरम्भ हुई। इस प्रतियोगिता में देश तथा विदेश के बहुत से खिलाड़ियों ने भाग लिया। प्रतियोगिता के अन्तिम चरण में नरेशकुमार (भारत) तथा उल्फ स्चमीट (स्वीडन) का प्रथम सेमी फाइनल मेच हुआ। मेच २ घंटे चला तथा पूरे ५ सेट पर जा कर हार-जीत का परिणाम निकल सका। विदेशी खिलाड़ी का नरेशकुमार ने बहुत जम कर सामना किया परन्तु पांव में अकड़न आ जाने के कारण हार गए। मेच पाइन्ट इस प्रकार थे—३-६, ८-६, १-६, ७-५, ६-२। दूसरे सेमी फाइनल में राष्ट्रीय-चैम्पियन रामनाथन कृष्ण (भारत) डब्लू. ए. नाइट (इंग्लैंड) को ७-५, ६-४, २-६, ६-४ से सरलता से हरा कर नेशनल चेम्पियन हुए।

तारीख १ जनवरी १९५८, राष्ट्र तथा रामनाथन कृष्ण के लिए शुभ नहीं थी। आज कृष्णन की उल्फ स्चमीट के हाथों बुरी हार हुई, यद्यपि मेच बहुत जोरदार हुआ १ घंटे ४८ मिनिट चला और पूरे पाच सेट हुए, तथापि कृष्णन की हार ही हार थी और इस राष्ट्रीय चैम्पियन का हार जाना दुःखद घटना थी। मेच के परिणाम अन्त तक अनिश्चित थे। भाग्य कभी इस खिलाड़ी का साथ देता तथा कभी उस खिलाड़ी को आशा प्रदान करता था, किन्तु अन्त में विजयश्री उल्फ स्चमीट को प्रदान हुई। मेच पाइंट इस प्रकार रहे—६-३, ६-२, ४-६, ४-६ तथा ६-३। युवतियों के सिंगल्स में श्रीमती जे. बी. सिंह, मिस एल. पंजाबी को ६-२, ६-३ से हरा कर चैम्पियन हुई। युगल जोड़ी में नरेशकुमार और श्रीमती के. सिंह ने नाइट और जे. बी. सिंह को—५-७, ६-४, ६-२ पर पराजित किया।

इलाहाबाद में सेन्ट्रल-इंडिया-लॉन टूर्नामेंट खेला गया। इसके फायनल मेच में रामनाथन् कृष्णन और उल्फस्चमीट का खेल प्रारम्भ हुआ। आलोचकों का मत था कि रामनाथन कृष्णन कलकत्ता की पराजय को इस समय विजय में परिणित कर लेंगे पर इस बार भी कृष्णन को मुँह की खानी पड़ी और परिणाम से खेल इकतरफा मालूम देता है। खेल के मेच पाइंट इस प्रकार रहे—६-३, ६-१, ६-४। जुगल जोड़ी में नरेशकुमार और कृष्णन ने फाइनल में नाइट और पिकार्ड को २-६, ६-४ और ६-४ से सरलता से पराजित कर कलकत्ता की विजय को स्थायी रखा। श्रीमती के. सिंह और नरेशकुमार ने मिक्स डब्लस के फाइनल में मिस एल. उडब्रीज और इफ्तिखार को ४-६, ६-३ तथा ६-३ पर पराजित किया। जे. मुकर्जी ने सिंगल्स और डब्बल्स दोनों जीत कर जूनियर खिलाड़ियों में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुए।

मद्रास में १७ तारीख को मद्रास हाई-कोर्ट चेम्पियन-शिप में एक बार फिर से रामनाथन कृष्णन तथा स्चमीट का सिंगल्स के फाइनल में मुकाबला हुआ। इस बार रामनाथन कृष्णन ने स्वीडन के खिलाड़ी पर ६-२, ७:५, ५-७, ५-७, ८-६ से विजय प्राप्त की और इस प्रकार कलकत्ता और इलाहाबाद की हार का बदला लिया। आलोचकों के मत के अनुसार कृष्णन जीवन का सब से अच्छा खेल आज खेले थे।

पूना में २५, २६, २७ को देश के विश्व-विद्यालयों का खेल-कूद सम्मेलन हुआ। इस प्रतियोगिता में इलाहाबाद के वालिद उस्मानी ने ४ विभागों में प्रथम आकर दो वर्ष लगातार चैम्पियन-शिप जीतने का श्रेय प्राप्त किया। युवतियों के विभाग में बम्बई की मेरी दलीला राव ने ५ विभागों में प्रथम आकर २५ पाइन्ट अर्जित किये और इस प्रकार बम्बई की टीम को चैम्पियन शिप मिली। पुरुषों में यह सम्मान पंजाब को प्राप्त हुआ। विक्रम विश्व विद्यालय की विटिलनी डिसौजा ने "शर्ट पूट" में प्रथम तथा "डिसकस-थ्रो" में दूसरा स्थान प्राप्त किया।

फुट-बॉल

देश की चार प्रसिद्ध फुट-बॉल प्रतियोगिताओं में डूरेन्ड कप का प्रमुख स्थान है। इस वर्ष इस टूर्नामेंट में

३६ टीमों ने भाग लिया और फाइनल में हैदराबाद पुलिस और ईस्ट-बंगाल आये। ईस्ट-बंगाल गत वर्ष का विजेता था किन्तु आज १-१-५८ को फुट-बॉल जगत में एक नये इतिहास का नया पृष्ठ जुड़ा जब हैदराबाद पुलिस ने ईस्ट-बंगाल को २-१ गोल से पराजित कर डूरेन्ड कप जीता। गत माह में हैदराबाद पुलिस ने बम्बई में रोवर्स कप भी जीता था। इस प्रकार एक साल में २ प्रमुख फुट-बॉल प्रतियोगिता एक ही टीम द्वारा जीता जाना अद्भुत घटना का द्योतक है। "टीम-वर्क" ही हैदराबाद पुलिस की विजय का प्रमुख कारण था।

× × ×

इन्दौर में नगर निगम द्वारा अखिल-भारतीय फुटबॉल टूर्नामेंट रेसीडेन्सी के मैदान पर २५ दिसम्बर से आरंभ होकर १ जनवरी को समाप्त हुए। इस प्रतियोगिता के फाइनल में वेस्टर्न-रेल्वे बम्बई ने स्थानीय टीम उषाक्लब को ३-१ से पराजित कर, अपार जन-समूह के सामने, १९४८ के ओलंपिक खेलों में भारत की हॉकी टीम के केप्टेन श्री किशनलाल से कप प्राप्त किया। हॉकी में भी वेस्टर्न-रेल्वे ने फाइनल में झांसी रोज को ३-० से पराजित कर इन्दौर की २२ हजार जनता को मोहित कर लिया। विजेताओं को श्री किशनलाल द्वारा कप प्रदान किया गया। आयोजन सफलता-पूर्वक सपन्न हुआ।

——

(पृष्ठ १९६ का शेष)

स्नेही की आर्थिक स्थिति इतनी डाँवाडोल हुई कि उन्हें अपने निवास-स्थान पर्णकुटी को बेचने की नौबत आ गई। भूपाल के प्रसिद्ध शायर श्री असगर शेरी की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय थी कि जबरन उनके मरने का समाचार लेखक ने छापकर १॥ हजार रुपये की सरकारी इमदाद दिलाई और उसी समय से आपको ६०)—६५) की सरकारी नौकरी दिलाई गई जिससे आप दोनों समय भर पेट भोजन कर पाते है। तो ऐसी घटनाएँ है जोकि स्वयं बोलती हैं।

+ + +

वैसे मध्यप्रदेश में अन्य साहित्यिक भी है जिनके जीवन को महत्वपूर्ण घटनाओं का प्रकाश में लाकर कुछ सीखा जा सकता है परन्तु इस ओर कम लिखा-पढ़ा जा रहा है। साहित्यिकों के जीवन पर जो कुछ लिखा जाता है वह इतना प्रशंसात्मक और चापलूसी से परिपूर्ण रहता है कि अब इस तरह का लिखा हुआ पढ़ा ही नहीं जाता है। अच्छा तो यह हो कि किसी साहित्यिक के सम्बन्ध में जब कुछ लिखा-पढ़ा जाए तो उस की शैली में परिवर्तन हो। वही पिटी-पिटाई शैली सामने न आए। मध्यप्रदेश के साहित्यिकों के जीवन, उनके साहित्य और उनके रहस्यों पर बहुत ... जा सकता है और आज जब कि अन्य प्रान्तों का साहित्य प्रगति कर रहा है तब प्रश्न उठता है कि मध्यप्रदेश क्यों पिछड़ा रहे।

पताः—सम्पादक 'प्रहरी' नरसिंहपुर

——

सम्पादकीय

'गोहाटी-कांग्रेस' का प्रस्ताव

अखिल भारतीय कांग्रेस के गोहाटी-अधिवेशन में, हिन्दी-विषयक प्रस्ताव के रूप में, मद्रास में श्री राजगोपालाचारी के नेतृत्व में उत्थित गर्जन-तर्जन पूर्ण आन्दोलन की प्रतिक्रिया स्पष्ट परिलक्षित हुई। प्रस्ताव में हिन्दी को राज्यभाषा के रूप में पूर्णतः प्रतिष्ठित करने के निमित्त सन् १९६५ से भी आगे २० वर्ष की अवधि स्वीकृत की गई है और तब तक के लिए अंग्रेजी समानान्तर चलती रहेगी। इस प्रस्ताव को लेकर सर्वथा खेद-जनक स्थिति यह है कि यह स्पष्टतः किसी दबाव का परिणाम है, परितोष-नीति का प्रतिपालन है।

'कांग्रेस' ने प्रस्ताव स्वीकार किया है, कार्यान्वित होगा ही, पर हम उसके हेतु विधान-परिवर्तन का घोर विरोध करते हैं। यह तो एक कार्य-परिपाटी है, जो नियुक्त आयुक्त की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के रूप में अपनायी जा सकती है। एक बात हमें और भी कथनीय है, वह यह कि यह सात तथा बीस, यानी सत्ताईस वर्ष भी यों ही जाने वाले हैं। फिर इससे भी तीव्रतर स्थिति आ सकती है, प्रस्ताव स्वीकृत हो सकते हैं, अवधि बढ़ाई जा सकती है, या हिन्दी को चुटकियों में उड़ाने का प्रयत्न भी किया जा सकता है। हिन्दी और हिन्दी-पोषक मौन हैं। क्योंकि यह प्रश्न बन गया है राजकीय, हमें अब करना भी क्या है। जो कुछ करना होगा, सरकार करेगी। सरकार तो वही करेगी जो जनमत कहेगा, और जनमत वही कहेगा जो कोई बलशाली व्यक्ति कहलवा लेगा। तब हिन्दी-संस्थाओं और सेवकों का क्या कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रह गया है? सरकार के हेतु समुचित यह है कि इन सात वर्षों को पूर्णतः काम में लगावे और उचित फल की प्राप्ति के पश्चात् जितना अपेक्षित हो अवधि भी दे, पर आज से २७ वर्ष पश्चात् का 'सपना' खड़ा कर देना नितान्त अनुचित है, कार्य-विधि के भी विरुद्ध है। यह व्यवस्था तो उन व्यक्तियों तक के लिए कर दी गई है, जो आज से ४ वर्ष पश्चात् जन्म लेकर सिविल सर्विस में प्रवेश पाएँगे। आज दिन भी जो सर्विस में प्रवेश करेंगे वे सेवा-निवृत्ति के निकट होंगे या हो चुके होंगे। इससे तो यही प्रतीत होता है कि मद्रास को ऐसा वरदान दिया गया है जो उच्च स्तरीय सिविल सर्विस पर वह अमर होकर छाया रहे, उधर अंग्रेजी 'अमर बेल' होकर हिन्दी पर छाई रहे और उसे किसी भी प्रकार पनपने न दे। यही गर्जन-तर्जन का रहस्य था, और है, और उसकी पूर्ति का पूर्ण आयोजन भी किया जा रहा है।

माध्यमिक शिक्षा

अभी हाल में भोपाल में मध्यप्रदेश-स्थित तीनों विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों की एक बैठक हुई जिसमें यह निश्चय किया गया है कि १९६० तक उक्त तीनों विश्वविद्यालय त्रिवर्षीय स्नातक परीक्षा को अपना लेंगे। प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति साधारण-सी प्रतीत होती है, पर विचारणीय यह है कि क्या यह उचित-रीत्या सम्भव है? हमारा नम्र निवेदन है कि त्रिवर्षीय स्नातकीय पाठ्यक्रम की व्यवस्था से पूर्व माध्यमिक शिक्षा को अपेक्षित रूप में कार्यान्वित और सुदृढ़ कर लेना है। ग्यारहवीं कक्षा में जो परीक्षा होगी वह यदि वही हुई जो आज के इंटर परीक्षा के लगभग रही तो वह व्यर्थ है। उक्त परीक्षा का स्तर ऊंचा उठाना होगा और उसको जब तक छठवीं कक्षा से सुदृढ़ करने का प्रयत्न नहीं किया जाएगा यह सम्भव नहीं होगा। केंचुवे के दो टुकड़े करने की तरह इण्टर को काट कर हाईस्कूल तथा बी. ए. के साथ मिला देने भर से

(शेष कव्हर के तीसरे पृष्ठ पर)

समिति उत्थान के राज मार्ग पर

श्री वियोगीहरिजी का सम्मान

श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर एवं जनरल लायब्रेरी के संयुक्त तत्वावधान में तारीख ५ जनवरी ५८ को हिन्दी साहित्य जगत् के रस-सिद्ध कवि श्री वियोगीहरिजी का सम्मान किया गया। आपने समयाभाव के कारण अपने सारगर्भित एवं संक्षिप्त भाषण में देश के नैतिकस्तर को ऊंचा उठाने की चर्चा करते हुए पुस्तकालयों के महत्व पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला।

वसंतोत्सव

तारीख २५ जनवरी सन् १९५८ को प्रातःकाल ९ बजे समिति-भवन में सरस्वती पूजन का आयोजन किया गया। समिति के सम्मानित सदस्य, भूतपूर्व वीणा' सम्पादक एवं प्रसिद्ध वयोवृद्ध साहित्यिक श्रीमान् लक्ष्मीनारायण दीनदयालजी अवस्थी द्वारा सरस्वती पूजन समारोह सम्पन्न किया गया। उपस्थित समुदाय को उपदेश देते हुए अवस्थीजी ने बुद्धि की देवी सरस्वती और सरस्वती के मन्दिर—समिति दोनों की सरसता और शुचिता पर प्रकाश डाला।

बालकों में प्रसाद-वितरण के उपरान्त कार्यक्रम समाप्त हुआ।

'वीणा'—सम्पादक धार में

जनवरी के अंतिम सप्ताह में धार में आयोजित भोज-स्मृति-उत्सव के अवसर पर २५ ता० को रात के ९ बजे 'वीणा'-सम्पादक प्रो. रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र', अध्यक्ष हिन्दी-विभाग होलकर महाविद्यालय इन्दौर, का भाषण प्रो० 'राम' बिल्लोरे की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें आपने महाराजा भोज के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए उनसे प्राप्त प्रेरणा पर बल दिया, पश्चात् श्रीमती कृष्णा अग्रवाल एम. ए. तथा प्रो० वचनसिंह 'वचन' के सार-गर्भित भाषण हुए।

निराला जयन्ति

समिति-भवन में वसन्त पंचमी के दिन दुपहर साढ़े तीन बजे से आयोजित समिति के अध्ययन कक्ष की गोष्ठी में निरालाजी के जीवन पर वक्ताओं द्वारा प्रकाश डाला गया एवं निरालाजी के प्रेरक साहित्य के विषय में विचार विनिमय हुआ।

गणतंत्र दिवस

तारीख २६ जनवरी १९५८ को समिति-भवन की छत पर प्रातःकाल ७॥ बजे श्रीमान प्रो० सी० डब्ल्यू डेविड ने राष्ट्रीय-ध्वजोत्तोलन किया। अपने प्रेरक भाषण में आपने देश के चतुर्मुखी विकास की चर्चा करते हुए युवकों को अपने देश-प्रेम की उच्च से उच्च भावना रखने का उपदेश दिया। श्री नथ्थूलाल तिवारी द्वारा राष्ट्रगीत सुमधुरलय में गाये गये।

पूज्य बापू का बलिदान-दिवस

ता० ३० जनवरी ५८ को समिति के शिलारोपण-संस्कार सम्पन्न-कर्त्ता विश्वबन्द्य पूज्य म. गांधी एवं बलिदानी देशभक्तों के पुण्य स्मरण में समिति कर्मचारियों ने ठीक ११ बजे मौन धारण कर अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

जगन्नाथ बियानी
प्रचार-मंत्री

[२०४ पृष्ठ का शेष]

काम नहीं चलेगा। आज का इण्टर का विद्यार्थी कितने कुछ काम का रहता है जो ग्यारहवीं कक्षा पास कर वह और अधिक मेधावी, कार्यकुशल और कार्य-क्षम बन जावेगा। यह विषय अकेले कुलपतियों के निर्णय का नहीं है। उन्हें साथ में बोर्डों को लेकर कार्य-प्रणाली और प्रचलित पाठ्य-क्रम निश्चित करना चाहिए जिसका फैलाव छठवें दर्जे से स्नातकीय परीक्षा तक है। यह भी विचारणीय है कि क्या हमारे हाई स्कूलों में हमें वे सब साधन सुलभ हैं जो अपेक्षित होंगे। हमारे विचार से केवल हाई स्कूल में एक कक्षा और जोड देने भर से काम नहीं चलेगा। उत्तरप्रदेश ने इन साधनों के अभाव की बात कही थी। क्या मध्यप्रदेश को वे साधन प्राप्त हैं?

शोक-संताप

गत वसन्त-पंचमी को हिन्दी के प्रसिद्ध, पर उपेक्षित विद्वान श्री चन्द्रबली पाण्डेय का निधन हो गया। समाचार पढ़ते ही हृदय स्तब्ध तथा विषण्ण होकर रह गया। परमात्मा दिवंगत को शान्ति तथा पारिवारिकों को धैर्य प्रदान करें।

'वीणा' रजिस्टर्ड नं. जे ८७

अनुक्रम संख्या

श्रीमान् संपादक 'गुरुकुल पत्रिका'
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार
(उ. प्र.)

मुद्रक एवं प्रकाशक—पं० उमाशंकर जोशी मैनेजर, श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति प्रेस, इन्दौर.

सम्पादक :

प्रो० कमलाशंकर मिश्र

प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

विषय-सूची

वर्ष ३१] मार्च १९५८ [अङ्क ५

चैत्र विक्रम संवत् २०१४

शक संवत् १८७९

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति का ।।)

वीणा
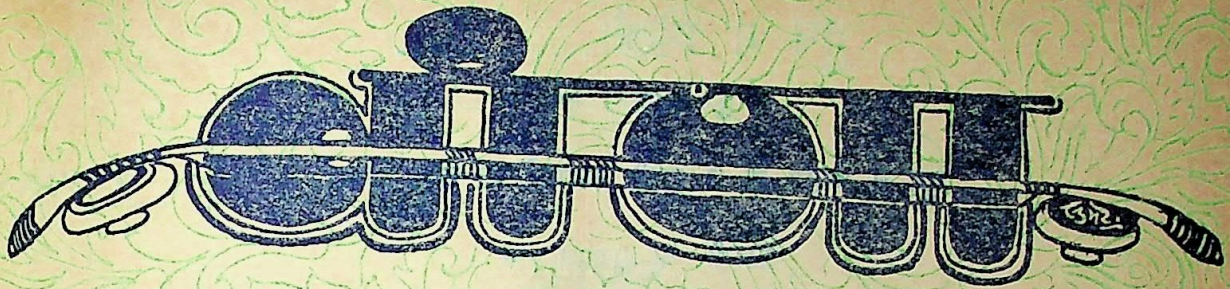
श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर की मुख-पत्रिका

तेरे गुन-गौरव सुनाऊँ आजु भूतल पै, यातें मातु सारदे सुधारि निज 'वीणा' तू।

वर्ष ३१ | चैत्र संवत् २०१४, मार्च सन् १९५८ | अंक ५

मानिनी

श्री नटवरलाल 'स्नेही'

तुम न मेरे हृदय की, हृदयेश्वरी!
मानिनी बनकर परीक्षा लो,

मान कर लो, मैं मना लूँगा तुम्हें
श्रुति-सुहावन छद्म-छन्दों से,
मैं मना लूँगा तुम्हें, रस से रहित
चित्र के अरविन्द-वृन्दों से।

प्रेम से अनजान, यों मन की मृगी!
वेणु के स्वर में न विरमा लो।
तुम न शाश्वत स्नेह के विश्वास की,
दामिनी बन कर परीक्षा लो।

किन्तु कृत्रिम रम्य रवि-राजीव पर
तुम मधुप की दृष्टि मत डालो।
तुम न मेरे हृदय के, मधु-कोश की
यामिनी बन कर परीक्षा लो।

मधुकरी! लो मधुकरी में हृदय-धन,
प्रेम पा लोगी समर्पण में,
दीखता प्रतिबिम्ब अपना ही सदा
प्रेम-जल-उज्ज्वलित दर्पण में।

हृदय की होती परीक्षा यों नहीं
रूठने से या मनाने से,
प्रेम की होती नहीं पहिचान है
पद्म की पलकें बिछाने से।

मान का मद ढोल कर हे मानिनी!
हृत्कलश में स्नेह सरसा लो।
शरद-सुषमा के पुजारी की न-
घन-वाहिनी बन कर परीक्षा लो।

तुम न मिलते............

कु० मालती दिवे

तुम न मिलते तो न इतनी उलझनों का साथ होता;

जिंदगी के राजपथ पर
मैं चली जाती खुशी से,
गूँजती रहती डगर भी
हर समय मेरी हँसी से,
तब न काँटों में उलझकर, राह से मैं बिछुड़ जाती,
तब न बहता आँसुओं का आँख से अविराम सोता।

रस्म जो भी है यहाँ की
मैं उसे स्वीकार करती,
हमसफर मिलता मुझे जो
मैं उसी को प्यार करती,
इस तरह आँखें बिछाये, देखती क्या पथ तुम्हारा?
तब न मन-पंछी किसी की याद में दिनरात रोता।

स्वप्न-भीनी नींद सोती
और सुख से जागती मैं,
जिंदगी के सत्य से तब
इस तरह क्या भागती मैं,
तब न ऐसे शून्य में मैं नीड़ प्राणों का बनाती,
धड़कनों की हाट में तब कौन अपनी शान्ति खोता?

प्यास क्या होती हृदय की
जो न इतना ज्ञान होता?
तुम न मानो, पर हमारा
हर कदम आसान होता,
यदि न मृगजल बन हृदय के क्षितिज पर तुम मुस्कराते
पीर-पागे इन स्वरों की, कौन तब माला पिरोता?

लघुतम-कथा

अनुमान

प्रो० 'चन्द्र'

★

नन्हें बाबू ने दुनिया की चकाचौंध में मिचमिचा कर जो आँखें खोलीं तो पहिला काम जो उन्होंने किया वह था मुँह में अँगूठा देना; और ऐसा कस कर पकड़ा है इस काम को उन्होंने कि पूरे पाँच वर्ष के हो जाने पर भी वह इसे पूरी ईमानदारी से निभाये जा रहे हैं। उनके शैशव के खेलों, बोलियों, रुचियों और नाटकीय अभिनयों में अन्तर आता गया है, पर एक काम जो निरन्तर किये जा रहे हैं वह है वही—मुँह में अँगूठा देना। वर्ष दो वर्ष यह सोचते कट गये कि अब छोड़ देंगे, तब छोड़ देंगे। जब वे अभिनयी भाषा के दादा बन गये तो इधर ध्यान दिया जाने लगा, फिर क्या कालीमिर्च, लालमिर्च, एलुआ, कुनेन, चिरायता, किस-किस कड़वी चीज का प्रयोग नहीं किया गया उनके अँगूठे पर, पर वह नहीं माने हैं तो नहीं ही माने हैं। अन्तर इतना ही पड़ पाया है कि दिन में छिप कर या शरारत दिखाने को, और रात में खुल कर वे अपनी अनूठी आदत का उपभोग कर ही लेते हैं।

अब आप ही सोचिए कि ये हमारी चिंता के विषय कहाँ तक बने हुए हैं। लगभग दो-ढाई वर्ष से तो यह चिंता चुड़ैल की भाँति हमारे पीछे पड़ी हुई है। क्या करें क्या न करें। जब-तब परस्पर विचार-विनिमय का विषय भी यही होता है, पर हल नहीं सूझता है तो नहीं ही सूझता है। इस चिंता में कभी-कभी विनोद का मिश्रण भी हो जाता है—'क्योंजी ये स्कूल जाने लगेंगे तब?' तब मुन्नाजी हँस कर कह देती हैं कि 'जब दूलहा बनेंगे तब!' तब वह चिढ़ कर लपकते हैं—"मुन्ना मौसी हम तुम्हें मार देंगे हाँ SSS!" बात कभी-कभी विनोद में टल जाती है, कभी-कभी चिंता अन्यमस्कता में दब जाती है, पर मिट नहीं पाती, और मिटे भी कैसे?

अभी कुछ महीनों की बात है, रेल के एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में प्रवेश किया तो हम दोनों क्या देखते हैं कि सामने की बर्थ पर एक महाशय मुँह में अँगूठा देकर उसे बेतहाशा चूस रहे हैं, इतनी तन्मयता के साथ कि जैसे उससे अमृत का स्राव हो रहा हो—सेकण्ड—दो सेकण्ड—आधा मिनट—एक मिनट—दो मिनट—हम दोनों की नज़रें उन्हें देख कर मिलीं तो हकबकाई-सी मुस्कान से भरीं। दोनों की आँखों के सामने चित्र खिंच गया उस दिन का, जब नन्हें जी दाढ़ी-मूँछ वाले हो जाएँगे और रेल के किसी बर्थ पर बैठे दुलहिन को लेने जा रहे होंगे, पर इसी मुद्रा में अँगूठा चूसते हुए। भय और विनोद दोनों का मिश्रण शायद ही कहीं देखा गया हो। भय नन्हें को लेकर, विनोद दाढ़ी-मूँछ वाले अँगूठे-चूसक को लेकर। इतने में दाढ़ी-मूँछधारी अंगुष्ठ-चूसक ने अँगूठा निकाला, तो क्या देखते हैं कि रक्त का स्राव....ओह! कितना अमानुषिक अनुमान!! बेचारे का अँगूठा चोट खाकर रक्त-स्राव कर रहा है और हम दोनों उससे विनोद प्राप्त कर रहे हैं। विनोद ने करुणा का स्थान ले लिया, पर नन्हें को लेकर भावी भय तो बना ही हुआ है कि दाढ़ी-मूँछ-धारी अंगुष्ठ-चूसक के रूप में वह कैसे लगेंगे।

मध्य-भारत में आदिवासी-संस्कृति

प्रो० गौरीशंकर भट्ट

विन्ध्याचल और सतपुड़ा की सघन घाटियों में आच्छादित नर्मदा, चम्बल, शिप्रा और बेतवा इत्यादि नदियों से अभिसज्जित यह क्षेत्र अपनी भौगोलिक बनावट तथा स्थिति के कारण, भारतीय राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विन्ध्याचल और नर्मदा की घाटियाँ भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम अवशेषों को अपने गर्भ में छिपाये हैं। उत्तर में विंध्याचल और दक्षिण में सतपुड़ा की पर्वत-शृंखलाओं और बीहड़ घाटियों ने मानव के आवागमन पर सदैव से रोक लगा रखी है। विंध्याचल आर्यों के अधिकतम प्रभाव की दक्षिणी सीमा रही है। फिर भी नर्मदा की उपजाऊ घाटी और मालवा का समृद्ध पठार उत्तर के पराजित मानव एवं सांस्कृतिक समूहों को आकर्षित करते रहे हैं और विन्ध्याचल की सघन घाटियाँ उन्हें एक प्रकार का प्राकृतिक सुरक्षित स्थल प्रदान करती रही हैं जहाँ वे अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने में सफल हुए हैं। वर्तमान समय में भी जब कि सभ्यता के वाहन, यातायात के अनेक साधन, सभ्यता के उपकरणों को संसार के निविड़तम स्थानों में ले जा रहे हैं। इस क्षेत्र के दुर्गम स्थलों के निवासी सभ्यता के प्रभाव से प्रायः अछूते ही हैं, यद्यपि धीरे-धीरे वे उसके कुपरिणामों का शिकार हो रहे हैं। इस प्रदेश को भारतीय आदिवासियों का घर कहा जा सकता है, क्योंकि उनकी आबादी का एक बहुत बड़ा भाग इसी क्षेत्र का निवासी है और गोंड तथा भील, जिनका वर्णन प्राचीन पुस्तकों, भारतीय इतिहास के पन्नों और जन-श्रुतियों [1] में मिलता है, इसी प्रदेश में केन्द्रित हैं।

जन-साधारण को आदिवासी संस्कृति से बोध होता है एक ऐसी संस्कृति का जो असभ्य है और मानव संस्कृति की प्राचीनतम अवस्था की द्योतक है। किन्तु यह धारणा भ्रम-मूलक है। आदिवासी समाज और संस्कृति, मानव-शास्त्रियों के अनुसार, औद्योगिक, आर्थिक और सामाजिक संगठन में उतना जटिल नहीं होते जितना कि वर्तमान योरोप-अमरीकी समाज है। कुछ लोग लिखित साहित्य, सुगठित कला और धर्म और विज्ञान का अभाव आदिवासी समाज की विशेषता मानते हैं। इन सभी विशेषताओं को दृष्टिकोण में रखते हुए भारत में आदिवासियों की श्रेणी में हम उन संस्कृति-समूहों को रख सकते हैं जो हिन्दू-समाज-संगठन से परे रहे हैं, यद्यपि हिंदुत्व के प्रभावों से वे पूर्णतया अछूते नहीं रह सके हैं, क्योंकि एक ओर जहाँ हिन्दू-समाज का आधार है भारत की आदिवासी-संस्कृति वहाँ, दूसरी ओर, हिन्दू-संस्कृति के अनेक उपकरण उन तक पहुँचते रहे हैं। सांस्कृतिक प्रसरण और आदान-प्रदान संस्कृति की एक विशेषता है। भारतीय समाज और संस्कृति, भारत की विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृतियों और रेसों के आक्रमण, संगम और आदान-प्रदान का परिणाम है। यही कारण

---

१ समय बली नहीं होत है, पुरुष होत बलवान।
भिल्लन लूटी गोपियाँ वे अर्जुन वे बान!!

है कि उच्च हिन्दू जाति और आदिवासी-सामाजिक-संगठन की इकाई जनजाति (Tribe) भारतीय समाजिक संगठन के दो कोने हैं और उनके मध्य में अनेक समूह, जाति के रूप में, अनेक सामाजिक और आर्थिक कृत्यों को सम्पादिक करते हुए पड़े हैं। जब कोई आदिवासी जाति एक विशेष पेशे को अपनाती है, अन्तर्विवाह के नियमों का पालन करने लगती है और हिन्दुत्व के साधारण सिद्धान्तों को मान लेती है तो वह हिन्दु समाज की जाति-प्रथा के अन्तर्गत आ जाती है। इस प्रकार आदिवासी हिन्दुत्व के घेरे में आते रहे हैं और उसी के फलस्वरूप हिन्दू समाज के निम्नतम स्तरों और आदिवासियों के सामाजिक संगठन में अपूर्व साम्य है। भारत में सांस्कृतिक साम्य और वैचित्र्य इसी प्रक्रिया के परिणाम हैं।

श्री वैंकटाचार-द्वारा रचित सन् १६३१ की सेंट्रल इण्डिया एजेंसी की जन गणना के आधार पर इस प्रदेश को चार आदिवासी क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, भील क्षेत्र सैलाना, रतलाम, अलीराजपुर, झाबुआ, इन्दौर और धार इत्यादि पुरानी देशी रियासतों के पहाड़ी भागों में फैला हुआ है। वास्तव में भील पश्चिमी भारत के एक बड़े त्रिकोण की शक्ल के भू-भाग में फैले हुए हैं, जिसका आधार है खान देश में और चोटी है उदयपुर की अरावली की पहाड़ियों में। दूसरा, कोरकू क्षेत्र नर्वदा की घाटी और सतपुड़ा की पहाड़ियों में केन्द्रित है। तीसरा, सावरा क्षेत्र मालवा के पठार से लेकर बुन्देलखण्ड तक फैला हुआ है और चौथा गोंड-क्षेत्र जो बघेलखण्ड से लेकर नर्बदा की घाटी में होता हुआ, दक्षिण में गोदावरी की घाटी तक चला गया है। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े आदिवासी समूह छोटे-छोटे समूहों में विभक्त हैं। इन्हीं आदिवासियों के साथ रक्खा जा सकता है ऐसे सांस्कृतिक समूहों को जो परिस्थिति-वश जरायम पेशा रहे हैं और सघन जंगलों और घाटियों को छोड़ कर गाँवों में ग्रामीण जनता के साथ मिल कर अथवा उनसे दूर अपने गाँव बसा कर रह रहे हैं। ये अधिकतर जाति-प्रथा के सामाजिक और आर्थिक संगठन में अपना स्थान पाने में सफल हो गये हैं। रिसले ने ऐसे समूहों को आदिवासी-जाति कहा है। कंजड़, बाछड़ा, बागड़ी, सांसी, भानुमति, बंजारा और कलबेलिया इत्यादि ऐसे अर्द्ध-आदिवासी समूह हैं जो मध्यभारत के अतिरिक्त राजस्थान, अजमेर, और उत्तर-प्रदेश इत्यादि समीपवर्ती राज्यों में फैले हुए हैं।

यह आदिवासी कौन हैं? कहाँ से आये? इन प्रश्नों का अन्तिम निर्णयात्मक उत्तर देना कठिन है क्यों कि इन प्रश्नों से सम्बन्धित सभी प्रश्न विवादग्रस्त हैं। यह निश्चय है कि ये आदिवासी अनार्य हैं, किन्तु जिस अनार्य मानव-समूह ने उनको जन्म दिया, उसका शारीरिक गठन और रूप-रंग क्या था, यह कहना कठिन है। कुछ मानव-शास्त्रियों के अनुसार उनकी शारीरिक बनावट का आधार है नीग्रिटो रेस के तत्व, जब कि कुछ अन्य, जिनके पक्ष में बहुमत हैं, उनमें प्रोटो-आस्ट्रालायड रेस के तत्व अधिक पाते हैं। यहाँ पर यह भी बतला देना आवश्यक है कि आदिवासियों में साधारणतया नीग्रो रेस के तत्वों का बाहुल्य है, फिर भी वे किसी एक रेस के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते। मानव-समाज में आदि काल से वर्तमान वर्ण-संकरता ने उनमें विभिन्नता को जन्म दिया है।

पौराणिक और ऐतिहासिक प्रमाण किसी भी आदिवासी समूह की प्राचीनता पर प्रकाश डाल सकते हैं किन्तु उसकी उत्पत्ति के जटिल प्रश्न को हल नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, तामिल के प्राचीन कवियों ने विल्ववर शब्द का प्रयोग किया है और उसका अर्थ है धनुष चालाने वाला। कुछ लोगों के अनुसार इस शब्द का संकेत भीलों से है। ब्राह्मण पिता और शूद्र माता से उत्पन्न निषाद को भी भील माना गया है। मध्य-युग और वर्तमान काल में, भारतीय इतिहास की अनेक घटनाओं से आदिवासी जीवन का वर्णन काफी प्रमाणित है। ऐसा कहा जाता है कि नवीं शताब्दी में बप्पा रावल को एक भील सरदार ने ही पाला था। ईसा की सोलहवीं शताब्दी में भीलों की ही सहायता से राणा प्रताप ने अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट का सामना किया था और इसी प्रकार जैसा ग्रिगसन ने

दिखाया है कि गोंडों का इतिहास काफी प्राचीन है। हैदराबाद की खुदाई में मिले एक ताम्र-पत्र से बंजारा जाति की प्राचीनता का पता चलता है, क्योंकि उस ताम्र-पत्र में लिखा है कि "झांगी और भांगी नाम के दो बन्जारा सदैव आसफजहाँ की फौजों के साथ रहा करते थे।" इन प्रमाणों से केवल आदिवासियों की प्राचीनता का पता चलता है और यह विदित होता है कि आदिवासी, द्राविड़ों और अद्राविड़ों के वर्ण-संकर हैं।

आदिवासी लोक-वार्ता में भी उनकी उत्पत्ति की अनेक कथाएँ मिलती हैं। एक कथा के अनुसार भील की उत्पत्ति एक धोबी से हुई जिसने परिस्थितिवश अपनी बहिन से विवाह किया था। एक अन्य कथा के अनुसार पांच व्यक्ति महादेवजी से वधू-धन (Bride Price) माँगने गये। महादेवजी ने उनके मार्ग में एक चाँदी का स्टूल रखवा दिया पर वह उसे न देख सके। पार्वती ने उन्हें उनकी भूल का ज्ञान कराया और कहा कि नन्दी के कूबड़ में अपार धन-राशि भरी पड़ी है उसमें से एक ने नन्दी को मार डाला और उसी गोवध से भीलों की उत्पत्ति हुई। एक अन्य पौराणिक कथा के अनुसार भील की उत्पत्ति राजा बेन की जंघा से हुई। कालबेलिया अपने को गोरखनाथ के समकालीन कन्नियाब का वंशज मानता है। बंजारा अपने को उस राजपूत का वंशज मानता है जिसे दिल्ली से भाग कर जंगलों की शरण लेनी पड़ी थी और वहीं उसने उदयपुर के राणा की बहिन से विवाह किया था। राणा से अनबन होने पर उसे पुनः जंगल की शरण लेनी पड़ी। उसके वंश में रूपा नायक का जन्म हुआ, जिससे बंजारों की उत्पति हुई। ऐसी कथाओं की कमी नहीं है, यद्यपि उनसे आदिवासियों की उत्पत्ति पर प्रमाणित प्रकाश नहीं पड़ता है। हाँ, आदिवासियों को इन कथाओं से प्रेरणा अवश्य मिलती है।

जिस प्रकार एक जाति, उपजातियों में विभाजित रहती है उसी प्रकार आदिवासी समूह भी उपसमूहों में बँटे हुए हैं। इस विभाजन के कारण हैं वर्णसंकरता, भौगोलिक प्रसरण, हिन्दुत्व का प्रभाव और धर्म-परिवर्तन। भील-क्षेत्र में पाया जाने वाला भिलाला अपने को अन्य भीलों से उच्च मानता है क्योंकि उसके विश्वास के अनुसार वह राजपूत पुरुष और भील स्त्री की संतान है। इसी प्रकार मेले, उजाले और मंडाले भीलों के सामाजिक स्तर और कार्यों में काफी असमानता है। इसी प्रकार गोंड भी मेरिया गोंड और राजगोंड नामक दो उपसमूहों में विभक्त है। वर्तमान मध्यप्रदेश में विलीन बस्तर देशी राज्य में पाये जाने वाले भात्रा, प्रजा, गडब्बा, हलबा, मुरिया और मेरिया नामक आदिवासी समूहों को साधारणतया गोंड की ही संज्ञा दी जाती है, यद्यपि भाषा और संस्कृति के दृष्टिकोण से उनमें अन्तर है। बंजारों और कालबेलियों में पाये जाने वाले गोत्र इस बात के प्रतीक हैं कि उनमें उच्च सामाजिक स्तर के समूह मिलते रहे हैं। बंजारों की एक अन्य विशेषता है उनमें पाये जाने वाले धार्मिक उप-समूह। ये उपसमूह एक दूसरे से पूर्णतया अलग हैं। मुसलमान बंजारों का कहना है कि पहले वे सरावगी महाजन जाति के थे किन्तु बाद में उन्होंने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया। वे आज भी अपने मुर्दे का सिर उत्तर की ओर करके गाड़ते हैं, यह प्रथा उनके कथन को प्रमाणित करती है।

वर्तमान समय में सभ्यता के संघात के फलस्वरूप आदिवासियों का जीवन काफी तेजी से बदल रहा है। उनके आर्थिक जीवन पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। कृषि उनके आर्थिक जीवन का मुख्य आधार है, फिर भी, कृषि को आदिवासी जीवन में वास्तविक और स्थायी स्थान नहीं मिल पाया है। श्री वेंकटाचार के अनुसार भील खेती को अपना प्राचीन प्रारम्भिक उद्यम मानता है फिर भी उसे पूर्ण रूप से अपनाने में सफल नहीं हुआ है। उसमें खाना-बदोशी अब भी विद्यमान है। सघन जंगलों में आखेट करना और कन्दमूल एकत्र करना भील और गौंड दोनों के जीवन के प्रधान अंग हैं। मार्च और अप्रेल के महीनों में

फसल-कटाई में नौकरी की तलाश करता हुआ भील मालवा-पठार का चक्कर लगाया करता है।

कानून-विरोधी असमाजिक कृत्य भी कुछ आदिवासियों की संस्कृति के प्रधान अंग बन गये हैं। भील चोरी करना अपना धर्म समझता है क्योंकि उसके विश्वास के अनुसार वह शंकर भगवान का चोर है। जानवरों का व्यापार करने के साथ-साथ बंजारे और कालवेलिया जानवर चुराने में विशेष कुशल माने जाते हैं। नट और कंजड़, लूट-मार करने और लड़कियाँ चुराने में प्रसिद्ध हैं। नकब काटने और शराब बनाने के लगभग सभी अभियोगी हैं। ये असामाजिक कृत्य सामाजिक विघटन की प्रक्रिया के परिणाम हैं। धीरे-धीरे ये कृत्यों को छोड़ रहे हैं। कालवेलिया अधिकतर भीख माँग कर, साँप नचा कर, जानवरों, बाँस की लाठियों और चक्की के पाटों का व्यापार करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। बंजारा जानवरों के व्यापार के साथ-साथ खेती भी करता है। कहीं-कहीं स्त्रियाँ नाच-गा कर जीवन निर्वाह में सहायता करती हैं। राजस्थान में कबूतरी के नाम से विख्यात नाचने वालियाँ इसका उदाहरण हैं।

आदिवासियों में विवाह हिन्दुओं की साधारण मान्यता के प्रतिकूल उतना पवित्र और अविच्छेद्य नहीं है। वधू-मूल्य आदिवासियों के वैवाहिक संस्कार की एक मुख्य विशेषता है। वधू-मूल्य के स्थान पर भावी ससुराल में जाकर रहना और कुछ काल के लिए पत्नी के घर का कार्य करने की प्रथा भी भीलों में पाई जाती है। होली के एक दिन पहले पड़ने वाला भगोरिया त्यौहार इन कार्यों के लिये उचित सामाजिक अवसर माना जाता है। गोल गेदाधों की प्रथा के द्वारा भावी साथी चुनने में काफी स्वतन्त्रता रहती है। एक पेड़ पर या बाँस पर गुड़ और नारियल बाँध दिया जाता है और विवाह के इच्छुक नवयुवक और युवती उसके चारों ओर एक प्रकार का नृत्य करते हैं। स्त्रियाँ अन्दर के घेरे में रहती हैं और पुरुष बाहर के। जो पुरुष स्त्रियों का घेरा तोड़ कर नारियल और गुड़ उतार लाने में सफल होता है वह किसी भी लड़की को अपना जीवन-साथी चुन सकता है। किन्तु जैसा कि डा. मजमूदार ने लिखा है ऐसे विवाह बहुधा पहले ही से तय होते हैं।

गोतुल संस्था गोंडों की सांस्कृतिक विशेषता है। गोतुल उस घर को कहते हैं जहाँ रात्रि के समय अविवाहित स्त्री-पुरुष अपना समय बिताते हैं। विवाहित गोतुल के सदस्य नहीं हो सकते हैं। गोतुल का एक मुखिया होता है और उसके नीचे अनेक अधीनस्थ रहते हैं। गोतुल का जीवन काफी गुप्त रखा जाता है। वहाँ लड़कियाँ लड़कों के शरीर की मालिश करती हैं और बाल सँवारती हैं। नाच-गाना भी चलता रहता है। ऐसी अवस्था में यौन सम्बन्ध भी हो जाता है। कुछ लोगों का मत है कि इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है अविवाहितों को सेक्स से परिचित कराना, पर अन्य लोगों के अनुसार यह एकांगी दृष्टिकोण है। उनके अनुसार इस संस्था के द्वारा आदिवासी नवयुवकों को भावी जीवन की शिक्षा मिलती है।

नात्रा संस्था के द्वारा जो इधर के आदिवासियों और निम्न श्रेणी की जातियों में पाई जाती है कलहपूर्ण वैवाहिक सम्बन्धों का अन्त किया जाता है। नात्रा वास्तव में प्रतीक है तलाक और विधवा-विवाह का तलाक के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी-कभी छोटी-छोटी बातें भी तलाक का कारण बन जाती हैं। तलाक के लिए आदिवासी जाति-पंचायत का आश्रय लिया जाता है। अधिकतर महीनों और सालों में यह प्रश्न हल हो पाता है। इसी बीच में समझौते के लिए भी प्रयत्न किया जाता है और यदि समझौता असम्भव होता है तो अन्ततोगत्वा तलाक स्वीकार हो जाता है। परित्यक्त स्त्री से विवाह करने वाले व्यक्ति को उसके प्रथम पति को बतौर हरजाने के कुछ न कुछ धन देना पड़ता है। यह धन दोनों पक्षों के द्वारा तय किया जाता है और उसके तय करने में पंचायत का भी हाथ होता है।

आदिवासियों की धार्मिक प्रथाओं और विश्वासों में आर्यों और अनार्यों के प्रभावों का सम्मेलन दिखाई पड़ता है। भील और बंजारे शव को जलाते हैं जबकि

कालबेलिया उसे खेतों की मेड़ों पर दफ़न कर देता है। प्रेतात्माओं में विश्वास के कारण ही भील मृत व्यक्ति की याद में दी जाने वाली दावत को नुकता कहते हैं जो आदिवासियों की ही नहीं वरन् निम्न श्रेणी के हिन्दुओं की विशेषता है। सर्व-शक्तिमान परम पिता परमेश्वर में विश्वास रखने के साथ-साथ अन्य देवी देवताओं की भी पूजा की जाती है। हिन्दुओं के देवताओं में भगवान शंकर किसी न किसी रूप में आदिवासियों के अधिक निकट हैं। जादू टोना, शपथ, भूत-प्रेत और अनेक प्रकार के छोटे-छोटे करुणाकर एवं कष्ट-दायक देवी देवताओं में भी आदिवासियों का घना विश्वास है। डंकिनी से सभी डरते हैं और यह निश्चय करने के लिए कि कोई स्त्री डंकिनी है या नहीं, अनेक परीक्षाओं के भी विषय में सुना जाता है। लाल मिर्च डालने पर यदि किसी स्त्री की आँखों में आँसू न आएँ तो वह स्त्री निश्चय ही डंकिनी है। इसी प्रकार के विश्वासों के कारण ही जादू-टोने को महत्व मिलता है और साथ ही साथ उस व्यक्ति को भी जो प्रेतात्माओं को वश में करके हानिकारक प्रभावों से मनुष्य की रक्षा करता है। भील गोदना गुदवाता है, क्योंकि वह यह नहीं चाहता कि मृत्यु के बाद उसका शरीर काँटों से छेदा जाय।

आदिवासी जातीय पंचायत एक राजनैतिक, सामाजिक एवं जातीय संस्था है और उसके द्वारा आदिवासी सामाजिक जीवन नियन्त्रित एवं नियमित होता रहता है। इस संस्था के परम्परागत अधिनायक को भील टरवी, कालबेलिया मुखिया और बंजारा नायक अथवा मंडलोई के नाम से पुकारते हैं। पंचायत का अधिकार सम्पूर्ण आदिवासी सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन पर रहता है। दण्ड बहुधा 'आँख के लिये आँख और दांत के लिये दांत' के नियम पर आधारित रहता है। दण्ड की पृष्ठ-भूमि में रहती है एक प्रकार से डर उत्पन्न करने की भावना जिससे लोग सामाजिक नियमों के तोड़ने से डरें। बलात्कार के अभियोग में कलबेलिया-पंचायत डाग लगाने का दण्ड दे सकती है जिसके अनुसार पुरुष के गुप्तांग पर गरम किये हुये लाल-लाल ताँबे के सिक्के से चिह्न बनाया जाता है। यह चिह्न मस्तक पर भी लगाया जा सकता है।

शपथ और परीक्षाओं के द्वारा पंचायत निर्णय करने में सफल होती है। अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए भील अपने पुत्र की, हाथ में देवता की मूर्ति लेकर देवता की, कुत्ते के सिर पर हाथ रख कर कुत्ते की या बकरे की खाल सिर पर रखकर अपनी शपथ ले सकता है। परीक्षा की कसौटी पर खरा उतरना भी निर्दोषिता का प्रतीक है। जलते हुये अंगारों को हाथ पर रखते हुए भी न जलना और जहरीली जड़ों को खाकर भी जीवित रहना निर्दोषिता के साक्षी हैं। कलबेलिया अभियोगी किसी के चुनौती देने पर यदि अपने हाथ पर सात पीपल की पत्तियों या घास का एक छोटा-सा बंडल और उसके ऊपर आधा सेर गरम लोहे का टुकड़ा रख कर बिना जले हुए यदि सात कदम चले तो वह निर्दोष माना जायगा।

कालबेलियों में पाई जाने वाली एक अन्य परीक्षा-प्रथा काफी रोचक एवं विचित्र प्रतीत होती है। अभियोगी को एक तालाब के पास ले जाया जाता है जिसके बीचोंबीच में एक बांस गड़ा रहता है। एक नौजवान पानी की विरुद्ध दिशा में पत्थर फेंकता है। अभियोगी पानी में उतर कर बांस पकड़ कर खड़ा हो जाता है। मुखिया तीन बार ताली बजाता है। तीसरी बार ताली बजाते ही नौजवान फेंके हुए पत्थर की ओर दौड़ता है और अभियोगी पानी में डुबकी लगा कर बैठ जाता है। यदि अभियोगी पानी में तब तक डुबकी लगाये रहे जब तक कि पत्थर की दिशा में दौड़ने वाला नौजवान पत्थर को छू कर पुनः वापस न आ जाये तो अभियोगी निर्दोष प्रमाणित हो जाता है। ये प्रथाएँ वर्तमान भारत की विधि-प्रणाली के दृष्टिकोण से अवांछनीय प्रतीत होती हैं क्योंकि ये वर्तमान विधि-प्रणाली के विपरीत हैं। बढ़ती हुई जागरूकता के कारण इनके प्रभाव पर भी लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। इसी कारण धीरे-धीरे ये भूतकाल के गर्त में गिरती जाती हैं और बहुधा केवल मनोरंजक प्रथाओं के रूप में ही सुनने को मिलती हैं।

पताः- अध्यक्ष समाज-शास्त्र-विभाग
डी. ए. वी. कॉलेज, देहरादून.

वशीकरण

प्रो० लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

★

नरेश—क्या परेशानी है ! ठीक दो दिन पश्चात् अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन में जाना है और यहाँ कविता अड़ियल घोड़े की तरह दो पद के बाद आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेती। काश ! कहीं से एक सिगरेट मिल जाती !! पर रेखा नहीं चाहती है कि मैं सिगरेट पीऊँ और विना सिगरेट के मेरी कल्पना-शक्ति जाग्रत ही नहीं होती। रामू...

रामू—आया सरकार।

नरेश—रेखा अब चाहे कुछ कहें, पर मैं सिर्फ सिगरेट के कारण कविता की हत्या तो नहीं कर सकता। ओ रामू !

रामू—आज्ञा सरकर।

नरेश—देखो। यह रुपया लो और जल्दी से एक पेकेट सिगरेट ले आओ।

रामू—पर बाबूजी, सिगरेट लाने को बीबीजी ने मना कर दिया है। उन्हें अगर मालूम पड़ गया तो मैं नौकरी से निकाल दिया जाऊंगा।

नरेश—मैं पूछता हूँ कि इस घर का मालिक मैं हूँ या बीबीजी ?

रामू—पर......पर—बाबूजी।

नरेश—अबे। बाबूजी—बाबूजी क्या करता है। जा जल्दी से ले आ। और देख बीबीजी को कुछ मत कहना। समझा।

रामू—अच्छा बाबूजी। अभी जाता हूँ।

नरेश—ओफ़ ! नाक में दम कर दिया है इस रेखा ने। व्याहे से तो कुँवारे ही भले थे। नौकर तक मेरा कहना मानने को तैयार नहीं। हजार बार समझाया कि प्रत्येक कलाकार अथवा साहित्यकार में कोई न कोई लत होती है। कोई शराब पीता है, तो कोई चाय। कोई अफ़ीम खाता है। और मैं तो सिर्फ सिगरेट ही पीता हूँ। पर अपनी धुन के आगे वह किसी की नहीं सुनती। मैं भी अब विद्रोह करूँगा—क्या समझती है अपने को। हूँ।

रामू—बाबूजी यह लीजिए सिगरेट का पेकेट और बाकी पैसे।

नरेश—बाकी पैसे तू रख ले।

रामू—अच्छा बाबूजी।

(सिगरेट का पेकेट खोलने व दियासलाई जलाने की ध्वपन)

नरेश—(कश लगाते हुए) ओह ! सिगरेट का एक कश जैसे प्यार का मधुर चुम्बन हो। प्रेरणा से भरा हुआ अनुभूतिमय-कविता का जनक। तभी सिगरेट के प्रति किसी ने लिखा है......

"जला जला कर चांदी से तन को,
मेरे अन्तर की आग बुझाती हो।"

रेखा—कवि महाराज। शाम होने को आई और आप अभी तक कमरे में घुसे हुए हो। घूमने नहीं चलेंगे। (हवा को सूँघने की आवाज़)
सूं सूं—यह तो सिगरेट की गंध मालूम पड़ती है। अच्छा तो तुमने फिर सिगरेट पीना शुरू कर दिया।

नरेश—इस समय झगड़ा मत करो रेखा। कविता का सारा मूड बिगड़ जाएगा।

रेखा—मैं कहती हूँ जो सिगरेट पीकर कविता करता है वह सच्चा कवि नहीं है।

नरेश—और मैं कहता हूँ कि जो पत्नि पति के कार्यों में बाधक बनती है वह पत्नी नहीं है।

रेखा—पत्नी का कर्तव्य है कि वह पति को गलत रास्ते पर जाने से रोके।

नरेश—तो आपकी राय में कविता लिखना गलत रास्ते पर जाना है ?

रेखा—मैं तुम्हें कविता लिखने से नहीं, वरन् सिगरेट पीने से रोकना चाहती हूँ। सिगरेट से मुझे सख्त नफरत है। उसकी गंध से मेरा सर घूमने लगता है। डाक्टरों का मत है कि सिगरेट पीने से कैंसर हो जाता है।

नरेश—ओह रेखा! मालूम पड़ता है कि तुम आज झगड़ा करने पर उतारू हो।

रेखा—अच्छा तो मैं झगड़ालू भी हो गई हूँ! अगर ऐसा ही था तो मुझसे शादी ही क्यों की थी? (सिसकने की आवाज)

नरेश—ओह रेखा बस करो। मुझे अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन में जाना है।

(म्यूजिक)

(कॉल बेल की ध्वनि)

नरेश—रामू!

रामू—सरकार! आपका तार आया है। यहाँ दस्तखत कर दीजिए।

नरेश—तार? शायद कवि-सम्मेलन के संयोजक का होगा। लो यह कागज तार वाले को दे देना।

(लिफाफा खोलने की आवाज)

नरेश—सोमवार को सुबह रेल से आ रहा हूँ। तुम्हारे पास ठहरूँगा। —प्रकाश

ओह! प्रकाश आ रहा है। पर सोमवार तो आज ही है, कमबख्त ने तार भी दिया है तो ऐन मौके पर। अब तो ट्रेन का समय भी हो गया। मुझे तुरन्त स्टेशन जाना होगा। रामू!

रामू—जी सरकार।

नरेश—स्टेशन तक के लिए एक टेक्सी जल्दी से ले आ।

रामू—अभी लाया बाबूजी!

(सामान इधर-उधर पटकने की आवाज)

नरेश—ओह रेखा न जाने मेरी वस्तुओं को कहाँ रख देती है, कोई चीज ठिकाने से नहीं मिलती। पर्स ही नहीं मिल रहा है। रेखा! श्रीमती रेखा देवी!! मेरा पर्स कहां है? मुझे स्टेशन जाना है।

रेखा—स्टेशन और पर्स। हा हा हा, साफ क्यों नहीं कहते कि सिगरेट के लिए पैसे चाहिए।

नरेश—नहीं रेखा, मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। यह देखो प्रकाश का तार, वह इसी ट्रेन से आ रहा है।

रेखा—ये प्रकाश कौन है?

नरेश—अरे प्रकाश। को नहीं जानतीं? मेरा जिगरी दोस्त। लंगोटिया यार। उसका चित्र तो तुमने एलबम में देखा है। हम दोनों एक साथ कॉलेज में पढ़ते थे।

(मोटर रुकने व मोटर के हार्न की आवाज, कुछ क्षण पश्चात् कॉल बेल की ध्वनि)

नरेश—मालूम पड़ता है कि प्रकाश आ गया। तुम जल्दी से तैयार हो जाओ। शानदार स्वागत होना चाहिए मेरे दोस्त का, मैं उसे रिसीव करने जा रहा हूँ।

(द्वार खुलने की आवाज)

नरेश—हल्लो प्रकाश! अच्छे तो हो?

प्रकाश—हल्लो नरेश! सब मौज बहार है?

रामू—बाबूजी टेक्सी नहीं मिली। कहें तो ताँगा ले आऊँ।

नरेश—अब जरूरत नहीं है और देख प्रकाश बाबू का सामान अन्दर ले चल। आओ प्रकाश, अन्दर चलें।

प्रकाश ओह ड्रॉइंग रूम तो कलात्मक ढंग से सजाया गया है।

नरेश—अरे भाई प्रशंसा बाद में करना, पहिले इस सोफे पर आराम से बैठ जाओ। चाय अभी आती है। यह बताओ, तुम्हरा प्रोग्राम क्या है? अचानक आये कैसे?

प्रकाश—एक केस देखने आया हूँ।

नरेश—केस? तुम डाक्टर कब से बन गये?

प्रकाश—जनाब मैं डाक्टर नहीं हूँ।

नरेश—तो फिर क्या वकील बन गये हो?

प्रकाश—नहीं, न मैं डाक्टर हूँ न वकील। मैं एक वशीकरण-शास्त्री हूँ, यानी हिप्नोटिस्ट, मानसिक चिकित्सा का विशेषज्ञ।

नरेश—हिप्नोटिस्ट? हा! हा!! हा!!! मानसिक-चिकित्सा का विशेषज्ञ? यह भी खूब रही? हा! हा!! हा!!!

प्रकाश—तुम हँसते हो नरेश ? सम्मोहन की शक्ति से तुम परिचित नहीं हो। इस शक्ति के द्वारा मैं किसी भी व्यक्ति को अपने वश में कर सकता हूँ—उस का-निर्माण भी कर सकता हूँ और विनाश भी।

नरेश—अरे भाई अगर ऐसा ही है तो इन हायड्रोजन बम बनाने वालों को अपने वश में कर लो विश्व शक्ति की सारी समस्या हल हो जायेगी।

प्रकाश—मेरी बातों का मजाक मत उड़ाओ नरेश। क्या तुम चाहते हो कि हिप्नोटिज़्म का प्रयोग तुम पर भी करूं ? ओह घबरा क्यों रहे हो... तुम पर प्रयोग नहीं करूंगा। हां यहां मैं रोगी पर होने वाले प्रयोग को अवश्य दिखाऊंगा इससे तुम यथार्थता को समझ सकोगे।

रेखा—मैं आ सकती हूँ ?

नरेश—ओह रेखा ! चली आओ। पूछने की क्या बात है। प्रकाश ये तुम्हारी भाभी हैं—श्रीमती रेखादेवी और ये हैं मेरे मित्र श्री प्रकाश दि हिप्नोटिस्ट।

रेखा नमस्ते प्रकाश बाबू।

प्रकाश—नमस्ते भाभी। आप लोगों के विवाह के अवसर पर मैं नहीं आ सका था, आज आप से मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई।

रेखा तो आप हिप्नोटिज़्म हैं।

नरेश—सब बकवास है।

प्रकाश—यह बकवास नहीं है, नरेश यथार्थ है। जानते हो फ्रॉयड ने क्या कहा है—

"मस्तिष्क सागर में बहते हुए उस हिमखंड के समान है, जिसका कुछ भाग जल के ऊपर रहता है, परन्तु अधिकांश जल में छिपा रहता है। यह छिपा हुआ अचेतन भाग मनुष्य की सारी इच्छाओं और आकांक्षाओं का स्रोत होता है। उसकी गहराइयाँ हम से छिपी रहती हैं, परन्तु हमारी सब प्रक्रियाओं के पीछे शक्ति उसी की रहती है।"

हिप्नोटिस्ट अपनी आत्मशक्ति का विकास करता है और फिर उस शक्ति का प्रभाव किसी भी व्यक्ति के अवचेतन मन पर डाल कर उससे इच्छानुसार कार्य करवा सकता है। उदाहरणार्थ हिप्नोटिज्म द्वारा में अपराधियों से उनके अपराध स्वीकार करवा सकता हूँ। मानसिक रोगियों को स्वस्थ कर सकता हूँ।

नरेश—पर तुम हिप्नोटिस्ट बन कैसे गये ?

प्रकाश—अपने परिश्रम से। साधना से। तुम जानते हो कि मनोविज्ञान के प्रति मेरी प्रारंभ से ही रुचि रही है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने भी रोगियों के इलाज के लिए हिप्नोटिज्म का प्रयोग किया था। जैसे-जैसे मैं अध्ययन और साधना करता गया मुझे सम्मोहन के प्रयोगों में सफलता मिलती गई। अस्तु, मैंने अन्य देशों की भाँति सम्मोहन का व्यावसायिक रूप में प्रयोग आरम्भ कर दिया।

नरेश—तुम्हारी बातें सुनकर मेरी उत्सुकता बढ़ गई है। क्या मैं भी सम्मोहन सीख सकता हूँ ?

प्रकाश—अवश्य। किन्तु सम्मोहन का प्रयोग केवल परिश्रमी एवं बुद्धिमान व्यक्ति ही सीख सकता है।

नरेश—तो आपका मतलब यह है कि मैं बुद्धिमान और परिश्रमी नहीं हूँ।

प्रकाश—मैंने ऐसा कब कहा ? शायद तुम्हें कुछ आत्म-ज्ञान हो रहा है।

रामू—बीबीजी। चाय तैयार है।

रेखा—अच्छा आप लोग झगड़िएगा बाद में। चाय तैयार है, पहिले इसे पीलीजिए।

प्रकाश—आल राइट भाभी ! मैं भी थक गया हूँ। कल सुबह मुझे रवाना भी होना है। चाय पीकर कुछ देर आराम करूँगा।

* * *

नरेश—प्रकाश चला गया। हिप्नोटिज़्म के सिद्धान्तों से मैं अब भली-भाँति परिचित हो गया हूँ, अब आवश्यकता इस बात की है कि किसी पर प्रयोग किया जावे। पर प्रयोग किस पर ? हाँ ठीक है। प्रयोग के लिए ऊषा उपयुक्त होगी। सौभाग्य से ऊषा यहाँ आ गई है और रेखा भी पड़ोस में गई है। उसकी अनुपस्थिति में प्रयोग करने में बहुत सुविधा रहेगी। ऊषा यहाँ तो आना।

ऊषा—जीजाजी; कहिए क्या बात है ?

नरेश—बात तो कोई खास नहीं है। मैं एक प्रयोग

करना चाहता हूँ। तुम्हारी मदद की ज़रूरत है।

ऊषा—प्रयोग के लिए जीजी से मदद लीजिएगा। अपने राम को तो नींद आ रही है।

नरेश—नींद आ रही है, कोई बात नहीं। तुम इस सोफे पर लेट जाओ।

ऊषा—हूँ हूँ जीजाजी।

नरेश—डरने की कोई बात नहीं है—हाँ ऐसे चित्त लेट जाओ—आकाश की ओर देखो यह हाथ सीधे कर लो। बस अब ठीक है। अब मेरी ओर देखो। मेरी बातों को ध्यान से सुनो। मैं तुम्हें पास देता हूँ।

ऊषा—पास तो मैं इस वर्ष हो चुकी हूँ!

नरेश—अरे। यह परीक्षा का पास होना नहीं। सम्मोहन का पास है।

ऊषा—आप जादूगरी करने लगे हैं क्या?

नरेश—बहुत बातूनी हो। अच्छा अब तुम चुपचाप सो जाओ। और सोचो तुम इस समय समस्त भय और आशंकाओं से मुक्त होकर अपार शान्ति की गोद में हो। तुम्हारा शरीर और मन परम सुख और संतोष का अनुभव कर रहा है। तुम्हारी आँखें अब अलसाने लगी हैं—थोड़ी देर में तुम सुखद निंद्रा में हो जाओगी। सोते समय तुम मेरी आज्ञाओं का पालन करोगी और जब मैं तुम्हें जगाऊँगा, तब तुम जाग जाओगी।

तुम अब सो रही हो। तुम्हारे पलक मुँद गये हैं। सुख की मधुर अमुभूति से तुम्हारा शरीर काँप रहा है। तुम सो रही हो—सो रही हो—सो रही हो—

रेखाः—अच्छा जी, मेरी गैरहाजिरी में लड़की के साथ यह क्या नाटक हो रहा है?

ऊषा—जीजी, जीजाजी मुझ पर सम्मोहन कर रहे थे।

रेखा—अच्छा अब समझी। तुम्हें शर्म नहीं आती।

नरेश—रेखा मेरी बात तो सुनो।

रेखा—मैं कुछ सुनना नहीं चाहती। मुझे पता नहीं था कि तुम इतने गिर गये हो। (सिसकियाँ)

(किवाड़ बन्द होने की आवाज)

नरेश—(किवाड़ पर थप थप) किवाड़ खोलो रेखा। मेरी बात तो सुनो। (कमरे के अन्दर से रेखा की सिसकियों की आवाज)

नरेश—ओह! सब गुड़ गोबर हो गया। क्या मुसीबत है।

(म्यूजिक)

नरेश—अजीब परेशानी है। कवि-सम्मेलन भी हाथ से गया और इधर रेखा इतनी नाराज है कि बात तक नहीं करती। उसकी नाराजी दूर करने का सबसे अच्छा उपाय है सम्मोहन का प्रयोग। पर पहिले परीक्षार्थ किस पर करूं।—हाँ याद आया। रामू पर भी तो प्रयोग किया जा सकता है। ठीक है। रेखा अभी सो रही है। राम पर ही प्रयोग कर लिया जाय। रामू ओ रामू-जरा इधर आना।

रामू—आज्ञा सरकार।

नरेश—सुनो। तुम कह रहे थे कि तुम्हारे सर में दर्द रहता है। हम आज उसे ठीक कर देंगे।

रामू—महरबानी बाबूजी।

नरेश—तुम थोड़ी देर के लिए सोफे पर लेट जाओ और ध्यान से मेरी बात सुनो।

रामू—माफ करें सरकार। बीबीजी हमें निकाल देंगी।

नरेश—अरे सुन तो, जाता कहाँ है?

रामू—माफ करें सरकार।

नरेश—ओफ़! चला गया!! रेखा है पर आफत। ठीक है। अब सीधे रेखा पर ही प्रयोग करना होगा।

(म्युजिक)

नरेश—रेखा। आखिर कब तक नहीं बोलोगी मेरी बात तो सुनो।

रेखा—मैं कुछ नहीं सुनना चाहती। मेरे सर में जोर का दर्द है। व्यर्थ परेशान मत करो।

नरेश—पर तुम्हें सुनना होगा। मैं ऊषा से रोमांस नहीं कर रहा था। सिर्फ सम्मोहन का प्रयोग कर रहा था,

(शेष पृष्ठ २४८ पर)

वाकाटक प्रवरसेन विरचित सेतुबन्ध महाकाव्य

अनुवादक—श्री विजयगोविंद द्विवेदी

★

छठा आश्वास

अह णिग्गओ जलन्तं दरडड्ढ महाभुअंगपाअवणिवहम्।
मोत्तूण घूमभरिअं पाआलवणं दिसागओ व्व समुद्दो ।।१।।
मन्दरदढपरिमट्ठं पलअविअम्भिअवराहदाढुल्लिहिअम्।
विसमं समुव्वहन्तो रामसराघाअदूमिअं वच्छअडम् ।।२।।
गम्भीरवणाहोए दीहे देहसरिसे भुए वहमाणो।
अहिणवचन्दणगन्धे अणहुक्खित्ते व्व मलअसिरआ-
सोत्ते ।।३।।
लहुइअकोत्थुविरहं मन्दरगिरिमहणसंभमे वि अमुक्कम्।
तारेक्कावलिरअणं ससिमइरामअसहोअरं वहमाणो।।४।।
गरुअं उव्वहमाणो हत्थप्फरिसपडिसिद्धवणवेअल्लम्।
सहिराउणरोमञ्चंस्खलन्तगंगावलम्बिअं वामभुअम् ।।५।।

तदनन्तर जलते पाताल वन को, जिसके महाभुजंग रूपी तरु-समुह झुलस गये हैं, तथा जिसमें धुआँ भर गया है, छोड़ कर निकलते दिग्गज के समान समुद्र मन्दराचल-द्वारा (समुद्र-मन्थन के समय) कठोरता-पूर्वक घर्षित हुए महावराह की प्रलयकाल में ऊपर को उठती दाढ़ों से खुरच गये तथा (अब) राम के बाणों के आघात से वेदनापूर्ण वक्षतट को तिरछा सप्रयास उठाये हुए अपने शरीर के अनुरूप दीर्घ भुजाओं को जिनमें गहरे और विस्तृत घाव लगे हैं, तत्काल लेप किये चन्दन की सुगन्ध जिनमें आ रही है और मलयाचल की नदियों की धाराओं के समान जिन्हें वह निर्दोष रूप से उठाये हैं, वहन किये; रत्नों के विशाल हार को जिसने (उसके) कौस्तुभ मणि के विरह को हल्का किया था जिसे उसने मन्दराचल से मन्थन किये जाने की हड़बड़ाहट में भी छोड़ा नहीं था और जो चन्द्रमा मदिरा एवं अमृत का सहोदर है, लिये; और बाँई भुजा को, व्रणों की विकलता के कारण हाथ का स्पर्श जिस पर निषिद्ध है, जिसका रोमाञ्च रक्त से लाल है और लड़खड़ाती गंगा जिसे सहारा दिये है, बोझ के समान वहन किये बाहर निकला।

आलीणो अ रहुवइं णिअअच्छाआणुलित्तमलअमणि-
सिलम्।
संसिअसुहोअइव्वं दुमं लआए व्व जाणईअ विरहिअम
।।६।।

तथा रघुपति से मिला जो जानकी रूपी लता से विरहित उस वृक्ष के समान हैं जिसने मलय पर्वत की मणिशिला को अपनी प्रतिच्छवि से प्रसाधित किया है तथा जो सेवन किये जाने में आश्रितों को सुखदायक है।

सरघाअरुहिरकुसुमो तिवहअल्लीपिणद्धमणिरअणफलो।
रामचरणेसु उअही दढपवणाइद्धपाअओ व्व णिवडिओ
।।७।।

राम के चरणों में समुद्र प्रचण्ड पवन-द्वारा गिराये गये वृक्ष के समान, बाणों के व्रणों से निकला रक्त जिसके कुसुम हैं और जिसके मणिरत्न-रूपी फल गंगा-रूपी लता में छिपे हैं, गिर पड़ा।

पच्छा अ हित्थहिअआ जत्तो च्चिअ णिग्गआ विव-
लहत्थमुही।
हरिचरणम्मि तहिं चिअ कमलाअम्बम्मि तिवहआ
वि णिवडिआ ।।८।।

और तत्पश्चात् त्रस्त हृदय त्रिपथगा भी कमल के अरुणाभ हरिचरण में, जहाँ से निकली है वहीं तिरछा मुख कर गिर पड़ी।

अइ मउअं पि भरसइं जम्पइ थोअं पि अत्थसार-
म्भहिअम्।
पणअं पि धीरगरुअं थुइसंनद्धं पि अणलिअं सलिलणिही
॥६॥

जल-निधि तदनन्तर कोमल किन्तु कार्य-गौरव को वहन करने में सक्षम स्वल्प किन्तु अर्थ-बहुल, नम्र किन्तु धैर्य की गरिमा-युक्त तथा स्तुति-पूर्ण, किन्तु असत्य-रहित वचन कहता है।

दुत्तारत्तणगरुइं थिरधीरपरिग्गहं तुमे च्चिअ ठविअम्।
अणुवालन्तेण ठिइं पिअं त्ति तुह विप्पिअं मए कह
वि कअम् ॥१०॥

आपके ही द्वारा स्थापित मर्यादा का, जो पार किये जाने की दृष्टि से बहुत विशाल है तथा स्थिरता एवं धैर्य-द्वारा धारणीय है, पालन करते हुए, क्या मैंने आपको यह प्रिय है, ऐसा समझकर किसी भी प्रकार (आपका) अप्रिय किया है?

विअसन्तरअखउअं मअरन्दरसुद्धुमाअमुहलमहुअरम्।
उउणा दुमाण दिज्जइ हीरइ ण उणो तमप्पणा च्चिअ
कुसुमम् ॥११॥

(वसन्त) ऋतु वृक्षों को विकसित होते समय पराग से धूसरित और मकरन्द रस से उन्मद मधुकरों को गुंजरित करने वाले पुष्प देती है, (किन्तु) स्वयं ही फिर उनका अपहरण नहीं करती।

किं पम्हट्ठ म्हि अहं तुह चलणुप्पणतिवहआपडिउण्णम्।
खअकालाणलखविअं धरणिअलुद्धरणविलुलिअं
अप्पाणम् ॥१२॥

क्या प्रलयाग्नि द्वारा क्षीण किये गये और पृथिवी-तल का उद्धार करने में हिलोरे गये स्वयं को मैं भूल गया हूँ जो आपके चरणों से उत्पन्न गंगा-द्वारा पुनः पूरित किया गया था।

चलणेहिं महुविरोहे दाढाघाएहिं धरणिवेढुद्धरणे।
सोअकिलिन्तेण तुमे इण्हिं दहमुहवेह सरेहिं विलुलिओ
॥१३॥

मधु से हुए संग्राम में चरणों-द्वारा, पृथिवी-तल का उद्धार करने में डाढ़ों के आघातों से और अब दशमुख-वध के प्रसंग में (अपनी) शोक-संतप्त अवस्था में आपने वाणों से (मुझे) विमर्दित किया है।

णिअआवत्थाहि वि मे एअं धीरेण विप्पिअं धीर
कअम्।
जं णेण पअइसोम्मा कह वि विसंवाइआ तुह
मुहच्छाआ ॥१४॥

धैर्यशाली राम, मेरी स्वकीय स्थिति के जो विपरीत पड़ा है, उसे भी मैंने धैर्य-पूर्वक ही किया है, जब, कैसे भी हुआ, (आश्चर्य है कि) आपकी स्वभावतः सौम्य मुख-कान्ति इसके कारण सामंजस्यहीन बन गयी।

एअं तुह एआरिससुरकज्जसहस्सखेअवीसामसहम्।
जअपव्वालणजोग्गं परिरक्खसु पलअरक्खिअं जलणि-
वहम् ॥१५॥

इस जलराशि की, जो देवताओं के प्रस्तुत-जैसे सहस्रों कार्यों की थकान में आपको विश्राम दे सकती है, विश्व को आप्लावित करने की जिसमें सामर्थ्य है और प्रलय-कार्य के लिए जो सुरक्षित की गयी है, रक्षा कीजिए।

अपरिट्ठिअमूलअलं जत्तो गम्मइ तहिं दलन्तमहिअलम्।
ण हु सलिलणिब्भरं च्चिअ खविए वि ममम्मि दुग्गमं
पाआलम् ॥१६॥

पाताल, जो केवल जल से आपूरित होने पर ही नहीं, वरन् मेरा क्षय हो जाने पर भी दुर्गम है, जिसके अस्थिर मूल तल पर जहाँ भी चलिए, पृथ्वी का स्तर खिसक जाता है।

तं कालस्स णिसम्मउ कह वि दरुक्खित्तदसमकण्ठक्खा-
लिअम्।
घडिअ गिरिसेउबन्धं च्चिरआलाउञ्छिअं दहमुहम्मि
पअम् ॥१७॥

काल का पैर, जो अधकटे दसवें शिखर से खिसल गया है और बहुत देर से (उठा हुआ) मुड़ा है, पर्वतों से निर्मित सेतु-रचना-द्वारा दशमुख पर आरोपित हो।

अह जअदुप्परिअल्ले दहमुहकुविएण पवअवइपचक्खम् ।
रहुणाहेण समुद्दे बालिम्मि व बाणणिअमिअम्मि पसन्ते
॥१८॥

पवआहिदइविइएणा रामाणन्ती पवंगमेसु विलग्गा ।
सेसफणाविच्छूढा तिहुअणसारगरुई महि व्व भुअंगे ॥१९॥

तदनन्तर वानर-पति (सुग्रीव) के प्रत्यक्ष देखते दशमुख पर कुपित रघुनाथ-द्वारा जगत् के लिए दुर्जय बालि के समान ही संसार के लिए दुस्तर समुद्र को बाण से शासित कर पूर्णतः शान्त कर दिये जाने पर सुग्रीव द्वारा दी गयी राम की आज्ञा वानरों ने उसी प्रकार ग्रहण की जैसे शेषनाग द्वारा फनों से उतारी त्रैलोक्य का सार होने की गरिमा-युक्त पृथिवी को भुजंग धारण करते हैं।

तो हरिसपढमतुलिए चलिआ फुट्टन्तपम्हविसमूससिए ।
वेउक्खअसीमन्ते पवआ धुणिऊण केसरसडुग्घाए ॥२०॥

तब वानर अपनी केशवार की केशराशियों को, जो हर्ष के कारण पहले ही ऊपर उठ गयी हैं, जिनकी असंयत प्रफुल्लता केशाग्रों में व्यक्त हुई है और (दौड़ने के) वेग के कारण जिनमें माँग पड़ गयी हैं, कम्पित कर चल दिये।

पवअक्खोहिअमहिअलधुअमलअपडन्तसिहरमुक्ककल-
अलो ।
उद्धाइओ अणागअघडन्तधरणिहरसंकमो व्व समुद्दो
॥२१॥

वानरों-द्वारा पृथिवी-तल क्षोभित किये जाने से कम्पित मलय पर्वत के गिरते शिखरों के कारण समुद्र कल-कल शब्द करता मानो भविष्य में निर्मित होने जा रहे पर्वतों के सेतु से पूर्व उछला।

कम्पइ महेन्दसेलो हरिसंखोहेण दलइ मेइणिवेढम् ।
सइदुद्दिणतणाओ णवर ण उद्धाइ मलअवणकुसुमरओ
॥२२॥

वानरों की सवेग हलचल से महेन्द्र पर्वत काँपता है और मेदिनीतल पिसता है। केवल मलयवन के कुसुमों का पराग, जो सतत वर्षा के कारण गीला है, नहीं उड़ता।

तो संचालिअसेलं कइ वि तुलग्गेण समघडन्तक्कम्पम् ।
दूरं पवंगमबलं णहमुहलग्गवसुहं णहं उप्पइअम् ॥२३॥

तदनन्तर वानर-सेना, (उछलते समय) जिसके नखों के अग्रभागों से पृथिवी संलग्न है, जिसने पर्वतों को विचलित किया है और सन्तुलन में अधिक बैठकर जिसने एक साथ कम्पन उत्पन्न किया है, आकाश में दूर उछल गयी।

उप्पअणोणअमहिअलणइमुहपडिसोत्तपत्थिओ
सलिलणिही ।
जलणिवहाइअसिढिले पवउच्छेवणसहे करेइ महिहरे
॥२४॥

(वानरों के) उछलने से पृथिवी तल झुक जाने के कारण नदियों के मुखों में होकर धाराओं के विपरीत प्रवाहित हुआ समुद्र पर्वतों को जल-राशियों के आघात से ढीले और वानरों-द्वारा उखाड़े जाने योग्य करता है।

फुरमाणजलणपिङ्गलणिरन्तरुप्पइअपवअपेल्लिज्जन्तो ।
जत्तो दीसइ तत्तो णज्जइ धूमणिवहो त्ति गअणुद्देसो
॥२५॥

स्फुरित होती अग्नि के समान पिंगल वानरों से, जो सघनता से उछले हैं, आकीर्ण आकाश का प्रदेश जहाँ दिखाई देता है वहाँ वह (इस स्फुरित अग्नि से प्रसूत) धूमपुंज के समान प्रतीत होता है।

दीसइ दूरुप्पइअं उअहिम्मि अहोमुहोसरन्तच्छाअम् ।
पाआलं व अइन्तं धरणिहरुद्धरणकंखिअं कइसेणम्
॥२६॥

दूर उछल गयी कपियों की सेना, जिसके अधोमुख प्रतिबिम्ब समुद्र में नीचे की ओर जा रहे हैं और जो पर्वतों को उठाकर लाने की इच्छुक हैं, पाताल को दिखाई देती है।

अदिट्ठदिसाणिवहं जाअं पवअबलसंणिरुद्धालोअम् ।
विच्छिण्णाअवकसणं दिअसमुहे वि दिअसावसाणे
व्व णहम् ॥२७॥

दिवस के प्रारम्भ में (प्रातः) भी आकाश, जिसका दिङ्मंडल दिखाई नहीं देता, वानर सेना से जिसका

प्रकाश रुक गया है और धूप के विशृंखलित हो जाने से जो श्यामल है, दिवस के अवसान-जैसा हो गया है।

ओवइआ अ सरहसं तंसट्ठिअपुट्ठिणीसरन्तरविअरा।
सेलेसु मुक्ककलअलपडिरवभरिअकुहरोअरेसु पवंगा॥२८॥

और वानर, जिनकी तिरछी पीठ पर से सूर्य की किरणें निकल रही हैं, पर्वतों पर, जिनके गुहागर्भ (इनके) उन्मुक्त कल-कल के प्रतिघोष से भर गये हैं, वेग-पूर्वक कूद पड़े।

वेओवइआण अ सिं जाअं दलिअमहिसंधिबन्धणमुक्कम्।
उक्खलिअतुलेअव्वं कह वि भुअंगधरिअट्ठिअं गिरिआलम्
॥२९॥

और इन वेगपूर्वक कूदे वानरों के लिए पर्वतों का समूह जो पृथिवी के साथ सन्धि बन्धन विच्छिन्न हो जाने से मुक्त हो गया है और नागों-द्वारा किसी प्रकार धारित स्थित है, उखड़ जाने से उठा लेने योग्य हो गया है।

आढत्ता अ तुलेउं उरपडिअविसट्टगण्डसेलद्धन्ते।
कुविअमइन्दोत्थगिअसंखोहप्फिडिअवणगए धरणिहरे
॥३०॥

और (उनने) पर्वतों को जो मानों कुपित मृगराज-द्वारा आक्रान्त और संभ्रम में आहत वन गज हैं तथा जिनके गण्ड स्थान रूपी विच्छिन्न शैल-खण्ड (वानरों के) वक्षस्थल पर गिरे हैं उठाना प्रारम्भ किया।

वच्छुत्थङ्घिअकडआ तो ते कडअपडिअट्टलिअवच्छअडा
सेलेसु सेलगरुआ पवआ पवएसु महिहरा अ पउत्ता
॥३१॥

तदनन्तर पर्वतों के समान विशाल वानर जिनने पर्वतों के नितम्बों को वक्ष-द्वारा उठा दिया है और पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत जिनने नितम्ब-भागों से (वानरों के) वक्ष-तटों को प्रतिधर्षित किया है, परस्पर बराबरी के रहे।

पवअभुअणोल्लिआणिअमहिहरपडिपेल्लणोणउण्ण-
अविसमा।
जाआ पलोट्टिओअहिंवारवारभरिआ महिअलद्धन्ता।
॥३२॥

पृथिवी-तल के प्रदेशों को वानरों-द्वारा (उखाड़ने के प्रयास में) भुजाओं से धकेले गये और खींचे गये पर्वतों की प्रतिप्रेरणा से (कभी) नीचे और (कभी) ऊँचे होकर विषम हुए हैं ढुलकते समुद्र ने (नीचे होने के समय) बार-बार आपूरित किया है।

विसहिअवज्जप्पहरा उक्खम्भन्ति खअमारुअडिखम्भा।
अगणिअवराहणिहसा पलअजलुत्थङ्घपब्बला धरणिहरा
॥३३॥

वे भूधर उखाड़े जाते हैं, जिनने इन्द्र के वज्र-प्रहारों को सहन कर लिया है, जो प्रलय-मारुत को रोकने में सक्षम हुए हैं, जिनने महावराह के कुछ घर्षणों को गिना ही नहीं है और जिन की प्रबलता के कारण प्रलय का जल उन पर से उछलता चला गया है।

जलओवद्धविमुक्का अणन्तरोइण्णसरअवन्धावडिआ।
एक्कक्खेउग्गाहिअदरवसुआअविसआ विसट्टन्ति गिरी
॥३४॥

पर्वत, जो मेघों के बरसने से ढीले हो गये हैं, (किन्तु) तदनन्तर आई शरद ऋतु के मार्ग में पड़ गये हैं और (इस प्रकार) कुछ-कुछ सूख जाने से स्वच्छता-पूर्वक एक ही बार (खेप, खेई) में उठा लिये गये हैं, बिखरते हैं।

विहुणन्ति विहुव्वन्ता वलेन्ति सेला पवंगमवलिज्जन्ता।
णामेन्ति णमिज्जन्ता उक्खिप्पन्ता अ उक्खिवेन्ति
महिअलम् ॥३५॥

वानरों-द्वारा हिलाये जाते पर्वत (अपने साथ) पृथिवी-तल को हिलाते हैं, तिरछे किये जाते में तिरछा करते हैं, झुकाये जाते में झुकाते हैं, और उठाये जाते में उठाते हैं।

दलिअमहिवेढसिढिला मूलालग्गभुअइन्दकड्डिज्जन्ता ।
संचालिज्जन्त च्चिअ अइन्ति गरुआ रसाअलं धरणिहरा
॥३६॥

भूमि का आवेष्टन भंग हो जाने से ढीले हुए पर्वतों को जैसे ही हिलाया जाता है, उनके मूल को पकड़ कर भुजगेन्द्र खींचने लगते हैं और अधिक भारी होकर वे रसातल की ओर जाते हैं।

णवपल्लवसच्छाआ जलओअरसिसिरमारुअविइज्जन्ता ।
वाअन्ति तक्खणुक्खअहरिहत्थुक्खित्तभेम्मला मलअदुमा
॥३७॥

मलयाचल के वृक्ष, जो नूतन किसलयों की छाया से युक्त हैं, जलदों के भीतरी भाग की शीतल वायु जिनका पंख झल रही है और जिन्हें तत्काल ही उखाड़ा गया है, वानरों के हाथों से फेंके हुए व्याकुल सूखते हैं।

कम्पिज्जन्तधराहर सिहरसमाइद्धजलहरर उग्गित्था ।
गअसुहवत्तणिसण्णा वेवइ हंसी सहस्सवत्तणिसण्णा ॥३८॥

सहस्रदल (कमल) पर बैठी हंसी जो हिलाये जाते पर्वतों के शिखरों द्वारा विच्छेदित जलधरों के (वर्षा का भ्रम उत्पन्न करने वाले) कोलाहल से उद्विग्न है और जो (उत्तर दिशा का) सुखद मार्ग अवरुद्ध हो जाने से (अथवा सुखदायक हंस के पहले ही उड़जाने से) निश्चेष्ट हो गयी है, काँपती है।

पवओवऊढकड्ढिअसेलब्भन्तरभमन्तविसमक्खलिया ।
गहिरं रसन्ति वित्थअवच्छत्थलरूद्धणिग्गमा णइसोत्ता
॥३८॥

नदियों की धाराएँ, जिनका निर्गम स्थल (वानरों के) विस्तृत वक्ष-स्थलों से रोका गया है, वानरों द्वारा बाहों में भरकर खींचे गये पर्वतों के भीतरी भाग में भटकती हुई विषम मार्गों से गंभीर घोष करती फूट पड़ी हैं।

अद्धुक्खितपसिढिले अद्धवहभुअंगकड्ढिअद्धत्थमिए ।
उम्मूलेन्ति रसाअलपङ्कक्खुत्तसरिआमुहे धरणिरे ॥४०॥

(वावर) अध-उखड़े और ढीले पड़ गये पर्वतों को, जो आधे मार्ग पर भुजंगों-द्वारा खींचे जाने से (अपने स्थान पर) अधगढ़े रह गये हैं तथा जिनकी सरिताओं के मुख रसातल कीच में डूबे हैं, उखाड़ते हैं।

उव्वेल्लइ व णिराअं पासल्लन्तेसु सिहरपडिमुच्चन्तम् ।
उक्खिप्पन्तेसु पुणो संवेल्लिज्जइ व महिहरेसु णहअलम्
॥४१॥

पर्वतों के एक पार्श्व को झुकाये जाने पर उनके शिखरों से मुक्त हुआ आकाशतल निरावृत विस्तृत होता है और उनके उठाये जाने पर (आच्छादित होने से) मानो पुनः सिमिटता है।

उम्मूलेन्ति पवंगा मुअसिहरारूढणिच्चलपरिग्गहिए ।
कडआवडणुत्थङ्घिअविसमविवत्तविवरम्मुहा धरणिहरे
॥४२॥

वानर पर्वतों को उखाड़ते हैं और उनके कंधे पर वे हिलडुल न सकें इस प्रकार उन्हें पकड़ रखा है तथा उनके खिसकते कगारों को ऊपर साधे हुए उनका मुख ऊँचा नीचा, तिरछा और पीछे को झुका है।

हरिभुअकड्ढिअमुक्का भुअङ्गदढवेढणावलम्बणधरिआ ।
भिज्जन्ता वि महिअले ओअल्लन्ति ण पडन्ति
चन्दणविडवा ॥४३॥

वानरों ने अपनी भुजाओं से खींच कर चंदन के जिन वृक्षों को तोड़ दिया है, वे टूट कर भी पृथिवीतल पर गिर नहीं पड़ते, (किन्तु) दृढ़ता-पूर्वक लिपट गये भुजंगों के सहारे (अधर में) ठहर कर झुक (भर) जाते हैं।

पडिसमइ णहणिबद्धो चिरेण भरिअभणाअगम्भीरअरो ।
हरिभुअविक्कमपिसुणो अअण्डभज्जन्तधरणिहर
णिग्घोसो ॥४४॥

हठात तोड़े जा रहे पर्वतों का निर्घोष जल-भरे बादलों के नाद से भी अधिक गंभीर है, वानरों के बाहु-विक्रम की सूचना देता है और आकाश में चिर-काल तक ठहर कर शान्त होता है।

पासल्लन्ति महिहरा जत्तोहुत्ता पवंगमभुअक्खित्ता ।
धुव्वन्तधाउअम्बा तत्तोहुत्ता वलन्ति सरिआसोत्ता ॥४५॥

वानरों की भुजाओं से प्रेरित पर्वत जिस ओर को एक पार्श्व से झुकते हैं, गेरू (की शिलाओं) को धोने से अरुणाभ हुई नदियों की धाराएँ उसी ओर को तिरछी हो जाती हैं।

दीसन्ति पवअवलिआ आवत्तेसु व महोअहिस्स वलन्ता।
सरिआण घडिअपत्थिअवलन्तसलिलवलअन्तरेसु महिहरा ॥४६॥

वानरों द्वारा (उखाड़ने में) घुमाये गये पर्वत, उनसे सटकर प्रवाहित चक्कर लगा रहे (अपनी) सरिताओं के वलयों के बीच में मानो समुद्र के भ्रमरों में चक्कर खाते दिखाई देते हैं।

मअरन्दगरुअवक्खं पासोअल्लन्तवणलआविच्छूढम्।
ण मुअइ कुसुमग्गोच्छं आसाइअमहुरसं पि महुअरमिहुणम् ॥४७॥

मधुकरों का मिथुन सुमनों के गुच्छे को, यद्यपि उसका मधुरस उसने पान कर लिया है और एक ओर को झुकती वनलता ने उसे फेंक दिया है, पंख मकरन्द से भारी हो जाने से नहीं छोड़ता।

उप्पुअसुरहिगन्धमअरन्दरञ्जिआइं
ठिअपरिलेन्तभमरभमरोअरञ्जिआइं।
कमलवणाइँ सूरपरिमासविअसिआइं
उच्छलिए सराण सलिलम्मि विअसिआइं ॥४८॥

(पर्वतों पर के जलाशयों का जल उछलने से) आकाश में स्थित हुए कमल वन, सूर्य (रश्मियों) के आलिंगन से विकसित हुए हैं, सुगन्ध से महकते, मकरन्द से रंजित हैं तथा उन पर बैठे और उनके भीतर ही चक्कर खाते भ्रमरों के (श्याम) उदर का मानो उनके अंजन लगा है।

गीत

श्री चक्रधर 'नलिन'

करो नहीं पहचान गीत के गाने वाले,
तेरे हैं सब गीत बड़े ही मधुर निराले !

बने सुमन अक्षर, सौरभ बन गया राग है,
छन्द छन्द में भरा हुआ नव अंगराग है,
वर्षा मंगल तू रिमझिम के स्वर में गाले !
करो नहीं पहचान गीत के गाने वाले !

गर्जन तेरा कण्ठ बिजलियाँ तेरी तूली,
सभी इन्द्र-धनु की रेखाएँ भूली-भूली,
सूँघ नहीं तू आज हार पहनाने वाले !
करो नहीं पहचान गीत के गाने वाले !

मत यह भी तू जान कि कोई क्या कहता है,
देख कि भावों का निर्झर अविरल बहता है,
निज पर रीझ न सारा जगत् रिझाने वाले !
करो नहीं पहचान गीत के गाने वाले !

पता—हरि-सदन, गान्धीद्वार-झाँसी (उ. प्र.)

संत ज्ञानेश्वर-संग्राम या संगम

(३)

प्रो. शं. गो. वालिम्बे

★

यह प्रश्न विवादास्पद ही है कि ज्ञानेश्वर का शुद्ध-पत्र मिला या नहीं। यह विवाद एक समस्या है जो सुलझती है और फिर उलझ जाती है। यदि हम यह मान लेते हैं कि उन्हें शुद्धि-पत्र न प्राप्त हो सका, तो यह तर्क सहज ही में बैठ जाता है कि उनका यज्ञोपवीत-संस्कार न हुआ होगा और जब यज्ञोपवीत-संस्कार ही न हुआ तो विवाह-संस्कार तो दूर की बात है। हमें यहाँ यह बात स्पष्ट रूप में ध्यान में रखना चाहिए कि न केवल ज्ञानेश्वर ने ही विवाह नहीं किया, वरन् चारों भाई-बहिनों ने ही अपने आपको इस बन्धन में नहीं बांधा याने श्री निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव एवं मुक्ताबाई अविवाहित ही रहे। किन्तु हमें यहाँ लिखने में गर्व का अनुभव होता है कि सारा महाराष्ट्र ही आज अपने को उनकी संतान मानता है। उनका वंश निर्वंश न होकर अखंड हो गया—चिरंजीव हुआ। श्री ज्ञानेश्वर का सारा जीवन विहंगम दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो श्वेत सरल गंगा की धारा बहती हो। उसमें भोग-विलास का कूड़ा-करकट कहीं दृष्टिगोचर ही नहीं होता। विट्ठलपंत के देह-त्याग से लगाकर पैठण में चमत्कार करने तक हमें ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं भगवान् इस पृथ्वी का उद्धार करने आये हों। जितना-जितना समाज ने तंग किया उतना ही ज्ञानेश्वर को अपने आध्यात्मिक बल-प्रदर्शन के हेतु बाध्य होना पड़ा। जैसा कि तुलसीदास ने लिखा है;

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा,
तासु दुगन कपि रूप दिखावा॥

किन्तु दुःखों के प्रति या उनको दिये गये कष्टों के प्रति उन्होंने कोई रोष प्रकट नहीं किया। उनके सारे जीवन से एक ही बात प्रकट होती है, और यह है 'विश्व-बन्धुत्व' की भावना। 'अवघे विश्वचि माझें घर' यह सारा संसार ही मेरा घर है। भले बुरे सब ही मेरे अपने हैं, उनमें भी वही राम है, जो मुझमें है। यही भावना हमें उनके सब कृत्यों के पीछे छिपी हुई प्रकट होती है। समाज की असन्तुलित अवस्था पर ज्ञानेश्वर ने कटाक्ष किया है। समाज-व्यवस्था ने जो नियम और उपनियमों की रूढ़ि बनाली थी, ज्ञानेश्वर ने उसकी बुराइयों के विरुद्ध युद्ध का नारा लगाया और भूली-भटकी जनता के सामने धर्म का विशुद्ध रूप रखा जो युगों तक अक्षुण्ण रहेगा।

संत और चमत्कारः—

दुनिया चमत्कार को नमस्कार करती है, यह कहावत बहुत पुरानी है। भारतीय पुराणों में चमत्कारों का विवरण बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है। इसी कारण उन पर कपोल-कल्पना का दोषारोपण किया जाता है। संतों के नाम के पीछे भी चमत्कार की डिग्री लगी रहती है। चाहे वे भारतीय हों या यूरोपीय या और कहीं के। मानवीय भावनाओं पर उनका अधिकार तभी पुष्ट होता है जब वे अलौकिकता के साथ अपना नाता जोड़ लेते हैं।

इसी प्रकार ज्ञानेश्वर के जीवन में भी चमत्कारों का स्थान प्रमुख है। भक्तगण आज भी बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ उन चमत्कारों का विवरण भावुकों को सुनाया करते हैं। श्री ज्ञानेश्वर के कुछ चमत्कार निम्न हैं:—

(१) भैंसे द्वारा वेदपाठ करवाना

(२) पीठ पर मांडे (एक प्रकार का व्यंजन) सेंकना

(३) मुर्दे को जिन्दा करना

(४) जड़ दीवार पर सवारी करके चांगदेव से मिलने जाना।

श्री ज्ञानेश्वर के सम्बन्ध में अनेक दंत-कथाएं प्रचलित हैं। उन समस्त कथाओं को छोड़ते हुए हमने केवल यहाँ कुछ प्रमुख चमत्कारों को ही प्रस्तुत किया है। समाज में अन्य संत महानुभावों के प्रति इस प्रकार के चमत्कारों की कथाएँ प्रचलित हैं ही। महानुभाव पंथ के प्रवर्तक श्री चक्रधर स्वामी भक्त नामदेव, संत गोरा कुम्हार, स्वामी एकनाथ, महात्मा तुकाराम, संत रामदास, गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि सूरदास, महात्मा कबीर, महात्मा ईसा आदि के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारों की कथाएँ समाज में प्रचलित हैं। पर प्रश्न यह है कि क्या ये कथाएँ कपोल-कल्पित हैं या उनमें कोई सत्य का अंश भी है? इस पर हमें विचार करना है। आज के भौतिकवादी युग में हमारी धारणा तर्क की कैंची से काटी-छाँटी जाती है, श्रद्धा और विश्वास के पर कट चुके हैं, अतएव इस टूटी-फूटी आधार-शिला पर ही हम संक्षेप में इन चमत्कारों पर विचार करेंगे।

शुद्धि-पत्र के प्रसंग में ज्ञानेश्वर को पैठण जाना पड़ा था। पैठण नगर दक्षिण की काशी नगरी है। कर्म-कांडी एवं शास्त्री पंडितों का यहाँ जमाव रहता था। आलंदी के ब्राह्मण-वर्ग ने अपनी जिम्मेदारी से पीछा छुड़वाने के लिए श्री ज्ञानेश्वर को पैठण जाकर शुद्धि-पत्र ले आने की प्रेरणा दी तथा अपनी ओर से उन पंडितों के नाम एक पत्र भी दे दिया। पत्र लेकर जब ज्ञानेश्वर पैठण पहुँचे तो कर्मठ ब्राम्हणों ने इनका सत्कार नहीं किया, उलटे इन भाई-बहिनों के ज्ञान की खिल्ली उड़ाई। यथार्थ यह था कि उन्हें इस बात पर विस्मय हो रहा था कि ये बालक इतने छोटे-छोटे दिखलाई देते हैं और आत्मा एवं परमात्मा की बातें करते हैं। उन लोगों ने इनके ज्ञान का आदर तो किया नहीं बल्कि उसे व्यंग्य बना कर इन भाई-बहिनों को हतोत्साह करने की ठानी। समस्त जीव-सृष्टि में एक ही राम है, यह बात श्री ज्ञानेश्वर द्वारा सुनते ही उनमें से एक अल्प मति ने कहा कि तुम जब इतने ज्ञान की बात करते हो तो देखो यह पास से जा रहा भैंसा, इस भैंसे में और तुम में तो कोई अन्तर ही नहीं है। अगर तुम में कुछ शक्ति है तो जैसा तुम वेदपाठ करते हो वैसा ही इससे करवा दो, तब जानें। यह बात ज्ञानेश्वर के लिए एक चुनौती के समान थी। ज्ञानेश्वर ने उसके सिर पर हाथ रखा और वह मूक भैंसा मनुष्य की बोली में वेद पाठ करने लगा। ब्राह्मण लोग दाँतों तले उंगली दबा गये। जैसा कि कहा जाता है कि वेद-पाठ करने के बाद उस भैंसे में आत्म-ज्ञान जाग्रत हो गया। वेद-पाठ करने के बाद वह अपने मालिक के साथ नहीं गया, बल्कि ज्ञानेश्वर के साथ हो लिया। एक प्रचलित कहानी के अनुसार इसी भैंसे को आले नामक स्थान पर स्वयं ज्ञानेश्वर ने समाधि दिलाई। यह घटना जहाँ घटी थी वह स्थान तो आज तीर्थस्थान हो गया है और भक्तगण दर्शन के लिए वहाँ जाया करते हैं।

दूसरा चमत्कार है पीठ पर माँडे सेंकना विट्ठल पन्त के देह त्याग ने भी ज्ञानेश्वर आदि भाई-बहिनों के सामाजिक वहिष्कार का अन्त नहीं किया, समाज उन्हें उसी दृष्टि से देखता रहा। जब ज्ञानेश्वर पैठण गये तो माँडे सेकने के लिये उन्हें एक मटके की आवश्यकता हुई। मटके को चूल्हे पर चढ़ा कर माँडे सेंके जाते हैं। मांडे पापड़ के समान होते हैं। पैठण में भी सामाजिक बहिष्कार के कारण कुम्हार ने उन्हें मटका नहीं दिया। इस पर ज्ञानेश्वर ने अपनी बहिन मुक्ता से कहा कि तुम इनको मेरी पीठ पर ही सेंक लो। उन्होंने अपने योग-बल से इतनी उष्णता अपनी पीठ में पैदा की कि मांडे वैसे ही सिक गये जैसे कि चूल्हे पर चढ़ा कर मटके पर सेके गये हों।

तीसरा चमत्कार है, मुर्दे को जीवित करना। कथा इस प्रकार है कि एक बार ज्ञानेश्वर नेवासे नायक ग्राम में ठहरे हुए थे। संयोग-वश जिस वृक्ष के नीचे वे ठहरे हुए थे वहाँ एक स्त्री आई। उस स्त्री ने आकर उन्हें नमस्कार किया। इसके उत्तर में उन्होंने उसे आशीर्वाद दे दिया कि तू पुत्रवती हो। औरत तो सती होने जा रही थी, आशीर्वाद सुनते ही रो पड़ी और अपनी सारी कथा सुना डाली। ज्ञानेश्वर ने उसके पति का नाम पूछा उसने अपने पति का नाम सच्चिदान्द बतलाया। इस पर ज्ञानेश्वर ने कहा कि जो स्वयं सत्, चित और आनन्द है वह कभी मर नहीं सकता। मुर्दा जीवित हो गया, उस बाई का गया हुआ सौभाग्य वापिस आ गया। जैसा कि कहा जाता है कि यही वह व्यक्ति है जो आगे चल कर सच्चिदान्द बाबा हुआ और ज्ञानेश्वरी का सम्पूर्ण लेखन कार्य इसके द्वारा सम्पन्न हुआ।

चौथा चमत्कार चांगदेव का है। चांगदेव योगिराज था। चांगदेव की कथा बहुत प्रसिद्ध है। चांगदेव के योग की कहानियाँ सारे महाराष्ट्र में प्रचलित थीं। पैठण से ज्ञानेश्वर की कीर्ति का प्रसार हुआ। छोटे-छोटे बालकों ने बड़े-बड़े शास्त्रियों को हरा दिया यह बात सारे देश में फैल गई।

श्री चांगदेव उस कविता को पढ़ तो गये किन्तु उसके भावों को न समझ सके। ठीक इसके विपरीत चांगदेव के मन में यह भाव पैदा हुआ कि जब इस कविता में योग-विद्या का कोई महत्व ही नहीं है तो मैं योग-बल द्वारा इन बालकों पर अपना अधिकार जमा सकूंगा। यह भाव मन में आते ही चांगदेव ज्ञानेश्वर से मिलने के लिए निकल पड़े। जिनके नाम मात्र से मन में भय पैदा हो जाता है ऐसा पशु-जिसकी लपलपाती लाल जिह्वा, जिसका सुदृढ़ भयंकर जबड़ा और जिसमें चमचमाते तीखे, डाढ और दांत, ऐसे व्याघ्र पर सवारी करके; चांगदेव आगे बढ़े उनके मस्तक पर जटाएँ लटक रहीं थीं और उनकी अंगारों के समान लाल-लाल आंखों से भय को भी भय लगने लगता था। उनके एक हाथ में भयंकर त्रिशूल था और दूसरे हाथ में सर्प का एक चाबुक। उनके पीछे चांगदेव का जय-घोष करते हुए उनके १४०० शिष्यों की एक टोली चल रही थी। इस सारे दृश्य को देखकर ऐसा लगता था मानो कोई राजा दल-बल सहित-विश्व विजय को निकला हो। इधर तो यह भीषण तैयारी थी उधर ज्ञानेश्वर प्रातःकाल की वायु सेवन करते हुए उगते सूर्य की कोमल किरणों में बैठे हुए सुख-संवाद में मग्न थे। इसी समय यह खबर मिली कि श्री चांगदेव दल-बल सहित आ रहे हैं। ज्ञानेश्वर के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि जब इतने बड़े योग-सम्राट् दल-बल सहित आ रहे हैं, तो शिष्टाचार के नाते उनका आगे जाकर सम्मान करना आवश्यक है। श्री ज्ञानेश्वर ने उस शिष्टाचार को निभाया और वह शिष्टाचार चांगदेव के केवल उद्धार का ही नहीं मानो उसके पुनर्जन्म का कारण हुआ। उस समय ज्ञानेश्वर एक अध-गिरी हुई दीवार पर बैठे हुए थे। उन्होंने बड़े स्नेह से उस दीवार से कहा कि 'ऐ बाई दीवार, तू ही चल-हम ही उनका सम्मान करें।' और परम आश्चर्य! वह जड़ दीवार ज्ञानेश्वर की बात न टाल सकी और ज्ञानेश्वर को लेकर शिष्टाचार का पालन करने चांगदेव की ओर चल पड़ी। संसार में जड़ दीवार के चलने का दृष्टांत कहीं नहीं मिलता। यह चमत्कार अद्वितीय है, अनोखा है। चांगदेव को यह कल्पना भी न थी कि ज्ञानदेव इस प्रकार आएँगे। चांगदेव चकित रह गये। वह हत-बुद्धि हो गये, उनका अभिमान गल गया, और वह ज्ञानेश्वर के आगे नतमस्तक हो गया, क्योंकि उसकी विद्या तो चैतन्य तक ही तो सीमित थी, अचेतन या जड़ वस्तुओं पर उसका कोई प्रभाव न था। श्री चांगदेव आज तक स्वतः के योग को अतुल्य, अविजित और अमोघ समझते थे। उनका अहंकार बह गया, और उन्होंने सत्य शुद्ध आत्म विद्या का दर्शन ज्ञानेश्वर के रूप में किया।

ज्ञानेश्वर को इस प्रकार सम्मुख देखकर श्री चांगदेव के जिस हाथ में सर्प का भयंकर चाबुक था वह लूला पड़ गया। उसकी व्याघ्र पर सवारी करने वाली बलवान जंघाएँ ढीली पड़ गईं और भीमकाय शरीर

(शेष पृष्ठ २३१ पर)

इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिन्दुनि वारिये

श्री मदनमोहन शर्मा

★

भगवान् कृष्ण का बाल-सौन्दर्य, उनका सलोना मनभावना रूप, मकराकृति कुंडल की अनुपम छवि, उनकी बाल-क्रीड़ाएँ तथा रस लीलाएँ, उनका मोर-मुकुट, उनकी बाँसुरी, उनकी त्रिभंगी केवल हिन्दुओं ही नहीं अपितु कई मुस्लिम धर्मानुयायियों के भी आकर्षण का विषय रही हैं। कृष्ण की इन विशेषताओं ने उन्हें केवल आकृष्ट ही नहीं किया बल्कि कलमा-कुरान से उदासीन बनाकर उन्हें अपना परमभक्त बनाने में जादू का सा कमाल किया।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो देखेंगे कि एक नहीं अनेक मुसलमान कवि कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य से प्रभावित होकर उनकी ओर आकृष्ट हुए हैं और अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से उन्होंने अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है।

व्रज की अनुपम मधुरिमा पर मुग्ध और कृष्ण की ललित-लीलाओं पर लट्टू परमभक्त पठान वंशज—'रसखान' को कौन ऐसा हिन्दी-भाषा-भाषी है जो नहीं जानता? वे तो तन, मन, धन से अपने को कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य पर न्योछावर करने को तत्पर थे—

या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवोंनिधि कौ सुख,
नन्द की धेनु चराइ बिसारौं॥
नैनन सों रसखानि कबौं,
व्रज के बनबाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन वै कलधौत के धाम,
करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

धूल में सने रहने पर भी कृष्ण के सौन्दर्य ने 'रसखान' का मन अत्यन्त स्वाभाविक रूप में आकृष्ट किया है—

धूरि भरे अति सोभित स्यामजू,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत-खात फिरैं अँगना, पग
पैजनीं बाजतीं, पीरी कछौटी॥
वा छवि कौ रसखानि बिलोकत,
वारत काम-कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिए हरि-
हाथ तैं लै गयो माखन रोटी॥

और भी देखिए—

खंजन-नैन फँसे पिंजरा-छबि,
नाहिं रहैं थिर कैसेहुँ माई।
छूटि गई कुल-कानि सखी,
'रसखानि' लखी, मुसकानि सुहाई॥
चित्र-कढ़े-से रहैं मेरे नैन,
न बैन कढ़ैं, मुख दीनी दुहाई।
कैसी करौं जित जाव अली
सब बोलि उठैं, वह बावरी आई॥

यही नहीं रसखान के मन में तो कृष्ण की प्रत्येक वस्तु के प्रति अनुराग पैदा हुआ और व्रज में ही किसी न किसी रूप में सदा बने रहने की उनकी अपनी उत्कट इच्छा को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

मानुष हौं तो वही रसखानि,
बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को,
जो धर्‍यौ कर छत्र पुरंदर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं,
नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥

कान्ह की बाँकी चितवन और कजरारे नयनों ने 'मुबारक' का मन मोह लिया और भाव-विभोर होकर वे भी बरबस गा उठे—

कान्ह की बाँकी चितौनि चुभी,
झुकि कान्हि ही झाँकी है ग्वालि गवाछिनि।
देखी है नोखीसी चोखीसी कोरनि,
ओछे फिरै उभरै चित जा छनि ॥
मार्‍यो सँभार हिये में 'मुबारक'
ये सहजै कजरारे मृगाछनि।
सींक लै काजरु देरी गँवारनि,
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि ॥

महाकवि अब्दुर्रहीम खानखाना का दृढ़ विश्वास था कि यदि 'माखन चाखन हार' हमारी लाज रखने वाले हैं तो फिर हमारा कौन क्या बिगाड़ सकता है? इसी को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है—

रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है, माखन चाखनहार ॥

किन्तु यह तभी सम्भव है जब कि कृष्ण के प्रति हमारी अटल भक्ति हो। इस सत्य को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

तैं रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्ण चन्द्र की ओर ॥

कृष्ण को मन भरकर देख न पाने के कारण रहीम के मन में जो विरहानल प्रज्ज्वलित हो रहा है उसे उन्होंने यों व्यक्त किया है—

कौन धों सखि रहीम इहाँ,
इन नैन अनौखिए नेहको नाधनि।
प्यारे सों पुन्नन भेंट भई,
पै लोक की लाज बड़ी अपराधनि ॥
स्याम सुधानिधि-आनन कौं,
मरिए सखि, सूधें।चितैबे की साधनि।
ओट किएँ रहते न बनैं,
कहते न बनैं बिरहानल दाधनि ॥

कृष्ण की याद, उनकी मधुर वाणी का मिठास उनके मन से निकाले नहीं निकलता। वे कहते हैं—

'कमल दल नैनन की उनमानि।
बिसरत नहिं सखी मो मनते,
मंद मंद मुसकानि ॥
यै दसनन-दुति चपला हू ते,
महाचपल चमकानि।
बसुधा की बस करी मधुरता,
सुधा - पगी बतरानि ॥
चढ़ी रहै चित उर बिसाल की,
मुकत - माल पैहरानि।
नृत-समै पीताम्बर हूकी,
फैहेरि - फैहेरि फैहरानि ॥
अनुदिन श्री बृन्दावन में ते,
आवन - जावन जानि।
अब 'रहीम' चितते न टरति है,
सकल स्याम की बानि ॥

ऐसी मन्द-मन्द मुसकान पर सभी का रीझ उठना स्वाभाविक ही है और. मुस्कान-भरे ऐसे सौन्दर्य पर मुसलमान कवयित्री 'ताज' भी रीझ उठी। केवल रीझी ही नहीं, उसने तो स्पष्ट रूप से घोषणा भी कर दी कि कलमा-कुरान को तजकर कृष्ण के प्रेम में दीवानी हो जाने के कारण वह हिन्दू धर्म को अपनाएगी—

ए रे दिल जानी, मेरे दिल की कहानी, अब दस्त हूँ
बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव-पूजा ठानी औ निवाज हूँ भुलानी, तजे कलमा
कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं ॥
साँवला सलोना सिर 'ताज' सिर कुल्ले दिए
तेरे नेह-दाग में निदाग हो रहूँगी मैं।
नंद के फरजंद कुरबान तेरी सूरत पर, तेरे नाल प्यारे
हिंदुवानी हो रहूँगी मैं ॥

अपने प्रियतम कृष्ण की अपार शक्ति और रूप से अभिभूत होकर वह कहती हैं—

छैल जो छबीला सब रंग में रंगीला,
बड़ा चित का अड़ीला, कहूँ देवतों से न्यारा है।
माल गले सोहै, नाक मोती सेत जो है,
कान कुंडल मन मोहे, लाल मुकुट सिरधारा है॥
दुष्टजन मारे सन्तजन रखवारे ताज,
चित हितवारे प्रेम प्रीति पर वारा है।
नन्दजू का प्यारा, जिन कंस को पछारा,
वह वृन्दावन वारा कृष्ण साहब हमारा है।

ताज अपने ऐसे प्रिय से, साहब से, मिलने के लिए अत्यन्त व्याकुल है, उनके विछोह में बेचैन होकर कह उठती हैं—

चैन नहीं मन में मलीन,
सुनैन भरे जल में न तई है।
ताज कहें पर्यंक यों बाल ज्यों
चम्प की माल बिलाय गई है॥
नैकु बिहाय न रैन कछू यह
जान भयानक भीर भई है।
भौन में भान समान सुदीपक
आँगन में मानो आगि दई है।

वल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित साढ़े बारह धमारों में से कवियित्री 'ताज' की निम्नलिखित धमार अति प्रसिद्ध है।

बहुरि ढफ बाजन लागे हेली।
खेलत मोहन साँवरौ हो, किहि मिस देखन जाउँ।
सास ननंद बैरिन भईं मेरी, कीजै कौन उपाउ
भरी गागरी ढोरिए हो, जमुना जावन काज।
इहि मिसि बाहर निकसिकैं हो, जाइ मिलो तजि लाज॥
आयौ बछरा मेलिए नहिं, बनकों देंहु बिडाती।
वै देहैं मोकों पठै, मैंह हौं द्वै—चाती॥
हा—हा री, हौं जाति हौं, मो पै नाहिंन परत रह्यौ।
तू तो सोचति ही रही, तैं मान्यों नाहिं कह्यौ॥
राग-रंग गैहगड़ मच्यौ री, नंदराइ दरबार।
गाइ, खेलि, हँसि लीजिऐ हो, फाग बड़ौ त्यौहार॥
तिन्ह में मोहन अति बने हो, नाचत सँग लै ग्वाल।
बाजे बहु विधि बाजहीं हो, रुंज, मुरज, ढफ, ताल॥
मुरली और बिराजहीं हो, कटि पट, बाँधे पीत।
निरतत आवत 'ताज' के प्रभु, गावत होरी गीत॥

ऐसे नृत्य करने वाले और गाने वाले सलोने कृष्ण के प्रभाव ने दुनिया के रंग में रँगे हुए महाकवि 'नजीर' पर भी अपना असर डाला और कृष्ण उन्हें साक्षात् पर-ब्रह्म के अवतार के रूप में दिखाई दिये—

जाहिर में सुत वो नंद, जसोदा के आप थे,
वरना वो आपी माई थे, और आप बाप थे।
परदे में बालपन के, ये उनके मिलाप थे,
जोति-सरूप—कहिए जिन्हें, सो वो आप थे।

ऐसे कृष्ण के अवतार के सम्बन्ध में, जन्म के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

फिर आया वाँ इक वक्त जो आये गर्भ में माँके मनमोहन।
गोपाल मनोहर मुर्लीधर श्रीकिशन किशोरन कँवलनयन॥
धनश्याम मुरारी बनवारी गिरधारी सुन्दर श्याम बरन।
प्रभुनाथ बिहारी कान्हललला सुखदाई जग के दुखभंजन॥
जब साइत परगट होने की आई मुकुट धरैया की।
अब आगे बात जनम की है, जय बोलो किशन कन्हैया की॥

कृष्ण के सम्बन्ध में गाते गाते वे कहते हैं—

बाले हो बिर्जराज जो दुनिया में आ गये।
लीला के लाख रंग तमाशे दिखा गये॥
इस बालपन के रूप में कितनों को भा गये।
यक यह भी लहर थी जो जहाँ को दिखा गये॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥

ऐसे अनुपम ब्रह्म-स्वरूप सर्व-शक्तिमान कृष्ण ही भक्तों की आशा पूरी कर सकते हैं, यह इनका विश्वास था। अतः वे कहते हैं—

जो हरि से काम रखें उनका फिर,
पूरा क्यों कर काम न हो।
जो हरदम हरि का नाम भजें,
फिर क्यों कर हरि का नाम न हो॥

अतः ऐसी स्थिति में—

हैं शाह 'नजीर' अब हरदम वो,
जो हरि के नित बलिहारी हैं।

श्रीकिशन कहो श्रीकिशन कहो,
श्रीकिशन बड़े औतारी हैं॥

केवल अपने लिए ही नहीं बल्कि सभी को वे इस बात का उपदेश देना चाहते हैं कि—

सब मिलके यारो कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
गोविन्द छैल कुंज-बिहारी की बोलो जै॥
हरि चोर गोपीनाथ बिहारी की बोलो जै।
तुम भी 'नजीर' कृष्ण मुरारी की बोलो जै॥

कृष्ण गो-परिपालक थे और बचपन में प्रतिदिन गौएँ चराने जाया करते थे। बाँसुरी बजाते हुए गौओं को घेरकर गोचारण के लिए जाते हुए कृष्ण की छबि ने मुसलमान कवि 'आदिल' का मन आकृष्ट कर लिया था। कृष्ण की इस छबि पर आकर्षित होकर उन्होंने लिखा—

मुकुट की चटक लटक बिंब कुंडल की,
भौंहकी मटक नेक आँखिन देखाउ रे।
ए रे बनवारी, बलिहारी जाऊँ तेरी,
मेरी गैल किन आय नेकु गायन चलाउ रे।
'आदिल' सुजान रूप गुन के निधान कान्ह,
बाँसुरी बजाय तन-तपन बुझाउ रे।
नन्द के किसोर, चितचोर, मोरपंख वारे,
बंसी वारे साँवरे पियारे, इत आउ रे॥

सचमुच कृष्ण की बाँसुरी की माधुरी का सभी पर तो ऐसा ही प्रभाव था। जिसने उसे एक बार सुन लिया वह जिस स्थिति में रहता उसी स्थिति में आकर्षित होकर भागता चला जाता। तब फिर 'वाहिद' भी आकृष्ट हो गए तो इसमें नवीनता ही क्या? वे कृष्ण पर सारा संसार छोड़ने को तैयार बैठे हैं—

सुन्दर सुजान पर मन्द मुस्कान पर
बाँसुरी की तान पर ढौरन लगी रहे।
मूरति विशाल पर कंचन की माल पर
खंजनि-सी चाल पर खौरन सजी रहे॥
मोहे धनु मैन पर लोने युग नयन पर
शुद्ध रस वेन पर 'वाहिद' पगी रहे।
चंचल से तन पर साँवरे बदन पर
नन्द के नंदन पर लगन लगी रहे॥

भवसागर के थपेड़ों की चपेट से त्रस्त होकर जब मनुष्य को और कोई सहारा नहीं मिल पाता तब वह निस्सहाय होकर सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरण में जाता है। इस विश्वास के साथ कि एकमात्र वही उसका सहारा है और वह इस भवसागर से उसे पार लगाएगा। सैयद गुलाम नबी 'रसलीन' ऐसे ही मुसलमान कवियों में से है। वे कृष्ण को पुकार कर कहते हैं—

अधम उधारन नमवाँ सुन कर तोर।
अधम काम की बतियाँ गहि मन मोर॥
मन, बच कायक निशिदिन अधमी काज
करत करत मनु मरिगा हो महराज॥
बिलगराम कर वासी मीर जलील।
तुम्हरी शरण गहि गाहे ये निधिशील॥

अपने प्रिय का मिलन न होने के कारण उसके विरह में सूर, मीरा, ताज सभी ने आँसू बहाये हैं। कवि 'मकसूद' ने भी प्रचलित काव्य-परम्परा के अनुसार काग के द्वारा अपना सन्देश अपने प्रियतम के पास भेजा है। उनका यह प्रियतम है सभी का मनभावना कृष्ण है। वे कहते हैं—

अरे कागा, तू उड़के जा विदेसा,
सलोने श्याम का लेकर सँदेसा।
ये सब हालत वहाँ तकरीर की जो,
मेरा साबित गुनाह तकसीर की जो॥
कि उस जोगिन को क्यों छोड़ बैठे?
तरफ उस किसी से क्यों मुँह मोड़ बैठे?

इसी तरह अपनी ओर से मुँह मोड़े हुए कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए भक्तजन फिर उनको प्रिय लगने वाली प्रत्येक वस्तु से प्रेम करने लगते हैं। आलम और शेख की जुगल जोड़ी ऐसे ही कवियों में से है। देखिए किस तन्मयता से कुंज-केलि की याद में व्याकुल होकर 'आलम' कवि कहते हैं—

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन
ता थल काँकरि बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन
ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥

'आलम' जौन से कुंजन में करी
केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिन की
अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

'आलम' ने तो कृष्ण की भक्ति में अपने मुसलमान होने की अटक न मानते हुए सभी का रास्ता साफ कर दिया है। वे स्पष्ट कहते हैं—

चंद की चकोर देखै, निसिदिन को न लेखै,
चंद बिन दिन छबि लागत अँध्यारी है।
'आलम' कहत आली, अलि फूल हेतु चले,
काँटे सी कँटीली बेलि ऐसी प्रीति प्यारी है।
करो कान्ह कहत गँवारी ऐसी लागति है,
मोहिं वाकी स्यामताई लागत उज्यारी है।
मनकी अटक तहाँ, रूप को बिचार कहाँ,
रीझिवे कौ पैड़ों तहाँ बूझि कछु न्यारी है।

कृष्ण के विरह में पागल गोपियों की तरह ही 'शेख' भी अपने मन की व्यथा को ऊधव के सामने इस आशा से व्यक्त करती हैं कि वे जाकर इस सम्बन्ध में कृष्ण से कुछ कहेंगे। वह कहती है—

जुग है कि जाम ताको मरम न जानैं कोऊ,
बिरही की घरी और प्रेमी को जु पल है।
'शेख' प्यारे कहियो सँदेसो ऊधो हरि आगे,
ब्रज बारिये को घरी-घरी घृत जल है॥
हाँसी नहीं नैसकु उकासी देत जोग तन,
बिरह वियोग भार औरै दावानल है।
सिरसों न खेलै पग मेले न परे लौं जाय,
गिरि हूँ ते भारो यहाँ बिरह सबल है॥

उसका यह परम विश्वास है कि गोकुल के ईश कृष्ण का स्मरण करते रहने से मन का क्लेश अवश्य ही नष्ट होगा अतः आत्म-विश्वास के साथ वह कहती है—

मिटि गयो मौन पौन साधन की सुधि गई,
भूलि जोग जुगति बिसार्यो तप वन को।
'सेख' प्यारे मन को उजारो गयो प्रेम नेत्र,
तिमिर अज्ञान गुन नास्यो बालपन को॥
चरन कमल ही की लोचनि में लोच धरी
रोचन ह्वै राच्यो सोच मिटो धाम धन को।
सोक लेस नेक हूँ कलेस को न लेस रह्यो
सुमिर श्री गोकलेस गो कलेस मन को॥

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये भक्त सदा भगवान के चरणों में ही बना रहना चाहता है। यही शेख ने भी चाहा है। वह इसी की भीख माँगती हुई कहती है—

नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय,
पायन की धूरि हमैं दूरि कै न जानिये।

वंसी की तान ने 'शेख' को भी छका है—

जोबन के फूल बन फूलनि मिलनि चली,
बीच मिले कान्ह सुधि बुधि बिसराई है।
बाँसुरी सुनत भई बाँसुरियो बाँसुरी सु,
बाँसुरी की काहि 'सेख' आँसुनि अघाई है॥
थकि थहराइ बहराइ बैठियो न कहूँ,
ठहराइ जीव ऐसी पुनि ठहराई हैं।
बारुनि बिरह आकबाक बकवास लगी,
गई हुती छाक दैन आपु छकि आई है॥

ब्रज की होली भी अपने ढंग की निराली है। जिसने ब्रज की होली का आनन्द अपनी आँखों देखा है वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कवि 'फरहत' ने होली का सुन्दर वर्णन किया है और होली खेलते हुए राधा-कृष्ण का अत्यन्त भाव-भरा चित्र खींचा है—

मारो मारो हो स्याम पिचकारी हो।
ताक लगाये खड़ी सखियन संग,
ओट लिये राधा प्यारी हो।
देखो देखो स्याम वह कोउ आवति
अबीर लिये भरि थारी हो॥
इक पिचारी और प्रभु मारो,
भींजि जाय तन सारी हो॥
'फरहत' निरखि निरखि यह लीला,
हरि चरनन बलिहारी हो॥

व्रज की इस होली ने मुस्तफा कुलीखां 'यकरां' पर भी अपना रंग जमाया। वे भी इसमें रंग गये और बरबस उनके भी मुँह से निकल पड़ा—

हर दम हरनाम भजोरी!
जो हरदम हरिनाम को भजिहौ मुक्ति हुइहै तोरी
पाप छोड़ के पुन्य जो करिहौ तब बैकुंठ मिलोरी
करम से धरम बनोरी॥
'यकरंग' पिय से जाय कहो कोई हर कर रंग मचोरी
सुर, नर, मुनि सब फाग खेलत हैं अपनी अपनी ओरी
ख़बर कोई लेत न मोरी॥

केवल मध्यकालीन मुसलमान कवि ही श्रीकृष्ण पर निछावर हों ऐसा नहीं। यह कृष्ण-प्रेम तो इतना गहरा है कि आधुनिक कवियों में पंजाब के एक अच्छे लीडर मौलाना जफरअली साहब अपने कलाम में कृष्ण प्रेम को राजनीति का पुट देते हैं—

अगर कृष्ण की तालीम आम हो जाए।
तो काम फित्नगरों का तमाम हो जाए॥
मिटाएँ बिरहमन ओ शेख तफरके अपने।
जमाना दोनों घर का गुलाम हो जाए॥
वतन की खाक के जर्रों से चाँद हो पैदा।
बुलन्द इस कदर इसका मुकाम हो जाए॥

स्व. मुंशी अजमेरीजी का भी मन कृष्ण की ओर आकृष्ट हुआ था—

मोर मुकुट मकराकृति कुण्डल छबि छाजें,
बदन नयन निरखत अरविन्द-भृंग लाजें।
भाल में गुलाल बिन्दु केशर कौं टीको,
मोहन ते मदन चाप बनत तनत नीको।
दामल युग कपोल गोल नासा शुक सो है,
मंजु मधुर मुस्कनियां मुनि जन मन मोहै।
कंज करन मृदु अधरन बांसुरि बिराजे।
सप्त-सुरन तीन ग्राम मधुर-मधुर बाजे।
चारु चिबुक कम्बु-ग्रीव गुंजहार धारैं,
अति ललाम कोटि काम तन-मन-धन वारैं।
उर विशाल लम्बित वनमाल लटक लहरैं,
चरन कमल तन त्रिभंग पीताम्बर फहरैं।
यमुना तट आज मैं तमाल तरे हेरे,
सोई घनश्याम सदा मन में बसो मेरे।

इन मुसलमान कवियों की भक्तिपूर्ण भावनाओं तथा कृष्ण के प्रति तन्मयता पूर्ण अखण्डप्रेम को ध्यान में रखते हुए सचमुच कितने सत्य ये उद्गार हैं—

इन मुसलमान हरिजनन पें, कोटिक हिन्दुनि वारिये।

(पृष्ठ २२५ का शेष)

अहंकार-शून्य होकर ज्ञानेश्वर के चरणों में जा गिरा। ज्ञानेश्वर ने उसे बड़े प्रेम से गले लगाया। संग्राम सक्त योग विद्या आत्म-विद्या की शरण में झुक कर ही केवल नहीं रह गई-वल्कि दोनों मिल कर एक रूप हो गईं-जैसे यमुना के श्याम जल को गंगा का श्वेत-जल अपने में आत्मसात करता हुआ उसे भी गंगा-जल बना लेता है। चांगदेव का वैसा ही हुआ। चांगदेव की संग्राम करने की उत्कट इच्छा ज्ञानेश्वर के सम्मुख आते ही मिलन के रूप में बदलकर एकाकार हो गई। संग्राम का रूप संगम में परिणत हुआ। (फिर कभी)

बालू की वेला

श्री सरस वियोगी एम. ए.

लौट चुकी हैं कितनी लहरें-शेष रही बालू की बेला।
अब तो सिंधु-हृदय भी रटता-मत पूछो मैं कौन अकेला।।

अंतिम बार फेंक कर किरणें,
चाँद छिपा जाता है नभ में।
दूर क्षितिज तक धूमिल छाया,
घिरती आती है जीवन में।।

देख रहा हूँ हटता नाता, आँखों के आगे से मेला।
लौट चुकी हैं कितनी लहरें-शेष रही बालू की बेला।।

विष की चपल अँगुलियों ने उठ,
उर पर अगणित घाव किये थे।
मुझको ज्ञात नहीं था इतना,
वह अपनाव-दुराव लिये थे।।

प्रणय-जलधि के तीर रहा मैं, किंतु रहा माटी का ढेला।
लौट चुकी हैं कितनी लहरें-शेष रही बालू की बेला।।

अब तो हृदय चूर होता है,
नित-प्रति आघातों को सह कर।
अब क्या शेष रहा जीवन में?
प्रणय-वह्नि में प्रतिक्षण दह कर।।

मेरे लिए कठिन कहना है, क्या-क्या कैसे-कैसे झेला?
लौट चुकी हैं कितनी लहरें-शेष रही बालू की बेला।।

मेरा अहम् न मिटने पाता,
मिट करके भी गीत बनाता।
फिर से नया जन्म पाने को,
क्यों मन का पंछी अकुलाता?

बार-बार के जन्म-मरण से हार थका फिर भी तो खेला।
लौट चुकी हैं कितनी लहरें-शेष रही बालू की बेला।।

एक बाल-मनोवैज्ञानिक कहानी—

आँसू ढुलक पड़े !

श्री सत्यनारायण मिश्र

औरों की भाँति उसके जीवन में भी एक तूफान उठा और वह ऐसा कि जीवन-जलधि के शांत प्रवाह में एकदम हलचल मचा गया। अभी चार ही वर्ष का तो था विनोद, जिसे अपनी माँ की ममता से विलग हो जाना पड़ा। शैशवावस्था के स्वाभाविक गुण कुण्ठित-से होने लगे। चहल-पहल का समय एक दार्शनिक के चिन्तन-काल-सा प्रतीत होने लगा।

जीवन की सरिता में ऐसा ही एक मोड़ पुनः आया, लेकिन यह पहले से बिल्कुल भिन्न था। यदि वह निराशा का था, तो यह आशा का; वह पतन का था, तो यह उत्थान का था; इसी प्रकार यदि वह बवंडर हृदय को हिलाने वाला था, तो यह हृदय को हर्षित करने वाला।

विनोद के बड़े भाई का विवाह हुआ। चारों ओर शहनाइयों की ध्वनियाँ गूँजने लगीं। वह भी इस मनोरंजक उत्सव को देख प्रसन्न था। घर में भाई की नवोढ़ा—विनोद की भाभी—ने प्रवेश किया। सूने घर का सूनापन दूर हो गया। अंधकार को दूर करने मानो घर में भाभी के रूप में दीप-शिखा का प्रवेश हुआ हो।

सचमुच ही विनोद अपनी भाभी के आगमन से मा की ममता के अभाव को भूल गया। उसकी परिस्थिति-जन्य गंभीरता पुनः स्वाभाविक चंचलता में बदल गई। सरोज के स्नेहपूर्ण व्यवहार ने विनोद के मन में मां का स्थान बना लिया। अब तो कोई समझ ही नहीं पाता था कि सरोज उसकी भाभी थी या मा। उसके आंचल में मा की ममता का साक्षात् दर्शन पा लेता था विनोद।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। सरोज और विनोद का संबंध भी इतना घनिष्ठ होता गया जैसे वृक्ष और लता का। इधर सरोज को विनोद की जरा-सी अनुपस्थिति भी खलने लगती। उधर विनोद भी उसकी आँखों से ओझल हुआ नहीं,कि जल-विहीन मछली की भाँति तड़पने लगता।

विनोद पढ़ना तो शुरू कर ही चुका था, एक दिन स्कूल से आया और आते ही उसने अपनी भाभी से कहा—'नागिन !' इस शब्द का उच्चारण सुनकर एक बार तो सरोज सहम गई, किन्तु स्नेहपूर्ण सम्बन्ध में अनसुना कर दिया। उसने इस शब्द का उच्चारण इसी प्रकार अपनी ओर इशारा करते हुए बाद में भी कई बार सुना।

एक दिन विनोद के बड़े भाई के मित्र तथा उनकी श्रीमती घर पधारे। भाई साहब तो उन्हें छोड़कर अपने रोजाना के काम पर चले गये। अब घर में ये ही चारों प्राणी थे। सरोज आगन्तुकों की खातिरदारी में लगी हुई थी और विनोद चला गया था बाहर खेलने। भोजन तैयार हुआ, खाने के लिए दोनों अतिथि बैठे। वार्तालाप के आनंदग्रास भी भोजन के साथ-साथ

ग्रहण किये जा रहे थे कि इतने में ही बाहर से दौड़ते हुए आ विनोद ने हँसकर सरोज की ओर इशारा करके आज फिर कह डाला—'नागिन'।

आगन्तुक पति-पत्नी एक दूसरे की ओर देखने लगे और साथ ही विनोद के इस विचित्र शब्द का उच्चारण सुनकर घृणास्पद दृष्टि डालते हुए आपस में कहने लगे—

"बड़ा सिर पर चढ़ा रखा है इस बच्चे को। छोटे-बड़े का इसे कोई लिहाज़ ही नहीं है।"

"यह सब आपके दोस्त की ही मेहरबानी है, कि लाड़-प्यार में विनोद को इतना बिगाड़ रखा है।" अपने ऊपर आये हुए वार को मानो टालते हुए सरोज ने उत्तर दिया।

क्षणिक क्रोधाग्नि में सम्पूर्ण स्नेह भस्मीभूत हो गया। प्रेम की सरिता में घृणा की लहर उमड़ पड़ी और सद्भावना व दुर्भावना के दोनों कगारों को झकझोर दिया। सरोज अतिथियों के सामने तो कुछ न बोल सकी, किन्तु उनके जाते ही विनोद के तीन-चार चपत रसीद कर दिये। वह रोता हुआ बाहर चला गया।

\+ + +

काम से निवृत्त होकर उसके बड़े भाई साहब शाम को घर लौटे और कुछ आराम के बाद भोजन के लिए बैठे लेकिन विनोद को घर में न पाकर स्वाभाविक रूप में सरोज से पूछा—"विनोद आज अभी तक क्यों नहीं आया?"

"आज तो वह काफी देर से बाहर ही है।"

"क्यों कोई बात हो गई?"

"बात तो कुछ नहीं, आज मैंने उसकी बदतमीजी देखकर तीन-चार चपत लगा दिये थे, और बात ही क्या हुई थी?" सरोज ने उत्तर दिया।

"क्या बदतमीजी की थी उसने?"

"पता नहीं क्यों, कई दिन से मेरी ओर इशारा करके 'नागिन-नागिन' कहता है। शायद किसी ने यह समझकर कि विनोद की मा तो है ही नहीं, भाभी इसको सताती होगी, इसी कारण उसको सिखाया मालूम होता है।"

"लेकिन तुमने यह कैसे समझा कि वह 'नागिन' शब्द का प्रयोग तुम्हारी ओर ही कर रहा था?"

"इसमें शक भी क्या हो सकता है?"

"तब तो तुमने आज बड़ी नासमझी की।"

"पर नासमझी की इसमें बात ही क्या है?"

"बात तो असली वह मालूम होती है कि वह 'नागिन' का प्रयोग तुम्हारी ओर नहीं कर रहा था।"

"तो क्या फिर घर की दीवारों की ओर कर रहा था!"

"नहीं, मेरे विचार से स्कूल में उसे जो सूरदास का पद पढ़ाया गया है, जिसमें यशोदा कृष्ण को दूध पिलाने के बहाने कहती है कि उसकी चोटी भी दूध पीने से बलराम की चोटी की तरह नागिन-सी काली व लम्बी हो जायगी। शायद तुम्हारी चोटी देखकर उसे वही बात ध्यान आ जाती हो कभी-कभी।"

सरोज सब समझ गई। पश्चात्ताप के कारण उसका जी भर आया। व्यर्थ ही अपने प्यारे विनोद के चपत लगाये। इसकी कल्पना-मात्र से ही वह रो उठी और देखा जाय तो आश्चर्य भी कम नहीं था, जब कि वह विनोद को प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी तब उस पर व्यर्थ की मार भला कैसे सह्य होती।

जरा-सी गलत-फहमी और अतिथियों के व्यंग ने उसे क्रोधित कर दिया और उसमें अंधी होकर वह सब कुछ भूल गई। वैसे, वह विनोद को नित्यप्रति पढ़ाने के कारण उसकी पुस्तकों व पाठों से भी भली-भाँति परिचित थी किन्तु........।

तभी बाहर से विनोद दौड़ता हुआ अन्दर आया। सरोज ने उसे छाती से लगा लिया और पश्चात्ताप में उसके नेत्र से आँसू ढुलक पड़े। स्नेहमय अंक में विनोद सब मारपीट भूल गया और फिर गोदी में बैठे-बैठे सरोज की चोटी पकड़कर कह उठा—

"भाभी! नागिन सी ह्वै लोटी।"

दोनों सुनकर प्रसन्न थे।

सम्पादकः—'अणुव्रत' कलकत्ता—१

'गोदान'

—श्री मुरलीमनोहर प्रसादसिंह

प्रायः सभी समीक्षक इस बात पर एकमत हैं कि प्रेमचन्द का 'गोदान' आधुनिक भारतीय वाङ्मय में सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक कृति है। मन्मथनाथ गुप्त के मत से यह आत्म-सचेतन समाजवादी रचना है।[१] इस उपन्यास का एप्रोच यथार्थोन्मुख है। समाज की दैनिक समस्याओं को पहचान कर प्रेमचन्द ने जन-संघर्ष के विभिन्न आयामों को अंकित किया है। प्रेमचन्द इस उपन्यास में आदर्श और समझौता-परस्त नीतियों के प्रति खड्ग-हस्त हैं। यहाँ आदर्शवादिता के प्रति उनका दृष्टिकोण नकरात्मक है। कथा-संगठन के भीतर-बाहर आदर्शों के टूटकर बिखरने की स्थिति लख पड़ती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि हिन्दी-उपन्यास की मिट्टी पर यथार्थोन्मुख सामाजिकता की नई पौध को जीवन धारण कराने के लिए प्रेमचन्द ने सुधारवादी आदर्श-भावना की अन्तिम बूँदों को निचोड़ कर उसे थोथी एवं बौनी कल्पना-शीलता के रूप में उभारा है तथा लोक-संस्कार को रसमय-संवेदनपूर्ण बनाकर ढालने के लिए संघर्षों को स्वर दिया है। गोदान के कथानक के मूल उत्स में नई वस्तु-परिस्थितियों के संघात में आदर्श का पूरा-पूरा ठाठ खंडित होता गया है। मध्यम मार्ग और समझौता के आदर्शवादी-पुराणपंथी घेरे को तोड़कर इस उपन्यास के जाने-अनजाने कथा सूत्र यथार्थ के भिन्न-भिन्न अंगों का रूपांकन करते हैं। इसी यथार्थ-वादिता के सहारे प्रेमचन्द प्रतिक्रियावादी शक्तियों को क्षयिष्णु बनाने का यत्न करते हैं। यथार्थ के गहरे संकेतों का एकदम सीधा प्रतिबिम्ब उपन्यास के पात्रों और चरित्रों के माध्यम में कुछ इस ढंग से उठ-उभर जाता है कि धरती के निःसीम गर्भ से भविष्य का अन्तः स्वर स्वतः स्फूर्त हो उठता है। लोक-शक्ति की स्वातंत्र्य-कांक्षा को गड्ड-मड्ड करने के विचार से जो लोग उसके तेज को कुंठित करते हैं, उनके प्रति प्रेमचन्द अपने व्यंग्य के लहजे तीव्रतम बनाते हैं। विकास की राह में जो शिलाखंड अटकाते हैं, उन्हें एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मानकर प्रेमचंद उन्हें खूब आड़े हाथों लेते हैं। मध्यवर्गीय परिवार की मिथ्या आत्म-प्रवंचना को निशाने की सीध में रखकर वह एकदम सधे हाथों तीर लगाते हैं। मध्यवित्तीय जीवन-मूल्यों को निरावरण करने के विचार से वह ढहतीं हुई आदर्शवादिता का अवसान दिखला देते हैं। जन-बल को निर्माण की ओर ले जाने की उनकी शक्ति अकूत है। सच तो यह है कि पूरे उपन्यास में साम्राजी-सामन्ती तामझाम और उसके जिह्वादंश के प्रति तीखा व्यंग्य-स्वर है, जिससे उपन्यास की सजीवता गतिमान बनी रहती है।

'गोदान' की कथा के भीतर से नवयुग का ललाट-अंकन हुआ है। किसानी जीवन के अन्दर से प्रोटेस्ट की आवाज सदा आती रही है। प्रेमचंद ने भारतीय ग्राम-समाज की उस तह को गढ़ाव दिया है जहाँ से जागरण और निर्माण का आवेग प्रारम्भ होता है और अटूट बनता जाता है। भारत के सात लाख गाँवों का अपार जन-समूह इस उपन्यास का आलम्बन

---

१ "मैं प्रेमचन्द-साहित्य को इस तरीके से विभाजित नहीं करता, मैं तो उसे यों विभाजित करता हूँ—एक तो अचेतन-युक्त समाजवादी रचना, जिनमें 'गोदान' के अतिरिक्त उनकी सभी रचनाएँ आती हैं और आत्म-सचेतन समाजवादी रचना, जिसमें 'गोदान' आता है।"

मन्मथनाथ गुप्त—(प्रगतिवाद की रूपरेखा पृ० ३४)

है। इसके द्वारा बीसवीं सदी के तीस-पैंतीस वर्षों के राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आन्दोलन का इतिहास हमें मालूम हो जाता है। इसकी रचना सन् ३०-३५ के लगभग हुई, इस समय में निस्संदेह ही भारत का स्वाधीनता-आन्दोलन भीतर-ही-भीतर उबलता जा रहा था। यद्यपि यह काल भारत के विभिन्न जनपदों में चौमुख गतिरोध और ठहराव का काल था, किंतु राजनीतिक-सामाजिक जागरूकता जितनी अप्रतिम इस काल में हुई, उतनी और कभी नहीं। बात यह थी कि गांधीजी का नमक-सत्याग्रह इरविन के साथ हुए समझौते में खत्म हो गया। प्रेमचंद ने इस सत्याग्रह का हार्दिक समर्थन किया था। जब गांधीजी किसानों को छोड़, अछूतों की समस्या में उलझ गये तो प्रेमचंद उपेक्षित और अपमानित किसान के स्वरवाहक बने। इसी बीच कतिपय राजनीतिक कारणों से किसानों पर सामंतशाही का अतुल भार लदता गया। इससे किसान मन-ही-मन विद्रोह और क्रान्ति के सपनों में डूबते गये। यह क्रान्तिवाही जागरूकता लोकचित्त में धँसती चली गई। लोक-मत की इस आतुर सामाजिक चेतना के गर्भ से ही होरी, धनिया, गोबर और झुनिया जैसे पात्र और चरित्र प्रकट हो सके। तत्कालीन स्थितिशीलता और ठहराव के कारण ही होरी के धैर्यधन अन्तराल में विद्रोह और क्रांति का स्वर पल-पल उभरता रहा है। इस भीतरी गतिशीलता और क्रांतिवादिता का कारण यही है कि देश के पूरे पैमाने पर जन-आन्दोलन में जोर नहीं आ रहा था और दूसरे महासमर की डरावनी छाया विकट आशंका का रूप धारण कर उतरने लगी थी। इन सारी बातों से आन्दोलन में जान नहीं आ रही थी, हालाँकि ग्रामीण किसानों का आन्तरिक ज्वार शिथिल नहीं पड़ा था।

भिन्न-भिन्न जनपदों की इस स्थितिशील धारा को अंकित करने में 'गोदान' का स्थान अन्यतम है। यह एक अमिट सीमा-चिह्न है। यह भारत के अबाध फैले जन-समाज का महाकाव्य है—(एपिक इन प्रोज़)। जीवनोन्मुख संघर्ष और विकास की रेखा जितनी इसमें मांसल है, उतनी किसी औपन्यासिक कृतित्व में नहीं। यह जीवन के दैनिक कंठ-स्वरों का सशक्त और दृढ़ लोक-गान है, जिसमें प्रेमचंद ने देश की निर्माण-गर्भी लयों को बड़ी खूबी के साथ सहेज दिया है। इसकी ठेठ जनवादी चेतना कथानक के विभिन्न अंगों में मुखर बनती रही है। अवधि के जनपदीय बोल के टप्पे पर होरी के जीवन का तेज और पौरुष उदात्त बनता गया है। होरी, धनिया, गोबर और झुनिया के दैनिक संघर्ष के पैनेपन से उपन्यास में मानवीय संवेदना और नई जान आई है। इसमें प्रेमचंद की उपन्यास-कला का ओज और पानी ठेठ सामाजिकता की नई अपराजेय आभा को निखारने में है, युग की ऐतिहासिक झंकार को विकास की आगामी दिशाओं की ओर उन्मुख करने में है। यही कारण है कि वर्ग-समाज की चोटों से होरी, धनिया, गोबर तथा झुनिया का मनोबल गम के सैलाब में डूबता नहीं है, बल्कि नई रवानी और विश्वास के बल पर जीवन-संघर्ष के छोटे-बड़े कार्यों से अटूट बना रहता है। यह शक्ति-वाचक लालसा हिंदी-उपन्यास की चेतना-विकासी जागरूकता के लिए एक ऐसी जलधारा है जिसके बिना सामाजिक कथा-नायकों का सहस्रमुखी कमल-दल परिस्फुट हो नहीं हो सकता। प्रेमचंद की यह विकासोन्मुख कल्पना बहुत वास्तविक ढंग से मुखर बनी है कि सामंतशाही के जुए से किसानों की मुक्ति एकदम निश्चित है। सच तो यह है कि उनकी इस पकड़ ने कथा-संगठन को बनावटी ढंग से सिमटने के बजाय उसे अपनी स्वाभाविक गति से खूब फैलने दिया है।

'गोदान' की सबसे बड़ी खूबी है इसमें ग्रामीण वातावरण का रेखांकन। अवध के ग्रामीण समाज का एकदम ठीक-ठीक दिग्दर्शन इसमें हो जाता है। आज के हिन्दी-साहित्य में जिस स्थानिक रंग (Local colour) का प्रभाव बढता जा रहा है, उसका सूत्रपात प्रेमचंद ने हिन्दी-उपन्यास में किया है। इसका विस्तार अंग्रेजी उपन्यासों में सबसे पहले हार्डी कर सका था। स्थानिक विशेषताओं का बहुरंगी स्वरूप उभार कर उपन्यास में नई हलचल और सामाजिकता की पुष्कल महिमा को छांदसिक मुखरता प्रदान करने

प्रेमचंद का स्थान सर्व प्रथम-आता है। उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की समस्त महिमा उतार देना प्रेमचंद की अमिट लकीर है। ग्रामों में प्रति प्रेमचंद की यह ललक आरंभ से ही रही। 'कर्मभूमि' का अमरकांत जाने किन शक्तियों से प्रेरित होकर चमारों की बस्ती में पहुँच जाता है और उपन्यासकार खेतों के अमर सौंदर्य और किसानी जीवन की दैनिक क्रिया-प्रक्रियाओं को वहाँ की कसमसाती हुई भाषा के माध्यम से निखार देता है। उस बस्ती का जितना स्वस्थ और सबल चित्रण हो सकता है, प्रेमचन्द ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के सहारे उससे कहीं अधिक तीव्रता से रूपांकित किया है। इस प्रकार राष्ट्र की भिन्न-भिन्न इकाइयों का चित्रण प्रेमचन्द के कृतित्व का प्राण है। 'गोदान' की कथा-वस्तु का आधार गंवई जीवन की दयनीयता है, इसके पहले उनकी रचनाओं का केन्द्र-बिन्दु मुख्यतः मध्यवित्तीय समाज था। इस उपन्यास में उनकी दृष्टि किसानी-जीवन की यथार्थ भूमि पर फैलने लगती है। 'गोदान' की जागरूक अंतर्धारा यह बतलाती है कि प्रेमचन्द अब ग्राम-वातावरण की शोभा-श्री में रम गये हैं। ग्राम भारतीय जीवन की छोटी किन्तु सशक्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक इकाई है और इसके माध्यम से प्रेमचन्द मानवता के दुःख का सीधा चित्र उरेह देते हैं। इस चित्र में सर्वसमान युग की मरण-यंत्रणा और आने वाले युग की विह्वल स्वर-चेतना हम पाते हैं। यहीं यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द सुधार की भूमि को छोड़ कर विद्रोह की निर्माणोन्मुख वास्तविकता पर उतर आये हैं।

होरी उपन्यास का प्रमुख कथा-नायक है, तब कथानक का सूत्र भी धारावाहिक रूप से छितर-छितर कर फैलता चलता है। उसके समाप्त हो जाने पर न गाय है जिससे गोदान हो, और न पैसे हैं। इस उपन्यास की पूरी व्यथा यहाँ आकर निथुरने लगती हो सो बात भी नहीं है। आरम्भ से ही होरी की जीवन-प्रक्रिया में मानवता का दुःख व्यंजित होता चलता है। होरी के चारित्रिक गठन के भीतर से उपन्यासकार ने जन-संघर्षों की क्रियाशीलता को रूपायित किया है। यह सच है कि होरी के धैर्यघन चरित्र में सामाजिक विद्रोह और लोक-जागरण की नई-नई रोर और क्रान्तिवाही शान खूब तीव्रता से नहीं उभरी है, किंतु इससे उपन्यास की मार्मिकता और सजीवता में नया फैलाव आया है। होरी के लम्बे जीवन का गठा हुआ स्वरूप हिलोरें मार कर पाठक की आंखों के आगे अनकही बातों को सुनाने लगता है। होरी की सहृदय आत्मा का रस-स्निग्ध स्रोत ग्राम-जीवन की निश्छल आस्था के प्रतीक के रूप में रह-रह कर प्रकटित होने लगता है। भारत के विस्तृत कृषक-जीवन का ऐसा सहज आयतीकरण अन्यत्र दुर्लभ ही है।

गंवई किसान के गुण-अवगुण का अनोखा ठाठ होरी और हीरा के चारित्रिक गठन में उभर जाता है। इस समय के निम्नवर्गीय किसानों पर साम्राजी सामंती और महाजनी जुआ भारी होकर पड़ गया, इसीलिए अभाव और दरिद्रता की स्थिति में होरी पांच रुपये का लोभ सँभाल नहीं पाता और हीरा भी ईर्ष्या की ज्वाला से गाय को विष देता हैं, उसे मृत्यु के घाट उतारता है। प्रेमचन्द ने ऐसे चित्रों का अलबम बना कर वर्ग-व्यवस्था से उपजे हुए मानवीय पतन के इतिहास को छिपाया नहीं है। इन अवगुणों के बावजूद भी समय पड़ने पर अन्न के लाले पड़ते ही होरी हीरा के पूरे परिवार की देख-रेख करता है। तब यह स्पष्ट ही है कि होरी के चरित्र में कोई ऋजुता नहीं है, स्थायी विद्वेष और घृणा का स्वर नहीं है। उमड़ कर सहेज लेने की जितनी उत्कट चेतना उसमें है उतनी शेखर, हरिप्रसन्न आदि में नहीं। ऐसा इसलिए है कि ठेठ सामाजिक यथार्थ का गाढ़ा रस उतार कर प्रेमचन्द ने जो ग्रामजीवन के अमिट रेखाचित्र अँकित किये हैं, उनमें स्वस्थ मांसलता और जिह्म वर्जनाओं से युक्त गतिशीलता है। यह प्रेमचन्द की उपन्यास-कला का परिपक्व स्वरूप है।

होरी का यह रसमय और संवेदन चरित्र पर्लबक के वांग लुंग (Wang Lung) से कई अर्थों में होड़ लेता है। सच्ची बात तो यह है कि उस वांग लुंग के

चारित्रिक विकास में जहाँ सर्पिल रेखाओं को रुझान पतन के मार्मिक चिह्न प्रकट कर देती है, वहाँ होरी के साथ ऐसा नहीं होता है। वांग लुंग के चारित्रिक धरातल पर कई ऋजु रेखाएं उभर आई हैं, किन्तु दोनों में कुछ विशिष्ट गुणों के कारण समानता है। 'गोदान' के कथा-सूत्रों में होरी की दैनिक आपाधापी प्राण-संचार करती है। 'दि गुड अर्थ' (The Good Earth) में वांग लुंग का कार्य-कलाप उपन्यास को सजीव और गतिशील बनाये रखता है। वांग लुंग नीचे तबके का किसान है—जमीन में बँधा हुआ। खेतों से उसका अपार स्नेह है। भूमि ही उसके समस्त जीवन का एक-मात्र स्वप्न एवं उसकी सारी आशाओं का केन्द्र है। उसके जीवन की अटूट कर्म-परम्परा दैनिक जीवन-गतियों से प्रेरित है, जिसका मूल उत्स भूमि ही है। भूमि के प्रति अगर इतना आकर्षण और हार्दिक सम्मोहन नहीं होता तो उसका चरित्र उतना मार्मिक और संवेद्य नहीं बन पाता। मिट्टी ही है जो उसकी नसों में सोंधी गंध और नई चेतना भरती है। संघर्षों के जटाजाल के घने होने पर भी वह खेत और मिट्टी को बेचना नहीं चाहता। धरती के जीवन-रस से इतनी अगाध ममता होरी में भी है। होरी की पत्नी धनिया और वांग लुंग की पत्नी ओ-लान में भी गहरी समानता है। धनिया और ओ-लान दोनों में गार्हस्थिक निपुणता है। दोनों के मन-प्राण में पति के प्रति बेछोर आत्मीयता की धारा बहती रहती है। ओ-लान की पति-परायणता तो इतनी अगाध है कि लोटस को अपने पति की उप पत्नी के रूप में देखकर और साथ रहकर भी घृणा या ईर्ष्या नहीं करती। इस प्रकार धनिया और ओ-लान विश्व-उपन्यास की कथा-नायिकाओं में उच्चतम स्थान की अधिकारी हैं। इधर होरी और वांग लुग भी समकालीन विश्व-उपन्यास के स्तर को ऊँचा उठाते हैं।

होरी का एक-मात्र पुत्र गोबर नई पीढ़ी की जागरूक चेतना की उपज है। उसमें अद्भुत कार्य-क्षमता है। अपनी अविरत कर्मचेष्टाओं के आधार पर वह जीता है और उसके माध्यम से हमारा युग सिमट आता है। झुनिया से उसका प्रेम-सम्बन्ध नई पीढ़ी की उत्थानशील चेतना को व्यक्त करता है। सामाजिक बन्धनों को तोड़ कर अपनाने की प्रवृत्ति उसके सबल व्यक्तित्व का द्योतन करती है। झुनिया से अपना स्थायी सम्बन्ध रख कर वह सच्चे प्रेम को सार्थक सिद्ध करता है और सामाजिक बंधन की जड़ीभूत लकीरों को खत्म करता है। नवयुग की दन्तुरित मुस्कान उसकी नसों में तेज और विपुल उल्लास भरती है। इसी का फल है कि गोबर समय की धड़कन पहचान कर मेहनतकश मजदूरों की कतार में शामिल हो जाता है, विद्रोह और नव-निर्माण का स्वर जगाता फिरता है न कि शैथिल्य और अवसाद की शरण जाता है।

इसके अलावा प्रेमचन्द ने राजनीतिक कुम्भीपाक और शोषण के अड्डों पर तीव्र प्रहार किये हैं। उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार प्रतिक्रियावादी शोषक एवं जोकों के चलते ग्राम-जीवन और संयुक्त परिवार टूट-टूट कर विषण्ण की स्थिति में आ रहे हैं, जिनके टूटते ही हमारा हृदय द्रवित हो उठता है जैसे अपना प्रिय-जन मर रहा हो। चुनाव के सिलसिले में—रायसाहब, खन्ना, मिस मालती, मेहता आदि के चरित्रों को गहरा बनाकर प्रेमचन्द ने उपन्यास के धरातल को अधिक विस्तृत बनाया है। इस उपन्यास में नेताओं की असलियत को दिखाया गया है। प्रेमचन्द साफ तौर से यह कहते हैं कि आज का जनबल उन नेताओं का मुखापेक्षी नहीं है, बल्कि अपनी स्वस्थ सामाजिक चेतना के बल-विद्रोह और सृजन का स्वर बुलन्द करना है। इस प्रकार उपन्यास का सम्बन्ध नागरिक जीवन से अंगागिभाव के रूप में है। शुरू से अन्त तक की कथा-धारा नागरिक जीवन और ग्राम-जीवन के दो तटों के बीच अबाध गति से प्रवाहित होती रहती है। कुछ आलोचकों के मत से नागरिक जीवन का प्रसंग उपन्यास की मूल कथा-वस्तु से सम्बन्धित नहीं है तथा उसकी उपयोगिता कुछ भी नहीं है। उन लोगों ने इसी बात को लेकर गोदान

के कथा-संगठन को थोड़ा लचर और बिखरता हुआ सिद्ध किया है।

श्रीपतराय ने प्रेमचन्द के मतानुसार यह बतलाया है कि गोदान आत्मकथामूलक है।[2] हंसराज रहबर ने भी कहा है कि होरी के माध्यम से प्रेमचन्द की अपनी विफलताएँ अभिव्यक्त हुई हैं।[3]

'गोदान' आत्म-कथा मूलक हैं या नहीं, यह प्रश्न थोड़ा जटिल और विवादास्पद है। यों तो उपन्यासकार को विभिन्न सामाजिक पात्रों की जीवनानुभूति ग्रहण करनी पड़ती है। यह हो सकता है कि प्रेमचन्द की आकुल संघर्षात्मकता कहीं-कहीं होरी के व्यक्तित्व से तदाकार हो गई हो किन्तु होरी का अपना अलग सामाजिक अस्तित्व है। होरी की जीवन-कथा को प्रेमचन्द की आत्म-कथा मान लेना ठीक नहीं होगा। उपन्यासकार अपने पात्रों के व्यक्तित्व में सन्निहित रहता भी है और नहीं भी। डा० रामखेलावन पांडेय ने खुले ढंग से कहा है कि प्रेमचन्द की जीवन-समस्या और होरी की जीवित कर्मचेष्टा में गहरा साधर्म्य है।[4] इस साधर्म्य के कारण ही 'गोदान' में मानवीय संवेदना गहराती चली गई है। पात्रों के अन्तः-संघर्ष को स्फुट कंठ-स्वर देने में प्रेमचन्द ने अद्भुत कला क्षमता का दिग्दर्शन कराया है।

डा० नगेन्द्र ने प्रेमचन्द पर दो आक्षेप लगाये हैं। उनकी पहली आपत्ति यह है कि प्रेमचन्द में बौद्धिक सघनता का अभाव है, नन्द दुलारे वाजपेयी भी इस मत को मान लेते हैं।[5] फिर दूसरी आपत्ति यह है कि प्रेमचन्द में आत्म-पीड़ा का अभाव है।[6] इन दो आक्षेपों के बल पर वह अज्ञेय और जैनेन्द्र को उनसे बीस प्रमाणित करते हैं। बात यह है कि नगेन्द्रजी फ्रायड के सिद्धांतों के अनुसार साहित्य के समीक्षा-सिद्धांतों पर बल देते हैं। फ्रॉयड के मतानुसार वह भी व्यक्ति की क्रिया-परम्परा को काम-भावना और लिबिडो (Libido) से प्रेरित मानते हैं। यही कारण है कि होरी में काम-भावना और बौद्धिक चिन्तन प्रक्रिया के अभाव से डाक्टर साहब ने उनकी उपन्यास-कला में दोष देखे हैं। इसी आरोप का दूसरा रूप मनोविज्ञान या मनोवैज्ञानिक चित्रण के रूप में आता है। कई लोग इस बात पर जोर देते हैं कि प्रेमचन्द अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं कर पाते। मन्मथनाथ गुप्त भी इस आरोप पर बल देते हैं। प्रायः इस प्रकार की आलोचना देखने को मिलती है कि प्रेमचन्द में मनोवैज्ञानिक गहराई या चेतना के विभिन्न स्तरों के दर्शन नहीं होते। सच तो यह है कि प्रेमचन्द ने मनुष्य को विस्तृत घटना-क्रम के स्वाभाविक प्रवाह के बीच देखा है। इसलिए मनुष्य की कर्म-चेष्टा और क्रिया-परम्परा में ही पात्रों का अन्तर्मन और उसकी

---

२ "उन्होंने अन्तिम दिनों में अपने अंतिम और असमाप्त उपन्यास (मंगलसूत्र) की आलोचना मेरे साथ की थी, वे गोदान की तरह इसे बहुत कुछ आत्म-कथा-मूलक बनाना चाहते थे, पर गोदान में वातावरण दूसरा है।"—श्रीपतराय (मन्मथ नाथ गुप्त को पत्र १८-५-५० को प्रगतिवाद की रूप-रेखा पृ० ५८ ५६)

३ "पाँच सौ पृष्ठ का उपन्यास 'गोदान' प्रेमचन्द के अरमानों के खाक में मिलने की कहानी है। होरी की असफलताएं प्रेमचन्द की अपनी असफलताएँ हैं।"—हंसराज रहबर (प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व—पृ० २१-२२)

४ "प्रेमचन्द की सम्यता न तो। रंग भूमि के सूरदास में मिलेगी और न 'गोदान' के होरी में।"—'आलोचना' उपन्यास-विशेषांक पृ० १४३

५ "कल्पना के अभाव के साथ प्रेमचन्द में तीव्र बौद्धिक दृष्टि × × × का अभाव है।—(हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी पृ० ८७)

६ "प्रेमचन्द में मुझे दो बड़ी कमियाँ दिखाई पड़ती हैं। इसलिए मेरा मन प्रेमचन्द से कभी समझौता नहीं कर पाया। एक तो यह कि उनमें बौद्धिक सघनता है और उससे उनमें आत्म-पीड़ा का अभाव है।"—'आजकल' मार्च ५३।

विभिन्न प्रतिक्रियाएँ ढलती चली गई हैं। अनुभूति को सघन बौद्धिकता के जाल में रखकर व्यक्त करने के पक्ष में वे नहीं रहे।

हंसराज रहबर ने मन्मथनाथ गुप्त के इस आक्षेप का खंडन किया है और एकदम स्पष्ट ढंग से कहा है कि प्रेमचन्द में पात्रों का मनोवैज्ञानिक अन्तः स्वर खूब परिस्फुट होता है। [७] यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं है कि प्रेमचन्द का 'गोदान' प्रगतिशील साहित्य के सामूहिक आन्दोलन को हस्त तेज और बल देने में सार्थक सिद्ध हुआ है। प्रेमचन्द की परम्परा से जीवन और चेतना ग्रहण कर हिन्दी का नया उपन्यास-साहित्य सामाजिक वास्तविकता के अनुकूल ढल रहा है। यह ढलाव स्थानीय रंग और विशेषताओं का निखार पाकर रचे-रचाये और खपे-खपाये रूप में जम रहा है। नागार्जुन, अमृतलाल नागर, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, फणीश्वरनाथ 'रेणु', देवेन्द्र सत्यार्थी, विष्णु प्रभाकर, शिवप्रसाद मिश्र आदि प्रेमचन्द की परम्परा को बड़ी सशक्तता से आगे बढ़ा रहे हैं। बलयनमा होरी और गोबर की सामाजिक चेतना और संघर्ष-शक्ति को अपने में समोकर खूब सबलता से उठ-उभर आया है। प्रेमचन्द की इस प्रगतिशील साहित्य-परम्परा से हिन्दी-उपन्यास के नये-नये सीमा चिह्न चेतन उद्वेगशीलता और जुझारूपन लेकर, माइल स्टोन सरीखे लख रहे हैं। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'सेठ बाँकेमल' (अमृतलाल नागर), 'बूँद और समुद्र' (अमृतलाल नागर), 'गंगा मैया' (भैरव प्र. गुप्त), 'बीज' (अमृतराय), 'मैला आँचल' (रेणु) 'रथ के पहिए' (देवेन्द्र सत्यार्थी), 'निशिकांत (विष्णु प्रभाकर), 'बहती गंगा' (शिव प्र. मिश्र) आदि उपन्यास जन-मुक्ति की मंगल-कामना को नई दिशा दे रहे हैं। इन दिशा-प्रकाशी उपन्यासों की रचना में स्थानीय जीवन-गरिमा का भारी हाथ है, जो लोकल कलर से उदात्त मर्म-छवियों को नक्श कर देती है।

७ "मन्मथनाथ गुप्त आदि ने लिखा है कि प्रेमचन्द अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं कर पाते +, उसे तर्क प्रिय बुद्धि नहीं मानती। हम इस बात को नहीं मानते कि प्रेमचन्द में पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं होता। वह होता है और बहुत अधिक मात्रा में होता है।—"
हंसराज रहबर (प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व पृ. २५०-५१)

संस्कृत साहित्य और कादंबरी

मूल लेखक—रवींद्रनाथ ठाकुर

अनुवादक—सद्‌गुरु दत्त

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन भारतवर्ष के अनेक विषयों में असामान्यता थी। दूसरे देशों में नगरों से सभ्यता का निर्माण होता है, हमारे देश में अरण्यों से सभ्यता की सृष्टि हुई है। वस्त्रों, आभूषणों का गौरव सर्वत्र ही है परन्तु निःवस्त्र, आभूषण रहित और भिक्षाचार्य का गौरव भारतवर्ष का ही है। अन्य देश धर्म-विश्वास के लिए शास्त्रों के आधीन और आचार, आहार, विहार आदि बातों के लिये स्वाधीन हैं। परन्तु भारतवर्ष धार्मिक विचार तथा विश्वास के लिए स्वाधीन व आहार-विहार तथा आचार के बारे में पूरी तरह शास्त्रों के अनुगत रहा। इस प्रकार अनेक दृष्टांत देकर यह दिखाया जा सकता है कि साधारण मानव प्रकृति से भारतवर्ष की प्रकृति अनेक विषयों में स्वतन्त्र है। उसी असामान्यता का एक और लक्षण बताया जा सकता है। पृथ्वी की प्रायः समस्त जातियों को गल्प सुनना अच्छा लगता है परन्तु केवल प्राचीन भारतवर्ष को ही गल्प सुनने में ऐसा कोई खास औत्सुक्य नहीं था। सभी देशों में अपना साहित्य, इतिहास, जीवनी व उपन्यास आदि का आग्रहपूर्वक संचय किया है। भारतवर्ष के साहित्य में उसका कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। भले ही भारतीय साहित्य में इतिहास, उपन्यास है, परन्तु उनमें आग्रह की भावना नहीं है। वर्णना तत्वावलोचना और अवांतर प्रसंगों में उसका गल्प प्रवाह पद-पद पर खंडित होने पर भी प्रशांत भारतवर्ष की धैर्य-च्युति दिखाई नहीं देती। ये बातें मूल काव्य का अंग है या प्रक्षिप्त है, इसकी आलोचना करना निष्फल है। कारण प्रक्षेप सहन करने के लिए यदि लोग प्रस्तुत न हो तो प्रक्षिप्त टिक नहीं सकता। यद्यपि पर्वत शृंग से नदी-शैवाल बहा कर न लाय, फिर भी स्रोत का वेग कम न होने पर उसमें शैवाल उत्पन्न नहीं हो सकते। भगवतगीता का महात्म्य कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। किंतु जब कुरुक्षेत्र में तुमुल युद्ध के लिये आसन्न, उस समय समस्त भगवद्‌गीता एकाग्रतापूर्वक श्रवण कर सके, ऐसा देश भारतवर्ष के सिवाय जगत् में और कोई नहीं है। किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड में सौंदर्य का अभाव नहीं यह बात मान सकते हैं परन्तु जब राक्षस सीता को हरण करके ले गया तब उस गल्प-प्रवाह जैसे एक बड़ा भारी पाषाण अड़ा देना यह सहिष्णु भारत ही केवल उसकी मार्जना कर सकता है। वह क्यों मार्जना कर सकता है? कारण कहानी का अन्त जानने की उसकी जरा भी सत्वरता नहीं है। चिंतन करते हुए, प्रश्न करते हुए, आसपास परिदर्शन करते हुए भारतवर्ष को सात प्रकांड कांड और अठारह विपुलायतन पर्व का अकातर चित से, मृदुमंद गति से परिभ्रमण करने में जरा भी क्लांति का बोध नहीं होता।

इसके अलावा गल्प सुनने के आग्रह के अनुसार गल्प का मूल आकार ही बदल जाया करता है। छः कांडों में गल्प जिस वेदना और आनन्द से परिपूर्ण हो उठता है; एक मात्र उत्तरकांड में बिना किसी संकोच के उसे चूर्ण कर डालना क्या सहज बात है? हम लंका कांड तक यह देख आये हैं कि अधर्मचारी निष्ठुर राक्षस रावण ही सीता का परम शत्रु है। असाधारण शौर्य और विपुल आयोजन के बाद सीता को उस भयंकर राक्षस से परित्राण मिला, तब हमारी समस्त चिंता दूर हो गई और आनंद के लिये प्रस्तुत हो गए ऐसे समय पर क्षण मात्र में ही कवि ने दिखा दिया कि सीता का चरम शत्रु अधार्मिक कारण नहीं बल्कि

वह शत्रु है, धर्मनिष्ठ राम। निर्वासन के समय उस पर ऐसा कोई संकट नहीं आया था, जैसा कि राजाधिराज स्वामी के गृह में आया था मानों किसी सोने की तरणि की दीर्घ काल तक तूफान-आंधी से सुरक्षा की हो, परन्तु किनारे आते ही पाषाण के घाट से टकरा कर उसके एक क्षण में दो टुकड़े हो गये। कहानी के प्रति जिसके दिल में जरा भी ममता हो क्या वह इस तरह के आकस्मिक उपद्रव को सहन कर सकता है। जिस वैराग्य प्रभाव से हमने गल्प की नानाविध प्रासंगिक व अप्रासंगिक बाधाएं सहन की हैं, उसी वैराग्य भावना से मानों गल्प को अकस्मात् अपघात मृत्यु से हमारे धैर्य की रक्षा हुई हो।

महाभारत में भी यही बात है। एक स्वर्गारोहण पर्व में ही कुरूक्षेत्र युद्ध की स्वर्ग प्राप्ति हो गई। गल्प प्रिय व्यक्ति के लिए जहाँ गल्प का अवसान, वहाँ महाभारत रुका नहीं—इतनी बड़ी कहानी को जैसे बालुकानिर्मित खेलने के लिये बनाए हुए घर को एक क्षण में ही तितर-बितर कर दिया—संसार के प्रति तथा गल्प के प्रति जिनका विराग हो, वे ही इसमें से सत्य का लाभ ले सकते हैं और क्षुब्ध नहीं होते। जो लोग महाभारत को कहानी समझ कर पढ़ने की चेष्टा करते हैं, वे मन में सोचते हैं कि अर्जुन का शौर्य कैसा अमोघ! महाभारतकार उस पर अनेकों श्लोक पर श्लोक रचकर अर्जुन के जयस्तंभ को अभ्रभेदी बनाकर खड़ा कर देता है। किन्तु समस्त कुरूक्षेत्र के युद्ध के बाद अचानक चंद शब्दों में ही यह दिखा दिया कि एक दिन एक सामान्य दस्युदल अर्जुन के पास से कृष्ण की रमणियों को छीनकर ले जाता है; वे नारियां आर्त्तस्वर से कृष्ण-सखा पार्थ का आह्वान करती हुई विलाप करने लगीं, अर्जुन अपना गांडीव धनुष्य उठा न सका। अर्जुन की इस प्रकार की अनपेक्षित अवमानना, महाभारतकार की कल्पना में स्थान पा सकती है, ऐसी शंका इसके पूर्व के पर्वों के पढ़ने से किसी के मस्तिष्क में नहीं आ सकती। परन्तु किसी भी व्यक्ति पर कवि की ममता नहीं जहाँ श्रोता विरक्त, लौकिक शौर्य-वीर्य महत्व का अवश्यम्भावी परिणाम निरासक्त; वहाँ कवि भी निर्मम और कहानी भी केवल मात्र कौतूहल चरितार्थ करने के लिए सब प्रकार के भार से मुक्त होकर द्रुत वेग का अवलंबन नहीं करती।

इसके बाद बीच में सुदीर्घ विच्छेद पार करने पर काव्य-साहित्य में कालिदास पर ध्यान आकर रुक जाता है। इस बीच में भारतवर्ष ने चित्तरंजन के लिए कौन से उपायों का अवलंबन किया था, निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। उत्सव के समय मिट्टी के दीपकों की जो सुन्दर दीपमाला की रचना की जाती है, दूसरे दिन ही उसको कोई उठाकर नहीं रख देता, भारतवर्ष में आनंद उत्सव में निश्चय ही ऐसे अनेक मिट्टी के प्रदीप, अनेक क्षणिक साहित्य रात्रि में अपना कार्य समापन करके उषःकाल में विस्मृति लोक में लीन हो गये हैं। किन्तु प्रथम तेजस प्रदीप देखा कालिदास का—वही पैतृक प्रदीप अभी भी हमारे घरों में रहा हुआ है—हमारे उज्जयिनी निवासी पितामह के प्रासाद-शिखर पर वह पहले जला था, अभी भी उसपर कोई कलंक पड़ा नहीं। केवल आनंददान को उद्देश्य लेकर संस्कृत-साहित्य में काव्य रचना कालिदास की ही प्रथम दिखाई देती है। (यहां मैं खंड काव्य की बात कह रहा हूँ, नाटक की नहीं) मेघदूत उसका एक दृष्टांत है। ऐसा अन्य कोई दृष्टांत संस्कृत-साहित्य में और नहीं है, ऐसा लगता है। जो है वह मेघदूत का ही आधुनिक अनुकरण, जैसे यदांकदूत इत्यादि, और वे भी पौराणिक कुमार-संभव, रघुवंश पौराणिक तो हैं, किन्तु पुराण नहीं, काव्य है, वे चित्त विनोद के लिए लिखे हुए हैं, उसके पाठ करने के फल से स्वर्ग प्राप्ति का प्रलोभन नहीं है। भारतवर्षीय आर्य साहित्य की धर्मप्राणता के संबंध में जो जैसा चाहें अपने मतवाद का प्रचार करे—परन्तु आशा करता हूँ कि ऋतुसंहार के पाठ से मोक्ष लाभ में सहायता मिलेगी, ऐसा उपदेश कोई नहीं देंगे।

किन्तु फिर भी कालिदास के कुमार-संभव में कहानी नहीं है—जो कुछ है वह सूत्र अतिसूक्ष्म और प्रच्छन्न और वह असमाप्त। देवताओं को दैत्यों से

किसी उपाय द्वारा परित्राण मिला या नहीं, इस बारे में कवि जरा भी औत्सुक्य नहीं देता, और न उसे ताड़ना देने वाले लोग हैं। विक्रमादित्य के समय शक-हूण रूपी शत्रुओं के साथ भारतवर्ष से द्वंद्व चल रहा था और स्वयं विक्रमादित्य उनका एक नायक था, अतएव देव-दैत्यों का युद्ध एवं स्वर्ग के पुनरूद्धार का प्रसंग उस समय के श्रोताओं के लिये-विशेष औत्सुक्यजनक होगा, ऐसी आशा की जा सकती है। किन्तु कहाँ? राज सभा के श्रोतागण देवताओं के विपत्पात से उदासीन है। मदन भस्म, रति विलाप उमा की तपस्या, किसी में भी शीघ्रता करने के लिये उपरोध दिखता नहीं। जैसे कि सब कह रहे हों कि गल्प रहने दो, वह वर्णन ही अभी चलने दो। रघुवंश भी विचित्र वर्णना का उपलक्ष मात्र है।

राज-श्रोतागण यदि गल्प-लोलुप होते तो कालिदास की लेखनी से उस काल के कितने हीं चित्र प्राप्त होते। ओह! अवंतीराज्य में नव वर्षा के दिनों में उदयन कथा-कोविद् ग्राम के वृद्धजन जो गल्प कहते थे, वे सब कहाँ चली गई? वास्तव में बात यह है कि ग्राम के वृद्ध-जन उन दिनों गल्प करते थे, परन्तु वह ग्राम की भाषा में ही होती थी। उस भाषा में जिन कवियों ने रचना की है, उन्होंने यथेष्ट आनंद-दान किया किन्तु उसके बाद अमरता लाभ नहीं कर सके। उनका कवित्व कम होने के कारण विनाश को प्राप्त हुआ, यह कहने का मेरा आशय नहीं है। निःसंदेह उनमें अनेक महाकवि पैदा हुए। किन्तु ग्राम्य-भाषा प्रदेश-विशेष में ही सीमित शिक्षित मंडली द्वारा उपेक्षित तथा समय-समय पर परिवर्तित होती रही। उस भाषा में जिसमें उन्होंने रचना की, उनको कोई स्थायी आधार नहीं मिला था। निःसंदेह अनेक बड़े-बड़े साहित्य-प्रासाद चलनशील पसीनमृत्तिका के बीच निहित होकर पूरी तरह से अदृश्य हो गये हैं। संस्कृत भाषा कथित भाषा न होने के कारण उस भाषा में भारतवर्ष के समस्त हृदय की बात संपूर्ण रूप से वर्णित हुई। अंग्रेजी में जिस श्रेणी की कविता को Lyrics कहते हैं, वह मृत भाषा में संभव नहीं। कालिदास के विक्रमोर्वशीय में जो संस्कृत-गान है, उसमें गान की लघुता, सरलता व माधुर्य नहीं पाया जाता। बंगाली जयदेव संस्कृत भाषा में गान रचना कर सके हैं, किन्तु बंगाली वैष्णव कवियों की बंगला पदावली के साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती।

मृत भाषा में, अन्य भाषा में गल्प भी नहीं चलती, कारण गल्प में लघुता एवं गति वेग आवश्यक होता है, —भाषा को जब विचारों के अनुसार बहन करके चलना होता है, तब उससे गान एवं गल्प संभव नहीं होता।

कालिदास का काव्य ठीक स्रोत की तरह सब पहलुओं को लेकर नहीं चलता, उसका प्रत्येक श्लोक अपने आप में ही समाप्त, बिलकुल स्तब्ध होकर उस श्लोक को आयत्त कर लेना होता है, तब दूसरे श्लोक को हाथ में लेते हैं। प्रत्येक श्लोक हीरक खंड की तरह उज्वल और समस्त काव्य हीरक हार की तरह सुन्दर, किन्तु नदी की तरह उसमें अखंड कल ध्वनि और अविच्छिन्न धारा नहीं है।

इसके अलावा संस्कृत भाषा में ऐसा कुछ स्वर वैचित्र्य, ध्वनि गांभीर्य, ऐसा कुछ स्वाभाविक आकर्षण है—जिसके निपुणतापूर्वक व्यक्त करने से ऐसा आभास होता है, जैसे नाना प्रकार के यंत्रों से कन्सेर्ट बजाया हो, उसमें अतर्निहित रागिनी में ऐसी कुछ अनिर्वचनीयता है कि कवि-पडीतगण वाग्नै पुण्य द्वारा पडित श्रोता गणों को मुग्ध करने का प्रलोभन को रोक नहीं पाते थे। इसी कारण जहां पर वाक्य को संयुक्त करके विषय को शीघ्र अग्रसर कर देना आवश्यक हो वहां भाषा का प्रलोभन रोक सकना दुःसाध्य हो जाता है और वाक्य विषय को प्रकाशित न करते हुए पद-पद पर आच्छन्न होकर रह जाता है,—विषय की अपेक्षा वाक्य ही अधिक बहादुरी लेने की चेष्टा करता है और उसको सफलता भी होती है। मयूर पुच्छ से निर्मित ऐसे अनेक सुन्दर पंखे होते है, जिससे अच्छी तरह हवा नहीं की जा सकती है, किन्तु हवा करने का उपलक्ष मात्र लेकर राजसभा में संस्कृत काव्य भी घटना विन्यास

के लिये इतना अधिक व्यग्र नहीं रहता; उसका वाग् विस्तार, उपमा कौशल, वर्णना नैपुण्य राजसभा के प्रत्येक संचालन में चमत्कृत करता रहता है।

संस्कृत साहित्य के गद्य में जो दो-तीन उपन्यास हैं, उनमें कादंबरी ने सर्वापेक्षा अधिक प्रतिष्ठा लाभ की है। जिस प्रकार रमणी को, उसी प्रकार पद्य को भी अलंकार की जरूरत विशेष है—गद्य की साज-सज्जा स्वभावतः कर्म क्षेत्र को उपयोगी होती है। उसको तर्क करना होता है, अनुसंधान करना होता है, इतिहास कहना पड़ता है, उसे विचित्र प्रकार के व्यवहार के लिये प्रस्तुत रहना होता है—इसीलिये उसकी वेशभूषा लघु, उसके हस्तपद अनावृत। दुर्भाग्य वश संस्कृत गद्य सर्वदा व्यवहार के लिये नियुक्त नहीं था, इसी कारण बाह्य शोभा की बाहुल्यता उसकी कम नहीं। मेदस्फीत विलासी की तरह उसके समास-बाहुल्य की विपुलता देखकर सहज ही बोध होता है कि सर्वदा चलने फिरने के लिये वह नहीं है—बड़े-बड़े टीकाकार, भाष्यकार, पंडित वाहकगण उसे कंधे पर लेकर न चलें तो उसका चलना ही असाध्य ही है। भले ही अचल हो, किन्तु किरीट, कुंडल, कंकण, कंठमाला के कारण वह राजा के समान बिराज सकती है।

इस कारण बाणभट्ट यद्यपि स्पष्टतः गल्प करने लगा, परन्तु भाषा के विपुल गौरव को लांघकर कहीं भी गल्प मे द्रुतवेग नहीं कर पाया। जैसे कोई सम्राट अनुचरों से घिरकर आगे जा रहा हो, उसी प्रकार संस्कृत भाषा के पीछे-पीछे गल्प प्रच्छन्न भाव से छत्र उठाकर केवल चलता रहा है। भाषा राजमर्यादा की वृद्धि के लिये गल्प का किंचित् प्रयोजन है, इसी कारण वह हुआ है, किन्तु उसके प्रति किसी की दृष्टि नहीं है।

शूद्रक राजा कादम्बरी गल्प का नायक नहीं है—वह केवल गल्प सुन रहा है, अतएव उसका परिचय संक्षिप्त होने से कोई क्षति नहीं है। आख्यायिका का बाहरी अंश यदि यथोपयुक्त छोटा न हो, तो मूल आख्यान का परिमाण सामंजस्य नष्ट होता है। हमारी दृष्टि शक्ति के अनुसार हमारी कल्पना शक्ति भी सीमा बद्ध है; हम किसी वस्तु को संपूर्ण एक साथ समान रूप से नहीं देख पाते—सम्मुख भाग बड़ा दीखता है, उसके पीछे का छोटा दिखता है, पृष्ठ भाग नहीं दिखता, अनुमान कर लेते हैं, इसीलिये शिल्पी उसके साहित्य-शिल्प के जिस अंश को प्रधानतः दिखाना चाहता है उसको विशेष रूप से गोचर कर देता है, शेष अंश को पार्श्व में और अनुमान के क्षेत्र में रख देता है। परन्तु कादंबरीकार मुख्य, गौण, छोटी-बड़ी किसी भी बात को जरा भी वंचित करना नहीं चाहता। उससे यदि गल्प की क्षति हो, मूल प्रसंग दूरवर्ती हो जाय तो उस कारण वह या उसके श्रोतागण जरा भी कुंठित नहीं होते, तथापि वक्तव्य के छोड़ देने से भी नहीं चलेगा, कारण वक्तव्य अत्यन्त सुनिपुण, अत्यन्त सुश्राव्य, कुशलता, मधुरता, गांभीर्य, ध्वनि व प्रतिध्वनि से ओतप्रोत है।

अतएव मेघमंद्र मृदंग ध्वनि की तरह कहानी का आरम्भ हुआ—आसीत् अशेष नरपतिशिरः समभ्यर्चित शासनः पाक शासन इवापरः— किन्तु हाय हमारी दुराशा! कादम्बरी के समग्र पद उद्धृत करके काव्यरस की आलोचना करूँगा, मेरे इस क्षुद्रायतन प्रबन्ध की ऐसी शक्ति नहीं है। हमने जिस काल में जन्म लिया है, वह अत्यन्त व्यस्तता का काल है। यहाँ समस्त बातों के बारे में कहने के लिये प्रलोभन को पद-पद पर संयत करना पड़ता है। कादंबरी के समय कवि ने कथा-विस्तार की विचित्र कुशलता का अवलंबन किया है। अब हम लोगों को कथा-संक्षेप का समुदय कौशल सीखना पड़ता है। उस समय के काल के मनोरंजन के लिये जिस विद्या का प्रयोजन था, आधुनिक काल के मनोरंजन के लिये ठीक उससे विपरीत विद्या की आवश्यकता है।

किन्तु एक काल के मधुलोभी यदि अन्य काल से मधुसंग्रह करने की इच्छा करता है, तो अपने काल के प्राँगण में बैठे-बैठे उसे वह नहीं मिल सकता, उसे अन्य काल में प्रवेश करना होगा। जो कादंबरी उपभोग करना चाहता है, उसको यह भूल जाना होगा कि

आॅफिस का समय हो रहा है, उस मन में यह भावना लानी होगी कि वह वाक्य-रस विलासी एक राजेश्वर है। राजसभा में समासीन तथा समान वयोविद्यालंकारैः अखिल-कला-कलापालोचन कठोर मतिभिः अति प्रगल्भैः अग्राम्य परिहास कुशलैः काव्य नाटकाख्यान काख्यायिका लेख्य व्याख्यानादि क्रिया निपुणैः विनय व्यवहारभिः आत्मनः प्रति बिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः। इस तरह रस चर्चा में रसिक परिवृत्त होने से लोक के प्रतिदिन की सुख-दुःख समाकुल युध्यमान धर्मासक्त कर्मनिरत संसार से विच्छिन्न हो जाता है। मतवाला जिस प्रकार आहार भूलकर मद्यपान करता रहता है, वे भी उस तरह जीवन के कठिन भाग का परित्याग करके भावना के तरल रस-पान में विह्वल हो जाते हैं; तब सत्य का यथातथ्य और परिमाण के प्रति दृष्टि रहती नहीं, केवल आदेश चलता रहता है; डालो, डालो और डालो! आजकल के दिनों मनुष्यों के प्रति हमारा आकर्षण बहुत हो गया है; कौन व्यक्ति है और वह क्या करता है, इसके लिये हमारा बड़ा कौतुहल होता है; इसी कारण घर में या बाहर चारों ओर मनुष्यों के क्रिया-कलाप जीवन वृत्तांत की हम सूक्ष्म रूप से पर्यालोचना करके भी परितृप्त नहीं होते। किन्तु उस समय में पंडित हो, राजा हो, मनुष्यों को मन में बहुत ज्यादा स्थान नहीं देते। ऐसा लगता है कि स्मृतिविहित नित्य नैमित्तिक क्रिया कर्म में एवं एकांत में अवहित भाव से शास्त्रादि आलोचना करने में वे जगत् संसार से अनेक तरह से निर्लिप्त थे। ऐसा लगता है, विधि-विधान, नियम-संयम के शासन में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का विशेष कुछ प्रश्रय नहीं था। इसी कारण रामायण, महाभारत के परवर्त्तीकालीन संस्कृत साहित्य में लोक-चरित्र-सृष्टि एवं संसार वर्णना की प्रधानता दिखाई नहीं देती। भाव एवं रस उसका प्रधान अवलंबन। रघु के दिग्विजय-प्रसंग में अनेक उपमा एवं सरस वर्णना प्रकाशित हुई हैं, लेकिन रघु के वीरत्व का कोई चरित्रगत-चित्र परिस्फुट करने की चेष्टा की हो ऐसा नहीं दिखता। अज-इंदुमति के प्रसंग में अज एवं इंदुमति केवल उपलक्ष-मात्र है—उनकी व्यक्तिगत विशेष मूर्ति सुस्पष्ट नहीं है, किन्तु परिणय प्रणय और विच्छेद-शोक का एक साधारण भाव और रस उसी सर्ग में उच्छलित होता है। कुमार संभव में हर-पार्वती का अवलंबन लेकर प्रेम, सौंदर्य, उपमा, वर्णना तरंगित हो उठी हैं। मनुष्य और संसार के विशेषत्व के प्रति उस समय के वही अपेक्षाकृत औदासीन्य रहने से भाषा वर्णना ने मनुष्य और घटना को सर्वत्र आच्छन्न रखकर अपने रस का विस्तार कर दिया है। उसी बात को स्मरण करके आधुनिक काल के विशेषत्व से विस्मृत होकर कादंबरी के रसास्वादन में प्रवृत्त होने से आनंद की सीमा नहीं रहेगी।

कल्पना करके देखो—गायक गान गा रहा है—च-ल-ता-रा-आ-आ-आ-आ" फिर से दुबारा "चल-तरा-आ आ आ" सुदीर्घ तान,—श्रोतागण उसी तान के खेल में उन्मत्त हो उठते हैं; इधर गाने की पंक्ति है, "चलत राजकुमारी," किन्तु तान के उपद्रव में समय चला जाता है, राजकुमारी का चलना और नहीं हो पाता, समझदार श्रोता प्रश्न पूछने पर कहता है, राजकुमारी न चले तो भले ही न चले, किन्तु तान चल चलती रहे। अवश्य, राजकुमारी कौन से पथ पर चल रही है, इस संवाद के लिये जिनका विशेष उद्वेग है, उनके लिये तान दुःसह ही है, किन्तु उपस्थित क्षेत्र में यदि रस उपभोग करना चाहते हो, तो राजकुमारी के गम्य स्थान निर्णय के लिये निरतिशय अधीर न होकर तान सुन लो। कारण, जिस जगह आकर खड़े हो वहां कौतुहलवश अधीर हो जाना ठीक नहीं, यह रस में मतवाला होने का स्थान है। अतएव स्निग्ध-जलदनिर्घोष में आपातत शूद्रक राजा का वर्णन सुना जाय। उस वर्णना में हम शूद्रक राजा के चरित्र-चित्र की प्रत्याशा नहीं करूँगा। कारण चरित्र-चित्र में एक सीमा-रेखा अंकित करना पड़ती है—इसमें सीमा नहीं—भाषा कलगर्जिता समुद्र की लहरों की तरह जितनी दूर उद्वेलित हुई है, उसको बाधा देने वाला कोई नहीं। यद्यपि सत्य के अनुरोध होने से कहना पड़ता है, शूद्रक विदिशा नगरी का राजा, किन्तु अप्रतिहत गामी भाषा और भाव का अनुरोध होने से कहना पड़ता है कि वह "चतुरू दधिमाला-मेखलया भूवोभर्त्ता"। शूद्रक की

महिमा कितनी थी, यह व्यक्तिगत तुच्छ तथ्यालोचना का प्रयोजन नहीं है, किन्तु वह है राजकीय महिमा कहां तक जा सकती है, वही बात यथोचित समारोह सहकार से घोषित हो।

सभी जानते हैं, भाव सत्य की तरह कृपण नहीं है। सत्य के निकट जो लड़का काना, भाव के निकट उसका पद्मलोचन होना कुछ विचित्र नहीं है। भावना की वही राजकीय अजस्रता की उपयोगी भाषा संस्कृत भाषा है। वही स्वभाव विपुल भाषा कादम्बरी में पूर्ण वर्षा नदी के समान आवर्त्त तरंगों के गर्जन की आलोक-छटा से विचित्र हो उठी है।

किन्तु कादंबरी का विशेष माहात्म्य यही है कि भाषा और भावना के विशाल विस्तार को सुरक्षित रख कर भी उसके चित्र जाग उठते हैं। समस्त प्रभावित होकर एकाकार नहीं हो जाते। कादंबरी का प्रथम आरंभ-चित्र ही उसका प्रमाण है।

तब भी भगवान मरीचिमाली अधिक ऊंचे नहीं उठे हैं, नवीन पत्र-पुटों को भेदकर किंचित् उन्मुक्त रक्तिम आभा के समान सूर्य का वर्ण है।

इस तरह से वर्णन आरंभ होता है। इस वर्णन का और कोई उद्देश्य नहीं, केवल श्रोताओं के चक्षुओं में कोमल रंग लगाना है एवं उनके सर्वांग में एक स्निग्ध सुगंध का पंखा हिला देना है। "एकदा तु नाति दुरोद्दिते नयन कमल नलिन दल संपुट भिदि पाटलिम्नि भगवति मरिचि मालिनी"—कथा कैसी मोहक है। अनुवाद करते जायं तो केवल इतना ही व्यक्त होता है कि तरुण सूर्य का वर्ण ईषत् रक्तिम है, किन्तु भाषा के इन्द्रजाल में, केवल मात्र इसी विशेष्य विशेषण के विन्यास से एक सुरम्य सुगंध सुवर्ण सुशीतल प्रभातकाल अनतिविलंब में हृदय को आच्छन्न कर देता है। यह जैसा प्रभात वैसा ही एक बात में तपोवन में संध्या समागम की वर्णना उद्धृत करता हूँ—"दिवावसाने लोहित तारका तपोवन धेनुरिर कपिला परिवर्तमाना संध्या"—दिन शेष में रक्तचक्षु तपोवन की धेनु जिस प्रकार अपने गोष्ठ में वापस लौटती है, कपिलवर्ण संध्या उसी प्रकार तपोवन में अवतीर्ण हुई। कपिलाधेनु के साथ संध्या के रंग की तुलना करने से संध्या की समस्त शांति एवं श्रांति व धूसर छाया कवि के मन में क्षण मात्र में उमड़ उठती है। प्रातः काल के वर्णन में जिस प्रकार केवल मात्र तुलना-छल से उन्मुक्त नवपद्मपुट के सुकोमल आभास मात्र का विकास करके मायावी चित्रकार समस्त प्रभात के सुकुमार्य एवं सुस्निग्धता को परिपूर्ण कर देता है—उसी प्रकार के उपमा-छल से तपोवन के गोष्ठ में लौटने वाली अरुण-चक्षु कपिलवर्ण धेनु की कथा उठाने से संध्या का जितना भी कुछ भाव है, वह समस्त रूप से ले लिया है।

इस प्रकार वर्ण सौंदर्य विकास की क्षमता संस्कृत का कोई कवि न दिखा सका। संस्कृत कविगण लाल रंग को लाल कहकर शांत हो गये हैं, किन्तु कादंबरीकार का लाल रंग कितने प्रकार है, उसकी कोई सीमा नहीं। कोई लाल लाक्षालोहित, कोई लाल पारावत के पदतल जैसा, कोई लाल रक्ताक्त सिंहनख के समान। "एकदा तु प्रभातःसंध्याःराग लोहिते गगनतले कमलिनी मधुरक्तपक्ष संपुटे वृद्धहंस इव मंदाकिनी पुलिनाद् अपर जन्मनिधितट मवरति चंद्रमास, परिणत रंकुरोम पांडुनि वृजति विशालताम् आशाचक्रवाले, गजरुधिर रक्त हरिसरालोमः लोहिनीभिः, आतमलाक्षिक तंतु पाटलाभिः आयामिनीभिरशिशिर किरण दिधितिभोः, पद्मराग-शलाका-मम्मार्जनीभिखि समुत्सार्य माने गगन कुट्टिम कुसुम प्रकरे तारागणे"—एक दिन आकाश जब प्रभात-संध्या राग से लोहित, चंद्र तब पद्ममधु के समान रक्तवर्ण पक्षपूटशाली वृद्धहंस की तरह मंदाकिनी पुलिन से पश्चिम समुद्र तट की ओर अवतरण कर रहा था, दिकचक्रवाल में वृद्ध रंकुमृग के रोम जैसी एक पांडुता क्रमश विस्तीर्ण हो रही है। गज रुधिर रक्त सिंहजटा के लोभ के समाम लोहित, ईषत् तप्त लाक्ष ततु की तरह पाटलवर्ण सुदीर्घ सूर्य रश्मियां जैसे पद्मरागशलाकार सम्मार्जनी के द्वारा गगन कुट्टिम से तारापुष्प सबको समुत्सारित कर देता है।

रंग फैलाने में कवि को कितना आनंद। जैसे भ्रांति नहीं, तृप्ति नहीं, वह रंग केवल चित्रपट का रंग नहीं है, उसमें कवित्व का रंग, भावना का रंग है। अर्थात् कौनसी वस्तु का कौनसा रंग केवल इसी का वर्णन नहीं, उसमें हृदय का अंश है। उसका एक दृष्टांत दे देने से बात स्पष्ट हो जायगी। बात यह है कि व्याध वृक्षपर चढकर घोंसले से पक्षी के बच्चों को नीचे गिराता है—वही उत्पतन शक्तिहीन बच्चों की किस रंग की! —कांश्चिद् अल्पदिवस जातान् गर्भच्छवि पाटलान् शाल्मली कुसुम शंका मुपजनतः, कांश्चिदकोपलसदृशान्, कांश्चिल्लोहितायमान चंचुकोटीन् ईषद्‌विघटित दलपुट पाटल मुखानां कमल मुकुलानां श्रियमुद्दहतः, कांश्चिदनवरत शिरः कम्पव्याजने निवारयत इव, प्रतिकारासमर्थान् एकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखासंधिभ्य कोटराभ्यन्तरेभ्यश्च शुकशावकानग्रहीत् अपगतासूंश्चकृत्या क्षितावपातयत्। कोई तो अल्प-दिवस-जात्, उनके नवप्रसूत कमनीय पाटल-कांति जैसे शाल्मली-कुसुम के समान, किसी के पद्म के नूतन पापड़ी के समान, छोटे-छोटे पंख आ रहे हैं, किसी का पद्मराग के समान वर्ण, किसी का लोहितायमान चंचु के अग्रभाग ईषत् उन्मुक्त कमल के समान, किसी का मस्तक अनवरत कंपित हो रहा है, जैसे कि व्याध को मना कर रहा हो—ये समस्त प्रतिकार के लिये असमर्थ शुक के बच्चे को वनस्पति की शाखा-संधि और कोटराभ्यंतर से एक एक फल के समान ग्रहणपूर्वक निष्प्राण करके क्षितितल की ओर निक्षेप करने लगा।

इसमें केवल वर्ण-विन्यास नहीं—उसके साथ करुणा भी घुलमिल गई है, बल्कि कवि उसे स्पष्टतः या हताश करके वर्णना नहीं करता है। वर्णना में केवल तूलना का सौकुमार्य अपने आप फूट उठा है।

संस्कृत कवियों में चित्रांकन में बाणभट्ट के समतुल्य कोई नहीं, यह बात मैं साहस करके कह सकता हूँ। समस्त कादंबरी काव्य एक चित्रशाला ही है। साधारणतः लोगों में घटना वर्णन करके कहानी कहते हैं—बलाभट्ट चित्र सज्जित करते हुए गल्प कहते गये हैं। इसी कारण उनकी गल्प गतिशील नहीं, वह वर्णछटा से अंकित हैं। चित्र भी घनसंलग्न धारावाहिक हो, ऐसा नहीं है; एक-एक छबि को चारों ओर प्रचुर कारूकार्य विशिष्ट बहु विस्तृत भाषा के सोने की फ्रेम लगाई है, फ्रेम समेत उन छबियों के सौंदर्य के आस्वादन से जो वंचित हैं, उनका दुर्भाग्य है।

पता—२० दक्षिण तुकोगंज, इन्दौर

लेखकों से निवेदन

(१) रचना कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखी हुई होनी चाहिए।
(२) प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रखने की कृपा करें। किसी भी दशा में रचना लौटाने का नियम नहीं है।
(३) अन्यत्र प्रकाशित रचना प्रकाशित नहीं की जाएगी।
(४) स्वीकृत रचनाओं की सूचना यथा-सम्भव शीघ्र दी जाया करेगी। अस्वीकृत रचना के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार करके पैसा और समय नष्ट करना व्यर्थ है। प्राप्ति के दिनांक से तीन मास-पर्यन्त यदि रचना प्रकाशित न हो, तो उसे अस्वीकृत समझा जाए। इस अवधि के पश्चात् विशेष दशा में ही रचना प्रकाशित हो सकेगी।
(५) पुरस्कार-योग्य रचनाओं पर उचित पत्र-पुष्प हम स्वयम् ही अर्पित कर देते हैं। इस विषय में अधिक लिखकर कृपया अपना और कार्यालय का समय नष्ट न करें।

—सम्पादक वीणा

(पृष्ठ २१६ का शेष)

रेखा—तो जनाब कवि से हीप्नोटिस्ट बनना चाहते हैं ?

नरेश—केवल शौक के लिए। सुनो तुम्हारा सर दुःख रहा है न। मुझे एक बार प्रयोग करने दो-तुम्हारी तबीयत अभी ठीक हो जाएगी।

रेखा—आप मेरा इलाज तो करना चाहते हैं, पर यह भी जानते हैं कि मुझे रोग क्या है ?

नरेश—ओह। बहस मत करो। चुपचाप बैठो रहो। मेरी ओर देखो। मैं पास देता हूँ।

तुम इस समय भय और आकांक्षाओं से विमुक्त होकर अपार शांति की गोद में हो। तुम्हारा शरीर और मन परम सुख और संतोष का अनुभव कर रहा है। तुम्हारी आँखें अब अलसाने लगी हैं-थोड़ी देर में तुम सुखद निद्रा में सो जाओगी। सोते समय तुम मेरी आज्ञाओं का पालन करोगी। और जब मैं तुम्हें जगाऊँगा तुम उठ बैठोगी। तुम सो रही हो-सो रही हो-सो रही हो।

हाँ। अब रेखा सो गई है। सम्मोहन निद्रा में सो रही है। अब मैं इससे प्रश्न करूँगा।

नरेश—तुम कौन हो ?

रेखा—मैं रेखा हूँ।

नरेश—मैं तुमसे बहुत प्रेम करता हूँ। क्या तुम भी मुझे उतना ही प्रेम करती हो ?

रेखा—मैं तुमसे प्रेम नहीं करती।

नरेश—अब रेखा के मन की बात मालूम पड़ी। तुम अगर नरेश से प्रेम नहीं करती तो किस से प्रेम करती हो ?

रेखा—मैं प्रकाश से प्रेम करती हूँ। ओह ! प्रकाश कितना अच्छा है !

नरेश—रेखा और प्रकाश से प्रेम करती है। मालूम पड़ता है प्रकाश के बच्चे ने इस पर भी वशीकरण कर दिया है। मैं दोनों का गला घोंट दूँगा।

रेखा—क्या करते हो। मेरा गला छोड़ो। जरा से मजाक में बिगड़ गये।

नरेश—यह मजाक था ! नहीं तुमने वशीकरण के वश में सत्य कहा है।

रेखा—वशीकरण। हा ! हा !! हा !!! मुझ पर इसका असर नहीं हो सकता।

नरेश—क्यों ?

रेखा—इतना भी नहीं जानते ? जो व्यक्ति स्वयं सम्मोहित हो चुका है वह दूसरे को वश में नहीं कर सकता है ?

नरेश—मैं सम्मोहित हो चुका हूँ ?

रेखा—हूँ।

नरेश—पर मुझे सम्मोहित किया किसने।

रेखा—मैंने। देखो मेरी ओर....

नरेश—ओह ! तुमने मुझे वास्तव में सम्मोहित कर दिया है।

(आकाशवाणी इन्दौर-भोपाल से रेडियो-सप्ताह में प्रसारित)

खेल के मैदान से

श्री ठाकुर देवीसिंह

(क्रिकेट)

इलाहाबाद में बम्बई विश्वविद्यालय ने पंजाब विश्वविद्यालय को ६ विकेट से पराजित कर चौथी बार रोहनीटन बारिया गोल्ड कप जीता। सच तो यह है कि देहली विश्वविद्यालय के प्रतियोगिता में से निकल जाने के बाद बम्बई का जम कर सामना करने वाली कोई टीम रह ही नहीं गई थी। पंजाब ने दूसरे दाव में ३३२ रन बना कर कठिनाई अवश्य खड़ी कर दी परन्तु वह बहुत ही साधारण थी। पंजाब विश्वविद्यालय की ओर से रनबीरसिंह बहुत अच्छा खेले परन्तु हार से बचना बहुत कठिन था। अन्तिम स्कोर इस प्रकार रहा। पंजाब विश्वविद्यालय १६२ और ३३२ तथा बम्बई विश्वविद्यालय ६७१ और १३० रन ४ विकेट।

२६ जनवरी से डर्बन में दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया का तीसरा टेस्ट मेच आरम्भ हुआ। आस्ट्रेलिया प्रथम दाव में १६३ रन बना सकी। दक्षिण अफ्रिका प्रथम दाव में मेंग्लू तथा वाट की सहायता से ३८४ रन बनाने में सफल हुआ। मेंग्लू तथा वॉट ने २०७ रन भागीदारी के बना कर दक्षिण अफ्रीका के क्रिकेट इतिहास में किसी भी भागीदारी के सबसे अधिक रन का रिकार्ड स्थापित किया। आस्ट्रेलिया ने दूसरे दाव में २९२ रन ७ विकेट पर बना कर हार को जीत में बदल दिया परन्तु इस प्रयास में उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा वह देखते ही बनता था। जे. ब्रुक, नील हार्वे, मिकी आदि के भगीरथ प्रयत्न ही आस्ट्रेलिया को हार से बचा सके।

उदयपुर से रंजी ट्राफी नेशनल चेम्पियन में बड़ौदा और राजस्थान का मेच आरम्भ हुआ। बड़ौदा ने प्रथम दाव में विजय हजारे, घोरपड़े भोसले के सहयोग से ४२४ रन बनाए; राजस्थान प्रथम दाव में २५६ रन ही बना सके। १६८ रन से कम होने के कारण 'फालो आन' मिला। राजस्थान ने दूसरे दाव में १२७ रन २ विकेट पर बना कर हार स्वीकार कर ली और इस कारण चौथे दिन खेल नहीं हुआ। बड़ौदा फाईनल में पहुँच गई।

ता० ७ फरवरी से जोनसबर्ग में आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रिका का चौथा क्रिकेट टेस्ट मेच आरम्भ हुआ। आस्ट्रेलिया ने प्रथम दाव में ४०१ रन बनाए; बैनोद के १०० रन, बुक के ८१ रन, मिकी के ८३ नाट आऊट, डेविडसन के ६२ रन प्रमुख हैं। आस्ट्रेलिया के खिलाड़ियों के अच्छा खेलने के साथ ही साथ उन्हें 'जीवन दान' भी मिले यही कारण है कि अंतिम खिलाड़ियों ने आशा से अधिक रन बनाए। दक्षिण अफ्रीका पहले दाव में २०३ रन बना कर आउट हो गई। १९८ रन की कमी से 'फालो आन' मिला। दक्षिण अफ्रिका के खिलाड़ी दूसरे दाव में बहुत ही देख-देख कर खेल रहे थे और पूरे दिन भर में केवल ११६ रन ही बना सके, इतना सब होते हुए भी हार से न बच सके और १९८ पर सब खिलाड़ी आऊट हो गए। आस्ट्रेलिया को जीत का १ रन बनाना पड़ा और १० विकेट से जीत गए।

५ फरवरी से पोर्ट आफ स्पेन में तथा पाकिस्तान का दूसरा टेस्ट मेच आरम्भ हुआ। वेस्ट इण्डीज प्रथम दाव में ३२५ रन बना कर आउट हो गई। पाकिस्तान केवल २८२ रन ही बना सकी। २८२ रन बनाने में वालिस मथाई के ७३ रन तथा फज़ल महम्मद के ६० रन बहुत मूल्यवान साबित हुए। वेस्ट इंडीज ने दूसरे दाव में ३१२ रन बनाये। पाकिस्तान ने मैच जीतने के कई प्रयत्न किये। किंतु जीत के लिए ३५४ रन के स्थान पर केवल २३५ रन ही बना सकी और इस प्रकार पाकिस्तान दूसरा टेस्ट मेच १२० रन से हार गया।

२३ फरवरी को बंगाल की टीम ने हैदराबाद की टीम को राष्ट्रीय चैम्पियन शिप के क्वार्टर फाइनल में १० विकेट से हरा कर सेना के विरुद्ध सेमी फाइनल खेलने की अधिकारी हुई। अन्तिम रन संख्या इस प्रकार रही—हैदराबाद प्रथम दाव १२२ तथा दूसरे दाव में १८८ रन, बंगाल प्रथम दाव ३१० रन तथा ४ रन दूसरे दाव में।

फुटबॉल

१४ वीं राष्ट्रीय फुटबॉल प्रतियोगिता हैदराबाद में १ फरवरी से आरम्भ हुई। आँध्र के मुख्य मंत्री संजीव रेड्डी ने घोसा महल स्टेडियम पर हैदराबाद और पंजाब के प्रथम मैच का उद्घाटन किया। पंजाब और हैदराबाद का मैच बहुत ही अजीब परिणाम के साथ खेला गया, आलोचकों का मत था कि पंजाब क्या खेलेगी? परन्तु खेल के बाद देखने वालों का मत था कि मैच "ड्रा" होना चाहिये था जबकि हैदराबाद ३-२ गोल से जीता।

२ फरवरी को केरल और मैसूर का मैच हुआ; और प्रतियोगिता का प्रथम आश्चर्य सामने आया केरल—राष्ट्रीय प्रतियोगिता में "बच्चे" समझे जाते थे आज मैसूर को १ गोल से हराकर "किसी एक ही प्रांत की ठेकेदारी समाप्त कर दी" केरल के गोल रक्षक वीरघासीई कम से कम ६ गोल रोक कर केरल को विजयी बनाने में सफल रहे।

३ फरवरी को सेना की टीम ने आसाम को ५-० गोल से हरा दिया। आरम्भ से ही सेना की टीम हावी होकर खेली और अन्त तक केवल ५ गोल ही कर सकी।

४ फरवरी को हैदराबाद की टीम ने मध्यप्रदेश की टीम को ६-१ गोल से सरलतापूर्वक हरा दिया। मध्यप्रदेश के गोलरक्षक मोहम्मद नफीर हार को कम बनाये रखने में काफी सफल रहे।

५ फरवरी को बिहार ने उत्तरप्रदेश को २-१ गोल से हरा कर आश्चर्य चकित कार्य किया; मैच के आरंभ होने के केवल ५ घण्टे पहले ही आने वाली टीम पर प्रवास की थकान का मैच पर कोई प्रभाव नहीं दिखायी दिया। उत्तरप्रदेश की टीम में मूलचंद, बनर्जी की अनुपस्थिति ने खेल की गति में अन्तर ला दिया और परिणाम पर भी।

६ फरवरी को सेना की टीम ने केरल की टीम को १ गोल से हरा कर प्रतियोगिता का प्रथम क्वाटर-फाइनल जीतने का श्रेय प्राप्त किया।

७ फरवरी को हैदराबाद की टीम ने बिहार की टीम को ३-० से हरा कर दूसरा क्वाटर-फाइनल मैच जीत लिया। आज के खेल में बिहार की टीम के खिलाड़ियों ने बहुत अच्छा जमकर मुकाबिला किया; परिणामस्वरूप तीनों गोल खेल के दूसरे भाग में हुए। तीनों गोल कानन ने किये। कानन की इस प्रतियोगिता में यह दूसरी "हेटट्रिक" है।

तारीख ८ फरवरी को देहली की टीम ने राजस्थान की टीम को २-० गोल से जीत कर प्रतियोगिता के क्वाटर-फाइनल में प्रवेश किया। खेल के विषय में कुछ भी कहना व्यर्थ है क्योंकि राजस्थान से अच्छे खेल की आशा तो थी ही नहीं; देहली भी अच्छा नहीं खेली।

९ फरवरी को बंगाल की टीम ने आँध्र की टीम को ३-० से हराकर क्वाटर-फाइनल में प्रवेश किया। बंगाल की टीम में आठ ओलम्पिक खिलाड़ी थे; फिर भी आँध्र का केवल तीन गोल से हराना सिद्ध करता है कि आँध्र के गोलरक्षक तथा रक्षा-पंक्ति के खिलाड़ी बहुत अच्छा खेले।

१० फरवरी को बम्बई की टीम ने मध्य भारत की टीम को ६-१ से हरा दिया। बम्बई की टीम कई गुना अच्छी थी।

११ फरवरी को बंगाल की टीम ने देहली की टीम को ३-० गोल से हरा कर सेमी-फाइनल में प्रवेश किया। बंगाल चाहती तो और कई गोल कर सकती थी; परन्तु उन्होंने दामोदर की अपेक्षा की; और बैनर्जी तथा गोस्वामी ने गोल करने के कई अवसर जानबूझ कर खोये।

१२ फरवरी को मद्रास की टीम ने उड़ीसा की कमजोर टीम को केवल २-० गोल से हरा दिया; दोनों गोल अन्तिम १५ मिनट में हुए थे। मैच में मद्रास और कई गोल कर सकती थी किन्तु उनकी "लक्ष्य हीनता" के कारण और अधिक गोल नहीं हो सके।

१४ फरवरी को बम्बई की टीम ने मद्रास की टीम को ३-० गोल से सरलता से हराकर सेमी फाइनल में प्रवेश किया। बम्बई के सेण्टर फारवर्ड सुगूणन का खेल देखने लायक था और जीत का श्रेय केवल इस खिलाड़ी को है। मद्रास खेल के आरंभ में गोल करने के दो स्वर्ण अवसर खो देने के बाद केवल जमकर मुकाबिला ही कर सकी।

१५ फरवरी को प्रथम सेमी-फायनल में, हैदराबाद की टीम ने सेना की टीम को १-० गोल से हरा कर फाइनल में प्रवेश किया। आज के आकर्षण का मुख्य केन्द्र यह था कि आज कौन जीतता है क्योंकि तीसरे साल सेना की टीम ने हैदराबाद की टीम को हराया था। और गत वर्ष हैदराबाद ने सेना को। आज हैदराबाद की टीम को विजयी बनाने का श्रेय लिथाक, मोईन तथा झूल्फीखार को है। मध्यान्तर तक कोई गोल नहीं हुआ था। इस कारण खेल में औत्सुक्य की मात्रा अन्त तक बनी रहीं। युसूफ ने मोईन तथा पेट्रीक के सहयोग से गोल किया। सात मिनट बाद ही सेना की टीम ने गोल किया किन्तु रॉय के "आफ साइड" होने से गोल नहीं माना गया। इसके बाद सेना के प्रत्येक खिलाड़ी गेंद के साथ-साथ पागल की तरह भागते नजर आते थे और यही कारण है कि सेना की टीम कोई गोल न कर सकी।

१६ फरवरी को बम्बई की टीम का बंगाल की टीम से दूसरा सेमी-फाइनल मेच खेला गया। इस प्रतियोगिता में जब से यह आरंभ हुई, यह प्रथम अवसर है जबकि बंगाल की टीम दो लगातार साल में फाइनल में प्रवेश नहीं पा सकी। बंगाल ने अहमद हुसेन के स्थान पर सालम को खिला कर बहुत बड़ी गलती की, यह भूल अन्त में बंगाल के पतन का कारण सिद्ध हुई। बम्बई के सेण्टर फारवर्ड सुगुणव आज फिर बहुत अच्छा खेले। बंगाल के गोल रक्षक सेठ के गोल बचाने के प्रयत्न में देरी होने से गोल दिया गया। जफार ने एक गोल ३० गज की दूरी से मार कर किया यह गोल प्रतियोगिता का सबसे सुन्दर गोल था। बम्बई की टीम ३ गोल से विजयी रही।

१८ फरवरी को राष्ट्रीय फुटबॉल चैम्पियन शिप का फाइनल मैच हैदराबाद और बम्बई के बीच, १०,००० दर्शकों के समक्ष आरम्भ हुआ। खेल आरम्भ होने के पहले, किसी को आशा नहीं थी कि आज का खेल 'एक तरफा" होगा, परन्तु केवल पांच मिनट बाद ही मालूम पड़ गया कि हैदराबाद के सामने बम्बई की टीम बहुत कमजोर है। हैदराबाद की टीम एक अच्छी तेल की हुई मशीन के समान चल रही थी और खेल के प्रथम भाग में ही तीन गोल हैदराबाद की टीम ने कर दिये दूसरे भाग में उन्होंने कोई गोल जान बूझ कर नहीं किये, नहीं तो स्कोर ३-० के अपेक्षा ६-० होता हैदराबाद की टीम दूसरे भाग में केवल दर्शकों का मनोरंजन करने पर उतर आई थी। हैदराबाद के मोहननूर कानून झूल्फीखार बहुत अच्छा खेले।

बंगाल के बाद केवल हैदराबाद ही एक ऐसी टीम है जिसे कि सन्तोष-ट्राफी को लगातार दो साल से जीतने का श्रेय मिला है। हैदराबाद इस वर्ष फुटबाल की सभी प्रमुख प्रतियोगिता जीत कर सर्व श्रेष्ठ टीम सिद्ध हुई।

तारीख ३ फरवरी १९५८ हॉकी जगत के लिए चिर स्मरणीय रहेगा। संसार में अपने ढंग के प्रथम हॉकी मैदान बम्बई में लायर ग्राउण्ड पर नावेल टाटा के, भगीरथ प्रयत्न से निर्मित रात को हॉकी खेलने के "फ्लडलिट ग्राउन्ड का उद्घाटन प्रधान मन्त्री श्री नेहरू द्वारा किया गया। भारत की विश्व विजयी हॉकी टीम ने "रेस्ट ऑफ इण्डिया" को २-० गोल से पराजित किया।

७, ८, ९ फरवरी को कटक में नव निर्मित बाराबाती स्टेडियम पर १८ वीं राष्ट्रीय खेलकूद प्रतियोगिता हुई। देश के कोने-कोने से खिलाड़ी भाग लेने आये और इस बार प्रतियोगिता में लड़के तथा लड़कियों को भाग लेने का अवसर दिया गया। यह कदम आगे चल कर बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा। इस प्रतियोगिता में १८ रिकार्डों की स्थापना हुई। सेना के खिलाडियों ने इस प्रतियोगिता में सदा की भाँति सबसे अधिक फाइनल जीते (२२ में से १४) रिकार्डों का स्थापन होना हमारी प्रगति का द्योतक है और वह दिन अधिक दूर नहीं जब कि भारतवासी विश्व में अपना नाम अमर करने में भरसक सफलता प्राप्त करेंगे।

३ फरवरी से ६ फरवरी तक यशवन्त क्लब पर मध्य-प्रदेश हार्ड-कोर्ट टेनिस टूर्नामेन्ट खेला गया। भारत के नम्बर एक खिलाड़ी—रामनाथन कृष्णन प्रथम बार इन्दौर में आये और फाइनल में उन्होंने बिलीनाईट को ६-३, ६-०, और ६-४ से हराया।

सम्पादकीय

विश्व-विद्यालयों को दिशा-निर्देश

हिन्दी के विषय को लेकर दक्षिण का गर्जन-तर्जन वैसा ही बना हुआ है, पृथक् प्रान्त की माँग की धमकी भी दी गई है, इसके विपरीत ऋषिकल्प आचार्य विनोबा भावे ने सबल शब्दों में हिन्दी का समर्थन किया है। उनका कथन है कि अंग्रेजी को राज्यभाषा के रूप में स्वीकार करना था तो अंग्रेजों को इस देश से भगाया ही क्यों? बात विचारणीय है और बिना टीका-टिप्पणी के उसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा के रूप में बनाये रखना अंग्रेजों के गुलाम बने रहने के बराबर है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि आज-पर्यंत कोई ऐसा देश देखने में नहीं आया जिसने स्वतंत्रता-लाभ करने के पश्चात् गुलामी के युग की भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में बनाये रखा हो। इतनी उदारता (?) तो वही दिखला सकता है जिसकी गुलामी की आदत छूटी न हो, जो पर कटे कबूतर की तरह या कि पिंजरे में चिरकाल से बन्द तोते की तरह जहाँ का तहाँ और जैसे का तैसा रहना चाहता हो, गुलाम का गुलाम; याकि अपने देश का गला काटकर जिसने वसुधैव कुटुम्बकम् (!) की माला जपना आरम्भ कर दिया हो।

उक्त स्थिति का निराकरण, जैसा कि हमने पहिले भी कई बार इन स्तम्भों में लिखा है, केवल विरोध प्रदर्शित करने से नहीं होगा। सरकार का इस दिशा में कुछ कर्तव्य है तो हिन्दी संस्थाओं तथा हिन्दी सेवियों का भी कुछ कर्तव्य है, जिसको अद्यावधि कार्य की दिशा प्राप्त नहीं हो रही है। विश्वविद्यालयों ने भी इस ओर कदम नहीं उठाया है। क्या हुआ जो किसी विश्वविद्यालय ने प्रमाण-पत्र हिन्दी में मुद्रित करा लिये। या स्नातकीय प्रतिज्ञाएँ संस्कृत में प्रस्तुत कर दीं, जब कि उनका अनुवाद अंग्रेजी में ही प्रस्तुत किया गया है। स्नातकीय तथा स्नातकीय उपाधियों के नाम अंग्रेजी में ही बने हुए हैं। किसी भी भारतीय विश्व-विद्यालय का प्रथम कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह उक्त उपाधियों का नामकरण हिन्दी भाषा में करें। विश्व विद्यालयों के कार्यालयों का कार्य बिना किसी रुकावट और हिचकिचाहट के हिन्दी में सम्पन्न हो सकता है, पर उनके पत्र व्यवहार में किसी भी दिशा में हिन्दी का प्रयोग नहीं दीखता। परीक्षार्थियों के प्रवेश-पत्र तक हिन्दी रूप ग्रहण नहीं कर सके हैं। यह कैसी शोचनीय स्थिति है। ऐसी कार्य परिपाटी में दक्ष स्नातकों से किस प्रकार यह आशा की जा सकती है कि वे हिंदी प्रेम लेकर विश्वविद्यालयों से बाहर निकलें। हम समझते हैं कि यह उपयुक्त अवसर है जब विश्व-विद्यालय इस ओर कदम बढ़ाएँ। क्या हम मध्यप्रदेश के नव-गठित विश्व-विद्यालयों से यह आशा करें कि वे उक्त दिशा में अपना कर्तव्य निर्धारित कर दूसरों के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। यदि उनका ध्यान इस ओर को आकृष्ट नहीं होता तो हिन्दी-संस्थाओं तथा हिन्दी-सेवियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे इस दिशा में विश्वविद्यालयों का ध्यान आकर्षित ही न करें वरन् उन्हें उक्त कार्य प्रणाली अपनाने पर मजबूर कर दें।

विश्वविद्यालयों से अभी हमें कुछ और भी वक्तव्य है, वह यह कि वे जहाँ तक सम्भव हो हिन्दी माध्यम को शीघ्रातिशीघ्र स्वीकार कर घोषित करें तथा देश के हेतु कार्य-परिपाटी निर्धारित करें जिससे अंतिम कक्षा तक माध्यमरूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित किया जा सकें।

पर हमें प्रान्तीय भाषाओं की ओर से भी जागरूक रहना होगा। हमारा विचार है कि बी० ए० तथा एम० ए० में हिन्दी के साथ उन्हें उचित स्थान दिया जाए। वह इस प्रकार सम्भव है कि बी० ए० में हिन्दी लेने वालों को किसी एक प्रान्तीय भाषा का ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाए। अब जब कि स्नातकीय पाठ्य-क्रम का फैलाव तीन वर्षों में होने वाला है विद्यार्थी को तीन वर्षों में किसी भी एक प्रान्तीय भाषा का ज्ञान अनिवार्यतः कराया जा सकता है और अन्तिम वर्ष में कम से कम अनुवाद करने योग्य साधारण योग्यता की परीक्षा ली जा सकती है। एम० ए० के पाठ्य-क्रम में स्वतंत्र रूप से एक प्रश्न पत्र प्रान्तीय भाषा का होना अनिवार्य है, जिसका स्तर इण्टर के बराबर तो अवश्य ही हो। बी० ए० स्तर पर एक बात और भी कर्तव्य है कि जहाँ किसी प्रान्तीय भाषा में अध्यापन और परीक्षण होता भी है वहाँ उसे हिन्दी के पर्याय के रूप में होता है। कोई परीक्षार्थी दोनों भाषाएँ नहीं ले सकता। जिस प्रकार हिन्दी के साथ अंग्रेजी ली जा सकती है उसी प्रकार अन्य प्रान्तीय भाषा लेना नियम विरुद्ध न होना चाहिए। इसका प्रभाव निश्चय ही बड़ा लाभकारी होगा। हिन्दी एम० ए० में एक बात और भी आवश्यक है, वह है किसी भी प्राचीन भारतीय भाषा का अध्ययन—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश इनमें से किसी की जानकारी अब परमावश्यक है। हिन्दी साहित्य के अध्ययन में ज्यों ज्यों गम्भीरता आती जाती है त्यों-त्यों वह अनिवार्य होता जाता है कि उक्त भाषाओं का अध्ययन कराया जाए; बिना ऐसा किये परीक्षा भले ही उत्तीर्ण कर ली जाए, अध्ययन में गहराई नहीं आती और एम० ए० कर लेने के पश्चात् भी किसी व्यक्ति को स्वयं को तुलनात्मक दृष्टि प्राप्त नहीं हो पाती और न वह हिन्दी के प्रागैतिहासिक युग को ही समझ सकता है, जिसकी देन हिन्दी साहित्य-प्रयाग है, अतः इस दिशा में भी विश्वविद्यालयों का यह कर्तव्य है कि भाषा-विज्ञान के प्रश्न-पत्र के साथ एक प्राचीन भारतीय भाषा का अध्ययन अनिवार्य कर दें। ऐसा बिना किये अध्ययन में गम्भीरता न आ सकेगी तथा भावी विद्वान में एक ऐसी कमी हो जाएगी जिसके लिए वह सदा पर-मुखापेक्षी बना रहेगा। आशा है हमारे इन सुझावों पर उचित ध्यान दिया जाएगा।

इन्दौर रेडियो का कवि सम्मेलन

गतमास इन्दौर-भोपाल रेडियो से रेडियो-सप्ताह बड़ी धूमधाम और चहल-पहल के साथ मनाया गया, जिसमें प्रतिदिन भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। रेडियो सप्ताह के कई कार्यक्रम बहुत सफल हुए इसमें सन्देह नहीं, पर मुशायरा और कवि-सम्मेलन सहृदयों को नहीं जँचे। मुशायरे को तो मुशायरे के शौकीन ही चर जाते हैं। उनकी बेवक्त की दाद उसके लिए कोढ़ बन जाती है और यह उक्ति चरितार्थ होती है—"इस घर को आग लग गई घर के चिराग से।" कवि-सम्मेलन भी अपने उपयुक्त स्तर को प्राप्त न कर सका। इसके कई कारण हैं सर्व-प्रथम तो यह कि वह तथाकथित अखिल भारतीय था। अकेले कवि भगवती-चरण वर्मा को, मध्यप्रदेश छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधि मान लिया जाए तो भले ही, उसे अखिल भारतीय कह लिया जाए, नहीं तो वह मालवा (माइनस) रहित मध्यप्रदेश का कवि सम्मेलन था। हम समझते हैं कि श्री कुंजबिहारीलाल पाण्डेय सम्पूर्ण मालवा का प्रतिनिधित्व तो नहीं कर सकते। दूसरी कमी यह थी कि कवियों को "सीनियरिटी लिस्ट" में पिरोया गया था। सुकंठ गायक श्री त्यागी तथा गीतकार सरोज आरंभ में ही चलते कर दिये गये, जबकि बीच में वे कवि-सम्मेलन के लचकने पर वे सहारे का काम दे सकते थे। श्री वास्तव-बन्धुओं की दोनों कविताएँ सूक्त पूर्ण होने से बहुत पसन्द की गईं, पर उन्होंने लंबाई का ध्यान नहीं रखा, फिर तो लम्बाई की ऐसी होड़ लगी जैसे कि पंक्तियाँ या शब्द गिनकर रुपये बाँटे जाएँगे। कुछ व्यक्तियों के विषय में तो हमें उसी दिन पता लगा कि वे कवि हैं या कवि रह गये हैं। अतः कवियों का चुनाव और पढ़ने का क्रम दोनों ही गलत थे। हमारा सुझाव है कि कवियों से रचनाएँ पहले से माँग ली जाया करें तो कहीं अच्छा हो। रिहर्सल भी

आवश्यक है जिससे क्रम निर्धारित हो सके। यदि श्री भवानीप्रसाद मिश्र, श्री गिरिजाकुमार माथुर तथा श्री भगवतीचरण वर्मा ने अंत में लाज न रखली होती तो ईश्वर ही मालिक था। वैसे तो कवि-सम्मेलन की यह संस्था सहृदयजनों के हृदय से दिन प्रतिदिन उतरती ही जा रही है। बहुत-सी बातों में रेडियो कवि-सम्मेलन भिन्न होते हुए भी साधारण कवि-सम्मेलन की कमियों से बचकर नहीं रह सकता। अतः यह चिन्ता है कि कवि-सम्मेलन किसी भी रूप में अपेक्षित रह गया है। इसी विषय को लेकर हमने चार वर्ष पूर्व इस विषय में आन्दोलन आरम्भ किया था जिसे सहयोगी "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" ने चरम स्थिति पर पहुँचा कर मतामत का निर्णय करने का अवसर दिया था। हमें कवियों और कलाकारों से भी कुछ कहना है। एक तो वे पुरानी रचनाएँ सुनाने के आदी हो गये हैं, जनता उनसे कुछ नया और टटका 'माल' चाहती है, क्योंकि यह उन्हें इच्छानुरूप 'माल' देती है। एक कवि सम्मेलन में कवियों को सुनाने का 'मूड' ही नहीं आया और मूड के अभाव में कवियों ने कवि-सम्मेलन को मिट्टी में मिला दिया क्योंकि रुपये एडवांस में मिल चुके थे। कविता की लम्बाई का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं कि कोई व्यक्ति जीवन-भर कवि बना रह सके। उसे ईमानदारी से 'रिटायर' हो जाना चाहिए। कोई गीतकार अपने अहम् के वशीभूत होकर यह भले ही समझता रहे कि वह सौ वर्ष आगे के गीत दे रहा है, पर उसे जान रखना चाहिए कि आज तो वह उतर चुका है, वह १०० वर्ष पश्चात् आवेगा तब सुन लेंगे। गीत दर्शन के बोझ को नहीं उठा सकता गीतकारों को यह भी स्मरण रखना चाहिए। ऐसे गीत-गोष्ठियों में भले ही चल जाएँ कवि-सम्मेलनों में नहीं चल सकते। आशा है कविगण तथा रेडियो प्रबन्धक हमें हमारी स्पष्ट वादिता के लिए क्षमा करेंगे। हमें काव्याभास और कवि-सम्मेलनाभास नहीं चाहिए।

बधाई

अवन्तिका के गौरव गान में सतत् लीन विद्वद्वर पं० सूर्यनारायण व्यास को हम उनके 'पद्म विभूषण' उपाधि की प्राप्ति के उपलक्ष में हार्दिक बधाई देते हैं, इस आशा और विश्वास के साथ कि उनके भावी दीर्घ जीवन में हिन्दी को इसी प्रकार सुफल प्राप्ति होती रहेगी और वे नित्य वृद्धिशील यश के भागी होते रहेंगे।

सम्पादकीय संतुलन

एक स्थानीय दैनिक की मोटी सुर्खी देखकर आश्चर्य और खेद हुए बिना न रहा "मुसलिमाओं जनता" के प्रति किसी राजनीतिक दल की गैर जिम्मेदारी की बात समाचार में कही गई थी। सम्पादक महोदय को लिखने की स्वतंत्रता प्राप्त है यह तो हम भी जानते हैं, पर संतुलन भी तो कोई चीज़ है, जो बाहर से नहीं भीतर से जिम्मेदारी के निर्वाह के साथ ही आना चाहिए। इस समाचार का कितना दुरुपयोग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक में हो सकता है इसका ध्यान तो रखना अपेक्षित था। पार्टी बन्दी की भी एक सीमा होती है, उसका उतना अतिक्रमण तो न किया जाए कि हम राष्ट्र के हित को ही खतरे में डाल दें। हम समझते कि यह सम्पादकीय स्वतन्त्रता की सीमा का भी अतिक्रमण कर जाता है और किसी भी सम्पादक को न्यायालय के द्वार तक घसीट ले जा सकता है।

मौलाना "आज़ाद" का दुःखद निधन

भारत के शिक्षा मंत्री, राष्ट्र के तपे सेनानी, जीवन भर देश की वेदी पर निछावर, जातीय पक्षपात से सतत् ऊपर मौलाना अबुलकलाम आजाद का दुःखद निधन सम्पूर्ण देश में शोक-संताप का भी कारण बन गया। मौलाना आजाद जहाँ उच्चकोटि के विद्वान दार्शनिक थे वहाँ व्यावहारिक जीवन में नितान्त संमत तथा सच्चे धर्म के अनुकूल आचरण करने वाले थे। वे जहाँ सुयोग्य लेखक थे, वहाँ उच्चकोटि के वक्ता थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उनका नाम भारत के इतिहास में सदा अमर रहेगा। हम श्रद्धावनत होकर ऐसे महान् व्यक्तित्व के निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह उनकी रूह को शान्ति प्रदान करें।

आप "वीणा" में ही विज्ञापन

क्यों

छपवायें !

क्योंकि—

अपने सुन्दर और आकर्षक गेटअप के साथ "वीणा" आज लगातार ३० वर्षों से हिन्दी-संसार की सेवा कर रही है।

"वीणा" के पाठकों की संख्या आज १०,००० से भी ऊपर है ।

"वीणा" सारे भारतवर्ष तथा समुद्र पार तक पहुँचती है।

"वीणा" के विज्ञापन के दर सब से सस्ते हैं।

"वीणा" ही समस्त मध्य-प्रदेश की एकमात्र प्रतिष्ठित एवं प्रतिनिधित्व करनेवाली पत्रिका है, जिसका प्रचार राजप्रासाद से लेकर छोटी से छोटी पाठशाला तक में है।

अतएव— **"वीणा" में विज्ञापन देकर**

अधिकाधिक लाभ उठाइये !

विज्ञापन के दरः—

(एक बार के लिए)

	स्थान रिक्त होने पर आवरण पृष्ठ के किसी भाग के लिए			अन्य साधारण पृष्ठों के लिए	
	एक रंग में	दो रंग में	तीन रंग में		
पूरा पृष्ठ	५०)	६०)	७०)	पूरा पृष्ठ	४०)
आधा पृष्ठ	२७)	३२)	३७)	आधा पृष्ठ	२२)
चौथाई पृष्ठ	१५)	२०)	२५)	चौथाई पृष्ठ	१२)

इंचों में —

आवरण पृष्ठ के लिए—	साधारण पृष्ठों के लिए—
५) प्रति इंच प्रति कालम	३) प्रतिइंच प्रति कालम

व्यवस्थापक—'वीणा' साउथ तुकोगंज, इन्दौर सिटी.

बधाई

नगर पालिका निगम, इन्दौर के चुनाव में समिति की कार्यकारिणी के दो सदस्य श्रीमान प्रो. डेविड साहब हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं वाइस प्रिन्सीपाल क्रिश्चियन कालेज, इन्दौर एवं श्रीमान रामगोपालजी अग्रवाल साहित्यरत्न विजयी घोषित होने कारण श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर उन्हें बधाई देती है।

अध्ययन कक्ष की बैठक

दिनाँक १६-२-५८ व २३-२-५८ को समिति के तत्वावधान में संचालित अध्ययन कक्ष की बैठकें हुई। जिसमें उपस्थित सज्जनों ने अपनी अपनी स्वरचित रचनाएं पढ़कर सुनाईं एवं वर्तमान युग-साहित्य निर्माण पर विचार विनिमय हुआ।

मौ. आजाद का दुखद निधन

गांधी युग के राष्ट्र नायकों में मौलाना अबुल कलाम आजाद का स्थान अनूठा रहा। उनकी असामान्य विद्वता, ज्वलन्त राष्ट्रीयता तथा असीम कुर्बानी ने उन्हें बहुत जल्दी ही राष्ट्र नायकों की अगली पांति में स्थापित कर दिया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वाभाविक रूप से वे केन्द्रीय मंत्रि मंडल में सम्मिलित किये गये तथा शिक्षा विभाग की बागडोर उन्हें सौंपी गई।

राष्ट्र पर उनके निधन से जो अनभ्र वज्रपात हुआ है उसकी दारूण व्यथा दीर्घ समय तक बनी रहेगी। और जो हानि हुई है उसकी पूर्ति तो असम्भव सी ही है।

मौलाना अबुल कलाम आजाद का जन्म १८८८ में मक्का में हुआ। उनका बचपन अरब देश ही में बीता और शिक्षा घर पर हुई। १४ वर्ष की अवस्था में अरबी और प्राच्य धर्मों का अध्ययन पूरा कर लेने के बाद उन्होंने ईराक, मिस्र सीरिया तुर्की और फ्रांस की यात्रा की और स्वाध्याय द्वारा यूरोपीय भाषाओं और साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया।

मौलाना आजाद अपने पिता के साथ भारत आये और १९१२ में उन्होंने कलकत्ते से उर्दू के एक साप्ताहिक पत्र अलहिलाल का प्रकाशन आरम्भ किया। १९१४ में ब्रिटिश सरकार ने इस पत्र का प्रकाशन बंद कर दिया और श्री आजाद को रांची में नजरबंद कर दिया। १९२० में रिहा होने के बाद आपने खिलाफत और असहयोग आंदोलनों में मुख्य रूप से भाग लिया। फलस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दो साल के लिए जेल में डाल दिया गया। १९३०-३२ के सविनय अवज्ञा आंदोलनों में भी मौलाना आजाद ने सक्रिय भाग लिया और जेल गये। अगस्त १९४२ में उन्हें भारत छोड़ो आंदोलनों के सिलसिले में गिरफ्तार कर लिया गया और जून १९४५ में रिहा किया गया।

१९२३ में दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ और मौलाना आजाद इस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। १९३० में वे फिर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। १९४० में आजाद तीसरी बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने और १९४६ तक इस पद पर रहे। १९४२ में क्रिप्स मिशन और १९४६ में मंत्रिमंडल मिशन से बातचीत के समय मौलाना आजाद कांग्रेस दल के मुख्य प्रवक्ता रहे।

जनवरी १९४७ में मौलाना आजाद अंतरिम सरकार में मंत्री बने। उसी वर्ष अगस्त में वे शिक्षा मंत्री बने और मई १९५२ में उन्हें प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक गवेषण विभाग भी सौंप दिये गये। १९५१ में वे संसद में कांग्रेसी दल के उपनेता चुने गये और १९५२ में प्रथम आम चुनावों के बाद फिर उपनेता चुने गये।

मौलाना आजाद ने दर्शन साहित्य पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने कुरान की टीका की है जो बहुत विख्यात है।

१९५७ के आम चुनावों में मौलाना आजाद पंजाब के गुड़गांव चुनाव क्षेत्र से लोक सभा के लिए पुनः निर्वाचित हुए थे।

शोक सभा

दिनांक २२-२-५८ को समिति मंत्रि मंडल की बैठक में मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब के स्वर्गवास पर निम्न लिखित शोक प्रस्ताव स्वीकृत हुआः—

प्रस्तावः—श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर के मंत्रिमंडल की यह बैठक भारत गणराज्य के शिक्षा मंत्री, फारसी और अरबी के सुविख्यात विद्वान एवं अद्वितीय देशभक्त मौलाना अबुल कलाम आजाद के निधन पर हृदयतल से शोक प्रकट करती हुई परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान कर शोक संतप्त समुदाय को यह दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

उक्त आशय का एक तार अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री ढेबर भाई को भी दिया गया। समिति के कार्यालय बंद रखे गये।

जगन्नाथ वियाणी
प्रचार मंत्री

'वीणा' रजिस्टर्ड नं. जे. ८७

अनुक्रम संख्या............

श्रीमान् सम्पादक, गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

'वीणा' मासिक पत्रिका का वार्षिक विवरण.

(Rule 8)

1. Place of Publication — इन्दौर
2. Periodicty of its publication — प्रतिमास
3. Printer's Name — उमाशंकर जोशी मैनेजर समिति प्रेस
   Nationality — भारतीय
   Address — ५५ साऊथ तुकोगंज, इन्दौर
4. Publisher's Name — उमाशंकर जोशी
   Nationality — भारतीय (समन्वयवादी)
   Address — ५५ साऊथ तुकोगंज, इन्दौर
5. Editor's Name — श्री प्रो. कमलाशंकर मिश्र एवं श्री प्रो. रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'
   Nationality — भारतीय
   Address — ५५ साऊथ तुकोगंज, इन्दौर
6. Names and addresses of individuals who own the newspapers and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital. — संस्था— श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य समिति, इन्दौर

I, Umashankar Joshi hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Date 1-3-58.

उमाशंकर जोशी.
Signature of Publisher.

मुद्रक एवं प्रकाशक—पं० उमाशंकर जोशी मैनेजर, श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति प्रेस, इन्दौर.

सम्पादक :

प्रो० कमलाशंकर मिश्र

प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

श्री म.भा. हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर की मासिक मुख-पत्रिका

विषय-सूची

वर्ष ३१] अप्रेल १९५८ [अङ्क ६
वैशाख विक्रम संवत् २०१५
शक संवत् १८७९
वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति का ॥)

वीणा

श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर की मुख-पत्रिका
तेरे गुन-गौरव सुनाऊँ आजु भूतल पै, यातें मातु सारदे सुधारि निज 'वीणा' तू।

वर्ष ३१ | वैशाख संवत् २०१५, अप्रेल सन् १९५८ | अंक ६

चार मुक्तक

श्री रामकृष्ण दीक्षित 'विश्व'

विश्वासों से प्यार

जिन्हें अपने विश्वासों से प्यार नहीं है
उन्हें जीने का कोई अधिकार नहीं है
वे जमाने को चलना सिखलायेंगे क्या
जिनके पैरों के पीछे संसार नहीं है॥

मंज़िल का रोना

जिनका जीवन बाधाओं का दास नहीं है
मौत को उनके मरने की आस नहीं है
वे ही रोते हैं मंजिल का रोना यहाँ
अपने पैरों पर जिनको विश्वास नहीं है॥

तूफ़ान की छाँव

जन्म लेते हैं जो मृत्यु के गाँव में
आसमाँ उनसे जीतेगा क्या दाँव में
उनको लहरों से क्या उनको साहिल से क्या
जिनकी नय्या है तूफ़ान की छाँव में?

पेट की रामलीला

क्या जहाँ ने पढ़ा अपना लेखा नहीं
पेट की रामलीला को देखा नहीं
जनता सीता यहाँ जुल्म रावण यहाँ
लक्ष्मण की मगर हाय! रेखा नहीं॥

बहार आकर चली गई है

श्री जगदीश सलिल

किसी कली ने कहा भ्रमर से—
" सुहाग मेरा अमर बनादे
सुना-सुना मद-भरा तराना
कली-कली पर बहार ला दे "
इसीलिए गा उठा भँवरवा
कली-कली पर सुमन-सुमन पर

तभी जलन से कहा किसी ने—
" अजान कलिका छली गई है "
बहार आकर चली गई है

बहुत नजर से नजर मिलाई
मिला न लेकिन कहीं ठिकाना
मिला अगर तो दरद मिला है
कहीं भरोसा, कहीं बहाना
दिया जलाया अगर निशा में
किसी चाँद ने हँसी उड़ादी

किसी हृदय की सनेह-पूजा
किसी चरण से मली गई है
बहार आकर चली गई है

पता—दानाओली लश्कर (ग्वालियर)

गीत

श्री बाबूलाल शर्मा, 'प्रेम'

तपस्या सफल हो युगों की, कहीं जो
तुम्हें याद करते उमर बीत जाए

मिलेंगे अनेकों सहारे लहर को
तरल धार स्वच्छंद बहती रहेगी
मिलन कामना के लिए अश्रु पीकर
पिपासा सदा चोट सहती रहेगी

यही सोच संतोष पाता रहूँगा
नयन में कभी थे नयन मुस्कराये ॥

खलेगी न दूरी कभी इस पथिक को
न तुम प्राण से दूर ही जा सकोगे
प्रणय की सरस रागिनी को मिटाकर
न तुम चाँदनी की किरण पा सकोगे

बने दर्द का गीत संबल हृदय का
डगर में कभी जब चरण डगमगाएँ ॥

जहर की कली से सुधा माँगता कब
सुहागिन व्यथा से रहा माँग सरगम,
अगर दे सको मुक्त अभिव्यक्ति दे दो
तभी बन सकेगा उजाला विरहगम

जीवन पवन चाहिए अब मुझे जो
तुम्हारे लिए साँस बन रीत जाएँ ॥

—अलादादपुर पो. बेंहदर (हरदोई)
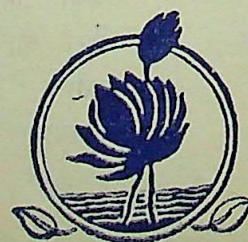
कल्पना का सत्य

प्रो० 'चन्द्र'

दैनिक 'सैनिक' हाथ में है, एक समाचार—

युवती ने आत्म-हत्या की

आगरा २० मार्च—पीपल वाले पुल के पास रेलवे लाइन पर एक युवती का शरीर तीन भागों में विभाजित पड़ा मिला, सिर—धड़—पैर! बाँई कलाई पर एक घड़ी बँधी थी, शरीर की घड़ी का स्पन्दन सदा-सर्वदा को सो गया था, पर निर्जीव घड़ी चल रही थी टिक्-टिक्-टिक्। लाश के टुकड़े पुलिस उठाकर अस्पताल को ले गईं, जहाँ पोस्टमार्टम...........

पोस्टमार्टम! यानी मरे को मारे शाहमदार। और मैं सिंहावलोकनमयी कल्पना के शल्य से उस युवती के जीवन का पोस्टमार्टम कर चला हूँ—

"मीनाक्षी को बुलाओ" मुख्याध्यापिका ने कड़क कर कहा।

"जी" सहमी-सी आवाज में कहकर मोल करनी चली गई थी।

मुख्याध्यापिका—कुछ ढलती अवस्था—भँवें कुछ तनी हुई—सोचती हैं कैसा कलयुग आ गया है! हाय राम!!

मीनाक्षी आकर खड़ी हो गई है—"कहिए"

"बैठ जाओ"

मीनाक्षी बैठ जाती है।

पूछा गया—"तुम्हारा विवाह हो गया क्या?"

"जी नहीं, लेकिन............"

"लेकिन कुछ चल रहा है, है न?"

"जी"

"जी, जी क्या? मेरे आँखें नहीं है क्या? शरीर की वृद्धि क्या कुछ नहीं कह रही?"

"पर हमारा विवाह तो............"

"हो ही रहा है, यही कहना चाहती हो ना? उसने कहा होगा, तुमने विश्वास कर लिया!"

और तभी एक धुँधला चित्र स्पष्ट होकर मुख्याध्यापिका के सामने तैर गया, वह काँप कर रह गई—नदी का किनारा, पत्थर गले में बाँधकर उतर ही रही थी कि...........

"देखो मीनाक्षी, मुझे तुम्हारे साथ सहानुभूति है, पर अधिकारी सुन पाएँगे तो...........

"अधिकारियों का मैंने क्या बिगाड़ा है बहिन जी।"

"क्या कुछ नहीं बिगाड़ा है, यह कहो?" चेहरे की नरम पड़ी लकीरें कुछ तन गई थीं, भौंहें कुंचित हो उठी थी।

"अभी कुछ दिन पूर्व आप भी तो संगोपन-गृह...."

"चुप लुच्ची, जबान लड़ाती है!"

मीनाक्षी को लिखित आदेश मिल गया—वह दुश्चरित्रा है, उसे अपदस्थ किया जाता है।

× × ×

"स्कूल से निकाली गई!" दो स्वर एक साथ सुन पड़े, एक बारीक माँ का—एक भारी पिता का —क्यों निकाली गई भला!"

मीनाक्षी ने आदेश-पत्र आगे बढ़ा दिया।

"दुश्चरित्रा! जा उसी के पास! कितना समझाया, लेकिन......."

"लेकिन! आज कहते हो तुम मैं दुश्चरित्रा हूँ। उसका माल ऐंठने के लिए..........."

चटाख! चटाख!! दो चाँटे, झोंटा पकड़ कर घर से बाहर...........

× × ×

"क्या स्कूल से निकाल दी गई ?"

"घर से भी।"

"बुरा हुआ मीनाक्षी।"

"मेरा तुम्हारे अतिरिक्त..........."

"कौन है ? क्यों ? पर मैं तो मजबूर हूँ",

"विवाह ?"

"विवाह तुमसे कैसे करूँ ? विवाह के तीन महीने बाद तुम माँ बन जाओगी। दुनिया क्या कहेगी ?"

"दुनिया क्या कहेगी ! पापी !!

.लाल आँखें दिखाती विकाराल काली-रूपिणी ट्रेन—धड़ धड़—छुप-छुप-छुपक-छुपक छुप........ई ऽ ऽ —कोई लाइन परलेट गई ई ऽऽऽ ई ऽऽऽ ई ऽऽऽ धड़ धड़ छुप-छुप-छुपक-छुपक छुप-गाड़ी पार हो गई—शव के तीन टुकड़े-

........अरे हाँ "सैनिक" का समाचार तो पूरा कर लूँ—........लाश के टुकड़े पुलिस उठाकर अस्पताल को ले गई, जहाँ पोस्ट मार्टम किया गया। उसकी जेब में एक चिट्ठी निकली, लिखा था—

माँ-बाप अन्धे हैं, भाई बहनों की जिम्मेदारी! रोजी-रोटी का कोई वसीला नहीं था। बी० ए० पास करने पर बहुत दिनों में एक स्कूल में अध्यापिका हुई, जिधर देखो, लोलुप आंखें मेरे लिए लपलपाती ही दिखतीं, मुख्याध्यापिका ने मजबूर किया स्कूल के मंत्रीजी की सेवा के लिए....। आज सब कुछ खोकर कैसे जीवन धारण किये रहूँ !"

ओह ! हाय री विषमयी विषम कल्पना !! क्या से क्या सोच गई थी डायन !!!

\+ \+ \+

"अरे कुछ सुना तुमने ?"

"क्या ?"

"सुनयना ने आत्म-हत्या कर ली।"

"कैसे ?"

"पोटेशियम साइनाइट खाकर।"

"क्यों ?"

"क्या बताऊँ, स्कूल, घर तथा कायर प्रेमी तीनों के द्वारा ठुकराये जाने के कारण।"

"ओह, यह बात !"

"क्या बात ?"

"कल्पना सच ही निकली, एक दम सच।"

दो सवैये

(१)

मान मरोर रहैगी कहाँ लौं जो मेघ की घोर घटा घहरैगी।
बेग उदेग कौ कौलौं दबैगौ जू हूल हिये की जो पैंग भरेगी।
भौंह कमान तनी क्यों रहे तनी, काम कमान जो रोधा धरेगी।
तेहु बहैगौ जू नेह के मेह सौं, बाकी जो नैंकु छटा छहरैगी॥

(२)

दान पै मान की रो धन राखिये, ग्यान गरैगौ गुमान कौ मारौ।
हाय हहा करिहै अरी नैक में, कोऊ जो काम जरे ने न जारौ ?
देखि परैगी जो सूरति पीय की, बाँध उमंग को टूटैगौ भारौ।
कालि परौ हुतौ पायनि तेरे जो, चाहिहै लै कोई अंक पै पारौ॥

—कश्चित्

वाकाटक प्रवरसेन विरचित सेतुबन्ध महाकाव्य

अनुवादक—श्री विजयगोविंद द्विवेदी

(छटवें आश्वास का शेषांश)

दढबंदाणिअमूला वलन्ति वाणरभुआवलम्बिअसिहरा ।
रोसुप्पित्थभुअंगमविसमुद्धफणापणोल्लिआ धरणिहरा ॥४६॥

पर्वत, जिनकी जड़ें दृढ़ता से गड़ी हैं और जिनके शिखर वानरों की भुजाओं पर टिके हैं, क्रोध में उद्विग्न हुए भुजंगमों के विषमतापूर्वक उठते फनों की प्रेरणा से तिरछे होते हैं।

सरिआ सरन्तपवहा अण्णोण्णमहाणइप्पवहपल्हत्था ।
लोहिअपङ्कक्खउरा वलन्तसेलविलिआ मुहुत्तं वूढा ।५०।

हिलाये-डुलाये जाते पर्वतों के साथ विपर्यस्त हुई नदियों की बहती धाराएँ जिनके बड़ी-बड़ी नदियों के प्रवाह एक दूसरे पर जा गिरे हैं और जो ऊपर उठे पंक से गिर कर मलिन हो गई है, मुहुर्त-भर के लिए मिल गई है।

कड्ढिज्जन्ति समन्ता विसमुव्वत्तन्तधवलकसणच्छाआ ।
महिहरमूलालग्गा रसाअलद्धपडिधोलिरा भुअइन्दा ॥५१॥

पर्वतों के मूल से चिपटे भुजंगराज जिनका आधा भाग रसातज में बल खा रहा है और तिरछे होकर पलट जाने से जिनकी धवल एवं कृष्ण काँति हुई है, (वानरों द्वारा) सर्वतः खींचे जाते हैं।

गलइ सरसं पि कुसुमं वाइ अणालिद्धबन्धणं पि किसलअम् ।
रहसुम्मूलिअमहिहरमअविवलाअवणदेवआण लआणम् ॥५२॥

पर्वतों के वेगपूर्वक उखाड़े जाने से भयभीत होकर जिन लताओं की वनदेवियाँ भाग गई हैं उनके सरस (बिना कुम्हलाए) कुसुम भी गिरते हैं और किसलय जिनके वृन्त को छुआ भी नहीं गया है, शाखा को छोड़ते हैं।

उक्खिप्पन्ति जं दिसासु धरा समत्ता
तेण खणेण णज्जइ वसुन्धरा समत्ता ।
कीरइ महिहरेहि गअणं दिसालआणं
वड्ढइ जलअसिहरपउणं दिसालआणम् ॥५३॥

पूरे के पूरे पर्वतों को जो दिशाओं में उखाड़ा जाता है उससे वसुन्धरा क्षण-भर में समाप्त हुई ज्ञात होती है और आकाश को पर्वतों से जो दो शाल-वृक्षों की ऊँचाई तक नापा जाता जाता है, उससे दिशा रूपी लताओं के जलद-रूपी शिखर अधिक ऊँचे बढ़ जाते है।

एक्केक्केण अ सेलं करअलजुअलधरिअं तुलन्तेण कअम् ।
अद्धात्थमिअं च णहं अद्धुग्घाडिअरसाअलं च महिअलम् ॥५४॥

एक-एक वानर ने दोनों हथेलियों पर धारित पर्वत को ऊपर उठाते समय आकाश को आधा ढक दिया और पृथ्वी-तल के आधे रसातल को उघाड़ दिया।

सेलणिअम्बालग्गा पविरलणइमग्गपाअडतडच्छेआ ।
भुअइन्दप्फणधरिआ णहं विलग्गन्ति मेइणिअलद्धन्ता ॥५५॥

पृथिवी-तल के भुजंगराज द्वारा आधारित प्रदेश, जो पर्वतों के नितम्ब-भागों से संलग्न हैं और सरिता-मार्गों के क्षीण हो जाने से जिनके तटीय भाग दिखाई देने लगे हैं (पर्वतों के उठाए जाने से) आकाश में संलग्न होते हैं।

धरणिहरेण अ चलिअं चलिअकन्दरेण
पुट्टइ गअउलं अणालिद्धकं दरेण ।
गिरिसिहराइ सरसहरि आलवङ्किआइं
समविसमं णमन्ति हरिआलवङ्किआइं ॥५६॥

पर्वत, जिनकी कंदराएं हिलडुल रही हैं, चलायमान होते हैं, और हाथियों का समूह, जिसने पानी भी नहीं पिया है, त्रास से बिखरता हैं; तथा वानर-समूह-द्वारा तिरछे किये गये गीली हरताल से अंकित पर्वत-शिखर सम विषम रूप से नमित होते हैं ।

पाअवसिहरुत्तिणो मलअवणपवित्तपवणरअवित्थरिओ
संझाराओ व्व णहं अप्फुन्दइ मलिअरविअरं कुसुमरओ ॥५७॥

पादप शिखरों से उड़ी कुसुम-रज जो मलय वन से चली वायु के वेग से फैल गई है और जिसने सूर्य-किरणों का आलिंगन किया है, संध्या के सिंदूर रंग के समान आकाश को आच्छादित करती है ।

कड्ढिअमूलणिरन्तर रसाअलुक्खित्तसलिलकद्दमघडिआ
वड्ढुन्ति त्ति मुणिज्जइ णज्जइ ण मुअन्ति महिअलं ति महिहरा ।।५८॥

पर्वत, जिनकी खींची गई जड़ से रसातल के जल की (बहती हुई) कीचड़ का अविरल ताँता लगा है (उसके कारण) आकार में बढ़ते ज्ञात होते हैं और प्रतीत होता है कि पृथिवी-तल को छोड़ते नहीं हैं ।

सिहराइ णिआइ णहं महिन्दलद्धाइं
मलअस्स अ अहणिआइ महिं दलद्धाइं ।
विज्झणिअम्बाण कई दप्पुण्णामाणं
सज्झअडाण अ भरिआ धुअपुण्णामाणम् ॥५६॥

वानरों ने महेन्द्र पर्वत के लाये हुए शिखर आकाश में फेंक दिये और मलय पर्वत के पटल पृथिवी पर डाल दिये तथा दर्पोन्नत विंध्य के नितम्बों को और सह्य के तटों को जिन पर पुन्नाग के वृक्ष कंपित हैं, वहन किया ।

सिहराण भुअसिरेहिं कडआण अ माविअं उरेहि पमाणम् ।
वणविबरेहि दरीणं तुलिया पवआण अग्गहत्थेहि गिरी ॥६०॥

(वानरों ने) शिखरों का प्रमाण कन्धों से, कगारों का वक्षस्थलों से और गुहाओं का घावों के गड्ढों से नाप लिया तथा पूरे पर्वतों की हाथ के छोरों से समानता करली ।

पडिसन्तकण्णआलं ओवत्तमुहं पसारिओलुग्गकरम् ।
झाइ णु सोअणिमिल्लं वीसमइ णु भमिअणीसहं हत्थिउलम् ॥६१॥

भ्रमित होने (के श्रम) को सहन कर हाथियों का समूह, जिसके कानों के तालपत्र निस्पन्द हैं, जिसने मुख तिरछा कर लिया है और खिन्न सूंड को पसार दिया है (अपनी हथिनी अथवा शेष यूथ के) शोक में नेत्र बन्द कर विचार-सा करता मानो विश्राम करता है ।

पाअवा अ पासल्लसेलविसमाणिआ
चुण्णिआ दलिज्जन्तदलुव्विसमाणिआ ।
जलहरा अ विहडन्तमहिन्दरवाविआ
बणलआ अ घोलन्ति महिं दरवाविआ ॥६२॥

पर्वतों के एक ओर को झुकने से संतुलन बिगड़ने के कारण तल भाग की भूमि को तोड़ते हुए गिरे वृक्ष चूर-चूर होते हैं, महेन्द्र पर्वत के खण्ड होने के रव से अभिभूत हुए जलधर भटकते हैं और लताएँ लगभग धरती पर आ गई हैं ।

दुट्टन्ता वि ससद्दं पवअभुअक्खेवमूलवलिअद्धन्ता ।
भुअएहि मोअभारा सेलभरङ्कुसइअप्फणेहि ण णाआ ॥६३॥

पर्वतों को रोक रखने के लिए फन को अंकुश के रूप में गड़ाये भुजंगों ने, वानरों की भुजाओं द्वारा (पर्वतों के हठात्) ऊपर उठाये जाने में (पृथिवी के) मूल (रसातल) से लिपटे उनके विशाल शरीरों के अन्त्यार्ध शब्द करते टूट रहे हैं, यह जाना भी नहीं ।

दरदाविअपाआलं दरउक्खित्तविहलोसरन्तभुअंगम् ।
दीसइ हीरन्तं मिव कईहि दरतुलिअमहिहरं महिवेढम् ॥६४॥

वानरों-द्वारा पर्वतों के किंचित् उठाये जाने से, जिनके किंचित् उछाले जाने से व्याकुल भुजंग भाग रहे हैं, पृथिवीतल ही, जिसका पाताल कुछ-कुछ दिखाई दिया है, मानो ढोया जाता दिखाई देता है।

मीणउलाइ अविअ सिढिलेन्ति जीविअं ण अ णदीहराइं
विअसन्ते मुअन्ति धरणिहरसंभमे णअणदीहराइं।
महिसउलाण मणिसिलावेल्लिआण वणचन्दणासिआणं
अवसेसो वि णत्थि तिमिरुग्गमाण जह चन्दणासिआणम्
॥६५॥

पर्वतों के संभ्रम में विशाल मत्स्यों के समूह न केवल पर्वतीय नदियों को ही छोड़ते हैं, वरन् उनका प्राणों से सम्बन्ध भी शिथिल होता है तथा वन के चन्दन-द्रुमों का आश्रय लेने वाले महिष-समूहों का, जो (स्फटिक) मणि-शिलाओं से आहत हुए थे, चन्द्रमा-द्वारा भक्षित अंधकार के उद्गम के समान ही अवशेष भी नहीं रहा है।

अद्धेअद्धप्फुडिआ अद्धेअद्धकडउक्खअसिल वेढा।
पवअभुआहअविसढा अद्धेअद्धसिहरा पडन्ति महिहरा।
॥६६॥

वानरों की भुजाओं के आघात से खण्ड-खण्ड हुए पर्वत, जो अध्यार्ध से फट गये हैं, जिनके कगारों के अध-बीच से शिलातल ढह गये हैं और जिनके शिखर बीच से दो टुकड़े हो गये हैं, गिरते हैं।

जस्स सिहरं विवडइ पडिअं फुडिओ अ जो धरिज्जइ सेलो।
सो च्चेअ विसज्जिज्जइ उक्खन्तूण वि अपूरमाणम्भि भरे ॥६७॥

जिस पर्वत को, शिखर गिर पड़ने से सदोष अवधारित किया गया है, और जो पर्वत बिखरा नहीं है, किंतु जिसमें दरार पड़ गयी है, वह उखाड़ा हुआ भी, कार्य पूरा करने के अयोग्य होने से, त्याग दिया जाता है।

लोअणवत्तन्तरिए करेणुअन्तीओ
धारेन्ति वाहमइए करेणुअन्तीओ।
मण्णेन्ति अ आसाअं विसं णवअणस्स
विरहम्मि जूहवइणो विसण्णवअणस्स ॥६८॥

सविषाद मुखश्री वाले यूथपति के विरह में रुदन करती हथिनियों के समूह अश्रुकणों को आँखों के पलकों में धारण करते हैं और नवीन तृणों के आस्वाद को विष मानते हैं।

सेलुद्धरणारोसिअभुअइन्दणिराअअप्फणाणिसम्मन्ती।
जह जह संखोहिज्जइ तह तह कइदेहभरसहा होइ मही
॥६९॥

पृथिवी जैसे-जैसे विचलित होती है, वैसे ही वैसे पर्वतों के उखाड़े जाने से रुष्ट हुए शेषनाग द्वारा फैले हुए फनों पर स्थिर की जाने से वानरों के देह-भार को सहन करने में सक्षम होती है।

संचालिअणिक्कम्पा भुआणिहाअविसमुक्खअसिलावेढा।
खुडिआ सिहरद्धेसु अ पवएहि णिअम्बबन्धणेसु अ सेला
॥७०॥

वानरों ने अकम्पित पर्वतों को हिलाया, भुजाओं के आघात से उनके नीचे ऊँचे शिलातलों को तोड़ दिया तथा उन्हें शिखरों के आधे भाग पर से और नीचे के भाग के संधिस्थलों से छाँट दिया।

उण्णामिअं मिव णहं दूरं ओसारिआ विव दिसाहोआ।
उम्मूलन्तेहि घरे पसारिअं मिव पवंगमेहि महिअलम्
॥७१॥

वानरों ने पर्वतों को उखाड़ते हुए आकाश को मानो ऊँचा उठा दिया, दिशाओं के विस्तार को मानो दूर तक पीछे हटा दिया और पृथिवी तल को मानो अधिक विस्तृत कर दिया।

दीसइ कइणिवहुक्खअधराहरट्ठाणगहिरविवरुत्तिण्णो।
उप्पाआअवअम्बो सेसाहिप्फणमणिप्पहाविच्छड्डो ॥७२॥

वानरों-द्वारा उखाड़े गये पर्वतों के स्थान पर के गहरे खड्डों में से निकला शेषनाग के फनों की मणियों का उदित होते अरुणातप के समान प्रभापुंज दिखाई देता है।

केलासदिट्ठसारं गरुअं पि भुआबलं णिसाअरवइणो
पवएहि पाडिएक्कं एक्ककरुक्खित्तमहिहरेहि लहुइअम्
॥७३॥

वानरों ने निशाचर-पति के (बीस भुजाओं के) भारी बाहुबल को भी, जिसका उत्कर्ष कैलास पर्वत के संदर्भ में देखा जा चुका है, प्रत्येक ने एक-एक हाथ पर पर्वतों को उठाकर तुच्छ कर दिया।

उक्खअगिरिविवरोवइअदिणअराअवमिलन्ततमसंघातम्।
जाअं पविरलतिमिरं आवण्डुरधूमधूसरं पाआलम् ॥७४॥

पर्वतों के उखाड़े जाने से उत्पन्न हुए विवरों में पड़े सूर्य के आतप से अंधकार का संघात मिल रहा है और उससे पाताल का अँधेरा अत्यन्त विरल तथा किंचित् भूरे धुँए जैसा मटमैला हो गया है।

पवएहि अ णिरवेक्खं कओ करेन्तेहि गिरिसवासुद्धारणम्।
सामिअकज्जेक्करसो अअसमुहे वि जसभाअणं अप्पाणो
॥७५॥

और वानरों ने निरपेक्ष भाव से (अन्य पर्वतों के साथ-साथ) कैलासपति के आवास को उठाने के प्रत्यक्ष अपयश में भी स्वामी के कार्य में एक रस हो जाने की यशोभाजनता स्वयं में उत्पन्न की।

होन्ति गरुआ वि लहुआ पवंगभुअसिहरणिमिअवित्थअमूला।
रहसुद्धाइअमारुअद्दुक्खित्तोझरा धराधरणिवहा ।७६।

वानरों के कंधों पर रखे विस्तृत निम्न भाग वाले पर्वतों का समूह, वेग-पूर्वक ऊर्ध्व प्रवृत्त वायु ने जिनके निर्झरों को उछाल दिया है, भारी होते हुए भी हलके हो गया है।

अइ वेएण पवंगा सअलं आअड्ढिऊण महिहरणिवहम्।
ओवअणाहि वि लहुअं वीसज्जिअकलअलं णहं उप्पइआ
॥७७॥

वानर तदनन्तर सम्पूर्ण पर्वत-समूह को वेगपूर्वक उठाकर (पूर्वतः धरती पर) कूदने से भी अधिक लाघव से कलकल शब्द उत्पन्न कर आकाश में उछल गये।

चुडुलेहि णिप्पअम्पा उप्पइअव्वलहुएहि वित्थअगरुआ।
एक्कक्खेवेण णहं पक्खेहि व महिहरा कईहि विलइआ
॥७८॥

अचल, विस्तृत और भारी पर्वत, वानरों द्वारा, जो चपल और उछलने में लाघवयुक्त हैं, मानो पंखों-द्वारा, एक ही प्रयास में आकाश में पहुँच गये।

पवअक्कन्तविमुक्कं विसमुद्धप्फुडिअपत्थिअणिअत्तन्तम्।
घडिअं घडन्तणइमुहसंदाणिअसेलणिग्गमं महिवेढम्
॥७९॥

वानरों-द्वारा आक्रमण के पश्चात् (विवरोंयुक्त) छोड़ दिया गया पृथिवितल, जो विषमता-पूर्वक उपट कर (पर्वतों के साथ लगा) ऊपर उठ गया था, पर्वतों के निर्गम (जहाँ से उन्हें उखाड़ा गया था) से उछले नदियों के अग्रभाग से एकाकार होकर लौटकर संयुक्त हो गया।

हीरन्तमहिहराहिं मईहि भअहित्थपत्थिअणिअत्ताहिं।
सोहन्ति खणविवत्तिअससंभमुम्मुहपलोइआइ वणाइं
॥८०॥

वन उन हिरनियों से सुशोभित हुए, जिनके पर्वतों का अपहरण किया जा रहा है, जो भय से व्याकुल होकर भागने के पश्चात् पीछे को मुड़ी हैं और जिनने जिज्ञासा एवं संभ्रम-पूर्वक सजकर ऊपर मुख उठाकर (आकाश में चले गये पर्वतों की ओर) देखा है।

उम्मूलिआण खुडिआ उक्खिप्पन्ताण उज्जुअं ओसरिआ।
णिज्जन्ताण णिराआ गिरीण मग्गेण पत्थिआ णइसोत्ता
॥८१॥

नदियों की धाराओं ने पर्वतों के दो मार्ग पर प्रस्थान किया जिनके उखाड़े जाने पर पृथिवी से उनका संबंध टूट गया, जिनके ऊपर उठाये जाने पर वे सीधी (नीचे को) गिरीं और जब उन्हें ले जाया गया (वेग के कारण अंतरिक्ष में उनकी धारा तिरछी प्रवाहित होने से) वे विस्तृत हुईं।

उम्मुहसारंगअणं अप्फुन्दइ मलि अमेइसारं गअणम्।
विवरब्भन्तरविहअं गिरिआलं सिहरपरिभमन्त रवि-
हअम् ॥८२॥

पर्वतों के समूह के रूप में, जिनसे चातक-समूह (उन्हें मेघ समझ कर) उन्मुख हुआ है, जिनके मेघों के आन्तरिक भाग को मर्दित किया है, जिनके विवरों के भीतर पक्षी हैं और जिनके (ऊर्ध्व प्रेरित) शिखरों पर सूर्य के घोड़े चल रहे हैं (शिखर उनके पैरों से जा लगे हैं), आकाश ही वेग-पूर्वक संचरित हुआ है (जिसकी ओर चातक-समूह उसके मेघाच्छन्न होने पर उन्मुख होता है, जिससे मेघ जल मर्दित होता है, जिसके विवर में पक्षी उड़ते हैं और जिसके शिखर पर सूर्य के घोड़े भ्रमण करते हैं)।

अंसट्ठविअमहिहरा उब्भिअदाहिणकरावलम्बिअसिहरा।
उत्ताणवामकरअलधरिअणिअम्बपसरा णिअत्तन्ति कई ॥८३॥

वानर, जिनके कंधों पर पर्वत रखे हैं, जो ऊपर उठे दाहिने हाथ से (पर्वतों के) शिखरों को सहारा दिये हैं और ऊर्ध्वमुख बाईं हथेली पर पर्वतों के विस्तृत नितम्ब प्रदेशों को धारण किये हैं, लौटते हैं।

पत्थाणच्चिअ पढमं भुअसेत्तपहाविआण जं ण पहुत्तम्।
कह तं चिअ ताणं चिअ पहुप्पइ कईण महिहराण अ गअणम् ॥८४॥

जिस आकाश में प्रस्थान के समय धावित वानर रीते हाथों पहले ही नहीं समाये, वही उन्हीं के लिए और (साथ में) पर्वतों के लिए (भी) कैसे पर्याप्त हो?

वहइ पवंगमलोओ समतुलिउक्खित्तमिलिअमूलद्धन्ते।
एक्कक्कमसिहरुग्गमणिहसुप्पुसिअसरिआमुहे धरणिहरे ॥८५॥

वानर-समूह, एक साथ उठा कर आकाश में लेजाये गये पर्वतों को, जिनके मूल प्रदेश परस्पर मिल गये हैं तथा जिनके समान क्रम से ऊपर उठे शिखरों ने (परस्पर) घर्षण से (अपनी) नदियों के मुख पोंछ दिये हैं, वहन करता है।

णिव्वण्णेऊण चिरं पवंआ बोलेन्ति महिहरभरक्कन्ता।
साअरपडिरूआइं पढमुक्खअविअडमहिहरट्ठाणाइं ॥८६॥

पर्वतों के भार से आक्रान्त वानर पहले उखाड़े विशाल पर्वतों के स्थानों को, जो सागर के प्रतिरूप हैं, विभेदपूर्वक पहचानने में कुछ देर लगाकर ही पार करते हैं।

खणसंधिअमेहअडा वेउक्खिप्पन्तगिरिणिराअट्ठविआ।
परिवड्ढन्ताआमा वहन्ति व णहङ्गणे महाणइसोत्ता ॥८७॥

विशाल नदियों की धाराएँ, जिनका क्षण-भर के लिए मेघ रूपी तटों से मिलन हुआ है, वेगपूर्वक प्रेरित होते पर्वतों ने जिन्हें विस्तृत किया है और जिनकी दुख्यापिता बढ़ रही है, गगन के प्राङ्गण में प्रवाहित होती हैं।

सेलेसु सेलतुङ्गा णहअलमिलिएसु मिलिअदन्तप्फलिहा।
पवअविहुएसु विहुआ णिव्वडिएसु वि ण णिव्वलन्ति वणगआ ॥८८॥

पर्वतों पर पर्वतों के समान-धर्मा उत्ताल बन गज, जब पर्वत आकाश तल से जा मिले हैं, अपने परिघ जैसे (विशाल) दांत (परस्पर) मिलाए हैं और वानरों-द्वारा पर्वतों को कंपित किये जाने में कंपित हुए हैं, किन्तु पर्वतों के (भूमि से) पृथक् होने पर भी (परस्पर या पर्वतों से) पृथक् नहीं होते।

वेविरपओहराणं दिसाण गिरिविवरदिट्ठतणुमज्झाणम्।
कुसुमरएण सुरहिणा अग्घाएण व णिमीलिआइं मुहाइं ॥८९॥

पुष्पों के पराग से दिशाओं के, जिनके पयोधर (मेघ) (पर्वतों से आहत होकर) काँप रहे हैं और पर्वतों के (बीच के) विवरों में से जिनका क्षीण कटि-भाग दिखाई देता है, मुख मानों सुगन्ध को सूँघने से निमीलित नेत्र हुए हैं।

पवआ करअलधरिए णहमुहणिब्भिण्णवेवमाणविसहरे।
गइवसविसट्टसिहरे बिइअकरेहि परिसंठवेन्ति महिहरे ॥९०॥

वानर पर्वतों को, जिन्हें वे हथेलियों पर धारण किये हैं, जिनके विषधर नखों के अग्रभाग से विदीर्ण हुए काँप रहे हैं और जिनके शिखर वेग के कारण बिखर रहे हैं, दूसरे हाथों से सँभालते हैं।

णहअलवेअपहाविअपवंगहीरन्तसेलसिहरक्खलिआ।
मग्गागअसेलाणं होन्ति मुहुत्तोज्झरा महाणइसोत्ता ॥९१॥

आकाश तल पर वेग-पूर्वक धावित वानरों-द्वारा लेजाये जा रहे पर्वतों के शिखरों से स्खलित बड़ी-बड़ी नदियों की धाराएँ मार्ग पर पड़े पर्वतों पर (गिरती) क्षण भर के लिए निर्झर बन जाती है।

वेउक्खअदुमणिवहे तडपब्भारणिहणिव्वलन्तजलहरे।
णेन्ति जरढाअवाइअदरिविवरणिसण्णगअउले
धरणिहरे ॥६२॥

वानर पर्वतों को, जिनका वृक्ष-समूह वेग के कारण उखड़ गया है, जिनसे उनके तट-प्रदेशों के समान ही मेघ बिखर रहे हैं और (इस प्रकार) जिनकी गुहाओं के विवर में बैठे हाथियों का समूह कड़ी धूप से उलहता हुआ है, ले जाते हैं।

धावइ वेअपहाविअपवंगहीरन्तसेलसिहरन्तरिओ।
छाआणुमग्गलग्गो तुरिअं छिण्णाअओ व्व मलउच्छङ्गो
॥६३॥

वेगपूर्वक प्रधावित वानरों-द्वारा लेजाये जाते पर्वत शिखरों के बीच से दिखाई देने वाला मलय पर्वत का अंक, जिसकी धूप व्यवधानित हुई है, मानों त्वरापूर्वक (वानरों और पर्वतों की) छाया के गमन-पथ के पीछे पीछे दौडता है।

आलोइआ ण दिट्ठा सच्चविआ ण गहिआ समोवइएहिं
उम्मूलिआ वि जेहिं तेहिं ण उअहिं णिआ कईहि
महिहरा ॥६४॥

(ऐसे) पर्वत हैं जिन पर एक साथ कूदे वानरों की दृष्टि पड़ी किन्तु उनने उन्हें फिर देखा भी नहीं, जिन्हें ग्रहण करना स्थिर किया, किन्तु ग्रहण नहीं किया है और जिन्हें उखाड़ा भी, किन्तु समुद्र को नहीं ले गये।

भग्गदुमभङ्गभरिओ उक्खित्तविसट्टपडिअमहिहरविसमो।
पवआण उअहिलग्गो लक्खिज्जइ बिइअसंकमो
व्व गइवहो ॥६५॥

समुद्र से जा लगा वानरों के गमन का मार्ग जो टूटे-वृक्षों के खण्डों से आपूरित है और उठाने में बिखर कर गिर पड़े पर्वतों से नीचा-ऊँचा है, दूसरे सेतु जैसा दिखाई देता है।

वेएण गहिअसेलं वेलाबोलेन्तपडिणिअत्तोवइअम्।
जाअं रामाहिमुहं अणुराउप्फुल्लोअणं कइसेण्णम्
॥८६॥

इअ सिरि पवरसेणविरइए कालिदासकए दहमुहवहे महाकव्वे छुट्ठो आसासओ।

पर्वतों को लिये हुए वेगाधिक्य के कारण समुद्र तट से भी आगे जाकर लौटी और पृथ्वी पर उतरी वानर-सेना राम के सामने आई तथा उसके नेत्र अनुराग से प्रफुल्लित हो गये।

(इस प्रकार श्री प्रवरसेन विरचित कालिदास-कृत दशमुख-वध महाकाव्य में छुटा आश्वास समाप्त हुआ)।

मुझको पीर सँजो लेने दो

श्री आशारानी व्होरा

युग-युग से घिर रही घटाएँ, कण-कण नभ का मेघ हो गया,
अम्बर की आँखों का पानी झर-झर कर निःशेष हो गया;
फिर भी धरती सूखी जाती
बीज नेह का बो लेने दो।

मन के मोती बिखर गये थे, उनको भर-भर हाथ लुटाया,
जग के काँटे बीन-बीन कर फूलों के सँग उन्हें सजाया;
बिखरे मोती, फूल शूल अब—
एक सूत्र में पो लेने दो।

रिक्त हृदय सब निधियाँ खोईं, खोने की सुधियाँ भी खोईं,
भीगी पीड़ा सूख चली, जब मानवता की ममता रोई;
करुणा-घट भी रीत न जाये—
आँचल मुझे भिगो लेने दो।
मुझको पीर सँजो लेने दो।

"प्रयोगवाद की शव-परीक्षा"

श्री ओम प्रभाकर

लगभग पिछले बारह-तेरह वर्षों से हिन्दी-साहित्य में एक नवीन काव्य-धारा के दर्शन हुए हैं जिसे इसके उन्नायकों तथा आलोचकों ने प्रयोगवाद का नाम दिया है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् पाश्चात्य कविता में हुए बौद्धिक प्रयोगों की छाप आज की 'नई कविता' पर है। छायावाद के पश्चात् जो यह नई धारा एक घोर अहवादी स्वार्थ प्रेरित, उच्छृंखल, असामाजिक व असन्तुलित रूप में हमारे सामने आई है, अन्तिमन मकरण संस्कार के अभाव में प्रयोगवादी, प्रतीकवादी, प्रपत्यवादी, नई कविता आदि अनेकों नामों से पुकारी जाती है. किन्तु अब तो सब इसे प्रयोगवादी ही कहने-सुनने-गुनने लगे हैं।

इसका जन्म सामान्यतया सन् १९४३ में प्रकाशित 'तार सप्तक' संग्रह से हुआ माना जाता है, इस सप्तक में सर्व-श्री गजानन मुक्तिबोध नेमिचन्द्र, भारत भूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर डा० रामविलास शर्मा, और अज्ञेय की रचनाओं तथा अज्ञेय के ही सम्पादन के दर्शन हुए। इसके लगभग आठ वर्ष पश्चात दूसरा 'सप्तक' प्रकाश में आया जिसमें सर्व-श्री भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती की रचनाएं संग्रहीत है।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर यूरोप में कुछ भीषण और डावाँडोल परिस्थितियों में कुछ कवियों ने ऐसी ही प्रयोगवादी कविता का प्रारम्भ किया था, आज की प्रयोगवादी कविता के पितामह सर्व-श्री टी. एस. इलियट, एजरा पाउण्ड व आई. ए. रिचड्स माने जाते हैं। हिन्दी के अनेक आलोचक इस तथ्य को विभिन्न रूपों में स्वीकार कर चुके है कि हिन्दी का तथा-कथित प्रयोगवाद पाश्चात्य जूठन है, डा० देवराज के जो प्रयोगवाद से हमदर्दी रखते हैं। विचार हैं कि "हिन्दी का प्रयोगवाद बहुत हद तक इलियट, पाउण्ड आदि की शैली की नकल है।"

कुछेक साहित्यकारों ने प्रयोगवाद का उद्देश्य तरुण कलाकारों को प्रगतिवाद के क्षेत्र से येन-केन-प्रकारेण दूर हटा ले जाना माना है। किन्तु यह एक सोचने की बात है कि जो वाद स्वयं कुछ नहीं है उसमें इतनी क्षमता कहां जो प्रगतिवाद जैसे ठोस जनवाद की ओर उंगली उठाये, लेकिन दूसरी ओर हर नई पौध के प्रयोगवादी कहलाने में गौरव समझने की बात भी कुछ-कुछ समझ में नहीं आती।

यह सुनिश्चित है कि प्रयोगवादी क्षेत्र में कुछ कलाकार प्रतिभावान अवश्य हैं, किन्तु वे अपने उस काव्य-शौर्य का उपयोग एक ऐसे साहित्य को जन्म देने में कर रहे हैं, जो उनकी दृष्टि में नया, विलक्षण, अद्भुत और ऐसा अवश्य हो जिसे पढ़कर पाठक आश्चर्यान्वित हो उठें, चौंक जाएँ, चाहे उसे समझें या नहीं, किन्तु यह अवश्य कह उठें कि कोई नई बात कही गई है। उदाहरण के लिये प्रयोगवादी कविता की ये पंक्तियाँ उपयुक्त रहेंगीं:—

"अगर कहीं मैं तोता होता!
तो क्या होता!
तो क्या होता,
तोता होता!
(आह्लाद से झूमकर)
तो तो तो तो तो तो ता ता
(निश्चय के स्वर में)
होता होता होता होता

('इच्छा'" सत्यप्रिय मित्र)

प्रयोगवाद में काव्य को अन्य प्रमुख व महत्वपूर्ण समस्याओं को छोड़कर केवल शैली-शिल्प की समस्या को प्रथम व प्रमुख माना गया है। अज्ञेय का यह वक्तव्य कि "यों तो समस्याएँ अनेक हैं-काव्य के विषय की, सामाजिक उत्तरदायित्व की,-संवेदना के पुनः संस्कार की आदि-किन्तु उन सब का स्थान इसके पीछे है (शैली शिल्प की समस्या के) क्योंकि यह कवि-कर्म की मौलिक समस्या है, साधारीकरण और communication (निवेदन) की समस्या है! अतः प्रतीत यह होता है कि प्रयोगवादी कवि काव्य की अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं को भुला कर केवल शैली शिल्प की समस्या में ही बिंधा हुआ है...........और जिसके कारण अगर कोई भोला पाठक यह अनुमान लगा भी ले कि प्रयोगवाद कोई वाद नहीं, केवल कविता को लिखने का ढंग-मात्र है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, उदाहरण के लिए राजेन्द्र किशोर की निम्न पंक्तियाँ, जो कि अपने वैचित्र्य पूर्ण लिखने के ढंग के कारण ही प्रयोगवादी कविता और स्वयं एक प्रयोगवादी कवि होने का दावा रखते है-हैं भी (किन्तु उन्हीं के लिए जो उन जैसे ही हैं) देखिए–

"अलसाये।
आये।
गये।
आईं–
गईं–
वे!
भी!!
मैं–
ने–
ही–
देखा पेड़ ?................
चांद का!

आज के इस प्रयोगवादी साहित्य की सबसे मुख्य विशेषता इसकी दुरूहता, अस्पष्टता, क्लिष्टता इस पर एक मोटी शीशे की अभेद्य पर्त की भांति चढ़ी-मढ़ी हुई है, डा० नगेन्द्र के शब्दों में- "एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीशे की पर्त की तरह जमती जाती है, छायावाद के रंगीन कल्पना वैभव और सूक्ष्म तरल भावना-चिन्तन के स्थान पर ठोस बौद्धिक तत्व का बोझीलापन है!!

सूर, तुलसी, पंत, निराला, प्रेमचन्द्र आदि महामनाओं को व्यक्त करने में जो भाषा समर्थ है-थी वह अब इन प्रयोगवादी मनीषियों-इलियट-पाउण्ड के गाउन का छोर पकड़ कर चलने वाले-इन नई (बैरंग) डाक के हरकारों को व्यक्त करने में अयोग्य है-असमर्थ है-अनुचित है, इनकी कलम नई है, ये स्वयं नये हैं, लिखने का ढंग नया है, विषय वस्तु नई है इसीलिए इनकी भाषा नई, उपमान, अलंकार नये है, हर वस्तु नई है, चाहे उसे पाठक समझे या नहीं पढ़े या नहीं, देखे या नहीं, और अगर पढ़े भी तो हँस दे, मात्र मुस्करा दे और बरबस कह उठे कि- दिमागी खेत की फालतू घास को शब्दों के गमले में नहीं सजाया गया है तो और क्या है ?

काव्य की महत्वपूर्ण समस्या सामाजिक उत्तरदायित्व को ये प्रयोगवादी किंचित् भी स्वीकार नहीं करते, इस के प्रमाण में यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि आज की सबसे ज्वलंत समस्या 'शांति समस्या' पर इन प्रयोगवादियों ने कितना लिखा ? एक पंक्ति भी लिखी! नहीं, कतई नहीं; क्यों ? इसका उत्तर यह नहीं वे इससे अनभिज्ञ हैं वरन् जानबूझ कर वे सामाजिक उत्तरदायित्व नहीं निभाते, इस नये-नवेले वाद के कर्णधार श्री अज्ञेय ने अपने परिचय में स्पष्ट लिखा है कि उनकी अभिरुचि इस प्रकार के विषयों में अधिक है "जिनसे तत्काल कोई संबंध न हो!! स्पष्ट है कि उनकी कविता का विषय तात्कालिक न रह कर भविष्य के लिए होता है जो स्वभावतया ही अपरिचित होता है और होता है पाठकों की समझने की शक्ति के बाहर-अज्ञेय, इसका प्रमुख कारण वह नवीनता का भूत हैं जो इन पर हमेशा सवार रहता है, फिर चाहे वह चाँद को मुर्गी का अण्डा बना दे या आसमान की सड़क वाला ट्रैफिक मैन, इस काव्य के हुजूर में डा० जगदीश गुप्त लिखते हैं कि "नई कविता उन प्रबुद्ध विवेक-शील आस्वादकों

को लक्ष्य करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नये कवि के समान है अर्थात् जो उसके समान-धर्मी हैं" अर्थात् जो सड़क के खम्भे से मोटर के टकरा जाने को शतरंज के वजीरों की टक्कर समझ बैठते हैं, किन्तु जो इस तरह नहीं देखते समझते सोचते अर्थात् जो प्रबुद्ध विवेकशील नहीं है (उन्हीं के शब्दों में) उनके लिए नयी कविता "नहीं कविता" के बराबर है। यह तो निश्चित ही है कि साधारण पाठक न तो इतना विवेकशील ही है और न इन कवियों जैसी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतनावस्था फिर उसके लिए इन कवियों के शब्द पद, वाक्य, छंद, वर्ण्य वस्तु, विचार, मानसिक दशाएँ, रुचि, क्षेत्र आदि सब अपरिचित हैं, उनकी कविता, उनकी नई-नई उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ, रूपक, प्रतीक आदि सब व्यर्थ हैं, घास कूड़ा हैं, संग्रह का प्रश्न ही नहीं उठता और यह वाक्य नितांत सत्य प्रतीत होता है कि जन-जन से दूर लिखी व पढ़ी जाने वाली कविता शीघ्र विधवा हो जाती है! लेकिन इस सब के बावजूद हमारे ये प्रयोगवादी महाकवि (!) सर्वदा नये की तलाश में भटकते फिरते हैं, चाहे उनके इस नये का असर साहित्य पर कुछ भी पड़े, 'दिनकर' जी के ये शब्द कि "कोलाहल तो बड़े जोर का है और लगता है कि लड़के अपने पुरखों के कलात्मक असबाबों को तोड़ फोड़ कर ही दम लेंगे" सत्य, एकदम सत्य प्रतीत होते हैं।

प्रयोगवाद भी इन्हीं कमियों को लक्ष्य करते हुए पं. नन्द दुलारे वाजपेयी ने निम्न निष्कर्ष निकाले हैं—

(१) प्रयोगवादी कविताएँ पूर्णरूपेण काव्य की चौहद्दी में नहीं आती वे अतिरिक्त बुद्धि वाद से ग्रस्त है

(२) प्रयोगवादी रचनाएँ अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं और सामाजिक उत्तर-दायित्व को भी वे पूरा नहीं करती।

(३) प्रयोगवादी कविताएँ वैचित्र्य-प्रिय हैं, वृत्ति का सहज और स्वाभाविक निवेश उनमें नहीं है। वाजपेयीजी के यह फैसले सोलह आने सही है और यह भी निश्चित है कि प्रयोगवाद कुछ वर्षों का बौना बनकर रह जाएगा, यदि ऐसा ही रहा, तो। इसी प्रकार डा० नगेन्द्र इसकी दुरूहता के कारण का उल्लेख करते हुए एक मूलभूत कारण बतलाते हैं, नूतनता का सर्वग्राही मोह जो सदा परिचित को छोड़कर अपरिचित की खोज में रहता है।

यह तो दुःखद ही है कि हमारे तरुण कलाकार इसकी ओर मृगतृष्णा की भाँति खिंचे चले जा रहे हैं, किन्तु वे उसके पास पहुँचकर अनुभव करते हैं कि जहाँ पानी समझा था वहाँ रेत है, काव्य की रसात्मकता नहीं, नूतनता की शुष्क मिट्टी भरी पड़ी है। इसलिए श्री शिवदानसिंह चौहान प्रयोगवाद को एक सस्ती मनोरंजक फिल्म की भाँति लोक-प्रिय होने का कारण बतलाते हुए लिखते हैं कि जो सनकों में आने के आकांक्षी थे वे सब के सब ही इन कविताओं के घोर प्रेमी है।

किन्तु यह तो ठोस सत्य है ऐसी खोखली मीनारें अधिक बरसातें नहीं झेल सकतीं। उनको पहला चौमासा ही हिला देता है। आज की प्रयोगवादी कविता में पाठकों, देश के साहित्यकारों (इसके जनकों को छोड़कर) की कितनी अवस्था है डा. रघुवंश के इस कथन से स्पष्ट हो जाती है—"आज नई कविता के नाम से जो कुछ लिखा जा रहा है या छप रहा है आगे 'नई' विशेषण मिट जाने पर पता नहीं कितना कविता सिद्ध होगा यह भविष्य ही जाने।" और उनके ये शब्द इतने ठोस और प्रभाविक हैं जितने कि आज के प्रयोगवादी थोथे और गलत। साहित्य के किंचित् भी पास रहने वाला व्यक्ति यह जनता है कि आजकल इन प्रयोगवादियों का एक सामूहिक तौर पर आन्दोलन-सा चल रहा है जो कि जबरदस्ती ही अपने इस बिना सींग-पूँछ वाले खोखले काव्य-पशु को हिन्दी-साहित्य-जगत् पर थोपे देना चाहता है। इस आन्दोलन का आभास आजकल की छोटी-बड़ी पत्रिकाओं तथा समय-समय पर प्रकाशित होते रहने वाले संकलनों इत्यादि से सहज ही पाया जा सकता है। डा. देवराज इसी चलते हुए समारोह—जगते हुए नये नारों को लक्ष्य करके कहते हैं कि—"हमारा अनुमान है कि किसी भी युग की सफल प्रयोग-शील कविता सिर उछाल-उछाल कर अपनी प्रयोगशीलता की घोषणा नहीं करती।" और

आज का प्रयोगवाद यह कर रहा है अर्थात् वह—एक दम असफल है—हो जाएगा—निकट भविष्य में।

इसके पूर्व कि कुछ प्रयोगवादी कविताओं का परिचय प्राप्त किया जाय यह कह देना आवश्यक होगा कि सब प्रयोगवादी कविताएँ बुरी नहीं हैं। कुछ कलाकारों की कृतियाँ साहित्य-निधि की श्री-वृद्धि करने योग्य हैं, अच्छी हैं।

किन्तु कुछेक प्रयोगवादी कवियों का जीवन-दर्शन तो वासना के क्षणिक आनन्द में ही केन्द्रित होकर रह गया है। जिसका उदाहरण श्री कुंवर नारायण, जिनकी तारीफ करते-करते श्री बालकृष्णराव नहीं अघाते, की इन पंक्तियों से प्राप्त किया जा सकता है—

"तब कहूंगा—" यदि मिटा दो फूल तो कंटक नहीं है
है सृजन का लक्ष्य में धुन स्वप्न आवश्यक नहीं है।"
(चक्रव्यूह)

अथवा—
"आमाशय
गर्भाशय
यौनाशय
जिसकी ज़िन्दगी का यही आशय
यही इतना भोग्य
कितना सुखी है वह
(चक्र व्यूह)

यह महोदय जीवन का जीवन के संघर्षों का यही आशय निकालते हैं इसी आशय में इनके जीवन के समस्त सुख केन्द्रीभूत हो कर रह गये हैं। धन्य हो बुद्धि-जीवि ! धन्य तुम्हारी कला !! धन्य तुम्हारा जीवन-दर्शन !!! इतना ही नहीं यही कवि व्याकरण-सम्बंधी त्रुटि को प्रयोगवादी कविता कहकर पुकारते हैं, दुलारते हैं, लिखते हैं—

हमारे पीठ पर इतिहास की भाषा लिखी होगी
हमारे सभ्यता की व्याकरण तब मर चुकी होगी

अजीब अजीब कसौटियां हैं इनकी बड़े-बड़े अनोखे ढंग हैं इनके किसी वस्तु को देखने-सुनने समझने के। एक प्रयोगवादी कवि श्री विष्णु चन्द्र शर्मा, लगता है, रंग नहीं पहिचान पाते, (कलर ब्लाइण्ड हैं) उन्हें धूप गुलाबी दिखती है:- लिखते हैं—

"धूप के गुलाबी गुलदस्ते ही पेड़ों पर ठहरे हैं"
तरस आता है यह दशा देखकर कविता की किसी की दृष्टि अनुठी है तो किसी का लिखने का ढंग विलक्षण है, जबकि कोई कोई व्याकरण की त्रुटि को प्रयोगवाद के चादरे से ढक रहा है, कुछ और नमूने देखिये, प्रयोगवाद के पिता श्री अज्ञेय की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

"ठीक है !
आपका जो 'गांन्धियन' सत्य है उसको क्या यही
सात वर्ष पहिले गान्धी पहिचानते थे ?"

यह रही एक कविता- एक प्रयोगवादी कविता और यह रहा एक गद्य खण्ड—

"ठीक है ! आपका जो 'गान्धियन' सत्य है उसको क्या यही सात वर्ष पहिले गान्धी पहिचानते थे ? कुछ अन्तर दिखा आपको गद्य और पद्य में ?

अजी ! अज्ञेय जी ! यह ठीक है कि आज से सात वर्ष पहिले गान्धीवाद (गान्धियन सत्य) को स्वयं गान्धी नहीं पहिचानते थे, किन्तु आज तो वह एक अकाट्य सत्य के रूप में विद्यमान है, और यदि यही बात आपकी प्रयोगवादी कविता के साथ है तो फिर यह आज के लिये एकदम बेकार है, इसे साहित्य से शीघ्र ही निकाल फेंकना चाहिए, क्योंकि अपनी मृत्यु के पश्चात् तो यह पूजा ही जायेगा। अज्ञेय की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी देश के महा-पुरुषों के प्रति क्या निष्ठा है, उनका अहं इन पंक्तियों से झाँकता प्रतीत होता है जो गांधी जैसे युगपुरुष का सम्मान करना अपना अपमान समझता है।

प्रगति और प्रयोग की समन्वयी पीठिका पर स्थित श्री गिरिजा कुमार माथुर मात्र ऐसे कवि हैं जो कि प्रयोगवादियों में काफी सफल सिद्ध हुए हैं, उनकी रचनाओं में रूपगत प्रयोग नई और स्वस्थ विचार वस्तु की अभिव्यंजना के साधन बने हैं।

स्पष्ट और सरल चित्रण की दृष्टि से अवलोकनार्थ रचनाओं में 'खत' उल्लेखनीय है—

"खत निजी अखबार है घर का अकेले का सहारा है,
मुहब्बत दोस्ती की सुख निशानी है प्रिय की याद ताजा है,
किसी की उंगलियों गूंथी संवारी अक्षरों की डोर,
तन के बीच पंखुरि फूल उनसे मिलन आधा है"

व्यथा

'श्री हरि'

स्वर्ग के कल्पित मेरे गान,
फूट पड़ते जब जब अनजान।
बहा देते सरिता-सी पीर,
नयन कब चुप बैठे नादान॥
कल्पना तेरा यह आभार,
व्यथा से भर देता संसार।

पलक थक जाते राहें देख,
सुपन में बढ़ती बाहें देख।
विश्व कब द्रवित हुआ है प्रिय,
किसी की ठंडी आहें देख॥
मूक, बंधित मेरा यह प्यार,
व्यथा से भर देता संसार।

खिंची आ जावोगी तुम पास,
मुझे था अपने पर विश्वास।
कि कितनी योजन दूरी छोड़,
दूर जा बैठी मेरी आश॥
आज सब छूट प्रिय सिंगार,
व्यथा से भर देता संसार।

विचारों का तारतम्य है, प्रवाह है, समझ में आने वाली वस्तु है।

इसी प्रकार प्रयोगवादी कवियों में और भी सफल व सुलझे हुए कवि हैं, किन्तु उनकी सफलता का एकमात्र कारण है कि वे अज्ञेय के प्रयोगवाद से बचे हुए हैं।

ज्ञानोदय के आधुनिकता अंक में प्रकाशित यह पंक्तियां—

"पुरानी रौशनी में और नई में फर्क इतना है"—जिसे किश्ती नहीं मिलती उसे साहिल नहीं मिलता।" विचार करने योग्य है, यह बात कि इस तथा-कथित नई पीढ़ी के पास किश्ती होते हुए भी साहिल के लिए भटकना पड़ रहा है और उसकी नाव भंवर की ओर ही बह रही है किनारे की ओर नहीं अक्षरशः सत्य है, किन्तु यह वाक्य कि पुरानी रौशनी को किश्ती नहीं मिलती अधिकांश गलत है। कुछ क्षणों के लिए यह मान भी लिया जाय कि पुरानी पीढ़ी के पास किनारे पहुँचने के साधन नहीं हैं किन्तु यह तो निर्विवाद सत्य है कि वे किनारा पा चुके हैं, चाहे तैर कर या नाव से उनके मंजिल पर पहुँच जाने का प्रमाण है कि सूर, तुलसी, मीरा के गीत आज भारत का हर दरवाजा गुनगुनाता है, पंत, प्रसाद, निराला की देन को हिन्दी साहित्य ऐसे सेंत कर रखे हुए हैं जैसे मणि वाला सर्व अपनी मणि रखता है, किन्तु इसके साथ साथ यह भी एक नग्न सत्य है कि इस नयी कविता को किनारा नहीं मिल रहा है, वह भटक रही है, तूफान आने वाला है, नाव डूब रही है, डूब रही है।

श्री जैनेन्द्र—एक परिचय

श्री गुरु शंकर तिवारी

वह सौभाग्यपूर्ण दिवस १३ अक्टूबर १९५७ ही था जब कि हमने हिन्दी के चिंतनशील कहानी-लेखक एवं उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र को सदैव की अपेक्षा अधिक समीप से देखने का सुअवसर प्राप्त किया। 'हम' शब्द से मेरा तात्पर्य उन विद्यार्थियों से है जो महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय ग्वालियर की दर्शन-समिति के तत्वावधान में आयोजित यात्रा-दल के सदस्य थे। निस्संदेह हममें से अधिकांश का श्री जैनेन्द्र के दर्शन का यह प्रथम अवसर ही था।

कदाचित् साहित्य एवं दर्शन का परस्पर निकट संबंध ही था जिसने हमें जैनेन्द्र के सम्पर्क का लाभ उठाने की प्रेरणा प्रदान की। हम श्री जैनेन्द्र से उनके दरियागंज स्थित कार्यालय में मिले।

प्रथम दर्शन में हमने श्री जैनेन्द्र को पाया श्वेत स्वच्छ भारतीय परम्परा के अनुरूप परिधान में। उत्तरीय के रूप में कुर्ता तथा अधोवस्त्र धोती, छोटा आकार जिससे शारीरिक दौर्बल्य का अनुमान होता था तथा छोटी, गंभीर एवं तीक्ष्णता से देखती हुई आँखों पर ऐनक, यही साहित्यिक जैनेन्द्र की शारीरिक रूपरेखा थी। आयु पचास एवं साठ के मध्य कुछ भी आँकी जा सकती थी। उन्होंने कहा 'आइए' और हम जाकर फर्श पर बैठ गये। वातावरण अस्त-व्यस्त था क्योंकि पुताई हो रही थी। जैनेन्द्र साहित्य की पुस्तकों के बंडल रखे हुए थे जो या तो उनकी नवीनतम प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ थीं अथवा पूर्व-प्रकाशित पुस्तकों के नवीनतम संस्करण थे।

शिष्टाचार-प्रदर्शन एवं परिचय-प्रकाशन के पश्चात् गुरुदेव (श्री व्रज बिहारी निगम) ने वार्तालाप आरंभ किया—

"मुझे आपसे इसके पूर्व भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है। दो वर्ष पूर्व आप हमारे महाविद्यालय में पधारे थे तभी भेंट हुई थी, किन्तु तब इतनी निकटता नहीं थी।"

जैनेन्द्र कुछ समय तक चुप रहे मानो जो कुछ गुरुदेव ने कहा उन्होंने न सुना हो। तत्पश्चात् अत्यंत मंद स्वर में कहना प्रारंभ किया—"आपने मुझे देखा है? कहीं भ्रम तो नहीं है? देखो मुझे जनार्दन द्विज वाला संस्मरण याद हो आया। तब मेरे साहित्यिक जीवन का उदयकाल था। किन्तु मान पर्याप्त था। श्री द्विज (जनार्दन द्विज) मेरी लेखनी के प्रशंसक थे, यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मेरा उनसे परिचय नहीं था। मैं एक बार एक अन्य व्यक्ति को लेकर, जो श्री द्विज से परिचित थे उनके निवास-स्थान पर गया। साथी ने उन्हें मेरे विषय में सूचना दी। वे बाहर आये और सामने मुझे उपस्थित देख बोले "Where is Jainendra? साथी ने मेरी ओर इंगित कर दिया। इस बार उन्होंने मुझसे पूछा "Are you Jainendra, the Story-writer?" कदाचित उन्हें विश्वास न था कि शरीर से ऐसा दुर्बल प्रतीत होने वाला व्यक्ति साहित्यिक जैनेन्द्र हो सकता था जो उनकी दृष्टि में एक सबल लेखनी का स्वामी था।" यह कहते-कहते उन्होंने वातावरण को हास्यमय कर दिया।

श्री जैनेन्द्र के वाक्य छोटे तथा भाषण-स्वर मंद था। यदाकदा भाषण-स्वर इतना अधिक अस्पष्ट हो जाता कि उनके कथन को सुन सकना हमारे लिए असम्भव हो जाता। कहते-कहते वे अचानक रुक जाते मानों कुछ सोचने के लिये अवकाश चाहते हों वैसे उनका प्रत्येक शब्द पूर्ण विचार के पश्चात् ही निःसृत होता था। श्री जैनेन्द्र आस्तिक अर्थात श्रद्धालु हैं। उन्होंने अपनी आस्तिकता की व्याख्या इस प्रकार की—

"मेरी अपनी आस्तिक विचारधारा है। आस्तिकता का अर्थ कट्टरपन कदापि नहीं है। ईश्वर शब्द में कट्टरता का तो प्रवेश हो ही नहीं सकता। उसमें तो सदैव आगे बढ़ने की ही बात होती है। मुझे तो नास्तिकता के अपनाने में कोई वैर-भाव दिखाई नहीं देता। मैं deductive तौर से ईश्वर को सिद्ध करना नहीं चाहता। वह है अवश्य अच्छा हो या बुरा। मेरे लिये तो वह अच्छा ही है।"

एक साथी ने प्रश्न किया "आपने लिखना कब से प्रारम्भ किया ?"

जैनेन्द्र ने शांत-संयत स्वर में कहना प्रारम्भ किया—

"शायद १६२८-२६ से किया था। मुझे तो खास याद नहीं है। एक बार अपने विषय में एक लेख पढ़ रहा था तभी जाना।

जैनेन्द्र ने इतने निर्वेद भाव से यह सब कहा मानों उनकी साहित्य-यात्रा से इस प्रश्न का सम्बन्ध ही न हो। उनका उत्तर सादगी से भी अधिक आश्चर्य से भरा हुआ था। उन्होंने आगे कहा "दैवी अहिंसा" नामक प्रथम रचना पर जो कि गद्य-काव्य की शैली में लिखी गई थी आचार्य चतुरसेन के 'अन्तस्तल' का प्रभाव था। प्रकाशित होने पर भूल से उस रचना के साथ नाम भी आचार्यजी का ही प्रकाशित हुआ।"

यह पूछे जाने पर कि प्रगतिवाद नाम से हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत जो चिंतन-धारा चल पड़ी है क्या वह श्रेयस्कर है, जैनेन्द्र की प्रतिक्रिया थी—

"प्रगतिवादी दृष्टिकोण पर विचार करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि प्रगतिवाद है क्या ? इसकी अपनी मौलिकता है या यह हिंदी साहित्य को किसी अन्य साहित्य का उपादान है। किसी अन्य साहित्य के उपादान होने मात्र से कोई शैली दोषी नहीं ठहराई जा सकती, यदि उसके पास स्वयं की मौलिकता हो। कदाचित जो अपने को प्रगतिवादी दृष्टिकोण का समर्थक समझते हैं वे प्रगतिवाद की व्याख्या भली प्रकार कर सकें। मैं इस स्थिति में नहीं हूँ। ऐसा भी हो सकता है कि प्रगतिवाद का हिंदी साहित्य में प्रवेश है यह मानना आलोचकों का भ्रम हो। वास्तव में लेखक का मंतव्य कुछ और ही हो। प्रगतिवाद की अनेक प्रकार से परिभाषा की गई है, आवश्यक नहीं कि कोई एक परिभाषा सही ही हो।"

दर्शन-सम्बन्धी वार्तालाप प्रारम्भ होने पर जैनेन्द्र बोले—"Universe को Multiplicity के रुप में मानकर मुझसे नहीं चला जाता। मैं Unity को ही मानकर चल सकता हूँ। ये जो diversity है इससे मेरी नहीं बनती। मैं तो आरम्भ ही Unity से करता हूँ। Yo know the world, I must have God. I simply do not get a start, unless I start with a unity. I cannot adjust with diversity. Some people reduce multiplicity to unity (Scientists). आध्यात्मिक हूँ नहीं, दर्शन पढ़ा नहीं, इंटर Science में Join किया था। किन्तु Credit मिलता है कि मुझमें वह सब है। वह सब आता है मेरी श्रद्धा की भावना से। मेरी आस्था के कारण ही मेरी रचना में वे सब भर जाते हैं। हम ईश्वर-मय हैं, किन्तु इसे समझ नहीं पाते। ठीक वैसे ही जैसे वन क्या है इसे वन का प्राणी नहीं समझ सकता। मैंने एक कहानी में इसी तत्व का विवेचन किया है। हिंस्र पशुओं से भरे वन से एक मनुष्य गुजरता है। वह अपने आपसे कहता है "कितना घना वन है।" जंगली पशु जो पास ही छिपे हैं, यह सुनते हैं और सोचते हैं कि वन क्या

है। किन्तु उनका समाधान नहीं होता। अन्त में उसी मनुष्य के पास जाकर पूछते हैं कि वन क्या है। वह ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पाता, कहता है "तुम सब वन हो।" पशु विश्वास नहीं करते कि वे कुछ भी नहीं हैं, सब कुछ वन ही है। किंतु अंत में उन्हें समझ आती है और वे कहते हैं "हम कुछ नहीं हैं, सब कुछ वन ही है।" हिस्सा हिस्से को ही समझ सकता है, वह सम्पूर्ण को क्या समझेगा।"

"एक अच्छी कहानी कब लिखी जा सकती है?" एक साथी ने प्रश्न किया।

"आदमी जब स्वयं भूल जाय कि कहानी लिखी जा रही है तभी एक कहानी लिखी जा सकती है। तनिक भी यह विचार आने पर कि कहानी लिखी जा रही है कृत्रिमता का प्रवेश स्वाभाविक ही है।"

भाषा व्यंजना के विषय में पूछे जाने पर जैनेन्द्र ने कहा "भाषा भावानुकूल होनी चाहिए। कहानी में भाषा अरूप और निर्गुण होनी चाहिये, जो न लिखने वाले को विदित हो न पढ़ने वाले को ही। हृदयग्राही अवश्य हो।"

श्री जैनेन्द्र की वार्तालाप की भाषा परिमार्जित नहीं थी। उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी कभी कभी हो जाता था और अंग्रेजी के शब्द ही नहीं वाक्य के वाक्य भी प्रायः आ जाते थे। सरल शब्द व्यंजना में अनुपम भाव, यही जैनेन्द्र की मौलिकता है। हम जैनेन्द्र का और अधिक समय न लेते हुए उठ खड़े हुए। जैनेन्द्र ने अपने सौजन्य के प्रतीक स्वरूप "जयवर्द्धन" की एक प्रति हमें उपहार में दी।

पता:—द्वारा प्रो० ब्रजबिहारी निगम महारानी-लक्ष्मीबाई कालेज, ग्वालियर

गीत

श्री सुधेश

दीप सा मन को जलाए जा रहा हूँ।

(१)

तिमिर-पारावार की काली लहर
प्रलय सी तट को डुबाती आरही,
मौत की छाया घनी गहरी बनी
पाँव जीवन के डुलाती आरही;
जिन्दगी के गीत गाए जा रहा हूँ।

(२)

वेदना में गीत गा गा कर नए,
सुप्त प्राणों को जगाता हूँ सदा,
ठोकरें खाते हुए सुनसान में
थके हारों को उठाता हूँ सदा;
मोम सा तन को गलाए जा रहा हूँ।

(३)

डूब जाते हैं क्षितिज के छोर भी
छलछलाते नयन की बरसात में,
डूबती बुझती नहीं दिल की जलन
जो खिलाती फूल हर आघात में;
ज्वाल अन्तर में छिपाए जा रहा हूँ।

पता—१७।१६ शक्तिनगर, दिल्ली-६

आत्मकथा अर्थात् आपबीती-जगबीती

(परिचायक—श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय)

आत्मकथा लिखना प्रत्येक के बस की बात नहीं है, क्योंकि इसके लिए अपने आपको एक तटस्थ-दर्शक के रूप में रखते हुए विगत जीवन पर दृष्टिपात करके अपनी वास्तविक जीवन-लीला का दिग्दर्शन कराना पड़ता है, अर्थात् जहाँ एक ओर अपनी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाता है, वहीं अपनी कमजोरियों को भी सामने ला देना पड़ता है। तभी वह आत्मकथा आदर्श एवं सच्ची सिद्ध होती है।

इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में आत्मकथा-सम्बन्धी जो १०-१२ ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं; उनमें ज्वालापुर (हरिद्वार) के गुरुकुल महाविद्यालय के कुलपति, आचार्य-प्रवर श्री पं० नरदेवजी शास्त्री की लिखी हुई यह आप-बीती अपना विशेष स्थान सिद्ध करेगी, क्योंकि इसे शास्त्रीजी ने स्वयं पिछले २० वर्षों से लिखना आरम्भ कर, बिना किसी पूर्व-लिखित डायरी के केवल अपनी स्मृति-शक्ति के आधार पर समय-समय पर संशोधन करने के बाद अपनी उन्नासिवीं वर्षगाँठ के अवसर पर प्रकाशित करने की कृपा की है। जो केवल उन्हीं जैसे आजन्म ब्रह्मचारी एवं ऋषि-मुनि की तरह तपोमय जीवन बिताते हुए गंगातट पर निवास कर शुद्ध विद्यादान करने वाले गुरुवर का ही साहस हो सकता है। कई लेखक आत्मप्रचार या इस प्रकार के ग्रन्थों-द्वारा अन्य उद्देश्यों की सिद्धि के लिए भी प्रयत्न करते देखे जाते हैं, जबकि शास्त्रीजी का यह बड़े आकार में मुद्रित लगभग ६५० पृष्ठों में प्रकाशित ग्रंथ-रत्न देश के एक अमूल्य एवं चिरस्थायी प्रामाणिक साहित्य-ग्रन्थ के रूप में सुरक्षित रहेगा, विशेष कर उनके सम्पर्क में आने वालों या निकट परिचय रखने वालों के लिए तो यह रामायण-महाभारत की तरह आदर की वस्तु सिद्ध होगा। क्योंकि इसमें ऐसी-ऐसी कई अद्भुत बातें संकलित की गई हैं; जो किसी मनोरंजक उपन्यास से कम सिद्ध नहीं होंगी, और कई ऐसी अंतरंग बातें प्रकाश में आ गई हैं, जिनका बहुत कम लोगों को पता होगा, क्योंकि शास्त्रीजी किसी बात को गुप्त रखकर समाज को उसके ज्ञान से वंचित रखना उचित नहीं समझते—अर्थात उनकी व्यक्तिगत गुप्त बात तो कोई हो ही नहीं सकती; अतः समाज की बात समाज के हितार्थ लिख दी है।

श्री पं० नरदेवजी शास्त्री

इन पंक्तियों के लेखक का यह महान् सौभाग्य है कि वह पूज्यपाद श्रद्धेय शास्त्रीजी के सम्पर्क में पिछले ३५ वर्षों से है। यही नहीं वरन् इस बीच महीनों तक साथ रहने तथा उनके साथ भ्रमणकर उनके बाल-जीवन के मुख्यतः विद्यार्थी-जीवन के क्रीड़ास्थल पूना में प्रत्यक्ष उनके मुख से अनेक प्रकार के संस्मरण सुनने का महान् लाभ भी प्राप्त कर सका है। वैसे तो शास्त्रीजी स्वभाव से ही सबके प्रति उदार एवं शुद्ध निर्मल प्रेमभाव व्यक्त करके लोगों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, किन्तु सबसे मुख्य आकर्षण अपने सरल एवं उदार सात्विक प्रेमभाव

से हास्य-विनोद द्वारा आबाल-वृद्ध सब के प्रिय-पात्र बन जाना है। उनका यह मधुर हास्य बड़े-बड़े संत-महात्माओं में ही कदाचित् देखने को मिल सकता है। एक बार आपने इसका रहस्य बताते हुए कहा था कि "उपाध्यायजी, यहाँ हजारों मील दूर, घर-द्वार एवं परिजन-विहीन एकान्त देश में यदि मुझ में यह हास्य-वृत्ति न होती तो मेरा इतने दिनों तक जीवित रहना ही असंभव था। इसीने मुझे सबका स्नेह (श्रद्धा) भाजन बनाया और मुझे कभी एकाकी जीवन का अनुभव नहीं होने दिया।"

हाँ, तो शास्त्रीजी की इस आत्मकथा का विस्तृत परिचय देने के पूर्व उनके जीवन की रूपरेखा से परिचित करा देना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि बिना इसके इस ग्रंथ का महत्व (रहस्य) समझ सकना कठिन होगा। श्री शास्त्रीजी सुदूर हैदराबाद राज्य के एक छोटे से कस्बे में जन्म लेकर वहाँ से पूना, बम्बई, अजमेर, जयपुर, लाहौर, काशी, कलकत्ता में विद्याध्ययन करने के पश्चात् पिछले ६० वर्षों से गंगातट पर गुरुकुल महाविद्यालय में प्राचीन भारतीय आचार्य के रूप में संस्कृत और वैदिक विद्या का दान करके उन पुण्यश्लोक ऋषि-मुनियों का एक आदर्श सबके सामने उपस्थित कर रहे हैं। आप मूलतः महाराष्ट्रीय ब्राह्मण होते हुए आज ६०-७० वर्षों से अखिल भारतीय बने हुए हैं।

संक्षिप्त परिचय

दिनांक २१ अक्टूबर सन् १८८० को आपका जन्म हुआ। ६ वर्ष की अवस्था तक धाराशिव में प्रारम्भिक मराठी अध्ययन १४ वर्ष की अवस्था तक हुआ। पूना के नूतन मराठी विद्यालय में मराठी और अंग्रेजी की शिक्षा पाने के बाद आपको पिताजी ने स्वामी दयानंदजी के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर आगे के लिए लाहौर अध्ययनार्थ भेजा। १७ वर्ष की अवस्था में यूनियन एकडेमी में प्रविष्ट हुए। १८ वें वर्ष में मैट्रिक्युलेट हुए। क्योंकि उन दिनों राष्ट्रीय शिक्षा के नाम पर आर्यसमाज द्वारा-संचालित विद्यालय, कॉलेज आदि ही कुछ काम कर रहे थे; अतएव उनके प्रति सिद्धान्तवादियों का आकर्षण स्वाभाविक ही था। अन्यथा दक्षिण का नवयुवक उत्तर भारत तक कैसे पहुँचता?

किन्तु लाहौर की बाबू पार्टी एवं आँग्ल शिक्षा-दीक्षा-पद्धति ने आपको आकृष्ट नहीं किया और वहाँ से आप जालंधर पं. गंगादत्तजी शास्त्री के पास चले गये। पिताजी आपको इंजीनियर बनाना चाहते थे; किन्तु आप बने भारतीय-विद्या-संस्कृति के इंजीनियर, जिन्होंने हजारों विद्या-भास्कर, सिद्धान्त-भास्कर, न्याय-भास्कर, वेद-भास्कर आदि भास्करों के प्रखर प्रकाश से भारतीय जगत् को जगमगा दिया।

सन् १९०० में आप उक्त शास्त्रीजी के साथ हरिद्वार आये और वहाँ से वैदिक प्रेस में प्रधान संशोधक बनाकर अजमेर भेजे गये। सन् १९०३ में शास्त्री हुए, और डिप्लोमा प्राप्त हुआ। उसी अवधि में गुरुकुल सिकन्दराबाद के मुख्याधिष्ठाता के पद पर कार्य किया। तत्पश्चात् संस्कृत-साहित्य का विशेष अध्ययन करने महामहोपाध्याय श्री अम्बादास शास्त्री की सेवा में काशी जाकर दो वर्ष तक रहे।

सन् १९०५ से ७ तक कलकत्ते में गुरुवर श्री सत्यव्रत सामश्रमी (फेलोएशियाटिक सोसायटी बंगाल) की सेवा में कलकत्ता रहे और १९०६ में वेदतीर्थ हुए। वहाँ से १९०७ में काँगड़ी-गुरुकुल में निरुक्ताध्यापक और १९०८ में पुनः गुरुकुल फर्रुखाबाद के आचार्य। १९०८ से १९१५ तक मुख्याधिष्ठाता महाविद्यालय ज्वालापुर तत्पश्चात् भी गत वर्ष तक विद्यालय की विविध रूप में सेवा की। १९१५ में गंगोत्री यात्रा, १९१६ तक भोगपुर (देहरादून) में एकांतवास और ग्रन्थ-लेखन और उसके बाद से कॉंग्रेस कार्य में योग-दान करने में लगे। बीच-बीच में विद्यालय को भी सँम्हालते रहे और ५ बार जेल-यात्रा की। १९२१ से १९३० तक आप अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। यहीं से आपके जीवन की दिशा बदली और राजनीति ने उसमें प्रधानता ले ली।

सन् १९२१ में क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेंट एक्ट के अधीन १५ मास का कठोर कारावास और २००) रु. दण्ड। १९३० में नमक-सत्याग्रह में ६ मास सादी कैद, १९३२ में शराब की भट्टी पर सत्याग्रह, ६ मास कठोर कारावास तथा ५० रु. दण्ड और दण्ड न देने पर डेढ मास का और कारावास। सन् १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह, लक्ष्मण झूला तथा ऋषिकेश में तथा एक वर्ष का कठोर कारावास। सन १९४८ में भारत-रक्षा-कानून की धारा २६ के अनुसार डेढ़ वर्ष तक कारावासी रहे।

सन १९२० में देहरादून में राजनीतिक कॉन्फ्रेन्स के स्वागताध्यक्ष जिसकी अध्यक्षता पं. जवाहरलालजी नेहरू ने की थी। इसके बाद पुनः १९२४ से २५ तक महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता रहे। सन् १९२५ में पंद्रहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (देहरादून) के स्वागताध्यक्ष हुए। इसमें श्री पं. राधाचरणजी गोस्वामी के न आ सकने से सभापति-पद पर तत्काल ही पू० श्री माधवरावजी सप्रे चुने गये थे। इस चुनाव की विशेषता यही थी कि स्वागताध्यक्ष और सभापति दोनों महाराष्ट्रीय किन्तु हिन्दी के महान् आचार्य थे। वहीं से इन पंक्तियों का लेखक भी आपके निकट सम्पर्क में आया।

सन् १९२६ में संयुक्तप्रांतीय आर्य-प्रतिनिधि-सभा के बृहदाधिवेशन के स्वागताध्यक्ष; जोकि पं. घासीरामजी एम. ए., एल्. एल्. बी की अध्यक्षता में हुआ। इसके बाद एक वर्ष भयंकर वातरोग से ग्रस्त रहे और पं. रामचन्द्रजी वैद्य (कनखल) के उपचार से स्वस्थ हुए। सन् १९४४ में महीने भर तक दक्षिण भारत की यात्रा, उसी वर्ष पुनः महाविद्यालय के आचार्य, तथा जिला कांग्रेस कमेटी देहरादून के प्रधान चुने गये। इसके वर्ष-भर बाद महाविद्यालय के भार से सेवा-निवृत्त हो गये।

किन्तु जबसे शास्त्रीजी दक्षिण से उत्तर में आये, अपने पारिवारिक जनों से दो-एक बार ही संपर्क में आ सके। यहाँ तक कि १९०४ से १९१२ तक ताऊ से लेकर बड़े भाई, माता और पिता का स्वर्गवास हो जाने पर भी आप उनसे दूर ही रहे। आपने ३ बार गढ़वाल की, एक बार काश्मीर, एक बार लंका, आसाम तथा गुजरात, काठियावाड़ तथा सिंध और तक्षशिला (सीमांत की यात्रा की) सन् १९५२ से १९५७ तक उत्तरप्रदेश की विधान-सभा के सदस्य रहे।

उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय पर से पाठकों को विदित हो सकता है कि शास्त्रीजी का जीवन एक शिक्षा शास्त्री के साथ ही साहित्य और राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रधानता लिये हुए बीता है। यही कारण है कि आप जहाँ महाविद्यालय की सेवा-द्वारा आर्य जगत् में श्रद्धास्पद बने हुए हैं, वहीं लगभग २० ग्रंथरत्न भेट कर तथा भारतोदय (ज्वालापुर), शंकर (मुरादाबाद) तथा 'आर्यमित्र' आदि साप्ताहिक पत्रों का सफल संपादन कर तथा हजारों लेख लिखकर आपने साहित्य-क्षेत्र में भी अपना विशेष स्थान बना लिया है और राजनीतिक क्षेत्र में तो आपका स्थान अक्षुण्ण बना ही हुआ है। इस तरह आप सभी दृष्टियों से आदरणीय है।

इस आत्म-कथा का आरम्भ **"मैं हूं अब कल्याण मार्ग का पथिक"** इस शीर्षक से होता है और इसमें आपने संक्षेप में गत जीवन पर दृष्टि डालकर आज अपने को सब प्रकार से कर्तव्य-मुक्त होने की स्थिति में बताया है और अपने वंश का परिचय दिया है।

प्रथम खंड

तत्पश्चात् १६ वर्ष पूर्व लिखित आत्म-कथा का सारांश देकर अपने जन्म से लेकर आर्य-जगत् की शिक्षा-संस्थाओं में काम करने तक का विवरण ८२ पृष्ठों में समाप्त किया है। इसमें शास्त्रीजी के विद्यार्थी जीवन की निर्भीकता, दृढ़ता एवं माता-पिता द्वारा ताड़ना के प्रसंग आने पर भी बच जाने, अलायंस बैंक का दिवाला निकल जाने से आपकी शिक्षा के लिए डिपॉजिट धन डूब जाने, फिर भी अध्ययन न छोड़ने, आदि के साथ ही प्रत्यक्ष सेवा-क्षेत्र में संस्था-धारियों से संघर्ष आदि के आने के प्रसंग हैं। एक बार पढ़ना आरम्भ करने के बाद समाप्त करने पर ही उत्सुकता शांत होती है।

द्वितीय खंड

इसमें आपकी पाँच बार की जेल यात्राओं का वर्णन है। जहाँ आप किस प्रकार विभिन्न विचार वाले राजनैतिक नेताओं तथा कांग्रेस-कर्मियों के सम्पर्क में आये। आपके अनुभव राजनीति के इतिहास की अमूल्य निधि है, क्योंकि आपने सभी की निष्पक्ष आलोचना कर निर्भीक मत प्रकट किये हैं। इसी में "मेरी फुलवाड़ी" शीर्षक से देहरादून जेल की जो आत्म-कहानी दी है, वह तो सचमुच ही इतनी ज्ञातव्य और मनोरंजक है कि बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। इसी प्रकार "वे कारावास के दिन" शीर्षक से आपने जेल-जीवन की दिनचर्या जेल में स्वाध्याय, तथा बरेली सेण्ट्रल जेल की एक घटना पर महात्मा गाँधी की ओर से छूत-छात के विषय में लिखा गया पत्र तथा उसका उत्तर-प्रत्युत्तर भी दिया है। जेल-जीवन का रोजनामचा (देहरादून और आगरा) आदि देकर कारावास के जीवन का सिंहावलोकन किया है। अंत में कृष्ण मंदिर के पुष्प-गुच्छ में सुन्दर सूक्तियाँ तथा आप्त वचनों का संकलन किया है। साथ ही सामयिक पत्रों के विशेषाङ्कों में प्रकाशित अपने जेल-जीवन के संस्मरण भी संकलित कर। दिये हैं इस प्रकार लगभग १७५ पृष्ठों में आपके इस प्रधान जीवन का इतिहास दे दिया गया है।

तृतिय खंड

इसमें विभिन्न विषयों का साहित्य, पत्र-व्यवहार एवं ऐसी सामग्री का संकलन किया है, जो राजनीति के साथ ऐतिहासिक महत्व भी रखता है।

सन् १६५७ में जब आप भोगपुर (देहरादून) में थे, तब कोल्हापुर (महाराष्ट्र) के छत्रपति की ओर से आपको बुलावे का एक पत्र भेजा गया, किंतु आप नहीं गये। इसके बाद "तुलजा भवानी" के सम्बन्ध में "हिन्दुस्तान टाइम्स" में छपा एक अंग्रेजी का लेख और उसका अनुवाद दिया है। इसी मन्दिर की व्यवस्था-संचालक का भार शास्त्रीजी के पिता पर था। आपने पिताजी का उपदेश-पत्र भी दे दिया है। इसी प्रकार आर्य-समाज के शास्त्रार्थ, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, लोक मान्य तिलक, महात्मा गांधी तथा लाला लाजपत-राय के संपर्क में आने का वर्णन किया है। श्री नेमचन्द बालचन्द गांधी की ओर से आपके पिता के विषय में लिखे गये मराठी पत्र का अनुवाद तथा अन्य पत्र व्यवहार की चर्चा करके आपने बताया है कि लाहौर में नवी कक्षा में पढ़ते समय "आर्यावर्त्त" में पहला लेख (हिन्दी) छपा; जिसमें कि "मांस भक्षण" के प्रश्न का सप्रमाण खण्डन किया गया था। स्व. पं. रुद्रदत्तजी संपादकाचार्य उसके संपादक थे और उन्होंने आपका उत्साह बढ़ाया था, फिर तो अब तक हिन्दी के सभी प्रमुख पत्र-दैनिक से लेकर त्रैमासिक तक में हजारों लेख प्रकाशित हुए और आज भी हो रहे हैं। किसी भी संपादक की ओर से पत्र जाने पर आप कभी उसे निराश नहीं लौटाते।

"भारतोदय" तथा "शंकर" आदि का संपादन करने की बात पहले लिखी जा चुका है। आगे चलकर आपने शिष्य-सम्प्रदाय का परिचय संक्षेप में दिया है।

इसके बाद महात्मा मुंशीरामजी का परिचय देकर उनके संपर्क में आने के बाद "दिव्य पुरुष स्वामी-श्रद्धानन्द" नामक लेख में उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण की है। तत्पश्चात् सभी सहायकों, साथियों के नामादि दिये हैं।

शास्त्रीजी के निर्मित ग्रंथ

(१।२।३) आर्य समाज का इतिहास (तीन भाग) (४) सचित्र शुद्धबोध (जीवन चरित्र) (५) ऋग्वेद लोचन (६) गीता-विमर्ष (७।८) पत्र-पुष्प दो भाग (६) राज्य-शास्त्र (अर्द्ध-लिखित) (१०) देहरादून-गढ़वाल (११) १६२१ की धकापेल (कारावास की राम-कहानी) (१२) आत्मकथा, (जिसका यह परिचय दिया गया है।) (१३) यज्ञ में पशुवध वेद-विरुद्ध (१४) दयानन्द-दिग्विजय (हिन्दी संस्कृत दोनों में) (१५) आनन्द बाग में आर्य दरबार (१६) वैदिक स्वराज्य (१७) अछूत मीमांसा (१८) 'कालेरगति' (पिताजी के मंगवा लेने से नहीं छप सका।)

यद्यपि ये सब अपने-अपने विषय की प्रामाणिक पुस्तकें हैं। इनमें से १६२१ की धकापेल" महात्मा गांधी को इतनी पसंद आई कि उसे गुजराती में छपने के लिए भी आदेश दे दिया था, जो पूरा न हो सका।

आपने हैदराबाद की चिट्ठियाँ छाप कर उधर की स्थिति से परिचय कराया है, तत्पश्चात् गंगोत्तरी, सिंहल यात्रा आदि देकर कुछ स्वजनों के संस्मरण के अनन्तर "श्री पं. महावीर प्रसादजी द्विवेदी के साथ डेढ़ मास" शीर्षक से मनोरंजक संस्मरण दिये गये हैं। स्व: प्रिंसिपल लक्ष्मणप्रसाद, राज्य-रत्न आत्मारामजी, पं. रामचन्द्र शर्मा वैद्यराज और बहुगुणी जमनालालजी बजाज के भी संस्मरण दे दिये है।

चतुर्थ खण्ड

इसमें काम के पाँच वर्ष, (१६४२ से १६४७) 'भारत छोड़ो' का आन्दोलन, इसके बाद देहरा जिले के राजनीतिक संघर्षों की चर्चा कर "यह सार्वजनिक जीवन" आध्यात्मिक केन्द्र १५ अगस्त, प्रतिज्ञा, नये युग में भारतवर्ष का निर्माणकाल, अब क्या करना है? आदि महत्वपूर्ण लेख दिये गये हैं।

कटारपुर और ज्वालापुर के भयंकर उपद्रव का रोमांचक वर्णन भी भारतीय इतिहास की एक कड़ी है। जिसमें भयंकर हिन्दू-मुस्लिम जन नाश हुआ था।

आगे चलकर आपने 'बदला हुआ पूना' से आरंभ कर, लाहौर जाने से लगा देहरादून तक आने का संक्षिप्त वर्णन कर आपने यज्ञोपवीत संस्कार का मनोरंजक संस्मरण तथा अनेक महाराष्ट्रीय विद्वानों के संक्षिप्त परिचय भी दिये हैं। आगे चलकर आपने अपनी गढ़वाल-यात्रा तथा काश्मीर-भ्रमण का वर्णन किया है। तथा देहरादून जिले के सभी सहयोगियों के संक्षिप्त परिचय देकर उनका स्मरण किया है।

पंच खण्ड

इसमें हैदराबाद का सत्याग्रह, मालव मही का मुकुटमणि माण्डव दुर्ग, शीर्षक ज्ञातव्य लेख एवं संयुक्त-प्रांतीय पत्रकार-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिया हुआ भाषण दिया है। ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी के महाधिवेशन (देहरादून) के संस्मरण, महात्मा गांधी के संस्मरण, देहरादून के संस्मरण शीर्षक से ४० पृष्ठों में प्रायः अपने कार्य क्षेत्र की सभी गति-विधियों पर प्रकाश डाला है, जो पठनीय है।

आगे चलकर कांग्रेस के ६६ वर्षों का इतिहास संक्षेप में दिया है तत्पश्चात् कांगड़ी के वे दिन शीर्षक लेखमाला में अपने गुरुकुल के संस्मरण दिये हैं। स्व. पं. विश्वभंरनाथजी का संस्मरण भी दिया गया है।

लोक-प्रिय शासन में टिहरी की उन्नति एवं स्व. सुमन के बलिदान की चर्चा की है और धारा-सभाओं को बोलने की दूकानें बताकर भी अपने को देहरादून जिले की ओर से धारा-सभा में भेजा जाने का विस्तार से वर्णन करते हुए बताया है कि मैंने एम. एल. ए. होकर क्या अनुभव प्राप्त किया।

धारा-सभा में आपने गौरक्षा-आन्दोलन के विषय में प्रयत्न कर सर्व-सम्मति से उत्तर-प्रदेश में "गोवध-निषेध' कानून पास कराया। वह भाषण भी अंग्रेजी में इसमें ही दिया है। बजट के अवसर पर दिये गये भाषण का सार तथा वाराणसी संस्कृत-विश्वविद्यालय पर दिये गये भाषणों के अतिरिक्त (परिशिष्ट में) ज्वालापुर महा विद्यालय-जयंती का वर्णन एवं प्राप्त सन्देशों का संकलन करा दिया है।

अन्त में "पत्र-पुष्प" शीर्षक से विविध महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र देकर समाज-सुधार-सम्मेलन की ओर से प्रदत्त अभिनन्दन-पत्र एवं शारदापीठ के जगद्गुरु द्वारा वेद-वेदाङ्ग-केसरी तथा ऋषि-कुल (हरिद्वार) की पंडित-मंडली की ओर भारती-भूषण की उपाधियों द्वारा सम्मानित किये जाने का विवरण देकर अनेक छोटे-मोटे पत्र भी दिये हैं। लंदन का पत्र, ऑक्सफोर्ड का पत्र आदि देकर डायरी के पन्ने भी दिये हैं। इस प्रकार ६०० पृष्ठों में यह ग्रंथ समाप्त हुआ है और ५) रुपये में महाविद्यालय ज्वालापुर से प्राप्त होता है।

शक की शिकार

कहानी
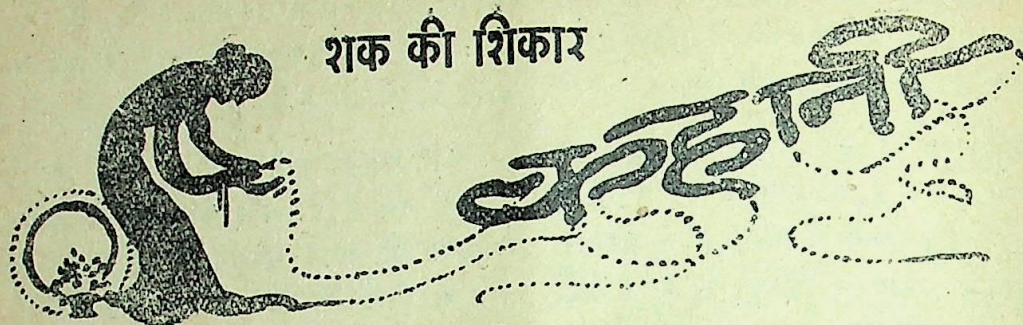
श्री प्रमोद गोविन्द माकोड़े

★

'मंगल निधान' की सुस्वर तान लेकर मोहिनी ने आरती नीचे रखी। हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी। हे, मंगल निधान ! मेरे मोहन को, धन, यश और मान-सम्मान की कभी कमी न हो ! भगवन् मुझे मायके भेजने की सन्मति उन्हें दे !!

वाह ! खूब !! मंगल निधान को मनाने में मोहन को मक्खन का भोग लगाना तो तुम भूल ही गईं। मेहनत के बाद मिलने वाला मक्खन दूध आज मोहन को मिलेगा या मंगल निधान को ? आओ ! इधर आओ !! आज तुम कितनी सुन्दर दिख रही हो। इस सौंदर्य सुधा का एक घूंट तो मैं ले ही लूं।"

मोहिनी मोहन के करपाशों में बंध गई। दोनों के ओंठ एक दूसरे से मिल गये। मूक भाषा ने अपना काम किया।

"यह क्या ? होने वाले नन्हे को यही सबक सिखाओगे ?"

'अच्छा ! यह बात है। तो फिर एक और........

लज्जावती के पौधे के समान मोहिनी मुरझा गई। मोहन के बाहुपाशों को हटाकर वह दूर जाकर खड़ी हुई। सुंदरी के सौंदर्य को देखकर देव-दानव भी मोहित होते हैं। झरोके में से आने वाले सूरज के सहस्र किरण-करों ने मोहिनी को अपने पाशों में ले लिया। उससे वह अधिक सुन्दर दिखने लगी।

देहात का जीवन था। सुबह का समय था। नन्हें बालक माता की गोद में स्तनपान कर रहे थे। ढोरों को लेकर बालक चरणोई की तरफ जा रहे थे। बालिकाएँ घर के कामों में लगी थीं। खेतिहर बैल जोड़ियों पर हल रखकर खेतों की ओर बढ़ रहे थे। उन्हीं लोगों में मोहन भी शामिल हो गया। आनंद में मक्खन व दूध लेना भी भूल गया। मोहन को छः हलों की खेती थी। बैल जोड़ियाँ खेतों पर ही रहती थीं; नौकरों पर वह निर्भर नहीं था। स्वयं हर दिन खेतों पर जाता था। शरीर-सौष्ठव मल्ल के समान था। शहरी दंगल अनेक बार जीतकर पारितोषिक प्राप्त किये थे। ग्राम पंचायत में वह एक पंच था। पिता के पश्चात् सारा कारोबार संम्हाला था। सारे गाँव का प्यारा मोहन, मोहिनी का जीवनहार प्रांत का होनहार युवक था। एक देहाती था।

दो वर्ष का काल व्यतीत हुआ। मोहिनी को मोहन ने मायके भेजा नहीं था, न भेजना ही चाहता था। उसकी सौतेली सास व्यभिचारिणी है, ऐसा वह अनेक बार सुन चुका था। उसकी भावना थी, सौतेली माँ के स्वभाव एवं सहवास का परिणाम मोहिनी पर तो नहीं हुआ है। विवाहोत्तर काल में मोहिनी के चाल-चलन को बारीक निगाहों से वह देखता था। मोहन को दो साल में विश्वास हुआ। मोहिनी के प्रति प्रेम की परीक्षा हुई। मोहन व मोहिनी एक रूप

हो गये थे। किन्तु मोहन मोहिनी को मायके जाने की आज्ञा नहीं देता था। इस विषय को लेकर दोनों में थोड़ा-सा मन-मुटाव होता था। चंद घंटों में वह समाप्त भी हो जाता था। फिर वही आनंद की लहर दौड़ जाती। पिता व माता को मिलने के लिए मोहिनी व्याकुल थी। अनेक बार आने के लिए लिखकर निश्चित समय पर पिताजी या भाई कभी आये नहीं थे। आये दिन वह भेंट की मंगल कामना पूर्ण करने के लिए मंगल निधान को मनाती थी।

आज मोहन दूध लेकर नहीं गया। यह देख मोहिनी विवश हो रही थी। मसाले के तपे हुये दूध का प्याला तिपाई पर रख कर झरोके में से वह बार-बार मोहन की प्रतीक्षा कर रही थी। एक कटोरे में मक्खन मिश्री भी मिलाकर रखी थी। तीसरी बार जब वह झरोके से झाँकी, तो वह अति हर्षित हुई। उसका हृदय फूलों नहीं समाता था। रोमांच खड़े हो गये अपने आपको वह भूल गई। एक्के से उतरने वाले अपने भाई गौरव को लेने के लिए वह नीचे चली आई। अतिहर्ष से उसके मुंह से शब्द नहीं निकलते थे। पिताजी के हाल पूछना वह भूल गई। गौरव को हाथ-मुंह धोने को भी समय नहीं दिया। उसे मंच पर बैठा कर, दूध व मक्खन गौरव के सामने रख दिया। गौरव ने दूध का एक धूँट ही लिया था एक मधुमक्खी मोहिनी के सौंदर्य पर मुग्ध हो उसके गालों पर डस गई। गौरव ने उसे मंच पर लिटाया व अपने हाथों से बहिन के कपोल पर काली मिट्टी लगा रहा था।

मोहन विशेष आनंद में था। किसी को कुछ और किसी को कुछ आज्ञा दे रहा था। यह देख, पुराना नौकर रामू बोल उठा, "भैया! खोये-खोये से नजर आते हो! क्या बात है? सुबह की खुराक तो लेकर ही आये हो ना। व जमना का दूध निकालना अभी रहा है, कहो तो ले आऊँ!' 'नहीं! रामू, कोई बात नहीं, मैं ही घर हो आता हूँ। तब तक यह नीचे आने वाली डालों को काटने के लिए कुल्हाडी को अच्छी तरह परज कर रख। मोहन कल्पना-विश्व में विहार करता हुआ घर की ओर चल रहा था। मनो पटल पर मोहनी को वह देख रहा था। होने वाले नन्हे के प्रसन्न व सुन्दर चेहरे को कल्पनाचित्र में देख रहा था। मोहिनी को वह एक बच्चे की माँ के रूप में देख रहा था। इतना ही नहीं, बच्चे को दोनों मिलकर किस प्रकार शिक्षा देंगे यह भी निश्चय वह कर चुका था। अपने पुत्र को ऐसी शिक्षा दी जाय कि वह अखिल विश्व में मोहन-मोहिनी के नाम को, मोहनपुर ग्राम को, भारतवर्ष देश को जगमगा दे। इन्हीं विचारधाराओं में वह घर पहुँचा। मसखरी करने के हेतु सावकाश घर में जाकर मोहिनी की आँखें बंद करने का निश्चय उसने किया। मोहिनी के मायके न जाने का अभिवचन लेने का भी उसका विचार था। घर में जाते ही मंच पर लेटे मोहिनी के गालों पर एक युवक का हाथ देख, वह एक क्षण भी वहाँ ठहर न सका। वैसा ही लौटकर खेत की ओर वह चल पडा। उसके सारे स्वप्न विफल हुए। आखिर कुलटा, घराने का परिणाम लेकर रही ही। मोहिनी उसके निगाहों में एक विशाल गर्त में गिर पड़ी। उसकी सर्व आशा आकांशा चौपट हो गई। वह खेत में कुँए पर जा बैठा। उग्र चेहरा देख, रामू की भी कुछ पूछने की हिम्मत न हुई। वह तीक्ष्ण धार की कुलहाडी मोहन के हाथ में रख अन्य काम के लिए निकल गया।

मध्याह्न लौटने पर भी मोहन घर पर नहीं आया यह देख, मोहिनी स्वयं अन्न लेकर खेत पर गई। साथ में गौरव भी था। पति से होने वाले वार्तालाप में गौरव का होना ठीक नहीं, समझकर मोहिनी ने उसे अनेक बार घर जाने को कहा। आखिर अपने हाथों मोहिनी ने गौरव का मुँह घर की ओर मोड़ दिया। आम्रवृक्ष की डार-डार में से कुएं पर बैठा हुआ मोहन यह देख रहा था। अंतर के कारण उस पुरुष को—गौरव को—वह पहचान न सका। गुस्सा अधिक प्रखर हुआ। वह संतुलन खो बैठा। मोहिनी उसके समक्ष उपस्थित हुई। मोहिनी के सन्निकट आने से वह मोहित नहीं हुआ। मिन्नतों का मोहन के मन पर

किंचिन्मात्र परिणाम न हुआ। मोहिनी ने थाली लगाकर मोहन के सामने रखी। "अन्न का अपमान अच्छा नहीं। मुझे आप भूखी प्यासी रखें, किंतु होने वाले नन्हे को अभी से क्यों सजा दे रहे हो।" मोहिनी भी भूख से व्याकुल थी। आकाश में प्रखर दिनराज भी स्थिर से प्रतीत हो रहे थे। हलों से अलग किये बैल भी शांत होकर विश्राम ले रहे थे। दोपहर के समय वृक्ष की डार-डार भी स्थिर-सी थी। सारा वातावरण शांत एवं गम्भीर था। भूख के कारण मोहिनी ने रोटी का एक कौर मुँह में रखा। सारे वातावरण में एक ही स्वर गूंज उठा। "कुलटा, निकल यहां से। मुझे मुंह न बताना।"

"मोहन यह क्या कह रहे हो ? आप अपनी मोहनी पर, जीवन-संगिनी पर यह आरोप किस हेतु कर रहे हो, समझ में नहीं आता।"

मोहन का गुस्सा और बढ़ता गया। हाथ में कुल्हाड़ी लेकर वह आम्रवृक्ष की डार काट रहा था। वहां से वह आगे बढ़ा। थाली को एक लात से २५ कदम दूरी पर फेंक दिया……

संध्या समय होने को आया। मोहिनी या मोहन को घर लौटते न देख, गौरव खेत पर गया। एक तरफ मोहिनी का जड़ शरीर व दूसरी ओर शांत सुन्दर, मुद्रा का शिर पड़ा था। सारा धरातल रक्तमय हो चुका था। वृक्ष की दूसरी डार पर हाथ में कुल्हाड़ी लिये मोहन बैठा था। गौरव को देख वह लज्जित हुआ। 'जिजाजी!' इस शब्द से अधिक गौरव बोल न सका।

रामू अन्य नौकरों से कह रहा था—'शक की शिकार!'

—:×:—

रेडियो नाटक और मनोरंजन

श्री वी. बालसुन्दरम

★

कल्पना कीजिए कि हम लोग नाट्यशाला में बैठे हैं। सारी रोशनी बन्द कर दी गयी है। दर्शकगण बड़ी ही उत्सुकता से मंच पर पर्दा उठने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। पर्दा उठता है—मंच पर एक जंगल का दृश्य दिखायी पड़ता है। सूर्य की किरणें पत्तियों से छनकर तृणमय भूमि पर धूप-छाँह का एक जाली-सा बुन रही हैं। किन्तु यह दृश्य जो हम मंच पर देखते हैं, वह सिर्फ चित्रकारी किया हुआ परदा-मात्र है, जो समय-समय पर हवा में फड़फड़ाता है और बिजली की तेज रोशनी में मंच की प्रत्येक वस्तु का नकलीपन स्पष्ट हो जाता है। धूप-छाँह का सुन्दर ताना-बाना एक नीरस कृत्रिमता में बदल जाता है। अवश्य ही कहीं कुछ गलती है, न तो यह वैसा जंगल है जैसा हम लोगों ने पहले देख रखा है न वैसा ही है, जैसी कि हमने जंगल के बारे में कल्पना कर रखी है। इसी समय पात्र मंच पर आते हैं—एक पुरुष, एक महिला, हम जल्दी से नाटक कार्यक्रम देखते हैं और अन्दाज लगाते हैं कि हाँ, स्त्री लैला है और पुरुष मजनू है।

किन्तु नायक और नायिका हमारी कल्पना के लैला मजनूँ से बहुत भिन्न हैं। वे किस बात में हमारी कल्पना के विपरीत हैं ? क्या उनकी वेश-भूषा, शक्ल, सूरत, चलने, खड़े होने, बैठने और बातचीत करने का तरीका, हमारी कल्पना से भिन्न है ? लीजिए अब इन लोगों ने संवाद बोलने शुरू कर दिये और अभिनय भी शुरू कर दिया। इसी प्रकार नाटक आरम्भ होता है। नाटक शुरू होता है, एक के बाद दूसरे दृश्य आते और जाते हैं। साथ ही कहानी आगे बढ़ती है और हम बीच-बीच में कभी अभिनय, कभी रंगमंच के सजाने के तरीके या कभी रोशनी के प्रबन्ध की प्रशंसा या बुराई, आलोचना या सराहना भी करते जाते हैं। हम उत्तेजित और निराश भी होते हैं। जब अन्तिम दृश्य समाप्त होता है तो हम नाट्यशाला से बहुत ही मिली जुली भावना लिये बाहर निकलते हैं—नाटक हमारी कल्पना के अनुरूप नहीं निकला। हमारे मन में प्रश्न उठता है कि क्या नाटककार अपने सन्देश और कथा-वस्तु का पूरी तरह निर्वाह करने में सफल रहा है।

इन सब बातों के बावजूद क्या हम नाटककार के शब्दों को सुनते हैं ? क्योंकि शब्दों के द्वारा ही नाटककार अपने विचारों को प्रकट करता है, कथानक का विकास करता है—और दर्शकों के मन पर अपेक्षित प्रभाव डाल सकने में सफल होता है। रंगमंच तो एक साधन-मात्र है, जिसके द्वारा वह अपना कार्य करता है। वह उसकी कमियों से सजग है और दर्शक भी इन सीमाओं को मानकर नाटक देखता है। किन्तु नाटककार के शब्द उसकी भावनाओं को पूर्णतः प्रकट कर सकें, इसके लिए एक नये और अधिक शक्तिशाली, माध्यम की आवश्यकता है और वह है रेडियो-नाटक।

लेकिन तुरन्त ही नाटककार अनुभव करता है कि रेडियो नाटक में रंगमंच और इससे सम्बद्ध समस्त उपकरणों जैसे दृश्य, प्रकाश, वेश-भूषा तथा अभिनय का कोई स्थान नहीं है। अभिनेता को नाटककार के समस्त भावों की अभिव्यक्ति केवल अपने स्वर और ध्वनियों द्वारा करनी होती है। अन्य ध्वनियों में संगीत ध्वनि आभास ध्वनियाँ हो सकती हैं किन्तु ध्वनियों से रंगमंच की सारी आवश्यकता कैसे पूरी हो सकती हैं।

ऐसा लगता है कि मंच के विना नाटक खेलना असम्भव है। लेकिन यह इतना असम्भव नहीं, जितना लोग समझ बैठे हैं। रंगमंच के सब उपादान बहुत बाद का विकास हैं। शेक्सपियर के युग में न तो भिन्न-भिन्न दृश्यों के परदे होते थे न रोशनी की कोई विशेष व्यवस्था। ऐसे युग में भी शेक्सपियर ने नाटक लिखे और वे खेले गये हैं। रेडियो नाटकों में रंगमंच के बदले जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है, उनसे हर भाव की अभिव्यक्ति असम्भव नहीं।

वास्तव में शब्द में भारी शक्ति है। रेडियो नाटक में इस शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया जाता है। अभिनेताओं के संवाद की सहायता से श्रोता की कल्पना में सारे दृश्य का निर्माण होता है।

श्रोता अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा रंगमंच के से दृश्य का आनन्द लेने लगता है। उदाहरणार्थ रेडियो नाटक में वन के दृश्य की आवश्यकता है तो इतना बताना पर्याप्त होगा कि यह वन का दृश्य है, श्रोता स्वयं अपने मन में वन का दृश्य खड़ा कर लेगा, क्योंकि वह वन देख चुका है, इसलिए वह वन का सारा वातावरण स्वतः निर्माण कर लेगा और उसका पूरा आनन्द लेगा।

मनोरंजन और रसास्वादन की दृष्टि से रेडियो नाटक अद्वितीय है। क्योंकि रेडियो नाटक के अभिनेता का हर श्रोता से सीधा और निकट सम्पर्क होता है। रंगमंच की सीमाओं में बँधा रहता है लेकिन रेडियो नाटक में ऐसा कोई बन्धन नहीं होता। अभिनेता अपने कथनोपकथन द्वारा हर श्रोता के मन पर अलग-अलग प्रभाव डालता है और यह प्रभाव इतना गहरा होता है कि पात्र का दुःख-सुख श्रोता का ही दुःख-सुख बन जाता है और वह उसकी भावनाओं के साथ बह जाता है। कारण यह है कि यहाँ भेड़-चाल नहीं होती। ऐसा नहीं होता कि भीड़ हँसी या भीड़ ने ताली बजाई तो आपको भी वही करना पड़े। रेडियो नाटक के श्रोता की प्रतिक्रिया उसकी निजी और वैयक्तिक प्रतिक्रिया होती है।

रेडियो नाटक में मंच के स्थान की पूर्ति बहुत कुछ संगीत और ध्वनि के द्वारा होती है! वास्तव में संगीत ही रेडियो नाटक का प्राण है। कहीं यह संगीत वास्तविक होता है और कहीं प्रतीकात्मक। कभी इससे श्रोता के मन पर नाटककार का अभीष्ट चित्र अंकित करने में सहायता मिलती है तो कहीं श्रोता की कल्पना-शक्ति को जाग्रत करने में।

सम्भवतः रेडियो नाटक का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसका रसास्वादन करने में श्रोता को अपनी सारी शक्तियों को कानों में ही केन्द्रित करना होता है। नाट्यशाला में कभी अभिनय से तो कभी दृश्य या वेशभूषा से दर्शक का मन जिस प्रकार इधर-उधर भटकता रहता है। रेडियो नाटक के श्रोता के साथ यह बात लागू नहीं होती। वह निरन्तर अपने कानों पर ही निर्भर रहता है और इसी कारण नाटक का अधिक आनन्द ले सकता है। रंगमंच वाले नाटक में मंच तथा अन्य उपकरणों के कारण दर्शक का ध्यान बँट जाता है।

रेडियो नाटक में हम पात्रों की बोल-चाल, पशु-पक्षियों की बोलियों और यांत्रिक ध्वनियों के सहारे अपनी कल्पना में बड़ी स्वच्छन्दतापूर्वक चित्र बनाते रहते हैं। इस प्रकार काल और स्थान का भेद हमारे सामने से मिट जाता है और हम कल्पना-जगत् में विचरण करने लगते हैं। अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाटक का यह रूप बहुत कलात्मक और यथार्थ के अधिक निकट है।

हिन्दी रंगमंच का विकास

प्रो० आनन्द नारायण शर्मा

संस्कृत-साहित्य में काव्य को दो वर्गों में बाँटा गया है-श्रव्य काव्य और दृश्य-काव्य के अंतर्गत कविता कहानी, उपन्यास, निबंध, प्रबंध प्रभृति आते हैं और दृश्य काव्य के अंतर्गत एकमात्र रूपक और उसके भेद-प्रभेद। (हिंदी में रूपक और 'नाटक' प्रायः पर्यायवाची मान लिये गये हैं, यद्यपि संस्कृत में दोनों शब्दों के अर्थों में भेद है एवं नाटक रूपक के दस भेदों में एक भेद मात्र है।) लेकिन हिंदी के नाटकों को दृश्य काव्य न कहकर श्रव्य काव्य कहना ही विशेष उचित होगा; क्योंकि हिंदी में जितने भी साहित्यिक नाटक लिखे गये, उनमें काव्य गुण तो प्रचुर परिमाण में है, किंतु वे अभिनेयता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। और जिन नाटकों को केवल अभिनय के लिए ही लिखा गया है, तथा जिनका अभिनय व्यावसायिक और अव्यावसायिक रंगमचों पर थोड़ी-बहुत सफलता के साथ हुआ भी है, उनमें से कुछ को छोड़कर शेष सभी साहित्यिकता से शून्य हैं। यह विरोधाभास विचित्र होकर भी सत्य है। इसके मूल में दो कारण है। एक तो यह कि हिन्दी के पास अपना कहने योग्य कोई रंगमंच नहीं और फिर पारसी रंगमंच का जो भग्नावशेष अपने विकृत रूप में वर्तमान है और अपने जीवन की अंतिम साँसें गिन रहा है, उससे अधिकांश हिंदी लेखकों का कोई सीधा संपर्क नहीं। लेखकों की ओर से यह कहा जा सकता है कि कम या अधिक, यदि तैरना आता है तो उसकी सार्थकता पानी रहने पर ही है। लेकिन अगर पानी ही न रहे तो तैरना किसी के बालू पर हाथ-पाँव मारने से तो नहीं हो आयगा।

रंगमंच के अभाव में हिंदी-साहित्य के कलेवर का एक संपूर्ण अवयव पक्षाघात से पीड़ित रहा है। कुछ नाटककारों ने बर्नार्ड शॉ आदि के साहित्यिक नाटकों और उनकी लंबी तर्क-पूर्ण भूमिकाओं को देखकर यह धारणा बद्धमूल कर ली कि रंगमंच से पृथक् भी नाटक का अस्तित्व है। उन्होंने ऐसे नाटक लिखे, जिनमें अभिनेयता को छोड़कर कला के शेष सभी उत्पादन वर्तमान हैं, नाटकों का प्राण-भूत तत्व अंतस् और बहिर्द्वन्द्व भी उपस्थित हैं। पर यह सब नमक के अभाव में तैयार की गई सब्जी-जैसा ही है। यह ठीक है कि नाटक पढ़े भी जाते हैं, किन्तु उससे भी अधिक ठीक यह है कि नाटक प्रथमतः और प्रमुखतः अभिनय किये जाने के लिए ही होते हैं, बाद में किसी और काम के लिए। शेक्सपियर के जितने नाटक आज अंग्रेजी नाट्य साहित्य के प्रकाश-स्तम्भ माने जाते हैं, वे सभी मूल रूप में रंगमंच पर खेले जाने के लिए ही लिखे गये थे। बर्नार्ड शॉ ने भी नाट्य-रचना के पहले वर्षों तक एक पत्रकार के रूप में नाट्यालोचना के सिलसिले में रंगमंच की गुत्थियों और बारीकियों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। इस अनुभव के बल पर ही उन्होंने नाटकों की रचना की, और उनके नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत भी हुए। मौलिया तो पाश्चात्य देशों में एक कुशल नाटककार से कहीं अधिक एक कुशल अभिनेता के रूप में प्रख्यात हुआ। 'इसके विपरीत हिंदी के नाटकों की गौण उपयोगिता को ही उनकी वास्तविकता उपयोगिता के रूप में स्वीकार किया गया और हिंदी के नाटककार पढ़े जाकर ही संतुष्ट हो गए।' (दृष्टिकोण-नलिन विलोचन शर्मा)

हिन्दी के रंगमंच की अपनी एक कहानी है। मध्ययुग में, काव्य के क्षेत्र में जिस प्रकार अनेक वस्तुएँ संस्कृत से हिंदी को विरासत में मिलीं, वैसी कोई बात

रंगमंच के विषय में न हुई। भरतमुनि के 'नाट्य शास्त्र' और धनंजय के 'दशरूपक' आदि ग्रंथों से ज्ञात होता है कि संस्कृत का रंगमंच बड़ा ही धनी और समुन्नत था। महाकवि कालिदास, भवभूति और भास के नाटक किसी साधारण रंगमंच पर अभिनीत भी नहीं हो सकते। संस्कृत के रीति-ग्रंथों में इस रंगमंच का, जो प्रधानतः राजाओं द्वारा संपोषित था और जिसे जनता मुक्तहस्त होकर अपना सहयोग प्रदान करती थी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप भरतमुनि के नाट्य शास्त्र को ही ले सकते हैं। "नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रेक्षागृह तीन प्रकार के होते थे—विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र। 'विकृष्ट' प्रेक्षागृह सबसे अच्छा होता था और वह देवताओं के लिए था। उसकी लंबाई एक सौ आठ हाथ होती थी। (चौड़ाई के विषय में कोई संकेत नहीं मिलता, संभवतः उसकी कोई निश्चित सीमा न होगी।) 'चतुरस्र' प्रेक्षागृह मध्यम श्रेणी का होता था और उसकी लंबाई चौंसठ हाथ तथा चौड़ाई बत्तीस हाथ होती थी। 'त्र्यस्र' प्रेक्षागृह त्रिभुजाकार होता था और वह निकृष्ट कोटि का था। 'चतुरस्र' राजाओं, धनवानों तथा साधारण सम्पन्न जनता के लिए होता था और 'त्र्यस्र' केवल थोड़े से मित्रों या परिचितों के आपस में बैठकर अभिनय देखने के काम आता था। सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों का आधा स्थान दर्शकों के लिए और आधा अभिनय तथा पात्रों के लिए सुरक्षित रहता था। रंगमंच का सबसे पिछला भाग 'रंगशीर्ष' कहलाता था, जो छः खंभों पर बना होता था और जिसमें नाट्य वेद के अधिष्ठाता देवता का पूजन होता था। इसमें से नेपथ्य गृह में जाने के लिए दो द्वार होते थे। नेपथ्य साधारणतः रंगमंच से नीचा होता था। रंगमंच के खंभों तथा द्वार पर बहुत अच्छी नक्काशी और चित्र-कारी होती थी और स्थान-स्थान पर वायु तथा प्रकाश के लिए वातायन होते थे।" (रूपक-रहस्य—श्याम सुन्दरदास) इस सम्बन्ध में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि रंगमंच का निर्माण इस प्रकार किया जाता था कि उसमें आवाज गूँज सके। कभी-कभी वह दो खंडों में विभक्त होता था। ऊपर का भाग स्वर्ग आदि का दृश्य दिखलाये जाने के काम आता था और नीचे का भाग साधारण अभिनय के हेतु। रंगमंच के खंभों पर पशुओं तथा पक्षियों के चित्र उत्कीर्णित होते थे और दीवारों पर पहाड़ों, जंगलों, मंदिर तथा राजप्रासादों के। बाद में यवनिका का प्रयोग आरम्भ हुआ तो उसके रंगों पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा। रूपक में जिस रस की प्रधानता होती थी, प्रायः परदे का रंग भी उसी के अनुकूल होता था, जैसे रौद्र का लाल, भयानक का काला, हास्य का श्वेत, शृंगार का श्याम, करुण का कपोत (खाकी), अद्भुत का पीत, वीभत्स का नील और वीर का हेमाभ (सुनहला)। कुछ विद्वानों ने 'यवनिका' शब्द के आधार पर यह भी अनुमान लगाया है कि भारतीय रंगमंच पर परदों का प्रयोग यवन-आक्रमण के बाद आरंभ हुआ होगा। अस्तु, अभी कुछ दिन पूर्व सुरगुजा रियासत की एक गुफा में एक प्रेक्षागृह का भग्नावशेष मिला था, जिसमें उपर्युक्त सिद्धान्तों के पालन के साथ यावनी प्रभाव के भी चिह्न स्पष्ट थे।

पर दुर्भाग्य से हिन्दी को इस पैतृक संपत्ति का कोई लाभ न हुआ। उसका रंगमंच इसके वैभव से सर्वथा वंचित रह गया। मुसलमानी राजत्वकाल रंगमंच के विकास के लिए अनुकूल न था। इस्माल धर्म के अनुसार अनुकरण की प्रवृत्ति, जिसका मूल प्रतीकोपासना अथवा मूर्त्तिपूजा में ढूँढा जा सकता है, एक अक्षम्य अपराध है, एवं नाटकों के लिए तो अनुकरण उनकी जान है। परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों में जो कलाप्रिय शाहंशाह भी थे, उन्होंने भी नाटकों को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया और संस्कृत का सुसंपन्न और समृद्ध रंगमंच मध्ययुग में आकर अपनी महार्घता खो बैठा। जिस प्रकार मध्ययुग में हिन्दी रंगमंच को राज-कीय प्रश्रय न मिला, उसी प्रकार उसे कलाकारों एवं सामान्य जनता की भी उपेक्षा का भाजन बनना पड़ा। नाटक मुक्तक काव्य की भाँति साहित्य का वैयक्तिक नहीं, सामाजिक स्वरूप है। नाटकों के निर्माण के लिए सामाजिक जीवन में संघर्ष की जितनी आवश्यकता है,

उतनी ही आवश्यकता इस बात की भी है कि व्यक्ति में जीवन-समर में जूझने की सक्रिय उत्तेजना हो। मध्य-युग में जीवन के संघर्ष का तो अभाव नहीं था एवं पग-पग पर हिन्दुत्व को अपमानित एवं लांच्छित होना पड़ रहा था, किन्तु कवियों और लेखकों में प्रतिकार की उत्तेजना नहीं थी। उन्होंने तात्कालिक समस्याओं पर भी आध्यात्मिकता का चश्मा चढ़ाकर दृष्टि-निक्षेप किया और उन्हें सब कुछ उस लीलामय का लीला-विस्तार ही दीख पड़ा। तुलसीदास जैसे जागरूक कवि ने भी एक ओर जहाँ रावण का चित्र खींचकर एक अत्याचारी शासक के प्रति जनता का रोष उभाड़ा, वहाँ—

> जब-जब होइ धरम कै हानी।
> बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
> करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
> सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
> तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
> हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

लिखकर एक प्रकार की निष्क्रियता को ही बढ़ावा दिया। 'अजगर करै न चाकरी....' का दर्शन प्रचारित करने वाले अजगरी वृत्ति के उपासक कवियों से कभी नाट्य-सर्जन की आशा नहीं की जा सकती। इस प्रकार राज्य और लोक-रुचि दोनों की ओर से उपेक्षा-वश मध्यदेश का रंगमंच अकाल काल-कवलित हुआ। इस समय यदि रंगमंच का कुछ भी अंश अवशिष्ट था तो वह रामलीला और रासलीलाओं के रूप में ही। इन लीलाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और ये गाँवों और शहरों में घूम-घूमकर अपने ग्राम्य कौशल का प्रदर्शन किया करती थीं। रामलीलाओं में रंगमंच के निकट एक वाचक मंडली बैठकर मानस या कभी-कभी रामचन्द्रिका का सस्वर पाठ करती जाती थी और उसी के अनुरूप पात्र अभिनय और कथोपकथन करते जाते थे। रासलीलाएँ तो और भी मात्र नाच-गानों तक ही सीमित थीं और उत्तान शृंगार के दृश्य दिखलाकर लोगों में कुरुचि का संचार करती थीं। इसलिए साधारण शिक्षित-वर्ग का भी इनकी ओर से शीघ्र ही उदासीन हो जाना स्वाभाविक हो गया। इनकी तुलना इंग्लैंड के Passion Plays से की जा सकती है।

रीतिकाल में कुछएक नाटक अवश्य लिखे गये लेकिन वे केवल इसलिए कि नाटक भी साहित्य का एक अंग है और अन्य अंगों के समान उसकी भी सृष्टि होनी ही चाहिए। आधुनिक अर्थ में उन्हें 'नाटक, कहना 'नाटक' शब्द के साथ अन्याय होगा। चूँकि उस समय कोई साधन-संपन्न रंगमंच नहीं था, इसलिए अभिनेयता की तो खैर चर्चा ही व्यर्थ है। निष्प्राण संवादों में झूलती हुई कहानी-भर उन्हें कहा जा सकता है। इसके कुछ दिनों बाद तक भी यही दशा रही। हिन्दी के नाटक लँगड़ाते हुए आगे की ओर बढ़ना चाह रहे थे और रंगमंच पीछे की ओर लौट रहा था। दोनों में किसी प्रकार का नाम के लिए भी सामंजस्य न था। रीतिकालीन हिन्दू राज-दरबारों में जिस हीन कोटि की विलासिता पनप रही थी, उसका परितोष किसी बाहरी रंगमंच की अपेक्षा अन्तःपुर के शृंगार-कक्षों में ही अधिक आसानी से हो जाता था।

हिन्दी का पहला रंगमंच लखनऊ के कैसर बाग में नवाब वाजिदअली शाह के समय में बना एवं सबसे पहले इस पर अमानत-लिखित 'इंदर सभा' नामक गीति-नाट्य का अभिनय किया गया। कहते हैं, इसमें स्वयं वाजिदअली शाह ने 'इन्दर' का काम किया था। यह नाटक जन-साधारण में प्रचलित संगीत-मंडलियों के आधार पर लिखा गया था और इसमें सूत्रधार आरंभ में सभी घटनाओं की पद्य-बद्ध सूचना दे दिया करता था। उदाहरणार्थ सूत्रधार ने कहा—

> महफ़िले राजा में पुखराज परी आती है।
> सारे माशूकों की सरताज परी आती है॥

और फिर आगंतुक स्वतः रंगमंच पर उपस्थित होकर अपना परिचय देता था—

> नाचती हूँ नाच सदा काम है मेरा।
> आफ़ाक में पुखराज परी नाम है मेरा॥

इसी प्रकार महाराज इन्द्र को भी शेरवानी-पायजामा पहनकर लचकते-मटकते हुए स्टेज पर आना

और कहना पड़ता था—'राजा हूँ मैं कौम का, इन्दर मेरा नाम !'

कुछ काल तक इसी प्रकार सस्ते नाटकों और असंस्कृत अभिनय का क्रम चलता रहा, जबकि हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु-युग का अभ्युदय हुआ। अब तक जीवन के ताने-बाने बदल चुके थे और सिपाही विद्रोह एवं अन्य राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक घटनाओं के संघात के कारण रीतिकालीन साहित्य, जो विलासिता की गोद में पनप कर बेहयाई की जिन्दगी बिता रहा था, सहसा झटका खाकर अपने आस-पास की परिस्थितियों का परीक्षण करने को वाध्य हो गया था। इस समय नाटकों की इसलिए विशेष आवश्यकता हुई कि यह काल सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल था, जीवन की अबाध धारा के प्रचंड विस्फूर्जन का काल, और जैसा कहा जा चुका है नाटक साहित्य का सबसे अधिक सामाजिक स्वरूप है। विश्व-साहित्य का इतिहास साक्षी है कि जन-जन-युग परिवर्तन की बेला आई है और साहित्य में सामाजिक चेतना प्रबल हुई है, नाटकों का सृजन भी अनिवार्य रूप से हुआ है। तो भारतेंदु ने प्रत्यक्ष जीवन के संपर्क से यह अनुभव किया कि 'हिन्दी में नाटकों का लिखा जाना प्रयोग-शाला के न रहते हुए भी विज्ञान की पढ़ाई की तरह बेमानी है।' वे हिंदी का पहला अभिनीत नाटक 'जानकी मंगल' को मानते हैं। अपने 'नाटक' शीर्षक निबंध में उन्होंने लिखा है—'हिन्दी का जो सबसे पहला नाटक खेला गया वह 'जानकी मंगल' था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्यनारायण सिंह के प्रयत्न से, चैत्रशुक्ल ११ संवत् १६२५ (सन् १६६८) में बनारस थियेटर में बड़ी धूमधाम से यह खेला गया।' आजकल यह नाटक अप्राप्य है। इसके बाद ही एक ओर यदि उन्होंने नाटक-लेखन आरंभ किया, तो दूसरी ओर रंगमंच के विकास के लिए भी वे सतत् प्रयत्नशील रहे। भारतेंदु स्वयं अभिनयकला में पूर्ण पारंगत थे। 'अंधेर नगरी' के चूरन वाले के रूप में उनका अभिनय तो दर्शकों को हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर देता था।

भारतेंदु के भतीजे कृष्णचन्द्र और वृजचन्द्र आदि ने मिलकर काशी में 'भारतेंदु नाटक मंडली' की स्थापना की और उसके द्वारा भारतेंदु और उनके मंडल के अन्य सदस्यों के नाटक अभिनीत हुए। फिर काशी की ही एक दूसरी संस्था 'नेशनल थिएटर' की ओर से 'अंधेर नगरी' और प्रयाग और कानपुर में क्रमशः 'रणधीर प्रेममोहिनी' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटकों का अभिनय हुआ। १८७७ ई० के आसपास लखनऊ में 'विधांत नाट्यशाला' नामक एक बंगाली थियेटर कंपनी थी। इसने भी पांच अंकों में 'रामाभिषेक नाटक' के खेलने का आयोजन किया। इस दिशा में पंडित माधव शुक्ल का प्रयास भी अभिनंदनीय है, जिन्होंने एकाधिक बार साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों के अवसर पर नाटक खेलने की व्यवस्था की। यह हिंदी रंगमंच के विकास का प्रारंभिक काल था, जिसका महत्व उपलब्धियों से अधिक संभावनाओं में ही निहित है। साथ ही इस बात की सूचना भी मिल जाती है कि भारतेंदु-युग के लेखक, जो वास्तविक जनजागरण के अग्रदूत थे, रंगमंच के व्यवहारिक महत्व को कितनी दूर तक समझ चुके थे।

भारत में पहला व्यावसायिक रंगमंच १८७० ई० में पारसियों द्वारा स्थापित किया गया। इसके संस्थापक सेठ पेस्टनजी फ्रामजी थे और इसका नाम था 'जोरीजियल थियेट्रिकल कंपनी।' इसका आदर्श बंबई में पहले से स्थापित अंग्रेजी रंगमंच था, जो स्वतः शेक्सपियर कालीन रंगमंच के आधार पर निर्मित था। इसमें खुरशेदजी बंशीवाला, कवासजी खटाकि, जहांगीरजी, सोहराबजी आदि अभिनेता काम किया करते थे। फ्रामजी की मृत्यु के बाद यह कंपनी टूट गई और इसके अभिनेताओं ने बंबई, दिल्ली, कलकत्ता आदि शहरों में जाकर अपनी स्वतंत्र नाटक कंपनियाँ खोलीं। इन नाटक-कंपनियों की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो सबमें समान रूप से पाई जाती हैं। पारसियों में अभिनय-कला की प्रतिभा थी, पर एक विशेष दिशा में केन्द्रित इनके पास बहुत ही भड़कीले परदे और

पोशाकें हुआ करती थीं और इनका उद्देश्य रसनिष्पत्ति न होकर चमत्कृत करने वाले दृश्यों से दर्शकों को चौंकाना मात्र था। ये काल-दोष की जरा भी परवाह न कर इंद्र आदि पौराणिक पात्रों को भी शेरवानी-पायजामा जैसे आधुनिक कपड़े पहनाकर रंगमंच पर खड़ा कर देते थे। इनकी दृश्य-योजना बहुत पेचीली होती थी और दो दृश्यों के बीच की सेटिंग में काफी समय लग जाता था, जिस खाई को ये अश्लील गानों, भोंडे तथा कुरुचिपूर्ण प्रहसन या वेश्याओं के नाच से भरा करते थे। इनके पास अपने लेखक होते थे, जो अत्यन्त साधारण स्तर के और असाहित्यिक नाटक ही लिख पाते थे। इनकी भाषा उर्दू द्वारा विकृत की हुई हिंदी होती थी और अधिकतर कथनोपकथन पद्य में ही हुआ करते थे। इसके गद्य में भी तुकबंदियों की भरमार रहती थी। इनमें स्वगत कथनों की बाढ़-सी रहती थी और अधिकतर पुरुष-पात्र ही स्त्रियों के भी अभिनय किया करते थे। इनकी उच्छ्वासमयी शैली जीवन के संस्पर्श से सर्वथा परे की थी। फलतः इनमें अस्वाभाविकता चरम कोटि तक पहुँच जाया करती थी। इनके लेककों में आगाहश्र कश्मीरी, राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद बेताब, किशनचन्द्र ज़ेबा आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने सस्ती भावुकता से भरे नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना चाहा और इन्हें थोड़ी-बहुत सफलता भी प्राप्त हुई। इनमें से एक राधेश्याम कथावाचक ही ऐसे हैं, जिनकी भाषा हिंदी के कुछ निकट की है। शेष को हिंदी की सीमा में लाने के लिए काफी खींचतान की आवश्यकता होगी।

पारसी रंगमंच के ह्रास के तीन प्रमुख कारण थे। प्रथम यह कि इतने साधन सीमित थे और इनके द्वारा नाट्य-साहित्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती थी। ये जीवन के बहुमुखी चित्र न दिखलाकर केवल अपनी रंगीन और विभ्रमपूर्ण दृश्यावली से सामान्य जनता को अभिभूत किये रखना चाहते थे। दूसरी बात यह कि इनका सांस्कृतिक धरातल अत्यन्त निकृष्ट कोटि का था। इन्होंने जिन-जिन पौराणिक अथवा धार्मिक कथाओं को अपनाया, उन्हें विकृत कर जुगुप्सा-जनक बना दिया। सस्ते प्रेमगीत और अश्लील यौन आकर्षण-पूर्ण नृत्य ही जन-साधारण को आकृष्ट करने के लिए इनके प्रमुख माध्यम थे, जिनके प्रति शिक्षित-वर्ग की विरक्ति स्वाभाविक थी। इनके ह्रास का तीसरा और सर्वप्रमुख कारण चलचित्रों का व्यापक प्रसार है। चलचित्रों में दृश्य-योजना बहुत विकसित हो गई और किसी प्रकार के भी प्राकृतिक या विभ्रमपूर्ण राजसी दृश्य का प्रस्तुत करना बड़ा आसान हो गया। फिर उसमें अभिनेताओं को बड़े ही अस्वाभाविक ढंग से तारसप्तक में बोलने की जरूरत भी न थी, जो पारसी और दूसरे रंगमंचों की एक बहुत बड़ी दुर्बलता थी। इसलिए उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि और प्रचार में कोई व्यवधान न आया। और अब तो उसने नग्नता के प्रदर्शन में भी बाजी मार ली है।

पारसी रंगमंच के साथ ही एक दूसरे प्रकार का रंगमंच भी उत्तर भारत में विकसित हुआ, जिसे हम नौटंकी के नाम से जानते हैं। जहाँ तक कथानक, संवाद और शैली का प्रश्न है, पारसी थियेटरों और नौटंकियों में बहुत कम अन्तर था। पर नौटंकी की एक अतिरिक्त विशेषता यह है कि यह एक प्रकार का खुला रंगमंच (Open Air Theatre) था, जिसमें परदे और सेटिंग की आवश्यकता नहीं पड़ती। दर्शक उसकी कल्पना करके ही आनन्द लाभ कर लेते थे। इसमें बीच मैदान में रंगमंच बना दिया जाता था और पात्र बारी-बारी से आकर अपने करतब दिखा जाते थे। नौटंकी के लिए खेले जाने वाले नाटकों का पद्य-बद्ध अथवा संगीतमय होना आवश्यक था, जिसमें दर्शक लम्बे-लम्बे वाद-विवादों या भाषणों को सुनकर ऊब न उठें। और नगाड़ा ! वह तो नौटंकी की जान थी। उसकी 'किड़-तिर-किट' की कर्णकटु ध्वनि अनायास मन के तारों को झंकृत कर देती थी। जहाँ पारसी रंगमंच ने अधिकतर नागर जनता का मनोरंजन किया, वहाँ नौटंकियाँ अधिकतर गाँव में घूमकर अपना काम करती रहीं। नौटंकीयों के विनाश के

भी लगभग वे ही कारण है, जो पारसी रंगमंच के। दोनों चलचित्रों की लोकप्रियता की वेदी पर बलि चढ़ गये।

पारसी रंगमंच और नौटंकियों के ह्रास के पश्चात् हिंदी-प्रदेशों से व्यावसायिक रंगमंच का एक प्रकार से लोप-सा हो गया। यों तो अब भी कभी-कभी रामलीला अथवा रामलीला-मंडलियाँ छोटे-मोटे शहरों में आकर थोड़ी सी धर्म प्राण जनता का सात्विक मनोरंजन कर जाया करती थीं, पर शिक्षित समाज की इनके प्रति कोई दिलचस्पी न रही। आदर्श उनके ऊँचे होते थे, लेकिन व्यवहार में इनमें पारसीपन पूरी तरह प्रवेश कर चुका था। भाषा को छोड़कर इनका सम्पूर्ण नाट्य विधान पारसी रंगमंच के ही रंग में रंगा हुआ था। अपनी अर्द्धशिक्षित मनोवृत्ति और आधुनिकता के व्यामोह में पड़कर प्रायः ये हास्यास्पद हो जाया करती थीं। एक बार प्रयाग के रामलीला-नाटक-मंडल द्वारा सीता-स्वयंवर खेला जा रहा था। धनुषयज्ञ के अवसर पर निमंत्रित राजकुमारों द्वारा धनुष भंग न होते देखकर जनकजी ने क्षोभ के साथ—"ब्रिटिश कूट-राजनीति के समान कठोर इस शिव-धनुष को तोड़ना तो दूर रहा, वीर भारतीय युवक उसे टस से मस भी न कर सके। यह अत्यन्त दुःख का विषय है, हाय!" दर्शकों में भारतीय संस्कृति के अनन्य संरक्षक महामना मालवीयजी भी बैठे थे। उन्होंने यह कहते हुए कि 'अब तो सहा नहीं जाता' परदा गिरवा दिया और त्रेतायुग के महाराज जनक कलियुग की ब्रिटिश कूट राजनीति पर भाषण करने से वंचित कर दिये गये।

अब नाटकों का अभिनय मुख्यतः नगरों की अमेचर नाटक-समितियों तक ही सीमित रह गया, जिनके सदस्य प्रायः स्कूल कॉलेजों के विद्यार्थी होते थे। इन समितियों का उद्देश्य होता था। स्कूल-कॉलेजों के जलसों या अन्य पर्व-त्योहारों पर जनता का नाटक दिखलाकर उसे क्षणिक आनन्द प्रदान करना। पर एक तो आर्थिक कठिनाई, दूसरे कुशल अभिनेताओं का अभाव, फलतः इनका प्रदर्शन अनाकर्षक और निस्पंद हुआ करता था। इनके सामने एक द्विधा यह भी थी कि अपनी अर्द्ध संस्कृत मनोवृत्ति के कारण ये युवक पारसी रंगमंच के लिए लिखे गए नाटक तो अभिनीत कर नहीं सकते थे और पूर्ण साहित्यिक नाटकों को सँभालना इनके वश से बाहर की बात थी। उधर हिंदी के नाटककार थे जो पूरी तरह यह मान बैठे थे कि नाटकों के लिए अभिनेयता का कोई बंधन नहीं। साहित्य में यह युग 'प्रसाद युग' के नाम से प्रख्यात है। प्रसादजी ने अनेक साहित्यिक नाटक लिखे, जिनमें भारत की अतीत गरिमा का गौरव पूर्ण निदर्शन किया गया है, साथ ही आगत के लिए समाधान और सन्देश भी दिये गये हैं। लेकिन उनका रंगमंच से कोई लगाव नहीं है। यह एक कटु सत्य है कि प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' के अतिरिक्त अन्य कोई भी नाटक अभिनय की कसौटी पर सफल नहीं उतरता'। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा भी की कि "रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएँ। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हों, जो व्यावहारिक है।" (काव्य और कला तथा अन्य निबंध) ऐसा कहकर उन्होंने एक प्रकार से रंगमंच की परवाह न करने का जैसे लाइसेंस ले लिया। उनके नाटकों के संबंध में एक आलोचक ने लिखा है- "प्रसाद के नाटकों के साथ तभी न्याय हो सकता हैं, जब लाख-दो-लाख रुपए हों, सिर्फ क्षण-क्षण पर परिवर्तित होने वाले दृश्यों को ठीक करने के लिए सौ कारीगर हों, साहित्य-रत्न पास और बहुत ही निष्णात अभिनेता हों और विशारद से लेकर काव्य तीर्थ तक या कालेज की ऊँची शिक्षा प्राप्त दर्शक हों और बिना डिग्री देखे टिकट न दियाजाए।"

प्रसादजी के साथ और उनके बाद भी जो दूसरे नाटककार हिंदी में आये, उनमें गोविंद वल्लभ पंत और रामकुमार वर्मा को छोड़कर रंगमंच से किसी का सीधा संबंध न था। परिणाम यह हुआ कि प्रसाद के समान ही उनके भी अधिकांश नाटक विविध परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों में ही निर्धारित होकर रह गये और जन-जीवन में प्रवेश पाने का उनमें से बहुत कम को सौभाग्य प्राप्त हुआ। नाटक और रंगमंच में अन्योन्याश्रम संबंध

है। जिस प्रकार रंगमंच के अभाव में सफल नाटक का सृजन नहीं हो सकता, उसी प्रकार रंगमंचीय नाटकों के बिना रंगमंच का भी परिष्कार संभव नहीं। कहने का तात्पर्य यह कि एक ओर इब्सन, शा, गाल्सवर्दी आदि के प्रभाव के कारण साहित्यकार में नवीन भावधाराएँ जन्म ग्रहण कर रही थीं, मन की अँधेरी कंदराएँ टटोली जा रही थीं और दूसरी ओर प्रयोग न हो सकने के कारण नवीन कृतियों में प्राणशक्ति का संचार नहीं हो पा रहा था। उदाहरण के लिए लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक हिंदी में नवयुग के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। मिश्रजी के नाटकों में प्रसाद की भाँति न तो विधान की जटिलता है और न पात्रों की बहुलता। भाषा भी उनकी अपेक्षाकृत अधिक सरल और व्यावहारिक है, पर कथा-संघटन में कार्यशीलता (Action) के अभाव के कारण उनके अधिकांश नाटकों को भी रंगमंच पर प्रत्याशित सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। कुछ इसी प्रकार की एकरसता सेठ गोविंददास के बड़े नाटकों में भी है।

देश में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर दौड़ने और राजनीतिक चेतना के उग्रतर होने के साथ हिंदी-रंगमंच के विकास का एक नया युग आरंभ होता है। हिंदी रंचमंच के पुनःसंस्थापन की ओर सबसे पहले प्रगतिशील लेखकों का ध्यान गया। नाटक-साहित्य सामाजिक विद्या होने के कारण प्रचार का भी एक उत्कृष्ट माध्यम हैं। प्रगतिशील लेखकों ने इस तथ्य को हृदयंगम किया और न केवल रंगमंचीय नाटकों की सृष्टि की, प्रत्युत् उन्होंने स्वतः रंगमंच के भी परिष्कार-प्रसार के लिए भरसक प्रयत्न किया। बंबई-कलकत्ता आदि बड़े शहरों में इन लोगों ने विकासोन्मुख रंगमंचों की स्थापना की और उसे लोकजीवन के निकट लाकर सचेत और प्रबुद्ध बनाने का स्तुत्य प्रयास किया। स्थान-स्थान पर 'जन नाट्य संघ' की शाखाएँ खोली जाने लगीं। बंबई में 'इप्टा' (Ipta) की स्थापना और बलराज साहनी जैसे लेखक, अभिनेता और निर्देशक का उसमें सक्रिय सहयोग- ये सब बातें एक नये युग के सूत्र-पात की सूचना थीं। इसमें खेले जाने वाले बैले अधिकतर संस्था के सदस्यों-द्वारा ही लिखे जाते थे और उन्हें हर प्रकार से अभिनय के अनुकूल बनाने की चेष्टा की जाती थी। 'इप्टा' का रंगमंच यद्यपि बहुत समुन्नत और समृद्ध नहीं, पर इसमें विधान के सरलीकरण का प्रयास है और इस प्रकार उसे स्वाभाविक, सजीव और विकासोन्मुख बनाया गया है। उसकी दूसरी विशेषता यह है कि उसके नृत्य-रूपकों में लोक-कला को पुनर्जीवित करने की चेष्टा की गई है, इस प्रकार उसका संबंध जीवन के सदाप्रवाही स्रोत से हमेशा के लिए जुड़ गया है।

किन्तु वर्त्तमान रंगमंच की प्रगति के पथ पर जो सबसे अधिक उल्लेखनीय मील का पत्थर है, वह है 'पृथ्वी थियेटर्स'। भारतीय नट-राज कपूर ने जब चल-चित्रों की निष्प्राण भूमिकाओं में अपने कलाकार का दम घुटता हुआ पाया तो उनकी आत्मा कराह उठी और उन्होंने चलचित्र व्यवसाय से अलग होकर १९४५ ई० में 'पृथ्वी थियेटर्स' की नींव डाली। 'पृथ्वी थियेटर्स' की यह विशेषता है कि उसका रंगमंच सादगी, स्वाभाविकता और सजीवता से ओत-प्रोत है। उसमें विधान को अधिक से अधिक सरल बना दिया गया है। हर पाँचवें मिनट पर पट-परिवर्तन के झगड़े से तो उसने सदा के लिए छुटकारा दिला दिया है। सेटिंग को भी यथासाध्य प्रकृत बनाने का प्रयास किया गया है। 'पठान' में, जो संभवतः पृथ्वी थियेठर्स का सफलतम नाटक है, आरंभ से अन्त तक एक ही दृश्य है। समय की सीमा में भी पृथ्वी थियेटर्स ने काफी काट-छाँट की है। उसके नाटक दो-ढाई घंटे से अधिक नहीं चलते, जबकि पुराने नाटकों के लिए चार-पाँच घंटे का समय भी पर्याप्त नहीं होता था। पृथ्वी थियेटर्स के नाटकों की एक दूसरी खास बात यह है कि उनमें संगीत को यथा-संभव कम स्थान दिया गया है। स्थान-स्थान पर एकाध नृत्य अवश्य हैं, पर वे भी सर्वथा प्रसंगानुकूल और उनके कारण किसी प्रकार की विकृति या सस्तापन नहीं आने पाता। पारसी रंगमंच के कुप्रभाव स्वरूप अब तक हिन्दी-नाटकों में संगीत का बाहुल्य रहता आया था। संगीत के अभाव में भी अभिनय रोचक और सुरुचिपूर्ण हो सकता है, इस तथ्य को पहलीबार पृथ्वी थियेटर्स ने ही सप्रमाण उपस्थित किया। संक्षेप में उसने हिन्दी-रंगमंच के

विकास की असीम संभावनाएँ उपस्थित कर दी हैं। उसने इस बात को दिखला दिया है कि कला केवल विभ्रमपूर्ण प्रसाधन और अस्वाभाविकताओं की अर्घता का ही पर्याय नहीं, उसका वास्तविक लक्ष्य तो जीवन की अनुकृति है। लेकिन पृथ्वी थियेटर्स की भी अपनी निजी सीमाएँ हैं। हमें भूलना न चाहिए कि वह अंततः एक व्यावसायिक संस्था है। उसके अधिकांश नाटक अभिनय की दृष्टि से अवश्य सफल हैं, पर उनमें उसी अनुपात में साहित्यिक सौंदर्य का अभाव है। फिर 'पृथ्वी थियेटर्स' की भाषा-नीति भी बहुत उत्साह-वर्द्धक नहीं कही जा सकती।

हिन्दी-रंगमंच का एक दूसरा विभाग भी है, जिसे रेडियो-रंगमंच कहा जा सकता है। रेडियो रंगमंच पर आकर नाटक पूरी तरह श्रव्य काव्य बन जाते हैं। रेडियो रंगमंच कला की चाक्षुष प्रतीति न कराकर केवल श्रवणेन्द्रिय के संपर्क से ही आनंद की उपलब्धि कराता है। इसलिए उसपर वे ही नाटक सफल हो सकते हैं, जिनमें ध्वनि की प्रधानता होती है अर्थात् नाटक का समस्त प्रतिन्यास संवादों द्वारा स्पष्ट हो हो जाता है। यहाँ आकर लेखक से पात्रों की विविध रंग रूप-रेखाएँ पृष्ठ-भूमि,की(प्राकृतिक या नागरिक आदि) और इनके माध्यम से नाटक में उतार-चढ़ाव दिखाने की सुविधाएं छिन जाती हैं। इनमें केवल कथोपकथन और ध्वनि-संकेतों के सहारे ही कथानक को गति दी जाती है। इनमें संवाद जितना ही चुस्त, नुकीला और काव्यमय होगा, उतना ही श्रोता पर वह गहरा प्रभाव छोड़ेगा। साथ ही उसके निर्वाह के लिए भी अधिक कौशल की आवश्यकता है। दृश्य पर श्रोता जो कुछ बोलता है, उसे भंगिमा, मुखाकृति और संकेतों द्वारा बहुत अधिक प्रभविष्णु बना देता है। पर रेडियो रंग-मंच पर संवाद की सारी व्यंजना केवल स्वरों के आरोह-अवरोह द्वारा ही संभव है। इसके अतिरिक्त मूर्त आधार की अनुपस्थिति में संवादों के शिथिल और बोझिल हो जाने की आशंका भी बराबर बनी रहती है। इसमें पात्रों की संख्या कम ही रहती है और उनके बीच का चारित्रिक विभेद अत्यधिक होता है, जिससे चरित्र की रेखाएँ स्पष्टता से समझी जा सकें। दृश्य जगत् में रंगमंच के अभाव के कारण रेडियो रंगमंच ने अल्पकाल में ही आशातीत प्रगति कर ली है और राजकीय प्रश्रय तो उसे सब दिन से प्राप्त है ही।

लेकिन रेडियो-रंगमंच विकास की चरम सीमा तक पहुँचकर भी उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता, जो जन-जीवन में युग की विषम परिस्थितियों के संघात से स्वतः उद्भूत हो गई हैं। रेडियो रंगमंच की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह केवल श्रवणेन्द्रिय को ही परितृप्ति प्रदान कर सकता है, उसके बाद भी चाक्षुष परितृप्ति की आवश्यकता बनी ही रह जाती है। दूसरी बात यह कि भारत ऐसे निर्धन देश में अपनी महार्घता के कारण रेडियो भी सर्वजन-सुलभ नहीं बन सकता। फिर शासन का अत्यधिक नियंत्रण भी उसके विकास में बाधक हो सकता है और हुआ भी है। अतः केवल हिन्दी-साहित्य के एक दुर्बल अंग को सबल और समृद्ध बनाने के लिए, अपितु अट्ठारह करोड़ हिन्दी-भाषी जनता को नवयुग की नवीन भावनाओं और नये विचारों से अनुप्राणित करने के लिए भी, हिन्दी के अपने रंगमंच की स्थापना अवश्य होनी चाहिए। रंगमंच के प्रमुख उपादान हैं— नाट्यकला के विशेषज्ञों द्वारा लिखे गये कलापूर्ण साहित्यिक नाटक, सामयिक उपकरणों से युक्त स्थायी रंगमंच, कुशल अभिनेता एवं अभिनेत्रियाँ और सुरुचि-सम्पन्न दर्शक। जनता की कलात्मक चेतना अभी मरी नहीं है और रूस आदि देशों में ऐसे उदाहरण भी सुलभ हैं, जहाँ चलचित्रों के प्रचार-प्रसार के समानान्तर रंगमंच ने भी आशातीत उन्नति की है। अतएव यदि बड़ी पूँजी और राजकीय दिशा-निर्देशन की प्रतीक्षा न कर देश के विभिन्न कलाकारों के सहयोग से हिन्दी-रंगमंच की म्रियमाण काया में नवीन प्राण-चेतना का संचार किया जाए तो सफलता की आशा स्वाभाविक होगी। बिना राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना के राष्ट्रभाषा की सर्वांगीण प्रगति तो असंभव है ही, हिन्दी-नाटकों को भी पक्षाघात से मुक्ति नहीं मिल सकती।

पताः—प्रो० आनन्दनारायण शर्मा, जी. डी. कालेज, बेगूसराय

नागदा (नागहृद) और वहाँ के शिलालेख

श्री मनोहरसिंह सरुपरया

युग परिवर्तनशील है; जो एक दिन समृद्ध है वह दीन हो सकता है, जहाँ पर जल है वहाँ भूमि हो सकती है। इसी परिवर्तन के कारण जहाँ समुद्र था वहाँ गगन-चुंबी हिमालय खड़ा है, विश्व को एक महान् सन्देश सुनाता हुआ अटल स्थिर। प्राचीन इतिहास के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जो नगर समृद्धिशाली थे वे अब कहाँ है, चित्तौड़ के पास प्राचीन राजधानी मध्यमिका थी लेकिन आज वहाँ पर केवल समतल मैदान है। इसी भाँति नागहृद है जो कि सदियों के परिवर्तन के पश्चात् केवल नाम-मात्र शेष है। इसको नागहृद नागदा इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में इस प्रदेश का वर्णन मिलता है, लेकिन इसका कोई समृद्ध साहित्य नहीं है। कुछ प्रमाणों के आधार पर ज्ञात होता है कि उक्त नगर एक समृद्धिशाली व्यापारिक केन्द्र था।

संस्कृत साहित्य में इसका नाम नागहृद है, हृद शब्द का अर्थ होता है जलाशय। संभव है कि यहाँ पर कोई बड़ा जलाशय रहा हो, पास में अभी भी एक जलाशय अवश्य है जिसकी पाल बड़ी सुन्दर बनी है, यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य आकर्षक है, यह स्थान चारों ओर से पर्वतीय श्रेणियों से घिरा हुआ है। जलवायु यहाँ का उष्ण है, पास ही मेवाड़ के महाराणा के आदिदेव श्रीएकलिंग का प्राचीन मंदिर है, इस विशाल मन्दिर का जीर्णोद्धार महाराणा रायमल ने कराया था। ऐसा अनुमान है कि यह मन्मिर बापा रावल (८ वीं सदी) के काल में बना था। यहाँ पर इतिहास की सामग्री सुरक्षित है, बड़ी-बड़ी शिलाओं पर काव्य खुदे हैं जिनमें एकलिंग माहात्म्य प्रमुख है, यह एक बड़ा ग्रंथ है, अनेक प्राकृतिक ग्रंथों में ग्राम का नाम द्रह है जो बाद में अपभ्रंश होकर दा हो गया जिससे इसका नाम नागदा हुआ।

यह नगर कितना प्राचीन है इस विषय में हम सप्रमाण इसकी प्राचीनता नहीं बता सकते है। लेकिन यह अवश्य है कि यह नगर विक्रम संवत् ११६२ के पूर्व का है, क्योंकि इसका वर्णन सिद्ध हेमचन्द्र व्याकरण में भी आता है जो कि सिद्धराज जयसिंह के काल में आचार्य हेमचन्द्र के द्वारा लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त तालाब के निकट एक जैन-मन्दिर के शिलालेख भी सं. ११६२ के हैं इससे यह भी ज्ञात होता है कि उक्त नगर मेवाड़ की राजधानी था। यह व्यपार, कला, संस्कृति का केन्द्र था, यहां के एक जैन मन्दिर में भगवान् शान्तिनाथ की प्रतिमा है, जिसके लेख भी महाराणा कुंभा के काल के हैं (वि. सं. १४६४) जिसमें इसका नाम देवकुलपाटक है, शोध से भी ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र का नाम देवकुलपाटक था। यहाँ के प्राचीन खँडहरों की कला आबु की मूर्तिकला के समान है। समस्त भारत में केवल कुछ स्थानों को छोड़कर ऐसी कला के दर्शन कहीं नहीं होते। प्रसिद्ध जैन मन्दिर के पास एक खंडहर है जिसे रावल खुमाण रा देवरा कहते है। यह एक आकर्षक जैन मन्दिर है। सामने नक्कारखाना भी बना है, इसे शायद रावल खुमाण ने आठवीं सदी में बनाया था। इसके पास में एक शिव-मंदिर है। इसकी विशालता से ही ज्ञात होता है कि यह स्थान

बड़ा समृद्धिशाली था। मेवाड़ के महाराणा आरंभ से ही धर्म-प्रिय रहे हैं, इसलिए यहाँ विशाल गगनचुम्बी मन्दिर मिलना कोई आश्चर्य नहीं है, जो सदियों की गर्मी-सरदी के उपरान्त भी खंडहरों के रूप में सुरक्षित हैं।

इस ऐतिहासिक नगरी से कुछ शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं जो इतिहास की बहुमूल्य सामग्री हैं। यहाँ के श्री शान्तिनाथ के मन्दिर की प्रतिमा राणा कुंभा के काल की प्रतिष्ठित है। यह एक आकर्षक प्रतिमा है, दूर-दूर से यात्री दर्शनार्थ आया करते हैं। इस प्रतिमा के लेख में 'निरुपमद्भुत' है अर्थात उक्त प्रतिमा अद्भुत है इससे इसका नाम अद्भतजी हो गया। उक्त मन्दिर से कुछ दूरी पर एक विशाल मन्दिर है जिसे सासबहू का मन्दिर कहते हैं। यहाँ पर चार जीर्ण मन्दिर हैं। यहाँ की शिल्पकला आबू के मन्दिरों के समान है। यह भारत-सरकार के पुरातत्व-विभाग के अधीन है। प्रति-वर्ष इसकी साधारण मरम्मत होती है, इस वर्ष भी भारत सरकार ने ११००० रुपयों की स्वीकृति प्रदान की है। इसकी विशालता का चिह्न यहाँ का २५ फीट ऊंचा तोरण है, जहाँ पर प्रतिष्ठा के समय तुलादान किया गया था। इस मन्दिर को किसने कब बनवाया इसका कोई प्रमाण नहीं है। केवल मन्दिर के मुख्य द्वार के बाजू में एक लेख है जिसमें संवत् १२०७ व १२२७ खुदा है। हो सकता है कि उक्त समय पर इसकी प्रतिष्ठा का महोत्सव हुआ हो।

उक्त नगर से अभी तक ५ शिलालेख प्राप्त हो चुके हैं। लेकिन इस पर कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है।

संवत् १६६२ वर्षे चैत्र बदी ४ रवौ देव श्री पार्श्वनाथ श्रीस्तल संघशाचार्य चंद्रमार्या..........॥

२–संवत १३५६ वर्षे श्रावण वदि १३ गारेसा तेजसुत संघपति पासदेव संघसमस्त रोन साहहत श्री पारसनाथ।

३–श्री संवत् १४२५ वर्षं ज्येष्ठ १४ बुधवारे ऊकेश-वंशे नवलक्षागोत्रे साधु श्री रामदेव पुत्रेण माल्हण-देविपुत्र.......कारकेण निजभार्या । जिनशासनप्रभाविकाया हेमादे श्राविकाया पुन्यार्थं श्री सप्ततिशतं जिनानां कारितं..........तत्पटे श्री जिनसागर सूरिभिः ॥

अद्भूत के मन्दिर के सभा-मंडप का शिला-लेख इस प्रकार हैः—

४–संवत् १८७६ वर्षे वैशाख सुदी ११ सोमे साहाजी श्री जेठमलजी ताराचंदजी कोठारी जात श्री..............साहाजी उदेचन्दजी...................॥

५–नागह्रदपुरे राणा श्री कुंभकर्ण राज्ये श्री आदिनाथ बिंबस्य परिकरः कारितः । प्रतिष्ठतः श्री खरतरगछ श्रीमतिवर्धन सूरिभिः उत्कीर्ण वान सुत्रधार धरणाकेन श्रीः ॥

उपर्युक्त ५ लेखों में से केवल एक लेख में संवत् नहीं है, यह राणा कुंभा के काल का हो सकता है। इनका काल सं. १४६१ से १५२० तक का है। प्रथम लेख तालाब के पास के श्रीपार्श्वनाथ के मन्दिर का है। उक्त तालाब कुंभा के पिता श्री मोकल के भाई श्री बाघसिंह ने बनवाया है। इसका नाम बाघेला तालाब है। चौथे लेख से ज्ञात होता है कि उक्त समय याने उन्नीस वीं सदी में भी यह स्थान आकर्षक था।

ऐसा कहा जाता है कि उक्त नगर में जैनियों की अच्छी बस्ती थी। पास के देलवाला ग्राम में भी ४ विशाल जैन-मन्दिर है, जिनके शिलालेख 'देवकुल पाटक' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए हैं।

पता– विद्याभवन सोसायटी, उदयपुर
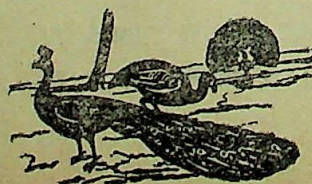
उद्बोधक लेख

कला का सत्य

श्री रतनलाल परमार

कला की परिभाषा

जिन विविध विधियों, उन्नत उपकरणों और प्रसाद-प्रसाधनों के द्वारा सत्य को अनेक सुन्दर, सुन्दरतर एवं सुन्दरतम रूपों में व्यक्त किया जाता है उनको, 'कला' की संवेदनशील संज्ञा दी गई है, किन्तु विधि-वैचित्र्य, उत्थित उपकरण किंवा प्रकट प्रसाधन कलाएँ नहीं हैं। निस्सन्देह, कलित कलाओं का उद्घोषित उद्देश्य, सत्य को सौन्दर्य, ललित को लावण्य एवं शिवं को श्रेय प्रदान करना ही है। अन्य आर्जव शब्दों में यदि, कलाओं को अभिव्यक्त किया जाये, तो वे 'पुरुष' की व्यक्त अव्यक्त प्रिय प्रकृति के नाना रूप हैं जो नग्न सत्य को विश्व-शिव का रौप्य रूप प्रदान करती हैं। ये ही कलाएँ कुशल कलाकारों के कमनीय करों में हर्षित हृदय और मानस की मेधा से समन्वित साधन-धन के रूप में निवास करती हैं जिनके द्वारा वे चिरन्तन काल से सत्, चित् और आनन्द की पुनीत पूजा करते चले आ रहे हैं।

कला का मर्म्म

कलित कलाएँ, चाहे कोई विलक्षण विधि हों, उद्दाम उपकरण हों किंवा प्रकृष्ट प्रसाधन हों किन्तु, उनका सत्य-तथ्य वह नहीं है जो प्रायः प्रकट रहता है। निस्संशय, कलाओं का वास्तविक सत्य, असाधारण नहीं—असाधारण एवं अव्यक्त है; अतएव, उनके मार्दव मर्म्म को हृदयङ्गम करने के हेतु कलाओं की अभिराम आत्मा के दिव्य दर्शन करना अपरिहार्य है। अथच, यह ज्ञात करना भी अनिवार्य है कि, कलाओं के प्रिय प्रेरणा-स्रोतों का प्राञ्जल प्रादुर्भाव किन कल्लोल कूलों और कोमल कक्षों से सम्भूत होता है!

वास्तविक दर्शन

इस विलक्षण वस्तु जगत् के अनन्त अन्तराल में एक महान् रहस्य अन्तर्निहित है जिसके कारण यह दृश्य संसार भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के अनुसार विविध रूपों में दर्शनोपलब्ध होता है। वस्तुतः हमारी दृष्टि में इस सृष्टि के दर्शन, चित्र की छायाकृति (निगेटिव्ह) के समान विपरीत ही होते हैं। सत्य रूप में उसको दृग्गोचर करने के हेतु पुनः हमको उस चित्र की प्रतिकृति (पॉजेटिव्ह) प्रस्तुत करना पड़ती है। इसी प्रकार से हमको कला का जो सत्य किंवा कला का जो सौन्दर्य अनायास ही दर्शनोपलब्ध हो जाता है, वस्तुतः वह उसका नकरात्मक (विपरीत-निगेटिव्ह) स्वरूप ही है, एतदर्थ कला के वास्तविक दर्शन के हेतु दर्शनेच्छुक को उसके मूलरूप, (पॉजेटिव्ह-वस्तु स्थिति) स्थिति एवं अन्तर की विकल वेदना को हृदङ्गम करना होगा।

दिग्मूढ़ जगत

इस जगतीतल में प्रत्येक प्राणी सुख-सन्दोह और अनन्त आनन्द के अतल अन्वेषण में व्यस्त है। प्रत्येक जीव, अतुल आनन्द के अनुसन्धान में इतना विकल-विह्वल और दिग्मूढ़ है कि, वह अपने अतिरिक्त अन्य किसी के दारुण दुःखों के हेतु किंचिन्मात्र भी चिन्तातुर होना नहीं चाहता। सीमा, यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती, प्रत्युत प्रत्येक प्रज्ञापूर्ण (दम्भरूप में) पुरुष एवं जन्तुओं के द्वारा इतर जीवों के दुर्दान्त दुखों में सुख-साधन तथा आनन्द के उत्सों के उद्घाटन के क्रूर क्रिया-कलाप भी किये जाते हैं। हा, हन्त! यह जगती कितनी निगूढ़ निष्ठुर एवं दुस्सह दानव के रूप में सिद्ध हो रही है!!

विदग्ध व्यक्तीकरण

कृष्ण कोकिला की करुण कूक, भ्रमित भ्रमर का गहन गुंजन, पीड़ित पपीहे की वितृन 'पी-पी' और चिर विरही चकोर की अतृप्त एवं असह्य दर्शनोत्सुकता को किसने संवेदना-पूर्ण दृष्टिकोण से देखने की उत्कण्ठा प्रकट की है? संसार, विदग्धता से अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के प्रयास करता है और कहता है:- कोकिला

की पंचम तान बड़ी आकर्षक एवं कर्ण-प्रिय है, गुंजित भ्रमर का मर्मर गुंजन चित्त का अतीव रंजन करता है, पिपासु पपीहे की 'पी-पी' में महान् माधुर्य है और चकित चकोर की चिर-प्रतीक्षित उत्कण्ठा में मौन, मधुर लालित्य है।

संवेदना का अभाव

कोकिला को अपने कृष्ण वर्ण का ज्ञान है। वह कूक-कूककर स्पष्ट कह रही है कि मैं "कु-हूँ" "कु-हूँ", किन्तु, संसार का कोई व्यक्ति उसकी दुख-गाथा श्रवण करने के लिए किंचिन्मात्र भी सन्नद्ध नहीं है। मधुप सतत सिसक-सिसक कर अपने अन्तर्मन की मर्मान्तक पीड़ा को गुंजन में निःसृत करने की चेष्टा कर रहा है; परन्तु जगत् उस में मोहक मधुरता का प्रतिभास करता है। चिर-तृषित पपीहे की पिपासा चिरन्तन काल से अतृप्त है, किन्तु, कौन ऐसा सहृदय प्राणी है जो उसके लिए स्वांति-सलिल का संचय करने का कष्ट उठाता है? सौन्दर्य बोध की क्षमता रखने वाले चकोर की दर्शनाभिलाषा विरह-वह्नि में परिवर्तित हो चुकी है, किन्तु किस सौन्दर्य-पुजारी ने उसके लिए निरन्तर विधु-दर्शन की व्यवस्था के प्रयास किये हैं?

सम्यक् विभाजन

इस निपट निष्ठुर और असार संसार में अभागी कुहुँ-किनी की विरह-व्यथा के लिये कोई अश्रुपात नहीं करता। चिन्तित चकोर के हेतु कोई संवेदना सम्भूत नहीं करता; क्रन्दित भ्रमर के अर्थ कोई सहानुभूति व्यक्त करना अभीष्ट नहीं समझता और असहाय चातक के लिए भी किसी के हृदयोदधि में एक भी करुणा-कण नहीं है; तो फिर कौन किसके सुख-दुख में समभागी बनता है? यदि ऐसा सहज सम्भव और स्वाभाविक होता तो इस संसार का स्वरूप ही भिन्न प्रकार का होता और निस्सन्देह वह रूप नितान्त आकर्षक एवं सहानुभूति से परिपूर्ण होता; जिसमें सुख-दुख की विषमता की विभीषिका से कोई भी प्राणी व्यथित नहीं होता; अपितु सब समान रूप से सुख-भोगी ही होते; जैसा कि कोमल-कान्त पदावली के अमर गायक, कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने अपनी निम्नांकित चार पंक्तियों में सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है:—

"जग, पीड़ित रे, अति सुख से;
जग, पीड़ित रे, अति दुख से।
दुख, सुख से बँट जाएँ;
औ' सुख बट जाए दुख से।"

अन्य प्रसंग

सुविज्ञ वैज्ञानिकों के कथनानुसार, भगवान् भास्कर अपने ही अनवरत ज्वलित अनल में स्वाहा होते चले जा रहे हैं अथवा जीवन-ऊष्मा, मरण-शान्ति में परिवर्तित होती चली जा रही हैं; किन्तु क्या कभी किसी कलम ने अपने निहित स्वार्थ सेंकने में शतांश भी संकोच किया है? शीतल शशिकर, राज-यक्ष्मा के दुर्दान्त दैत्य से अनादि काल से ग्रसित हैं; परन्तु, संसार उसकी सुखद सुषमा से निरन्तर अपने तृषित-तपित लोचनों को शान्त किया करते है। अगाध उदधि के अन्तराल में वीचियों के अदम्य आन्दोलन के कारण अखंड अशान्ति का साम्राज्य विद्यमान है; किन्तु कौन सज्जन है जो उसकी उत्ताल एवं लोल लहरों में लावण्य के दर्शन नहीं करता?

क्रान्ति-दर्शी कवि

क्रान्त दर्शी कवि, चिर-विरही होता है। वह वियोगाग्नि में सतत ज्वलनशील रहकर संसार के समस्त दारुण दुखों को नीलकण्ठ शिव की भाँति लील जाना चाहता है। इस क्रिया-कलाप में करुणा-कलित कवि, अपने अतल हृदय की सम्पूर्ण सुन्दरता और सुख-सन्दोह को जगती-तल के द्रोण में उंडेल देने के अभिराम प्रयास करता है और अपनी आतप्त आहों से नभ-मण्डल में अमृत गीतों का वातावरण निर्माण कर देता है। इसी प्रकार से जगती की दुख-दरिद्रता से द्रवित होकर कवि, अपने अमूल्य अश्रु-मुक्ताओं के द्वारा कविता-कौमुदी की रचना करता है; किन्तु, कवि की इस अनन्त करुणा की किसने पूजा-अर्चना करने के कर्त्तव्य का निर्वाह किया है? स्वर्गीय कविवर जयशंकर 'प्रसाद' ने कवि और कविता के मूल्यांकन के सम्बन्ध में अद्योतित एक ही पद में बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना की है:—

(शेष पृष्ठ २६६ पर)

खेल के मैदान से

श्री देवीसिंह

क्रिकेट

२६ फरवरी में किंगस्टन में वेस्ट इण्डीज तथा पाकिस्तान का तीसरा टेस्ट मैच आरम्भ हुआ। पाकिस्तान की टीम ने पहले खेलना आरम्भ किया तथा इम्तियाज के १२२ रन की सहायता से ३२८ रन बना सके। वेस्ट इण्डीज ने पहले दाव में ७६० रन ३ विकेट पर बनाये; हन्ट ने २६० रन बनाये और ग्रोफिल्ड सोबर ने ३६५ रन नॉट-आऊट बनाकर व्यक्तिगत स्कोर का विश्व रिकार्ड स्थापित किया; गत २० वर्ष से इंग्लैंड के सर लेन हट्टन का १६३८ में स्थापित किया हुआ ३६४ रन नॉट-आऊट का रिकार्ड था, जो आज वेस्ट इण्डीज के २१ वर्षीय युवक द्वारा तोड़ा गया; सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि सोबर की क्रिकेट टेस्ट मैच में यह प्रथम "शतक" है। इन ३६५ रन बनाने में सोबर ने केवल १० घण्टे ८ मिनिट का ही समय लगाया है; शाबास सोबर! बहुत अच्छे!! बधाई!!

सोबर और हन्ट की भागीदारी में दूसरे विकेट का रिकार्ड स्थापित हुआ। इन दो खिलाड़ियों ने मिलकर ४४६ रन बनाये; केवल ५ रन की कमी रह गई वर्ना यह भी विश्व-रिकार्ड होता।

पाकिस्तान दूसरे दाव में २८८ रन ही बना सके वजीर मोहम्मद ने १०६ रन बनाकर साहस का परिचय दिया, किन्तु फिर भी पाकिस्तान १ दाव और १७४ रन से हार गये।

रनजी ट्रॉफी राष्ट्रीय प्रतियोगिता के दूसरे सेमी-फाइनल में सेना तथा बंगाल का मैच देहली में २८ फरवरी से आरम्भ हुआ। बंगाल ने प्रथम दाव में ३६० रन बनाये। सेना की टीम ने ३७० रन दो विकेट पर बना लिये थे; चौथे दिन वर्षा के कारण खेल नहीं हो सका। सेना के आत्मासिंह तथा बालदानी दोनों ने "शतक" बनाकर सेना की टीम को विजयी बनाया। बंगाल के केप्टन रॉय ने हार को स्वीकार करते हुए मैच आगे खेलने में कोई तथ्य नहीं देखा।

१ मार्च से पोर्ट ऐलिज़ाबेथ पर ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रिका का पाचवाँ तथा अन्तिम क्रिकेट टेस्ट मैच खेला गया। दक्षिण अफ्रिका प्रथम दाव में २१४ रन बनाकर आऊट हो गई। आस्ट्रेलिया की टीम प्रथम दाव में २६१ रन बनाकर ७७ रन से जीत स्थापित करने में सफल हो गये। दक्षिण अफ्रिका दूसरे दाव में १४४ रन ही बना सकी; ऑस्ट्रेलिया को जीतने के लिए केवल ६८ रन ही चाहिए थे जो कि उन्होंने २ विकेट खोकर बना लिये; इस प्रकार ऑस्ट्रेलिया ने पाँचवाँ टेस्ट मैच जीतकर ३—० की विजय-श्री प्राप्त की; बाकी दो टेस्ट मैच बगैर किसी हार-जीत के परिणाम के समाप्त हो गये। इस टेस्ट मैच में रचि बैनोद ने टेस्ट में १०० विकेट लिये तथा वर्त्तमान प्रयास के भी १०० विकेट लेने का श्रेय भी उन्हीं को है।

१२ मार्च से बड़ौदा के मोती महल मैदान पर १६५७ के राष्ट्रीय रनजी ट्रॉफी का फाइनल मैच बड़ौदा और सेना के बीच आरम्भ हुआ। बड़ौदा ने 'टॉस' जीतकर प्रथम दाव में ४६५ रन का पहाड़ खड़ा कर दिया। दत्ताजी गायकवाड़ ने १३२ रन बनाये; ४५ वर्षीय विजय हज़ारे ने २०३ रन बनाकर, राष्ट्रीय-चुनाव-समिति के सम्मुख तथा उसके आलोचकों के मुँह सदा के लिये बन्द कर दिये। सेना की टीम प्रथम दाव में २३६ रन ही बना सकी। "फालो-ऑन" में २०५ रन पर ही आऊट हो गये। इस प्रकार बड़ौदा ने १ दाव और ५१ रन से फाइनल जीत कर आठ साल बाद राष्ट्रीय चैम्पियन शिप जीतने का श्रेय प्राप्त किया। सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि बालदानी,

अधिकारी, आत्मासिंह, गड़करी आदि खिलाड़ी सेना की टीम में होने के बाद भी अच्छे रन नहीं बना सके; केवल महेन्द्रसिंह तथा महीपतसिंह, कुछ अच्छे खेल का प्रदर्शन कर सके।

१४ मार्च से जॉर्ज टाऊन में पाकिस्तान और वेस्ट इण्डीज का चौथा क्रिकेट टेस्ट मेच आरंभ हुआ। वेस्ट इण्डीज ने प्रथम दाव में ४१० रन बनाये; सोबर ने १२५ रन तथा वालकॉट के १४५ रन बनाये इसके पहले पाकिस्तान ने 'टॉस' जीत कर खेलना आरंभ किया था और ४०८ रन बनाये थे, सईद ने अच्छे क्रिकेट का प्रदर्शन किया तथा १६० रन बनाये थे। पाकिस्तान ने दूसरे दाव में ३१८ रन बनाये। वजीर मोहम्मद ६७ रन बनाकर नॉट-आऊट रहें। वेस्टइण्डीज को जीतने के लिए ३१६ रन बनाने थे वेस्ट इण्डीज ने ३१७ रन २ विकेट पर बना लिये; ग्रेफिल्ड सोबर ने १०६ रन बनाकर अपना नाम संसार के उन इने-गिने खिलाड़ियों में जोड़ दिया जिन्हें किसी टेस्ट मेंच में दोनों दाव में "शतक" बनाने का सौभाग्य मिलता है। दूसरे दाव में हन्ट ने ११४ रन बनाकर वेस्ट इण्डीज को चौथे टेस्ट में जीतने में सहायता की। इस प्रकार पाकिस्तान चौथा टेस्ट मैच ८ विकेट से हार गये।

पाठकों को याद होगा कि चार टेस्ट मैच में से पाकिस्तान तीन में हार चुका है जब कि एक मैच बराबरी से समाप्त हुआ है।

क्रिकेट-विश्व ने महान आश्चर्य के साथ ज्ञात किया कि न्यूजीलैण्ड की इस वर्ष गर्मी में इग्लेन्ड का प्रवास करने के लिए चुनाव में दो नये खिलाड़ियों के प्रवेश की घोषणा की पहले खिलाड़ी है १८ वर्षीय जान-वार्ड तथा २६ वर्षीय ट्रेवेल मैली। जॉन-रीड इस टीम के कैप्टेन हैं; बर्ट शक्लींफ, केव, अलाबस्टर तथा जॉन हायस् पुराने खिलाड़ी हैं जिन्हें इग्लैण्ड के मौसम तथा खेल के मैदान का अनुभव है।

हॉकी

१ मार्च को बम्बई में 'आगाखाँ हॉकी कप' का फाइनल मैच बर्मा-शेल २-१ गोल से जीता और इस जीत में दर्शकों ने, विजेता टीम को "भाग्य के धनी" माना। जीत का गोल अतिरिक्त समय में सेक्स बॉय द्वारा किया गया और इसके बाद वायुसेना की टीम गोल करने के दो प्रयत्न में असफल हुई संपूर्ण खेल में गेंद सदा ही वायुसेना के खिलाड़ियों के पास रहती थी, परन्तु वे गोल करने में सदा ही कुछ न कुछ बाधा का अनुभव करते रहे। इस प्रकार वर्मा शेल की 'टीम आगाखाँ कप' प्रथम बार जीत सकी।

(२६४ पृष्ठ का शेष)

" वियोगी होगा, पहिला कवि;
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।"

जगती कवि-द्वारा प्रस्फुटित कविता में अन्तर्हित पीड़ा को तो विस्मृत कर देती है, परन्तु वह उसके केवल सौन्दर्य के दर्शन तथा आनन्द में अवगाहन-लाभ से वंचित होना नहीं चाहती। इसी प्रकार से जगत् के प्रायः सभो प्राणी कवि-कृतियों तथा सृष्टि की अन्य कलाओं में उनके आत्मा एवं वास्तविक सत्य-तथ्यों के दर्शन की चेष्टा नहीं करते, अपितु वे केवल वाह्य चिह्नों को देख कर रह जाते हैं तथा कला के सत्य को निष्ठुरतापूर्वक ओझल कर देते हैं!

पता:—शास्तावाद की गली, उज्जैन

स्व० आचार्य पं० चन्द्रबली पांडेय

श्री गोविन्दप्रसाद केजरीवाल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

★

हिंदी को जिन साधकों और मनीषियों की साधना ने गौरवान्वित किया है उनमें आचार्य पं. चन्द्रवलीजी पांडेय का नाम सदा ही अग्रणी रहेगा। ऐसे कम ही लोग मिलेंगे बल्कि मैं तो कहूँगा कि पांडेयजी ही अकेले थे। जिन्होंने हिन्दी-भाषा और साहित्य को अपने प्राणों का अमृत पिलाया। हिन्दी का यह तपःपूत गत तीन वर्षों तक शय्यागत होकर केवल हड्डियों का ढाँचा-मात्र रह गया था। यह साधक हड्डियों की एक गठरी के रूप में दधीचि को भी चुनौती दे रहा था। दधीचि में अपनी हड्डियों को गलाने की क्षमता नहीं थी, लेकिन पांडेयजी ने अपनी हड्डियों को भी गलाकर हिन्दी के तपोवन में एक नवीन साधना का मार्ग प्रकाशित किया। जिस व्यक्ति ने हिन्दी की साधना के लिए कभी नौकरी नहीं की; अपनी गृहस्थी न बसाकर जिसने केवल हिन्दी को बसाने का ही नैष्ठिक व्रत लिया, उसकी किन शब्दों में अभ्यर्थना की जाय।

पांडेयजी के चरित्र की विशेषता यह रही है कि इन्होंने कभी अपनी आलोचना या विचार में वायवीपन नहीं आने दिया है। इसके कारण बहुत से इनके मित्र और परिचित इनसे रूठ भी गये हैं। फिर पांडेयजी के हृदय में कभी भी किसी भी व्यक्ति के लिये कभी किसी ने, व्यक्तिगत रागद्वेष का लेशमात्र भी चिह्न नहीं देखा। अपितु जिन साहित्यिक महारथियों की इन्होंने कटु आलोचना की है, उनकी विशेषताओं को भी इन्होंने समझा, परखा और आदृत किया था। स्वाभिमान शब्द पांडेयजी को देखकर अपनी धुरी से हट नहीं पा रहा था। पांडेयजी जब रामकृष्ण अस्पताल, वाराणसी में गठिया के रोग से पीड़ित पड़े थे, तब उत्तर-प्रदेशीय सरकार ने इन्हें सहायता भेजी थी। पांडेयजी ने प्रशासन को यह लिखा था कि अभी तक मेरे पास रुपये हैं, जब नहीं रहेंगे तब मैं स्वयं सूचित करूँगा। आज कितने लोग ऐसे मिलेंगे जो घर-आई लक्ष्मी को विदाई इतनी दृढ़ता के साथ कर सकने की क्षमता रखते हैं? जब उनकी बीमारी अत्यधिक बढ़ गई और उनके साधन एकदम समाप्त हो गये तब भी उन्होंने कभी याचना की कामना नहीं की। उत्तर-प्रदेश के उदार शिक्षा मंत्री पं० कमलापतिजी त्रिपाठी ने स्वयं उनके निवास-स्थान पर उपस्थित होकर जब उनसे आग्रह किया तब उन्होंने थोड़ी सहायता स्वीकार की। मैं स्वयं जानता हूँ कि उस सहायता को स्वीकार करके पांडेयजी की ग्लानि किस सीमा तक बढ़ गई थी। उनके रुख को देखते हुये सभी लोगों को आशंका थी कि वे इसे अस्वीकृत न कर दें।

पांडेयजी के कृतृत्व और जीवन के संबंध में कुछ कहना पुनरुक्ति ही होगी, फिर भी प्रसंगवश चर्चा कर देना उचित ही होगा।

आजमगढ़ के सोठियांव ग्राम में इनका जन्म सन् १६०४ में हुआ था। अत्यन्त साधारण ब्राह्मण परिवार के सदस्य होने के कारण इन्हें पढ़ने-लिखने में उन सभी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिन्हें सभी साधक भोगते हैं। सन् १६३१ में काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा हिंदी विषय लेकर उत्तीर्ण की। आप संस्कृत हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, अरबी फारसी के उद्भट ज्ञाता थे। स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आप निकट के सहयोगी रहे हैं। शुक्लजी

इन्हें स्नेह-वश शाह साहब नासिरुद्दीनपुरी कहा करते थे।

पांडेयजी का साहित्यिक जीवन हिंदी-भाषा के संघर्ष से प्रारंभ हुआ। उन दिनों उर्दू के लेखक अपने अजीब प्रत्युत कटु तर्कों से हिंदी पर कीचड़ उछाल रहे थे। पांडेयजी ने अपने विशिष्ट अध्ययन तथा निष्ठा के बल पर उन कटूक्तियों का उत्तर अपने 'बिहार में हिन्दुस्तानी', 'भाषा का प्रश्न', 'मुगल बादशाहों की हिन्दी', 'कचहरी की भाषा और लिपि', 'मुल्क की जवान', और 'फाजिल मुसलमान(उर्दू)', 'उर्दू का रहस्य', 'शासन में नागरी', 'नेशनल लैंग्वेज आव इंडिया', 'नेशनल स्क्रीप्ट आव इंडिया', 'हिन्दुस्तान का भँवरलाल', 'हिन्दी गद्य का निर्माण', ग्रंथों के द्वारा किया। स्मरण रहे कि पांडेयजी ने उपर्युक्त ग्रंथों को रायल्टी की आशा से नहीं लिखा था। अवसर आने पर आपने तत्काल नागरी प्रचारिणी सभा के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री कृष्णदेवप्रसादजी गौड़ को बिना रॉयल्टी लिये उन ग्रंथों के वितरण की आज्ञा सहर्ष प्रदान करदी थी, उनका मूल्य केवल प्रचारात्मक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं था, अपितु वे मौलिक शोध के अनुपम रत्न थे। सन् १९४८ में मैं एक बार हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक श्री शिवनाथजी के साथ विश्वविख्यात भाषा-शास्त्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या से मिला था। पांडेयजी की विद्वत्ता की चर्चा करते हुए चाटुर्ज्या महोदय ने कहा था कि पांडेयजी का एक-एक पेम्फलेट भी डाक्टरेट की डिग्री के लिए पर्याप्त हैं। पांडेयजी की विद्वता का इससे बड़ा मूल्यांकन और क्या हो सकता है ?

हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में भी पांडेयजी ने समान रूप से योगदान दिया इनकी प्रसिद्ध 'तसव्वुफ और सूफीमत' पर उत्तर प्रदेशीय सरकार ने १५००) का पुरस्कार प्रदान किया था। आचार्य शुक्लजी को जायसी से सम्बन्धित सामग्री में पांडेयजी की कितनी योग है यह सभी विद्वान अच्छी तरह जानते है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'केशवदास' पर हिन्दी का सबसे बड़ा पुरस्कार देवपुरस्कार इन्हें मिल चुका था। 'शूद्रक' नामक पुस्तक को भी उत्तर-प्रदेशीय प्रशासन का पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। शूद्रक से सम्बधित शोध की प्रशंसा अहमदाबाद की ओरियन्टल कान्फरेंस में हो चुकी है। 'कालिदास' भी इनका महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह भी प्रशासन द्वारा पुरस्कृत हो चुका है। किन्तु किन्हीं कारणों से पांडेयजी ने पुरस्कार स्वीकार नहीं किया। इन पुस्तक के अलावा तुलसीदास, हिन्दी कवि चर्चा, अनुराग बांसुरी, एकता, राष्ट्रभाषा पर विचार, विचार विमर्ष, साहित्य संदीपनी आदि भी विशेष महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा पांडेयजी की अंग्रेजी और हिन्दी की बहुत सी पुस्तिकाएँ भी है जिनका महत्व भाषा की दृष्टि से है।

सादगी पांडेयजी की चिर-सहचरी रही है। भोजन अत्यन्त सादा प्रत्युत कच्चा अन्न, फल, दूध आदि ही था। दो कंबलों को ही बिछाकर और ओढकर इन्होंने जीवन के ३५ वर्ष व्यतीत किये थे।

पांडेयजी का व्यक्तित्व हमेशा से विवादास्पद था। जब सन् १९४९ में हैदराबाद के अ. भा. हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के ये सभापति बने तब बहुत से लोगों ने इस समाचार को साश्चर्य सुना। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की दलदल में पांडेयजी कमलवत रहे। ये हमेशा से ही स्वतन्त्र विचारक रहे हैं, अतः निर्दल होने के कारण हमेशा से ही 'एकला चलो रे' के एकांत गायक रहे है। इससे पूर्व हरिद्वार तथा बंबई के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में ये राष्ट्रभाषा परिषद् तथा साहित्य परिषद् का सभापतित्व भी कर चुके थे। सम्मेलन में सभापति के रूप में ये अपना एक शिष्ट मंडल दक्षिण भारत लेकर गये थे। इस शिष्ट मंडल में स्व. पं. रामनारायणजी मिश्र, बाबा राघवदास, पं. सीताराम चतुर्वेदी, सुश्री कंचनलता सब्बरवाल आदि थे।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से भी आपका निकट संपर्क था। सभा से प्रकाशित होने वाले 'हिंदी' मासिक पत्र का संपादन भी आप ही करते थे। वर्षों तक आप सभा की प्रबंध समिति के सदस्य थे।

अरबी-फारसी के प्रसिद्ध विद्वान स्व० मौलवी महेश प्रसादजी आपके बड़े मित्र थे। मौलवी साहब की मृत्यु के पूर्व तक आप उन्हीं के साथ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रुइया छात्रावास में रहते थे।

स्व० पं० रामनारायणजी मिश्र, राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन, राहुल सांकृत्यायन, स्व० बाबू श्यामसुन्दर दास, स्व० पं. रविशंकर शुक्ल आदि से आपका निकट का संपर्क रहा था। पांडेयजी की उदारता और महा-मानवता अनुकरणीय थी। पांडेयजी का जीवन सदा ही अर्थाभाव से ग्रस्त था। फिर भी इन्होंने मित्रों और परिचितों की सहायता अपने साधनों से ही नहीं, अपितु कर्ज लेकर भी की है।

इतना उदार व्यक्ति संस्था के हित के लिए कितना सतर्क रहता है इसका एक उदाहरण देना भी उपयुक्त रहेगा। नागरीप्रचारिणी सभा से इनकी पुस्तक 'राष्ट्रभाषा पर विचार' छप रही थी। पुस्तक इन्होंने अत्यन्त रुग्णावस्था में संशोधित की थी। इसका प्रत्येक फर्मा इनके अवलोकनार्थ मुद्रित होने पर भेज दिया जाता था। एक बार एक फर्मा फटा हुआ इनके पास पहुँच गया। पांडेयजी ने मुझसे इसकी मरम्मत कराने को कहा। मैंने उसके स्थान पर उन्हें एक नया फर्मा भेज दिया। पांडेयजी ने उस नये फर्मा को लौटाते हुये अत्यन्त रुष्टता के साथ मुझे एक पत्र लिखा और अपने उसी फटे फर्मे की माँग की। उस फटे फर्मे की खोज करने में नागरी मुद्रण के व्यवस्थापक श्री महताबरायजी को बड़ा परिश्रम करना पड़ा। अन्ततोगत्वा उसे खोजकर और उसे सटवा कर उन्हें भेजना पड़ा। संस्था का हित कितनी सूक्ष्म दृष्टि से पांडेयजी देखते थे यह उनके उपयुक्त उदाहरण में ही निहित है।

पांडेयजी का जीवन जिन दो देवियों की सेवा का फल था, उन्हें भी स्मरण करना उचित ही होगा। वे सुश्री ज्ञानवतीजी त्रिवेदी और सुश्री पद्मा मिश्र। ये देवियाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापिकाएं हैं। पांडेयजी की चिकित्सा इन्हीं के निवास-स्थान पर हो रही थी।

इस वर्ष काशी में कामायनी सम्मेलन के अवसर पर पं० पद्मनारायणजी आचार्य ने इन्हें एक अभिनंदन-पत्र देने का आयोजन किया था। पं० नन्ददुलारेजी वाजपेयी, डॉ० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, प्रो० विजयशंकर मल्ल, डॉ० रामलालसिंह आदि ने इनके निवास-स्थान पर उपस्थित होकर इन्हें अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया।

पांडेयजी "राधा" के सम्बन्ध में एक विस्तृत पुस्तक प्रस्तुत करना चाहते थे। अपनी विकट बीमारी के बावजूद भी उन्हें इसकी चिन्ता थी। गत २२ जनवरी को उत्तरप्रदेश के मुख्य मंत्री डॉ० संपूर्णानंदजी ने प्रशासन के सूचना-संचालक श्री भगवतीशरणसिंह के हाथ कुछ आर्थिक सहायता भी भेजी थी। २३ जनवरी को पांडेयजी की बीमारी इतनी अधिक बढ़ गई थी कि इनके जीवन की कोई आशा शेष नहीं रह गई। उस दिन रात्रि तक पद्मभूषण डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नागरीप्रचारिणी सभा के प्रधान मन्त्री डॉ० राजबली पांडेय तथा बहुत से हिंदी-प्रेमियों की भीड़ पांडेयजी के निवास-स्थान पर एकत्र रही।

२४ जनवरी, ५८ को प्रातःकाल पांडेयजी का देहावसान हो गया। ठीक सरस्वती पंचमी के दिन सरस्वती के इस महान् साधक का शरीर पंचतत्व में विलीन हुआ। इस समाचार को सारे हिन्दी जगत् ने बड़े ही दुःख के साथ सुना। राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने जब इस समाचार को सुना तब वे रो पड़े और उन्होंने कहा कि पांडेयजी के स्थान की पूर्ति अब सम्भव नहीं है।

पांडेयजी आज हमारे बीच नहीं रहे। लेकिन उनका त्याग, तपस्या और नैष्ठिक जीवन हमें सदा ही उनकी याद दिलाता रहेगा।

विकासोन्मुख मध्य-प्रदेश

श्री मिश्रीलाल गंगवाल, वित्त मंत्री मध्य-प्रदेश

राज्यपुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के आधार पर गठित वर्तमान मध्य-प्रदेश आर्थिक दृष्टि से एक आत्म-निर्भर व समृद्ध-शाली क्षेत्र है। यद्यपि इस समग्र क्षेत्र का मुख्योद्योग कृषि ही है, फिर भी इस क्षेत्र में उपलब्ध औद्योगिक संसाधनों व कच्चे माल का समुचित उपयोग करने के लिए शासन-द्वारा योजनाएँ बनायी जाने लगी हैं जिनके फलस्वरूप किसी युग में "पिछड़ा हुआ कहलाने" वाला, भारत के हृदय भाग में स्थित यह क्षेत्र अब आर्थिक व सामाजिक उत्पादन की दृष्टि से नया कलेवर ग्रहण कर रहा है।

कृषि उत्पादन

प्रथम-पंचवर्षीय योजनान्तर्गत क्रियान्वित विविध विकास योजनाओं के कारण इस समग्र क्षेत्र के कृषि-उत्पादन में वृद्धि हो सकी है। निम्न तालिका द्वारा राज्य में उत्पादित विविध खाद्यान्नों के उत्पादन समंक दिये गये हैं जिससे ज्ञात हो सकेगा कि पिछले वर्षों इस दिशा में किस गति से प्रगति हुई है।

खाद्यान्न उत्पादन

(वर्ष १९५०, ५१ से १९५६-५७ लाख टनों में)

वर्ष	चावल	गेहूं	ज्वार	मक्का	जौ	बाजरा
१	२	३	४	५	६	७
१९५०-५१	१३.५	१०.४	५.१	१.१	१.०	०.५
१९५१-५२	२३.०	७.०	५.२	१.३	०.९	०.५
१९५२-५३	२५.०	९.५	८.९	१.६	०.९	०.८
१९५३-५४	२५.८	१०.८	११.४	२.०	०.८	०.९
१९५४-५५	२४.६	१३.९	१०.३	१.९	१.१	०.९
१९५५.५६	२८.६	१५.४	७.६	१.६	१.२	०.८
१९५६-५७	३१.४	१६	११.२	१.८	१.४	०.८

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि राज्य में उत्पादित विविध खाद्यान्नों के उत्पादन में वर्ष १९५०–५१ तथा १९५६–५७ के मध्य प्रगति हुई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रथम चरण वर्ष १९५०–५१ में वर्तमान मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आने वाले विविध अटक क्षेत्रों में चावल, गेहूँ, ज्वार, मक्का, जौ व बाजरा का उत्पादन क्रमशः १३.५ लाख टन, १०.४ लाख टन, ५.१ लाख टन, १.१ लाख टन, १ लाख टन व ५० हजार टन हुआ था। यही उत्पादन प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में क्रमशः बढ़ता गया तथा वर्ष १९५६–५७ के अन्तिम अनुमानों के अनुसार क्रमशः ३१.४ लाख टन, .१६ लाख टन, ११.२ लाख टन, १.८ लाख टन, १.४ लाख टन व ०.८ लाख टन हो गया। प्रतिशतता की दृष्टि से इस अवधि में चावल, गेहूँ, ज्वार, मक्का, जौ तथा बाजरा के उत्पादन में क्रमशः १३२.८, ५३.८, ११९.६, ६७, २, ३३.१ तथा ६७.१ प्रतिशत वृद्धि हुई है। केवल खाद्यान्न उत्पादन ही नहीं बाणिज्य उपजों के उत्पादन में भी समुचित वृद्धि हुई है।

वर्ष १९५० ५१ में मूंगफली व तिल का उत्पादन क्रमशः १.१ लाख टन व ८० हजार टन था, यही उत्पादन वर्ष १९५६–५७ के अन्तिम अनुमानों के अनुसार क्रमशः १.६ लाख टन व ९० हजार टन हो गया। प्रतिशतता की दृष्टि से इन उपजों में क्रमशः ५१.१ प्रतिशत व १३.९ प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसी अवधि में कपास के उत्पादन में लगभग १९ प्रतिशत वृद्धि हुई है। वर्ष १९५०–५१ में राज्य में लगभग ३ लाख गांठ, कपास उत्पादित किया गया था। यही उत्पादन क्रमशः बढ़ते हुए वर्ष १९५६.५७ के अन्तिम अनुमानों के अनुसार ४.५ लाख गाँठें हो गया।

खनिज-उत्पादन

मध्यप्रदेश खनिज-सम्पति की दृष्टि से भी समृद्ध है। यहाँ के खनिज-संसाधनों के समुचित दोहन की दृष्टि से ही भारत-सरकार द्वारा भिलाई में विशाल लौह इस्पात के कारखाने की स्थापना की जा रही है ताकि इस क्षेत्र के खनिज संसाधनों का समुचित उपयोग देश की औद्योगिक प्रगति को प्रशस्त करने में किया जा सके। प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल में राज्य में उपलब्ध कोयला, लोहा तथा चूना पत्थर आदि खनिजों की खदानों को दोहित करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे राज्य के खनिज उत्पादन में समुचित वृद्धि हो सकी है। निम्न सारणी द्वारा राज्य के बढ़ते हुए खनिज उत्पादन का ज्ञान हो सकेगा।

(लाख टनों में)

वर्ष	कोयला	चूना	मेंगनीज
१९५१	३५.३	७.१	३ ८
१९५२	३६.३	७.५	४.३
१९५३	४१.५	८.८	५.८
१९५४	४३.२	११.०	४.३
१९५५	३३.७	९.४	३.४
१९५६	४८.४	१०.३	४.४

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि राज्य में गत पाँच वर्षों में खनिज उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष १९५१ में कोयला, चूना व मेंगनीज उत्पादन क्रमशः ३५.९ लाख टन, ७.१ लाख टन तथा ३.८ लाख टन हुआ था। यही उत्पादन वर्ष १९५६ में क्रमशः ४८.४ लाख टन, १०.३ लाख टन व ४ ४ लाख टन हो गया। खनिज उत्पादन में यह वृद्धि कुछ मात्रा में नवीन खदानों के दोहित किये जाने व कुछ मात्रा में पुरानी खदानों से अधिक खनिज खोदने के कारण हुई है। द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में कोरवा कोयला खदानों, नर्मदाघाटी की कोयला खदानों व राज्य की लोहा व मेंगनीज खदानों का दोहन करने का प्रयत्न किया जावेगा ताकि इन खनिजों की उत्पादन वृद्धि के माध्यम से राज्य की औद्योगिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सके।

औद्योगिक प्रगति

स्वतन्त्रता के पूर्व तक राज्यान्तर्गत आने वाला समग्र क्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ क्षेत्र माना जाता था किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात देशी राज्यों के विघटन व सब स्थानों पर लोकप्रिय शासन-प्रणाली के व्यवहृत होने पर इस क्षेत्र की औद्योगिक प्रगति की ओर विशिष्ट ध्यान दिया जा सका। आज राज्य में शक्कर उद्योग, सीमेंट उद्योग, सूती वस्त्रोद्योग रेयन उद्योग, जूट उद्योग, काँच उद्योग, पाटरी उद्योग, बिस्कुट उद्योग, अखबारी कागज उद्योग व अन्य अयांत्रिकी तथा यान्त्रिकी उद्योग प्रगति कर रहे हैं जिनके फलस्वरूप राज्य में उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति के साथ ही देश के आर्थिक पुनर्निर्माण में आवश्यक कतिपय औद्योगिक उत्पादनों की भी पूर्ति हो सकी। राज्य का नेपानगर स्थित अखबारी कागज का कारखाना, कैमोर कटनी व बामोर मुरैना जिला स्थित सीमेंट कारखाने, ग्वालियर स्थित रेयन उद्योग व इन्दौर, बुरहानपुर व उज्जैन स्थित सूती वस्त्रोद्योग देश की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं। नेपानगर का अखबारी कागज का कारखाना, बैमोर स्थित सीमेन्ट का कारखाना व ग्वालियर स्थित बिस्कुट का कारखाना देश में अपने ढंग के कारखाने हैं। निम्न सारणी द्वारा राज्य के शक्कर उद्योग के विकास की गति स्पष्ट हो सकेगी।

शक्कर उद्योग

उत्पादन हजार टनों में

वर्ष	उत्पादन
१९५०-५१	१३.०
१९५१-५२	२२ ६
१९५२-५३	७.५
१९५३ ५४	१५.६
१९५४-५५	१४.६
१९५५-५६	३६.३
१९५६-५७	४९.०

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि राज्य के शक्कर उद्योग में वर्ष १९५१ के उत्पादन की तुलना में लगभग

२७७ प्रतिशत वृद्धि हुई है। निम्न सारणी में राज्य के सीमेंट उद्योग की प्रगति सूचकांकों के माध्यम से स्पष्ट की गई है।

सीमेंट उद्योग

(सूचकांक आधार वर्ष १६५०, १००)

	उत्पादन (लाख टनों में)	सूचकांक
१६५०	३'६८	१००'००
१६५१	३'६६	१००'२५
१६५२	३'६४	६८'६६
१६५३	४'११	१०३'२७
१६५४	४४३	१११'३१
१६५५	४'३४	१०६'०५
१६५६	४'६६	१००'२५

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि राज्य में वर्ष १६५० में ३ ६८ लाख टन सीमेंट उत्पादित किया गया था। यही उत्पादन-वर्ष १६५२ तथा १६५३ में क्रमशः ४'११ लाख टन व ४'४३ लाख टन तक बढ़ गया। १६५६ में यही उत्पादन ३'६६ लाख टन था।

चतुर्मुखी प्रगति की भावी संभावनाएँ

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के रूप में मध्य-प्रदेश आर्थिक व सामाजिक विकास की प्रगतिशील मंजिलों की ओर अपने कदम तेजी से बढ़ा रहा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सफलता पर न केवल कृषि-क्षेत्र में ही बल्कि औद्योगिक क्षेत्र में भी मध्य-प्रदेश देश का प्रमुख क्षेत्र बन सकेगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में राज्य में कृषि, सामुदायिक विकास सिंचाई व विद्युत खनिज व उद्योग तथा यातायात पर क्रमशः ३५'८६ करोड़ १४'६१ करोड़, ६४'६२ करोड़, १०'४१ करोड़ तथा १२'६६ करोड़ रुपयों के व्यय का प्रावधान रखा गया है। जिसमें से इन मदों पर वर्ष १६५६-५७ की अवधि में क्रमशः २'६६ करोड़, २'६० करोड़, ६'८२ करोड़, ३० लाख तथा १'६८ करोड़ रुपये व्यय किये गये हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजनान्तर्गत आयोजित छोटी व सिंचाई योजनाओं की सफलता के राज्य के कृषि-क्षेत्र में विस्तार हो सकेगा। साथ ही चम्बल योजना की सम्पूर्ति पर उद्योग-धन्धों व ग्राम्य विद्युतीकरण हेतु पर्याप्त मात्रा में विद्युत शक्ति उपलब्ध हो सकेगी। औद्योगिक क्षेत्र में भिलाई स्थित लौह इस्पात कारखाने की सम्पूर्ण होने तथा भोपाल स्थित भारी विद्युतीकरण सामग्री के कारखाने का निर्माण होने पर लोह इस्पात व भारी विद्युतीय सामग्री सम्बन्धी राष्ट्र की एक विशिष्ट आवश्यकता पूर्ण हो सकेगी। इन कारखानों के संस्थापन्न का प्रभाव न केवल राज्य के उद्योगिक कलेवर में नवीन जाग्रति लावेगा, बल्कि इस से समग्र देश का औद्योगिक ढाँचा प्रभावित होगा। नेपानगर-स्थित अखबारी कागज के कारखाने, कैमौर स्थित सीमेन्ट के कारखाने, राज्य के सूती वस्त्रों के कारखानों शकर के कारखानों व अभियान्त्रिक की उद्योगों को भी द्वितीय पंचवर्षीय योजनान्तर्गत विकसित किया जावेगा ताकि राज्य की चतुर्मुखी आर्थिक प्रगति का पथ प्रशस्त हो सके।

द्वितीय पंचवर्षीय योजनान्तर्गत राज्य के लघु उद्योगों व कुटीर-उद्योगों के विकास का भी पूर्ण प्रावधान किया गया है। इन उद्योगों का विकास राज्य में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या का हल करने व जनता के लिए दैनिक उपभोग की अधिक वस्तुओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकेगा। राज्य की द्वितीय पंचवर्षीय योजना राज्य के लोक-जीवन में विकासशील नये मूल्यों का सृजन कर सकेगी व भारत के हृदय-भाग में स्थित लगभग १७१ हजार वर्गमील के विशाल क्षेत्रफल के विस्तृत इस विशाल राज्य को देश के आर्थिक अभ्युत्थान में सहायक सिद्ध कर सकेगी।

सम्पादकीय

मध्यप्रदेश में शोध-कार्य का अभाव

नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी ने शक्ति लाभ करते ही जितने महत्त्वपूर्ण कार्य किये, उनमें हस्तलिखित प्रतियों की शोध का कार्य बड़े ही महत्व का रहा है। न जाने कितने कवियों की कीर्त्ति-कौमुदी अंधकारावेष्टित होने से बच गई है, न जाने कितने ग्रंथ-रत्न प्रकाश में आये हैं, जिनके कारण साहित्य की गतिविधियों तथा प्रवृत्तियों पर अनेक-रूपेण प्रकाश पड़ा है, कितनी ही पुस्तकें दीमकों और चूहों की उदर-दरी में जाने से बच गई हैं, कितनी पंसारी के उपयोग में आने से संरक्षित हुई हैं। प्रशंसित सभा स्थान-विशेष से सम्बन्धित रहकर भी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड, राजस्थान तक अपने सबल साधनों का उपयोग करती रही है। समय-समय पर प्रकाशित खोज की रिपोर्ट उसके कार्य का ज्वलंत प्रमाण हैं, कोई शोध कार्यकर्ता उन रिपोर्टों से बचकर नहीं निकल सकता, उसे उनके पन्ने लौटकर कार्य करने में प्रवृत्त होना ही होगा। "मिश्र-बन्धु-विनोद" जैसा हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पश्चात् पं. रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वानों के इतिहास इन्हीं खोजों के ऋणी हैं, अन्यथा अद्यावधि हम जहाँ के तहाँ रहे होते। इस दिशा में जो भी न्यूनता है उसका कारण शोध-कार्य के विस्तार की कमी है।

इस कमी पर हमारा ध्यान जब जाता है तब आज के मध्यप्रदेश की ओर स्वभावतः दृष्टि जाती है। लगता है जैसे कि मध्यप्रदेश इस दिशा में अभी तक जहाँ का तहाँ है। हमें विदित हुआ है कि बयोवृद्ध साहित्य-सेवी पं० लोकनाथ सिलाकारी मध्यप्रदेश के हिन्दी-साहित्य का इतिहास निर्माण करने में संलग्न हैं, सम्भवतः उनके पास महाकौशल की सामग्री है या उसकी जानकारी उनके पास है, पर महाकौशल की सामग्री-भर से मध्यप्रदेश के हिन्दी-साहित्य का इतिहास तो लिखा नहीं जा सकता। यह बात नहीं कि वे इस दिशा में प्रयत्नशील न हों। श्री शिवकुमार श्रीवास्तव के माध्यम से उन्होंने प्रो० चन्द्र ('वीणा'-सम्पादकों में से एक) को इस आशय के पत्र भी लिखे हैं। एक और भी प्रयत्न इस दिशा में कस-मसाता प्रतीत होता है। हमारे नव-युवक और उत्साही लेखक और साहित्य-सेवी श्री जवाहरलालजी (जागरण सम्पादक) भी इस दिशा में प्रयत्नशील प्रतीत होते हैं। इस प्रकार दो दिशाओं से दो प्रयत्न आरम्भ हुए हैं। हम हृदय से दोनों के प्रति शुभ कामनाएँ प्रकट करते हैं। पर केवल शुभ कामनाओं के पंख लगाकर यदि प्रयासी सफलकाम हो जाया करते तो फिर क्या कहना था; अतएव शुभकामना से पूर्व उचित दिशा निर्देश कर्तव्य जानकर आज हमें कुछ वक्तव्य है।

दोनों ही प्रयासियों को हतोत्साह न करते हुए हम एक बात स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि साहित्य का इतिहास लिखे जाने से पूर्व मध्यप्रदेश के साहित्य की खोज होना अत्यन्त आवश्यक है। हम मानते हैं कि नागरी प्रचारिणी सभा काशी का प्रयत्न कुछ इस दिशा में सहायक सिद्ध होगा, पर जितनी विस्तृत और गम्भीर खोज की अपेक्षा थी वह इस प्रदेश की हुई नहीं है। हम यह भी मानते हैं कि ओरछा में इस दिशा में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयत्न से कई वर्षों पर्यन्त कार्य हुआ था, पर उस सम्पूर्ण सामग्री का कोई उपयोग नहीं उठाया जा सका। उस कार्य में ओरछा के महाराज का हाथ ही नहीं था, सम्पूर्ण व्यय-भार भी उन्हीं ने उठाया था। इस कारण यदि वह सामग्री किसी व्यक्ति अथवा संस्था के अधीन सुरक्षित हो तो मध्यप्रदेशीय सरकार उसको अपने अधीन लेकर या किसी क्रियाशील संस्था को देकर उससे लाभ उठा सकती है। रीवाँ हिन्दी-साहित्य का कई दशाब्दियों तक केन्द्र रहा है, जहाँ के राजाओं तक ने साहित्य-रचना में योगदान किया था। सम्भवतः वहाँ भी कुछ कार्य सामग्री-संकलन की दिशा में हुआ है। भोपाल उर्दू का केन्द्र निस्संदेह रहा है। पर हिन्दी की दृष्टि

से उसका नाम नगण्य ही समझा जाएगा। ग्वालियर अद्यावधि साहित्य का आधार है। ना० प्र० सभा काशी द्वारा कुछ कार्य उधर हुआ था। फिर भी अभी वहाँ बहुत कुछ कर्त्तव्य है। स्व० पं० मा० रा० भालेराव के पास भरपूर सामग्री एकत्र थी, पता नहीं उसका क्या हुआ। वे अपने जीवन-काल में उसे विश्व-विद्यालय काशी को देना चाहते थे। मालव-प्रदेश तो इस दृष्टि से अछूता है। न तो कोई शोधकार्य प्रादेशिक रूप से यहाँ हुआ है, न ना० प्र० सभा काशी का ही हाथ यहाँ तक पहुँच पाया है। परिणाम-स्वरूप ऐसा विदित होता है कि कालिदास और भोज की इस पवित्र भूमि में ७-८ शताब्दियों से कुछ हुआ ही नहीं—मालव-भूमि बंध्या हुई पड़ी है! विश्वास करते नहीं बनता, पर इसी कारण सम्भवतः 'हरसिद्धि' की कथा पण्डितों में प्रचलित हो गई है—कालिदास के उठ जाने पर सिद्धि का हरण कर लिया गया और उज्जयिनी, धार जैसी नगरियों की भूमि, यह मालव धरणी, ऊसर हुई पड़ी रही। सोना तो उगलती रही—'पगपग रोटी डगडग नीर' तो यहाँ की विशेषता हो गई, पर सरस्वती सो गई। क्या यह सत्य है? जब तक हम खोज-द्वारा यह अप्रमाणित न करदें तब तक अन्यथा विश्वास हो भी कैसे? सुख-सुविधा का सृजन से वैर है, सम्भव है यही कारण हो; सम्भव है दिल्ली और गुजरात के आक्रान्ताओं ने हमें सभी प्रकार निचोड़ कर छूँछा कर दिया हो, सौंदर्य-साहित्य एवं शौर्य की, लीला-भूमि यह मालवा निर्जीव और निष्प्राण करके छोड़ दी गयी हो।

और किसी ने इसके अतिरिक्त अन्य कुछ प्रमाणित करके भी तो नहीं बताया। हिन्दी-साहित्य-समिति, इंदौर जैसी अर्द्ध-शताब्दि वय-प्राप्त संस्था इस दिशा में मूक-मौन बनी रही। मालव-संसदादि जाने कितनी संस्थाएँ जन्म लेकर रह गईं, व्यक्तिगत प्रेरणाएँ लोक साहित्य तक सीमित होकर रह गईं, पर ठोस साहित्यिक आधार पर किसी के पैर नहीं टिके। यह कितने दुःख और परिताप का विषय है कि मध्य प्रदेश, जिसमें महाकौशल, ग्वालियर बुंदेलखण्ड, ओरछा तथा रीवाँ जैसे राज्य मालव-भूमि जैसे प्रदेश सम्मिलित हैं अभी तक अपना हृदय खोलकर दिखाने का अवसर नहीं पा सकी, कोई ऐसा न हुआ जिससे वह वक्षस्थल चीर कर बता पाती कि देखो इस मानस में, हनुमान के राम की भाँति, वीणा-वादिनी की प्रतिमा, साकार और सजीव प्रतिमा प्रतिष्ठित है, जिससे प्रतिमाओं की आभाएँ विकीर्णित हो रही हैं, होती रही हैं। कोई कह रहा है "बीती ताहि बिसारिदे आगे की सुध लेह।"

अच्छा भाई आगे की ही सुध लीजिए। भला किस प्रकार? हम अभी तक सम्मेलन तक को पूर्णतः संगठित कर नहीं पाये। कर भी लेंगे तो यदा-कदा जहाँ-तहाँ सम्मेलन का उत्सव करके ऊहा दिखा देंगे और बस। इतने में कुछ होगा नहीं। हमारा अपना विचार है, वही पुराना सूत्र, "रुपया सरकार का शक्ति जनता की।" ग्वालियर, रीवाँ, ओरछा, जबलपुर, भोपाल, इन्दौर-उज्जैन में संस्थाओं को दायित्व सौंप कर शोध-कार्य कराया जाय। सर्वप्रथम प्रशिक्षण के निमित्त कुछ व्यक्ति काशी भेजे जाएँ। वे परिपाटी तो सीखेंगे ही, साथ ही यह भी जान सकेंगे कि उन्हें कितना कार्य कहाँ और किस दिशा में करना होगा। वहाँ की खोज-सामग्री से दिशा-निर्देश, अवश्य ही प्राप्त होगा। संस्थाओं तथा विद्वानों से तथा राज्य के कर्णधारों से हमारा नम्र निवेदन है कि इस कार्य को प्रमुखता प्रदान कर वे अपने कर्तव्य का पालन करें। तभी मध्य-प्रदेश का पूर्ण साहित्य-वैभव सम्मुख उपस्थित हो सकता है और तभी म. प्रदेश के साहित्य का इतिहास ही नहीं, बृहद् इतिहास जो नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी के तत्वाधान में निर्मित हो रहा है, पूर्णता को प्राप्त कर सकेगा। अन्यथा यह कोई भी प्रयत्न सफल-काम न हो सकेंगे। हमारी धरोहर ठीक-ठीक रूप से काम में आवे। अन्यथा कियत काल में नष्ट हो जाएगी। क्या मध्यप्रदेश के धनी-धोरी इस समस्या का समय रहते उचित निराकरण न करेंगे? हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर इस दिशा में पहल करने जा रही है। वैसे तो उसे कभी का चेत जाना चाहिए था। अब भी कदम उठाया जा सके तो उचित ही होगा।

समिति उत्थान के राज मार्ग पर

'सूर' जयन्ति मनाइए

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में, समाज में कुछ ऐसी प्रवृतियाँ उदय हो गई थी जिसके फलस्वरूप उत्तरोत्तर अन्ध-विश्वास का विकास, और तथ्य जिज्ञासा का ह्रास हो रहा था। केवल युरोप ही नहीं किन्तु विश्व के समस्त देशों में, समस्त सम्प्रदायों एवं समाजों में उक्त मनोवृत्ति का भारी प्रभाव पड़ा था, जिसने इतिहास का स्वरूप ही बदल दिया, फिर भारत इसका अपवाद कैसे रह सकता था? विविध मतमतान्तरों के झमेले में पड़कर राजनीति की भी ऐसी दुर्दशा हुई कि उसका रूप ही विकृत हो गया और स्वतन्त्र रूप से चला आ रहा व्यक्तित्व भी समाप्त सा हो गया और वह साम्प्रदायिकता के हाथों में खेलने लगा।

ऐसे ही संक्रमण काल के मध्य अष्टछाप कवियों के सिरमोर तथा तत्कालीन जनता के हृदय का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाले सूरदास का प्रादुर्भाव हुआ।

समाज की तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य सृजनकर मानव मात्र के मन के मैल को काट कर अनिवर्चनीय आनन्द का प्रसार तथा भारत में एक नवीन प्रकार से देश प्रेम की भावना को जागृत करने वाले महा कवि सूरकी जयन्ती आगामी वैसाख शुक्ल ५ तारीख २४ अप्रेल को आ रही है।

इस अवसर पर आज हमें साहित्य गोष्ठियों का आयोजन, सूर के पदों का पाठ तथा संभव हो तो प्रभात फेरियों का आयोजन कर सूर के मानवतावादी दृष्टिकोण को घरों, पथों तथा वीथियों में विकसित कर [illegible] में होने वाले विशाल निर्माण कार्यों की ओर [illegible] की अभिरूचि आकर्षित करते हुये जन कार्यों को [illegible] की प्रेरणा देकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नई क्रान्ति पैदा करना है। जिससे हमारे सोचने-समझने तथा देखने सुनने का ढंग ही बदल जाय तभी हम साहित्य सेवी सच्चा कर्तव्य निभा सकते हैं।

श्री पाठकजी का सरकार द्वारा सम्मान

श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर के मंत्रिमंडल के भूतपूर्व सदस्य एवं वर्तमान प्रबन्ध कारिणी के सदस्य प्रो. ताराशंकरजी पाठक का मध्यप्रदेश शासन ने इन्दौर नगर निगम में नामजद सदस्य घोषित कर जो सम्मान किया है उसके लिये समिति पाठकजी को बधाई देती है।

अध्ययन मंडल की बैठक

ता. ६ तथा २३ मार्च को समिति द्वारा संचालित अध्ययन कक्ष की बैठक हुई। जिसमें साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों पर अध्ययन हुआ।

मूक साधक श्री चतुर्वेदी का स्वागत

मां भारती के मूक साधक तथा हिम-तरंगिणी 'हिम-किरीटिनी' 'विद्रोही', आदि रचनाओं की रचना कर देश के स्वतन्त्र आन्दोलन में योग देने वाले मध्य प्रदेश के उद्‌भट साहित्य-साधक श्री माखनलालजी चतुर्वेदी अपनी जीवन यात्रा के ६६ वर्ष पूर्ण कर ७० वे वर्ष में आगामी ४ अप्रेल १६५८ को प्रवेशकर रहे हैं। इस अवसर पर समिति परिवार श्री चतुर्वेदीजी के दीर्घ यशस्वी जीवन का स्वागत करते हुए कामना करती है कि चतुर्वेदीजी युग युग चिरायु हों।

जगन्नाथ बियाणी
प्रचार मंत्री

'वीणा'

रजिस्टर्ड नं. जे. ८७

अनुक्रम संख्या .... G. Kangri

श्रीमान् संपादक गुरुकुल पत्रिका
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार
(उ. प्र.)

मुद्रक एवं प्रकाशक—पं० उमाशंकर जोशी मैनेजर, श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति प्रेस

ऐँचति इत इँचि जाति उत, किये जितै दुहुँ नैन।
हरियाई बाँधत बँधी, कछुऔ कहत बनै न।

विषय-सूची

सम्पादक :

प्रो० कमलाशंकर मिश्र

प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

वर्ष ३१] सितम्बर १९५८ [अङ्क ११

भाद्रपद विक्रम-संवत २०१५

शक-संवत् १८८०

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति का ॥)

वीणा

श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर की मुख-पत्रिका

तेरे गुन-गौरव सुनाऊँ आजु भूतल पै, यातें मातु सारदे सुधारि निज 'वीणा' तू।

वर्ष ३१ } भाद्रपद संवत् २०१५, सितम्बर सन् १९५८ { अंक ११

रुद्ध है पथ आज मेरा

सु. श्री. अर्चना, एम. ए.

रुद्ध है पथ आज मेरा !

चाह थी—जीवन-डगर में मीत के कुछ काम आऊँ,
राह उसकी सरल कर, जीवन सफल अपना बनाऊँ,
सह सका कब वाम विधि वह दो जनों का सुख-बसेरा ?
रुद्ध है पथ आज मेरा !

काल का यह स्रोत बहता, सतत ले लघु-लघु क्षणों को,
पा न सकते, चाह कर भी, फिर मधुर बीते क्षणों को,
नाश का वह क्षण अमिट है—हो न सकता फिर उजेरा,
रुद्ध है पथ आज मेरा !

आज पीछे लौटने की राह भी बाकी नहीं है,
आज होना अग्रसर भी तो कहीं सम्भव नहीं है,
ठेलता जाता सतत जग, छा रहा सम्मुख अँधेरा,
रुद्ध है पथ आज मेरा !

अनगिनत सपने सँजोये, पर न वे कुछ काम आये,
उड़ चुके आशा-हिंडोले, व्यर्थ जीवन—दिन बिताये,
फेंक रँगों की पिटारी, थक गया क्यों मन-चितेरा ?
रुद्ध है पथ आज मेरा !

पता—ब्रह्मपुरी, अजमेर

आदमी का विश्वास

लेखकः—श्री मुकुटविहारी 'सरोज'

अगर आदमी तूफानों से डर जाएगा
सागर प्यासा मर जाएगा
सागर जिस की देह न पाये नाये गगन के तारे।
समझ न पाया पवन आज तक जिसके मौन इशारे॥
जो खुद जान-बूझ कर, सीमाओं का दास बना है।
वरना जिसकी क्या कीमत रखते हैं कूल-किनारे॥
उसकी लहरों ने मानव-चरणों को चूम लिया है।
है उसका विश्वास कि खारा पाप सुधर जाएगा॥
इतिहासों के लिए आज तक बनी रही है रानी।
जिसने जन्मे राम, और जन्मी सीता-सी रानी॥
जो सब कुछ है, लेकिन फिर भी फिरती मारी-मारी।
सूरज बुढ़ा हुआ किंतु जिसमें है अभी जवानी॥
इस माटी के चार कणों ने अम्बर जीत लिया है।
है उसका विश्वास कि अब खुद स्वर्ग उतर आएगा॥
शिखर कि जिनके रोए हृदय, बहो आँखों से धारा।
इतने पर भी जिन ने धरती को नित नया सँवारा॥
जो पानी को दान दिया करते अपनी गहराई।
जिन पर सूरज ने अपना रथ लाखों बार उतारा॥
उनके राजा ने धरती का बेटा देख लिया है।
है उसका विश्वास कि अब रँग-रूप निखर जाएगा॥

पता—जनकगंज लश्कर (म. प्र.)

गीत

लेखकः—श्री देवेन्द्र नारायण वर्मा

बही जा रही जीवन-धारा!
जनम मरण के बीच अकेली
उलझी-सुलझी एक पहेली
तरल-सरल, पर बूझ न पाया
ज्ञानी विश्व विचारा!
तट है मौन, लहर चंचल है
स्थिर है मिट्टी, काल चपल है
जुड़ता जाता ढेर राख का
बुझता है अँगारा!
देख रही है धरा गगन को
विस्मय से भर फाड़ नयन को
जो ऊगा था रात, प्रात में
डूबा वही सितारा!
यह क्रम है, पर कर्म न थकता
मूर्च्छित निशा, दिवस है जगता
गूँजा करता अन्तरिक्ष में
आदि-अंत का नारा!
बही जा रही जीवन-धारा!

पता—सिन्धिया स्कूल, फ़ोर्ट, ग्वालियर

गीत ★ लेखक—जगमोहन नाथ अवस्थी

जलने दो प्रिय अब न बुझाओ!

आई फिर दीवाली घर में,
मिट्टी के लघु दीप सलोने,
जला हुआ जीवन ले आये,
जलते घर के कोने कोने,
स्नेह-बँधे प्रिय तुम आ जाओ,
जलने दो प्रिय अब न बुझाओ!

निशा सुहागिन के मस्तक पर,
शत शत बेंदी बन कर चमकें,
या सुहाग सिन्दूर-रेख से,
ज्योति-रेख बन बन कर दमकें!
मधुर-मधुर जल ज्योति दिखाओ!
जलने दो प्रिय अब न बुझाओ!

पावन पर्व हमारा प्यारा,
दिन पद्मा का परम दुलारा,
दुखिया प्राण अमर निर्भय हों,
यह नूतन छवि मंगलमय हो,
जल कर देना ज्योति सिखाओ!
जलने दो प्रिय अब न बुझाओ!

पता—पानदरीबा लखनऊ, उत्तर-प्रदेश

राज्यपाल श्री पाटस्कर का स्वतन्त्रता-दिवस सन्देश

आज हम अपने राष्ट्र का बारहवाँ स्वाधीनता दिवस मना रहे हैं। पिछले ग्यारह वर्षों में करीब-करीब हर क्षेत्र में हमने काफी तरक्की की है। हमारी पहली पंचवर्षीय योजना समाप्त होकर दूसरी योजना का प्रारम्भ हो गया है। एक एक योजना की समाप्ति को हम अपनी प्रगति की राह का एक निशान मान सकते हैं। हमारे राह में कठिनाइयाँ बड़ी-बड़ी हैं। फिर भी हमारा निश्चय है कि हमारे पास जो मनुष्य बल तथा नैसर्गिक साधन उपलब्ध हैं उनका ठीक-ठीक उपयोग करके हम अपने लक्ष्य पर अवश्य पहुँचेंगे। हमें विश्वास है कि सबके सहयोग तथा सद्भावनाओं के बल पर हम भावी पीढ़ी के लिए राष्ट्र-धन में वृद्धि कर दिखाएँगे, यद्यपि वर्तमान पीढ़ी को इसके लिए काफी स्वार्थ-त्याग तथा कठिन परिश्रम करना पड़ेगा।

आन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हमारी नीति शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की है। हमने किसी भी गुट के साथ मिल जाना पसन्द नहीं किया है। कभी-कभी इस नीति के सम्बन्ध में लोगों को गलत-फहमी होती है। सरसरे तौर पर शान्ति के पक्ष में हमारे प्रयत्नों को लोग समझने लगे हैं। संसार के इतिहास में तथा हमारे देश के इतिहास में भी आज परिस्थितियाँ बड़ी नाजुक हैं। हमारी आन्तरिक समस्याएँ भी कई हैं। कुछ ऐसी परिस्थितियों से, जिन पर हमारा काबू नहीं है, ये समस्याएँ और भी विकट हो गई हैं। इनमें से कुछ समस्याएँ हल हो गई हैं। फिर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

हमारी अर्थ-नीति बहुत कुछ कृषि पर आधारित है। कृषि से अन्न उत्पादन होता है, परन्तु इस विषय में हम आत्म-निर्भर नहीं हो सके हैं। जमीन, आबहवा तथा सिंचाई के साधनों के अनुसार देश में कृषि भिन्न-भिन्न प्रकार से की जाती है। इसलिए देश के हर भाग को अन्न वस्त्रादि के सम्बन्ध में स्वयंपूर्ण करना आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि यदि हम परस्पर सहयोग तथा सौहार्द की भावना से निष्ठापूर्वक कार्य करें तो हम राष्ट्र को स्वयंपूर्ण, बलवान, संगठित, तथा समृद्धिशाली बना सकेंगे तथा देश में सुख और शान्ति कायम कर संसार के सारे देशों के साथ मित्रता तथा सौहार्द बनाये रखेंगे।

अब मैं इस मध्य-प्रदेश राज्य के सम्बन्ध में कुछ कहूँगा। मैंने अपने पिछले गणतन्त्र-दिवस के सन्देश में इस नये राज्य के सम्बन्ध में आरम्भ की कठिनाइयों का निर्देश किया था। इसे अस्तित्व में आये दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। सभी राज्य के कानूनों और शासन-पद्धति में एकीकरण के प्रयत्न चालू हैं और इस दिशा में काफी प्रगति भी हुई है। सेवाओं के एकीकरण के नियम भी बनाये गये हैं, जिनके अनुसार कुछ विभागों की क्रमवार सूचियाँ प्रकाशित की गई हैं। दूसरे विभागों के सम्बन्ध में भी यह कार्य शीघ्र किया जा रहा है। दुर्भाग्य से पिछले वर्ष राज्य के कुछ भागों में सूखा पड़ा। हर एक अभावग्रस्त क्षेत्र में जिन लोगों को काम धन्धे की जरूरत थी उनके लिए काम खोले गये। इन कार्यों के समीप ही सस्ते अनाज की दुकानें भी खोली गईं। यह काम इस प्रकार खोले गये कि जिन्हें काम की जरूरत थी उन्हें चार मील से अधिक दूर न जाना पड़े। कहीं-कहीं काम करने वालों के लिए शिविर भी खोले गये। अभावग्रस्त क्षेत्रों में लगान की माफी तथा स्थगन की रियायतें उदारतापूर्वक दी गईं। तकावी कर्ज भी उदारतापूर्वक दिये गये हैं। मैंने खुद विन्ध्य-प्रदेश तथा जबलपुर संभाग के अभावग्रस्त भागों को भेंट दी। मैंने देखा कि यद्यपि सरकार-द्वारा शुरू किये गये कार्यों पर साधारणतः लोगों को रोजी मिल सकती थी, फिर भी कुछ बूढ़े तथा अपाहिज लोग भी थे, जो शारीरिक मेहनत मजदूरी करने लायक नहीं थे, मैंने ऐसे लोगों की मदद के लिए एक निधि शुरू करने का निश्चय किया जिसकानाम "राज्यपाल मध्य प्रदेश सहायता निधि" रखा गया। इस निधि में दान देने के लिए मैंने जनता के नाम एक अपील भी जारी की। इस निधि का उद्देश्य शासन-द्वारा दी जानेवाली मदद की पूर्ति करना है। इस निधि से अभावग्रस्त क्षेत्रों में आयुक्तों तथा जिलाध्यक्षों के द्वारा मदद भेजी जा रही है। इसमें संशय नहीं कि सरकार-द्वारा किये गये त्वरित उपायों तथा प्रान्त के दूसरे भागों की जनता की सहानुभूति के कारण इन अभावग्रस्त क्षेत्रों के लोग इस प्राकृतिक संकट का सामना सफलता से कर सकेंगे।

सामूहिक विकास तथा तत्सम दूसरी योजनाओं की प्रगति भी आशाजनक है। सामूहिक विकास, राष्ट्रसेवा-विस्तार-योजना तथा अन्य योजनाओं को एक ही योजना में सम्मिलित किया गया है और उन्हें प्राथमिक तथा द्वितीय खडों में बाँटा गया है।

हमारी चम्बल, बेतवा जैसी बड़ी योजनाओं को तथा दूसरी मध्यम तथा छोटी योजनाओं की प्रगति समाधानकारक है। शहडोल जिले में एक बड़े विद्युत्-केन्द्र का निर्माण किया जा रहा है, जिसके द्वारा कटनी, सतना तथा बुरहार शहरों को विद्युत् शक्ति पहुँचाई जावेगी और इस विभाग में अल्यूमानियम का कारखाना बनने पर उसके लिए भी विद्युत् शक्ति दी जा सकेगी। अल्यूमीनियम के लिये आवश्यक ऊँचे दर्जे का बाक्साईट खनिज द्रव्य इस प्रदेश में बहुतायत से मौजूद है।

नब्बे हजार किलोवाट शक्ति का कोरबा थर्मल स्टेशन करीब पूरा हो गया है और शीघ्र चालू हो जावेगा। जिस चाँदनी के विद्युत् केन्द्र से नेपा मिल को शक्ति मिलती है उसकी उत्पादन शक्ति भी बढ़ाई जा रही है और इसके लिए एक योजना, प्लानिंग कमीशन को भेज दी गई है। यदि यह योजना पूरी हो गई तो नेपा मिल के लिये एक क्लोरिन का कारखाना भी चालू किया जा सकेगा और नेपा मिल का उत्पादन पैंसठ (६५) टन से १०० (एक सौ) टन प्रति-दिन तक बढ़ाया जा सकेगा। इसके फलस्वरूप डेढ़ करोड़ रुपयों के मूल्य के फारेन एक्सचेंज की बचत होगी।

ग्वालियर, इन्दौर, रायपुर तथा जबलपुर इन चार नगरों में इंडस्ट्रियल स्टेट खोलने की भी योजनाएँ हैं। इन चार योजनाओं में से इन्दौर की योजना हाल ही में पूरी हो गई। और ग्वालियर की योजना शीघ्र ही पूरी की जा रही है।

शासन ने नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकॉनामिक रिसर्च, इस दिल्ली की संस्था से इस राज्य का आर्थिक तथा तांत्रिक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने को कहा है, ताकि राज्य का औद्योगिक विकास योजना-बद्ध तरीकों से हो सके। शिक्षा के क्षेत्र में काफी विस्तार हुआ है।

अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की ओर सरकार का सदा से पूरा लक्ष्य रहा है। इन जातियों के हजारों विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जारही हैं। चालीस, बहुउद्देशीय खंड इन पिछड़े हुए विभागों में खोले गये हैं जिनमें कृषि, सहकारिता, स्वास्थ्य, आवास-काम-धंधे की शिक्षा इत्यादि की योजनाएँ चालू की गई हैं। अपराधी वृत्ति की जमातों तथा पिछड़ी हुई जातियों को बसाने के लिए उन्हें खेती के लिए जमीन तथा मकान, खेती के औजार इत्यादि के लिए पैसों की मदद दी जाती है।

नये मध्यप्रदेश में आवास के प्रश्न को बड़ा महत्व दिया गया है। शासन ने निम्नलिखित योजनाओं को स्वीकृति दी है:—१ कम आमदनी वाले लोगों को मकान बनाने के लिये कर्ज देना, २ कारखाने में काम करने वाले लोगों के रहने के लिये मकान, बनाने की योजना, ३ बड़े बड़े शहरों में गंदी बस्तियों के सुधार की योजना, ४ देहातों के लिए भी एक योजना है जिसके अनुसार आधी रकम सरकार और शेष रकम मकान मालिक मकान बनाने के सामान या मजदूरी के रूप में पूरा कर सकता है। सरकार पानी नालियाँ इत्यादि की व्यवस्था करती है।

हाल ही में विधान-सभा के सदस्यों के जिन विश्राम-गृहों का उद्घाटन हमारे परम पूज्य राष्ट्रपति महोदय ने किया है वे अत्यन्त थोड़े में बनाये गये हैं। सुन्दरता और उपयोगिता दोनों का इनमें समावेश है।

अपना भाषण पूरा करने के पहले मैं उन लोगों को बधाई दूँगा जिन पर राज्य के कानून तथा व्यवस्था का भार है। डकैतों के उपद्रव भी बहुत घट गये हैं। पिछले डेढ़ वर्ष के हमारे किये हुए कार्यों की सूची बड़ी आकर्षक जान पड़ती है। इस राज्य के बनने पर कुछ विशेष कठिनाईयाँ पैदा हुई जिनका हमने बड़े धीरज से सामना किया। इनमें से कुछ तो भावनात्मक थीं, और उनका कारण यह था कि यह राज्य बनने के पहले इसका बड़ा भारी हिस्सा देशी रियासतों में बँटा था। हमारे लोगों को जो तकलीफें हैं उनकी मुझे जानकारी है। मैं उनसे निवेदन करूँगा कि वे धीरज, सहयोग और सौहार्द से कार्य करें ताकि यह कठिनाईयां शीघ्र दूर हो जावें।

मैं आश्वासन देता हूँ कि मेरी सरकार शीघ्रातिशीघ्र उन्हें दूर करने में कोई कसर नहीं रखेगी।

'भाषा सरकारी दफ्तरों में नहीं बनती'

भोपाल में गत मास हुए अष्टम अखिल-भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन के अन्तर्गत 'महिला-परिषद' की स्वागताध्यक्षा रानी पद्मावती देवी स्वास्थ्य-मंत्राणी, मध्यप्रदेश-शासन का भाषण यहाँ अविकल रूप में दिया जा रहा है—संपादक-'वीणा'

★

श्रीमन्त महारानी सिंधिया, अध्यक्षा महोदया, प्रतिनिधि बहनों तथा आमन्त्रित सज्जनो और देवियो,

सर्वप्रथम, मैं आपका हृदय से स्वागत करती हूं। राष्ट्र के कोने-कोने से आपके प्रतिनिधित्व ने हमें बल और गौरव प्रदान किया है। भोपाल, नवीन वृहद् मध्य-प्रदेश की नवीन राजधानी ही है। एक तरह से इस प्रदेश की नई गृहस्थी ही समझिए। ऐसी स्थिति में हमें ज्ञात है कि पूरी आकांक्षा होते हुए भी, हम अपने अतिथियों का समुचित सत्कार करने में असमर्थ रहे हैं। किन्तु हमें यह विश्वास है कि हमारी उदारमना बहनें यह मानकर हमारी त्रुटियाँ क्षमा करेंगी कि हमारे निश्छल हृदयों में आपके लिए अपार स्नेह और अपरिमित स्थान है।

अखिल-भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन के शुभ अवसर पर, जिसका उद्‌घाटन हमारे परम आदरणीय राष्ट्रपति ने किया, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के महिला-विभाग को, महिला परिषद् आयोजित करने का जो सुअवसर सम्मेलन व समिति के अधिकिरियों ने दिया, उसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। यह महिला विभाग का सौभाग्य है कि उसकी प्रथम अखिल-भारतीय परिषद् का उद्‌घाटन, महारानी सिन्धिया जैसी विदुषी, सुसंस्कृत और समाज-सेवी महिला कर रही हैं। तथा इसकी अध्यक्षा दिल्ली के राष्ट्रभाषा प्रचार-क्षेत्र की कर्मठ कार्यकर्त्री श्रीमती राघवन हैं। शिक्षा, विशेषकर स्त्री शिक्षा, के क्षेत्र में महारानी सिन्धिया का जो सक्रिय योगदान रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। ग्वालियर राज्य सदा से हिन्दी का हितैषी रहा है। ग्वालियर महाराज के समय में हिन्दी राज्य और कानून दोनों की भाषा रही। हाल ही में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के महिला-विभाग की आजन्म संरक्षिका बनकर महारानी सिन्धिया ने अपने सेवा-कार्यों में राष्ट्रभाषा को भी स्थान दे दिया है। इसके लिये मैं महिला-विभाग की ओर से उनका आभार मानती हूँ और कामना करती हूँ कि वे और भी ऐसी संरक्षिकाएँ हमें दिलवाएँगी ताकि राष्ट्रभाषा-प्रचार-पथ अधिक प्रशस्त हो। मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा-प्रचार के क्षेत्र में सदा ही कार्यशील रहा है तथा यहाँ की जनता ने गत करीब ८ वर्षों से, जब से हिन्दी इसकी राज्यभाषा बनी, जिस तत्परता से इसे अपनाया है उसने देश के अन्य प्रांतों को भी प्रेरणा दी है। नवीन मध्यप्रदेश के मध्यभारत क्षेत्र में तो राज्य-पुनगर्ठन की तिथि तक हाईकोर्ट तक की भाषा हिन्दी रही है। पुरातन मध्य-प्रदेश के कर्णधार नेता पंडित रविशंकर शुक्ल ने अपने को सदा हिन्दी का नम्र सेवक ही माना और हिन्दी को मध्यप्रदेश की राज्यभाषा बनाने का सारा श्रेय उन्हीं का था। हिन्दी का संविधान में पूरे क्षेत्र की राज्यभाषा के पद पर आसीन करने में भी वास्तव में उनका एक महत्वपूर्ण योगदान था। उन्हीं के मुख्य मंत्रित्वकाल में सन् १९५० के मध्यप्रदेश-भाषा-अधि-नियम के अनुसार राज्य में राज्यभाषाओं के रूप में हिन्दी तथा मराठी का उपयोग आरम्भ करने का ऐति-हासिक निश्चय किया गया, जिस पर आज का मध्य-प्रदेश गर्व कर सकता है। यह निर्णय एक बहुत बड़ा निर्णय था जिसके अन्तर्गत हिन्दी-मराठी स्टेनोग्राफर को प्रशिक्षण दिया गया तथा शासकीय कर्मचारियों को हिन्दी-मराठी का ज्ञान करवाया गया। इसके सिवा प्रशासनिक परिभाषिक शब्दों का कोष तैयार करवाया गया और विभिन्न विभागों के नियमों तथा उनमें किये जानेवाले फार्मों को अनुदित कराने के साथ ही अन्य मूलभूत कदम भी उठाये गये। हिंदी को राज्यभाषा का

व्यावहारिक स्वरूप देने का कार्य मध्यप्रदेश ने ही सर्व-प्रथम किया जिसकी भाषा-आयोग ने प्रशंसा की। पुराने मध्यप्रदेश की राष्ट्रभाषा समिति ने अपना एक विशाल क्षेत्र तैयार किया था और इतर-भाषियों के बीच हिंदी की कड़ी जोड़ने का महत्वपूर्ण बीड़ा सफलता-पूर्वक उठाया था। राज्य-पुनर्गठन के बाद यह आवश्यक हो गया कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के विशद कार्य-क्षेत्र को देखते हुए नवीन मध्यप्रदेश में भी समिति का निर्माण हो। तदनुसार, राज्य-पुनर्गठन के पश्चात्, भूतपूर्व "भोपाल, मध्यभारत राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" तथा 'वर्धा समिति" ने मिलकर निश्चय किया कि महाकौशल व विन्ध्यप्रदेश मिलाकर नये मध्यप्रदेश में "भोपाल मध्यभारत राष्ट्रभाषा समिति" को 'मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" के नाम से कार्य करने को अधिकृत किया जाय और उसका कार्यालय भोपाल में रखा जाय। फलतः प्रान्तीय कार्यालय महू से उठकर भोपाल में कार्य करने लगा तथा इस अल्प अवधि में ही हजारों अहिन्दी-भाषी बहन-भाईयों को राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओं में सम्मिलित करवाया गया।

इसके साथ ही, नवीन मध्यप्रदेश की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संचालक, श्री दुबे जी के प्रयासों से समिति ने एक नया कदम और उठाया तथा गत जुलाई १६५६ को भोपाल तथा मध्यभारत में इस समिति के महिला-विभाग की सदस्यता प्रारंभ की गई। जनवरी १६५७ में इस विभाग का क्षेत्र पूरा मध्यप्रदेश बन गया तथा २२ जून १६५७ से विधान के अनुसार कार्यकारिणी समिति का संगठन कर कार्य प्रारंभ हुआ। आज तक इसकी २५० से अधिक सदस्याएँ बन चुकी हैं। इतना ही नहीं, महू, इन्दौर, विदिशा, उज्जैन, गांधीनगर, बैरागढ़, आदि में महिलाओं द्वारा ही केन्द्र संचालित हैं। महू में बोहरा-समाज की महिलाएँ इन्दौर, रतलाम और बैरागढ़ में सिन्धी, महाराष्ट्रीय एवं गुजराती महिलाओं ने राष्ट्रभाषा सीखने-सिखाने में हमें सक्रिय सहयोग दिया है।

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का यह महिला-विभाग सारे भारत में अपने ढंग का प्रथम प्रयत्न है तथा इस प्रकार, मध्यप्रदेश ने महिलाओं को इस क्षेत्र में कार्य करने का एक बड़ा अवसर दिया है। राष्ट्रभाषा के प्रचार में महिलायें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हिस्सा बटा सकती हैं। यह बात स्वयं गांधीजी ने बार-बार दुहराई थी और उन्होंने नारियों का आह्वान भी किया था। महिला-विभाग का संगठन इस तरह हमारे लिए एक बड़ा अवसर और चुनौती है। यदि इसे हमने सफल कर दिखाया तो मुझे विश्वास है कि अन्य प्रांत भी इस प्रकार के महिला-विभाग स्थापित करेंगे।

मध्यप्रदेश की नारी अपने उत्तरदायित्वों से कभी पीछे नहीं हटी है, इस बात का इतिहास साक्षी है। प्राचीन काल से ही यहाँ की नारियों ने साहित्य, संगीत, राजनीति तथा रणक्षेत्र सभी क्षेत्रों में योगदान दिया है।

राष्ट्रभाषा-प्रचार के महिला-विभाग ने मध्यप्रदेश की नारी के लिए कार्य का एक नया विशाल क्षेत्र खोल दिया है। राष्ट्रभाषा-प्रचार का कार्य एक महत्वपूर्ण कार्य है और यह हमारा सौभाग्य है कि इस कार्य में हमें प्रवेश ही नहीं दिया गया बल्कि स्वतंत्र रूप से नवीन उत्तरदायित्व भी हमें सौंपे गये हैं। राष्ट्रभाषा को बापू ने देश की एकता का सब से बहुमूल्य सूत्र माना था और उन्हीं की कल्पना थी कि यदि नारियाँ इस कार्य को हाथ में ले लें तो देश के बिखरे अंगों में विघटन की प्रवृत्तियों को बाँधे रखने का यह सब से बड़ा माध्यम हो सकता है। गांधीजी की दृष्टि आज और सार्थक हो उठी है और आज की अवस्था में जब भाषावादी प्रवृत्ति और प्रांतीयता सिर उठाना चाहती है तथा हिन्दी-विरोधी और अन्य विग्रहकारी विचार-धाराएँ सक्रिय हो रही हैं, राष्ट्रभाषा हमारी राष्ट्रीयता का आधार बन गई है। यदि हम लोग प्रांत-प्रांत की नारियों के मन में राष्ट्रभाषा का प्रेम भर सकीं तो घर-घर राष्ट्रभाषा अपने आप प्रतिष्ठित हो जायगी, इसमें संदेह नहीं। राष्ट्रभाषा के प्रचार के इतिहास में पंजाब और दक्षिण की नारियाँ ही अग्रदूत रही हैं।

आज की इस परिषद की अध्यक्षा श्रीमती राघवन स्वयं इस बात का एक ज्वलंत उदाहरण हैं कि नारी

राष्ट्रभाषा प्रचार के क्षेत्र में लगन से कार्य करे तो कितना अधिक योगदान दे सकती है। गत बीस वर्षों से श्रीमती राघवन राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य कर रही हैं। सन् १६४८ से वे दिल्ली में राष्ट्रभाषा-प्रचार का कार्य जिस तत्परता से कर रही हैं, वह सराहनीय है। जन-साधारण में हिन्दी-प्रचार कार्य के साथ ही, बहन राघवन पश्चिम से आये हुए संसद-सदस्यों को हिन्दी सिखाने का कार्य भी करती हैं। दक्षिण की इस आदर्श बहन से हम मध्यप्रदेश की बहनें बहुत कुछ सीख सकती हैं। मैं आशा करती हूँ कि श्रीमती राघवन आज ही नहीं, भविष्य में भी इस महिला-विभाग का मार्ग-दर्शन करती रहेंगीं।

आज हमें श्रीमती राघवन, श्रीमती महारानी सिंधिया, रुक्मिणी देवी शर्मा; कमला बाई किबे जैसी बहनों की आवश्यकता है जो राष्ट्रभाषा प्रचार-कार्य में नये प्राण फूँक दें। भोपाल तथा अन्य क्षेत्रों से ऐसी कई बहनें हमें प्राप्त हों, यही ईश्वर से मेरी प्रार्थना है। हमारा कार्यक्षेत्र बहुत विशाल है; हमारे उत्तरदायित्व महान् है। इस भोपाल क्षेत्र में, शिक्षा-प्रचार के बावजूद अधिकांश नारियां, पर्दे के अंदर ही अपनी सारी दिनचर्या पूरी कर लेती है। यहाँ तक कि शिक्षा-दीक्षा भी पर्दे के अंदर ही होती है। ऐसी अवस्था में इस क्षेत्र में हिंदी-प्रचार-कार्य में महिलाएँ ही महिलाओं तक पहुँच सकती हैं।

मैं अपनी बहनों को यह विश्वास दिलाना चाहूँगी कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा रहने से कभी किसी प्रान्तीय भाषा को क्षति नहीं पहुँचेगी। हिन्दी को यदि राष्ट्रभाषा और राज्यभाषा बनाया गया है तो वह महज इसलिये कि हिन्दुस्थान की यही वह भाषा है जिसे ज्यादा से ज्यादा लोग आसानी से बोल और समझ लेते हैं। राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओं में प्रतिस्पर्द्धा का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि दोनों के अलग-अलग स्थान है। अन्य भाषाएँ हिन्दी की सहोदरा बहनें हैं—बंगला, तमील, कन्नड़, तेलगू, उर्दू जैसी भाषाओं से हिन्दी को बहुत कुछ सीखना है। हिंन्दी और अन्य भाषाओं के बीच आपसी लेन-देन हमेशा होता रहा है, होता रहेगा और हिन्दुस्थान की सभी भाषाएँ एक-दूसरे के सहारे आगे बढ़ेंगीं। भावी हिन्दी के निर्माण में हम अन्य भाषा-भाषी बन्धुओं, बहनों का प्रभाव रोकना नहीं चाहते बल्कि हम इसका स्वागत करेंगे। आदान-प्रदान से ही भाषा प्राणवान बनती है। हम तो यह चाहते हैं कि देश की सभी महान् प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यकारों को निमंत्रित करें, जिससे कि वे राष्ट्रभाषा के भावी भवन के निर्माण में योग दें।

यहाँ मैं पुरातन मध्यप्रदेश के हिन्दी-प्रचार के कर्णधार तथा उसे राज्यभाषा के पद पर आरूढ़ करने वाले श्रद्धेय पंडित रविशंकर शुक्ल द्वारा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की हीरक जयंती में कहे गये ये शब्द दुहराना चाहूँगी कि अखिल भारतीय क्षेत्रों और संबंधों में अवश्य हिन्दी को उसके ऊपर सौंपे गये दायित्व का निर्वाह तो करना ही होगा परन्तु भारतीय भाषाओं से उनके क्षेत्र में उसकी कोई प्रतिस्पर्द्धा नहीं है; कोई संघर्ष नहीं है। आज की प्रचलित और साहित्यिक हिन्दी ने अपने द्वार सभी दिशा में खोल दिये हैं। उसमें संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी आदि सभी भाषाओं के शब्दों का समावेश हो चुका है और जैसे-जैसे दक्षिण भारत के लोग हिन्दी में साहित्य-रचना शुरू करेंगे, उन भाषाओं के शब्द और मुहावरे भी हिन्दी में शामिल होते चले जाएँगे।

मध्यप्रदेश में हिन्दी अपने इतिहास की एक महत्वपूर्ण मंजिल पार कर चुकी है। वह अब मध्यप्रदेश की जनता की राष्ट्रभाषा और राज्यभाषा दोनों है। मध्यप्रदेश का यह प्रयोग मार्गसूचक है, पर राष्ट्रभाषा सम्बन्धी उठे सारे प्रश्नों का वह समाधान नहीं है। यदि राष्ट्रभाषा को निश्चित १५ वर्ष की अवधि में, जिसमें से ८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, अपने मनोनीत स्थान पर अधीष्ठित करना है तो अब कुछ निश्चित कदम उठाया जाना आवश्यक है। मैं सोचती हूँ कि इस दिशा में बहन श्रीमती राघवन हमें जानकारी दे सकती हैं। आज कई समस्याएँ हमारे सम्मुख हैं और समय बहुत कम बचा है।

इन समस्याओं में से राज्यभाषा और प्रान्तीय भाषाओं की पारस्परिक सम्बन्ध-स्थापना, राष्ट्रभाषा में टेक्निकल शब्दों की रचना तथा देश की बौद्धिक इकाई को बनाये रखने के लिए समस्त राष्ट्र के लिए एक टेक्निकल और पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण, अखिल-भारतीय शब्दकोष का निर्माण, हिन्दी के प्रमुख ग्रन्थों का अन्य भाषा-ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद और विभिन्न भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का प्रचार, आदि कार्य हैं जिनके द्वारा हम हिन्दी को राष्ट्र तथा राज्यभाषा के उत्तरदायित्वों को निबाहने के कहीं अधिक योग्य बना सकते हैं। सर्वोच्च शिक्षा, अनुसंधान, ज्ञान, विज्ञान, कानून इत्यादि संपूर्ण राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन की जटिलतम आवश्यकताओं को पूरा करने योग्य, हमें हिन्दी को बनाना है।

भाषा सरकारी दफ्तरों में नहीं बनती, यह तो जनता के मुकुट—कवि, लेखकों, गायकों, कलाकारों, साहित्य तथा अध्यापकों का क्षेत्र है। शिक्षा के माध्यम अभिवृद्धि के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है और शिक्षा का क्षेत्र बहनों का क्षेत्र है। जिस दिन हम देश की माताओं में हिन्दी का प्रसार कर सकेंगीं, हम हिन्दी की सुदृढ़ तथा स्थायी नींव रखने में सफल होंगीं। माता ही के हाथों नागरिक के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यदि हम माताओं में हिन्दी-प्रचार कार्य कर सकीं तो आने वाली पीढ़ियों में राष्ट्रभाषा-प्रचार की समस्या स्वयं हल हो जावेगी। पिछड़े हुए क्षेत्रों की आदिवासी बहनों तक जिस दिन राष्ट्रभाषा का ज्ञान हम पहुँचा सकेंगीं, उस दिन हिन्दी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का यह, महिला-विभाग सच्चे अर्थों में सफल होगा।

मैं अपनी अन्य भाषा-भाषी बहनों से अपील करना चाहूँगी कि वे हिन्दी को अपनाएँ। साथ ही, मैं हिन्दी-भाषी बहनों को याद दिलाना चाहूँगी कि इतर-भाषियों के मन का संदेह दूर करने के लिए वे भाषा के क्षेत्र में धैर्य और विशाल हृदय से कार्य करें। भारत एक है और यहाँ की समस्त भाषाएँ हमारी सब की हैं। हिन्दी-भाषी भी प्रयत्न करें कि कम-से-कम एक आर्य भाषा वे भी सीखें। यह बात उतनी कठिन नहीं जितनी वह हमें लगती है। जब सात समुद्र पार से आई अंग्रेजी को इस तरह हम गले लगा सके तो हिन्दुस्तान में ही उपजी और पली हिन्दी को हम नहीं सीख सकेंगे, यह तो हो नहीं सकता। मैं यहाँ भोपाल की ऐसी कई बहनों और विद्यार्थिनियों से मिली हूँ जो मुस्लिम होते हुए भी हिन्दी पर उर्दू जैसा ही अधिकार रखती हैं और मुझे इस पर गर्व है।

मैं आपका और अधिक समय नहीं लूँगी। राष्ट्रभाषा-प्रचार और प्रसार में श्रद्धेय पंडित रविशंकर शुक्ल के नेतृत्व में इस प्रदेश ने अमूल्य योग-दान दिया था। उस परम्परा को हम नारियाँ निभा सकें तथा हिन्दी की ज्योति को सदा प्रज्वलित रखें तो हम राज्य और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर सकेंगीं। मैं श्रीमंत महारानी सिंधिया, श्रीमती राघवन तथा उपस्थित प्रतिनिधि बहनों का पुनः एक बार मध्यप्रदेश की रत्नगर्भा श्यामल भूमि में स्वागत करती हूँ तथा श्रीमती राघवन को यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि देश और प्रान्त के भविष्य के साथ हमारा भाग्य जुड़ा हुआ है और हम मध्यप्रदेश की नारियाँ राष्ट्रभाषा-प्रचार के इस गौरवमय कार्य को करने में, हर संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठ, देश के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगीं। परन्तु आप सब की शुभ कामना के बिना यह कार्य संभव नहीं।

अब मैं श्रीमंत महारानी सिंधिया से प्रार्थना करती हूँ कि वे महिला परिषद् का उद्घाटन करें।

राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय ऐक्य का एकमात्र साधन

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन अष्टम अधिवेशन भोपाल के अवसर पर हुई महिला-परिषद की अध्यक्षा का भाषण

★

माताओ, बहिनो और बेटियो !

आज अध्यक्षा के आसन पर बैठा कर आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिए हृदय से आभार प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है। परन्तु यदि आप इस आसन पर बैठाने के बदले, एक साधारण राष्ट्रभाषा सेविका के नाते भी मुझे बुलातीं, तो भी सिर के बल चले आना मेरा कर्तव्य होता। राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य में संलग्न महिलाओं की संख्या आज कम नहीं है। मैं इस क्षेत्र में स्वयं एक तुच्छ सेविका हूँ। राष्ट्रभाषा के इस कार्य में महिलाओं को पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर प्रयत्न करते देख कर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है और मैं उन महिलाओं को सदा ही बधाई देती रही हूं, जो पुरुषों से भी आगे बढ़ कर काम करती रही हैं। आपका प्रयत्न भी ऐसा ही आगे बढ़ कर काम करने का है, और यह अद्वितीय है। राष्ट्रभाषा-प्रचार के क्षेत्र में केवल स्त्रियों के लिए काम करने वाली संस्था शायद आपकी ही है और यह देख कर और भी हर्ष होता है कि यह निरन्तर उन्नति करती जा रही है।

आपके संगठन और उसके द्वारा होने वाले काम को देख कर हृदय में एक नई आशा का संचार हुआ है। आपका निमन्त्रण पाकर मन में अनेक भाव उठे और उनके साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दी की वर्तमान स्थिति का भी ध्यान आया और उसके कारण कुछ हर्ष हुआ तो कुछ दुःख भी। दुःख इस कारण कि आज, जब हिन्दी को चुपचाप और एकमत होकर आगे बढ़ाने की आवश्यकता है, तभी उसके बारे में सबसे अधिक आलोचना और वाद-विवाद करके हम सब अपना समय नष्ट कर रहे हैं और एक भारी राष्ट्रीय अहित कर रहे हैं। जो बात एक बार तय हो गई, उसे लेकर आगे बढ़ते जाना ही हमारा कर्तव्य होना चाहिए। ऐसा बेकार का विवाद हमारे राष्ट्रपिता बापू के सामने तो कभी नहीं हुआ था। वे कर्मवीर थे, दिव्य दृष्टि रखते थे, उन्होंने समझ लिया था कि देश को एक और अखण्ड रखने के के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी की आवश्यकता है; इसलिए वे इसे आगे बढ़ाने के लिए सतत सद्प्रयत्न करते रहे। कितने हर्ष की बात थी कि उनके समय में देश ने उनके इस प्रयत्न को समझा था और प्रत्येक प्रदेश से उनके इस प्रयत्न में हार्दिक सहयोग और सहायता मिली थी। हर कोई हिन्दी के राष्ट्रीय यज्ञ में अपनी प्रेमपूर्ण आहुति डालने को प्रस्तुत रहता था। परन्तु अब उन्हीं राष्ट्रपिता द्वारा निर्मित राष्ट्र में राष्ट्रभाषा के साथ जो व्यवहार हो रहा है उसे देख कर मन में यदि दुःख हो तो स्वाभाविक ही है। जो लोग इस विवाद में लगे हुए हैं उनसे मेरा बड़े स्नेह और सौहार्द से निवेदन है कि भाइयों विवेक से काम लीजिये, राष्ट्र के हित का ध्यान कीजिए, आने वाली पीढ़ी को एकता के सूत्र में बँधे रहने का अवसर दीजिए और इसीलिए राष्ट्रभाषा हिन्दी को आगे बढ़ने दीजिए। देश के बच्चे-बच्चे के हृदय में उसकी निर्मल ज्योति का प्रकाश जगमगाने दीजिए। देखिये बापू की आत्मा अब भी भारत के कण-कण में व्याप्त है, यह न समझ लीजिए कि वे मर गये हैं। वे सदा-सर्वदा के लिए हम में व्याप्त हैं। उनकी अमर वाणी अब भी भारतीय

वायुमंडल में गूँजा करती है। हाँ, उसे सुनने वाला चाहिए। क्या हम उसे नहीं सुनेंगे? क्या हम उसकी ओर से विमुख हो जाएँगे? क्या हम उनके सभी शुभ प्रयत्नों पर पानी फेर देंगे? नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए और आज जिस राष्ट्रभाषा के मंच से मैं घोषणा करती हूँ कि उनके पवित्र हाथों से लगाया हुआ राष्ट्रभाषा का यह पावन पौधा सदा-सर्वदा फूलता-फलता रहेगा। इसकी चाहे जितनी आलोचना की जाय, इसका चाहे जितना विरोध किया जाय, यह सदा नये पत्र-पुष्पों से लहलहाता रहेगा। इसकी जड़ राष्ट्र की आत्मा में जमी है। राष्ट्र जिसके बिना जीवित नहीं रह सकेगा। इसीलिए इसकी प्रगति में कोई बाधा नहीं डाल सकता। सबसे बड़ी हर्ष की बात यह है कि इस विवाद से हम महिलाएँ पूर्णतः पृथक् रही हैं। पुरुष-वर्ग स्वभावतः यत्किंचित् विग्रहप्रिय होता है। हिन्दी के प्रश्न को लेकर भी यदि वह विग्रह उत्पन्न करे तो उसकी ओर हमें ध्यान नहीं देना चाहिए। हमारा तो एक-मात्र कर्तव्य स्नेह के साथ राष्ट्रभाषा के पौधे का पालन-पोषण करते जाना है। मेरा यह विश्वास है कि हमारी यह साधना देश में अच्छी भावना उत्पन्न करेगी, अच्छे परिणाम प्रकट करेगी और राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए अच्छा वातावरण बना देगी।

राष्ट्रीय एकता का साधन राष्ट्रभाषा

मैंने अच्छे वातावरण की बात कही है। आज देश में अच्छे वातावरण की कितनी आवश्यकता है यह भी सभी जानते हैं। जिन दिनों हम विदेशी शासकों की लाठियाँ खाते थे, जेलें भरते थे अथवा हमारे वीर फाँसी के तख्ते पर सहर्ष झूल जाते थे तब हम कल्पना करते थे कि हम ऐसे स्वतन्त्र भारत की सृष्टि करेंगे जिसमें काश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से गौहाटी तक प्रेम का प्राधान्य होगा और पावन रामराज्य होगा। परन्तु आज हम अच्छे वातावरण की कमी अनुभव कर रहे हैं। अच्छे वातावरण से मेरा अभिप्राय है ऐसा वातावरण जहाँ समस्त देशवासी एक दूसरे से प्रेम करें, एक दूसरे को मानें, एक दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझें। काश्मीर में जन्म लेने वाला तमिलनाड की पवित्र भूमि को अपनी मातृभूमि मानें, तमिलनाड का निवासी पंजाब को अपना माने, बंगालवासी गुजरात को बंग प्रदेश से किसी प्रकार घटिया न समझे, महाराष्ट्र के पुत्र-पुत्रियाँ केरल में अपनत्व देखें, कन्नड़वासी राजस्थान पर अपनी साधें निछावर करें, बिहारी उड़ीसा पर अपने अरमान कुरबान कर दें, असमी आन्ध्र पर अभिमान करें, इत्यादि। प्रत्येक प्रदेश में एक भावना जागे, एक नारा गूँजे 'एक हृदय हो भारत जननी'। हम सब भूल जाएँ कि हम कश्मीरी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, मराठी, कन्नड़ी, आन्ध्र, तमिल, उड़िया, बंगाली, असमी, बिहारी आदि हैं। सभी को सबसे पहिले एक मूल-मन्त्र याद रखना चाहिए कि हम सब भारत जननी की एक-सी सन्तान हैं। भारत माता का इंच-इंच स्थल हम सबका है। हम सब एक हैं .... मैं यह सब जो कुछ कह गई, हो सकता है वह आपको अनर्गल प्रलाप-सा लगे, पर विश्वास कीजिए मेरा हृदय तड़पता है देश में ऐसी ही अखण्डता, एकता और प्रेम की भावना देखने के लिए। हमारा स्वप्न सत्य करने का एक-मात्र उपाय है—राष्ट्रभाषा। हिन्दी को शुद्ध हृदय से गले लगाना, इसके पावन प्रताप से जन-जन को परिचित करा देना। इस दृष्टि से राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करना एक राष्ट्रीय अनुष्ठान है, जिसमें योग देना प्रत्येक भारतीय का राष्ट्रीय कर्तव्य है।

हिन्दी को सक्षम बनाइए

हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने में आप जो समय लगाएँगी वह विश्वास कीजिए, कभी व्यर्थ नहीं जाएगा। हिन्दी के उन विरोधियों से मुझे कुछ नहीं कहना है जो अपने विरोध के आवेश में बिना सोचे-विचारे कह दिया करते हैं कि हिन्दी में कुछ नहीं है—न उसमें अच्छा साहित्य है और न भाव प्रकट करने की शक्ति। इन महानुभावों से तर्क करना व्यर्थ होगा। जो लोग जानबूझकर हिन्दी के विषय में भ्रम फैलाना चाहते हैं उनके दुराग्रहों को

दूर करने का प्रयत्न करके मैं भी अपना समय नष्ट नहीं करना चाहती। पर जिन्हें हिन्दी से प्रेम है, जो उसके अध्ययन पर अपना अमूल्य समय लगाते हैं और जो उसे एक राष्ट्रीय शक्ति के रूप में देखते हैं उनसे मैं कहूँगी कि हिन्दी सीखकर उन्हें प्रसन्नता ही होगी। उनके लिए साहित्य का एक ऐसा अक्षय भाण्डार भी खुल जाएगा, जो उनके हृदयों को सुखी करेगा और तृप्ति प्रदान करेगा। कभी न सोचिए कि हिन्दी का साहित्य संसार की किसी भी भाषा के साहित्य से किसी भी प्रकार पीछे है। जिस हिन्दी का महाकवि सूर "अविगत गति कछु कहत न आवे" कह कर ही अविगत की गति को समझता है, जिस हिन्दी का तुलसी "राम समान प्रभु नाहीं कहूँ" का अमर उपदेश देता है, जिस हिन्दी की मीरा "सूली ऊपर सेज पिया की" ढूँढ लेती है, जिस हिन्दी के मैथिलीशरण "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आंचल में है दूध और नयनों में पानी" जैसे करुण रूप में नारी को देख लेते हों, जिस हिन्दी के प्रसाद" क्षणिक वेदना अनन्त सुख, बस समझ लिया शून्य में बसेरा" का दर्शन कर लेते हों, जिस हिन्दी की महादेवी "मधुर-मधुर मेरे दीपक जल" का गीत गाकर हिन्दी वाङ्मय को आलोकित कर रही हों, जिस हिन्दी की वाटिका में आज भी, पन्त, निराला, नवीन, एक भारतीय आत्मा, सियारामशरण, बच्चन, दिनकर, रामकुमार वर्मा, सुमन इत्यादि वाणी के वरद पुत्र तथा पुत्रियाँ अपनी मीठी बोली सुना रहे हों, वह वाणी कब कंगाल हो सकती है? यदि आप कहें कि यह क्या, आपने हिन्दी कवियों के नाम गिना दिये! साहित्य के अन्य अंगों की क्या दशा है? तो आपसे मेरा विनीत निवेदन है कि साहित्य के अन्य अंगों में भी हिन्दी उतनी ही समृद्ध है, जितनी के लिए आपने उसे अवसर दिया है। आप हिन्दी का प्रयोग कीजिए, उसे अपने और राष्ट्र के जीवन में स्थान दीजिए और फिर देखिए कि वह कितनी तेजी के साथ आगे बढ़ती है। आप प्रयोग करके तो देखिए, आप उसे पूर्णतः सक्षम पाएँगे और उसके द्वारा आपको अपने भाव प्रकट करने में निराश नहीं होना पड़ेगा। आप देखेंगे कि कमी हिन्दी में नहीं, वरन् आप में है, जो अब तक उसका प्रयोग करने में उदासीन रहे हैं।

हिन्दी पुस्तकें खरीदिए

यहाँ एक छोटा-सा निवेदन और भी कर देना चाहती हूँ। वह यह, कि आप अपने घरों के द्वार हिन्दी साहित्य के लिए खोलिए। हिन्दी की अच्छी-से-अच्छी चुनी हुई पुस्तकों का आपके घरों में संग्रह होना चाहिये। ये पुस्तकें आपके नन्हे-मुन्ने बच्चों तक को अपना प्रिय मित्र बनाकर अपने आप में रमा लेंगी और फिर राष्ट्र-भाषा-प्रचार का बहुत-सा काम अपने आप हो जाएगा। इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि आप प्रण कर लीजिए कि प्रति मास हिन्दी की एक-दो पुस्तकें अवश्य खरीदा करेंगीं। हम जहाँ आटा, दाल, चावल, धनियाँ, मिर्च, नमक, तेल, लकड़ी और पता नहीं क्या-क्या खरीदा करती हैं, वहाँ क्या हिन्दी की दो-तीन पुस्तकें खरीदना सम्भव नहीं होगा? मैं तो यहाँ तक कहूँगी कि मिर्च-मसाले का खर्च घटा दीजिए और अपने जीवन में हिन्दी पुस्तकों का मसाला डालिए। इस प्रकार जीवन में जो स्थायी स्वाद बढ़ेगा, उसके सामने मिर्च-मसाले का स्वाद कोई भी चीज नहीं है। मुझे तो हँसी आती है उन लोगों पर जो यह कहते हैं कि हिन्दी जब तक पूर्णतः सक्षम न हो जाय तब तक उसका चलन नहीं होना चाहिए। "सक्षम" होने का प्रश्न भी तुलनात्मक है। एक प्रकार से संसार की कोई भी भाषा सर्वांगीण रूपेण सक्षम नहीं कही जा सकती। यदि कोई भाषा एक क्षेत्र में सक्षम हो तो भी यह सम्भव हो सकता है कि वह किसी दूसरे क्षेत्र में कंगाल सिद्ध हो। ऐसी दशा में हमारा सर्व-प्रथम कर्तव्य यही है कि हम हिन्दी का प्रयोग करें और उसे गले लगायें, दूर न हटायें। इस प्रकार हम उसे पूर्ण-रूपेण सक्षम बनाएँ। कुछ लोगों ने इधर अंग्रेज़ी को राष्ट्र भाषा बनाये रखने पर जोर दिया है। यह नारा भी पुरुष-वर्ग की ओर से ही लगाया गया है। मुझे तो इस नारे को सुन कर हँसी आती है। अंग्रेज़ी बड़ी अच्छी और विकसित भाषा है, पर केवल इसीलिए हम उसे अपनी राष्ट्रभाषा नहीं बना सकते। ये पुरुष बेचारे क्या जानें कि अपनी वस्तु की ममता क्या होती है? मान लीजिए हमारा अपना बच्चा किसी अंग्रेज के बच्चे से किसी प्रकार कमजोर हो तो क्या

हम अपने बच्चे को छोड़कर अंग्रेज के बच्चे को अपना बना लेंगे। ऐसी विचित्र बातें पुरुष-वर्ग कहे तो कहता रहे, परन्तु हम ममतामयी बहिनें तो यही कहेंगीं कि नहीं, हम अपने बच्चे को ही अच्छा बनाएँगीं, उसकी त्रुटियाँ दूर करेंगीं और उसके गुणों का विकास करेंगीं। इस मर्म को हम महिलाएँ भली प्रकार जानती भी हैं। हम अपने हृदयों का रस पिला-पिलाकर नित्य जिस प्रकार अपनी सन्तानों को छोटे से पाल-पोसकर बड़ा कर देती हैं उसी प्रकार अपनी राष्ट्रभाषा को भी अपने हृदय की भावनाओं का रस पिला-पिलाकर सक्षम, शक्तिशाली और सर्व-रूपेण सम्पन्न, समृद्ध एवं गौरवमयी बना सकती हैं। ध्यान रहे, हमारे आगे यह कार्य एक चुनौती के रूप में आ गया है और भारतीय स्त्रियाँ चुनौती को स्वीकार करने में कभी पीछे नहीं रही हैं। आज हमें यह चुनौती स्वीकार कर लेनी है और दिखा देना है कि आप लोग चाहे जैसे विवाद में पड़े रहें परन्तु माँ भारती की हम पुत्रियाँ कमर कसकर अपने कर्तव्यों का पालन करेंगी; राष्ट्रभाषा को आगे बढ़ाएँगीं, उसकी श्रीवृद्धि में योग देंगी, उसकी ज्योति से अपने बच्चों के हृदयों को जगमगा देंगीं और इस प्रकार भारत को सदा-सर्वदा के लिए एकता के प्रेम-सूत्र में आबद्ध रखने का मार्ग प्रशस्त कर देंगीं। ध्यान रहे, हम भारतीय नारियाँ हैं। हम क्या नहीं कर सकतीं? आओ, अब समय आ गया है जब हम पुरुषों से भी आगे बढ़कर राष्ट्रभाषा-प्रचार के इस पुनीत अनुष्ठान में उत्साहपूर्वक भाग लें। विश्वास रखिए, कर्तव्य से भटके हुए समाज को सदा स्त्रियाँ ही ठीक मार्ग पर लाती रही हैं। राष्ट्रपिता बापू द्वारा दिखाये गये राष्ट्रभाषा के शुभ मार्ग से आज हमारे देशवासी भटकते जा रहे हैं। हमारा कर्तव्य है कि उन्हें भटकने न दें और उनमें नई लगन की नई ज्योति जगा दें। मेरा विश्वास है कि हमें इसमें निश्चय ही सफलता मिलेगी। धन्यवाद।

एक हृदय हो भारत जननी।

आधुनिक हिन्दी एकांकियों में चित्रित—

सेक्स सम्बन्धी जटिलताएँ

डॉ० रामचरण महेन्द्र

नये एकांकीकारों ने फ्रॉयड की विचार-धारा तथा उसके प्रतिकूल आलोचनाओं से प्रभावित होकर गंभीरता से सेक्स का विवेचन अपने नाटकों में किया है। उन्होंने चित्रित किया है कि सेक्स-दमन के लक्षण नाना रूपों में प्रकट होते हैं। उन्होंने दिखाया है कि आधुनिक व्यक्तियों की अन्तश्चेतना में सेक्स क्षुधा को दबाये रखने का प्रयत्न करता है। अनेक व्यक्ति सेक्स-दमन के शिकार होकर मानसिक विकारों के दास हो रहे हैं।

श्री रावी के १-"पूर्व और पश्चिम", २-रेखा मनुष्य भी है, ३-"पुरुष सुन लें" आदि नाटक सेक्स सम्बन्धी क्रान्ति उपस्थित करते हैं। "पूर्व और पश्चिम" में आपने हमारी आचार-सम्बन्धी पुरानी मान्यताओं पर प्रहार किया है। इसमें नीति और आचार-सम्बन्धी चिंतन पूर्व तथा पश्चिमीय संस्कृतियों की तुलना, सेक्स-सम्बन्धी प्रतिबन्धों का निष्कासन तथा प्रगति का चित्रण है। जिस भावी समुन्नत युग की कल्पना रावी ने की है, उसमें मानव, वासना को निम्नस्तर से उठा कर उच्च परिष्कृत स्तर पर रख सकेगा। अभी हमारे समाज के काम-मानस का विकास चल रहा है। "रेखा मनुष्य भी है" में सेक्स की सीमा को विस्तृत करने वाली चेतना का विवेचन हुआ है। भावी समुन्नत समाज में हमारी सेक्स चेतना परिष्कृत हो जायेगी और अतृप्त क्षुधा न रह जायगी। इसमें स्वप्न सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक ज्ञान भी परिष्कृत रूप में दिया गया है। "पुरुष सुन लें" नाटक में पुरुषों की अनावश्यकता, स्त्रियों का महत्व, भावी युग में नारी की स्थिति आदि विषयों पर विचार किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि छिछली वासना ही प्रेम की पवित्रता को नष्ट करती है। सभ्यता और विज्ञान से हमने भौतिक समाज को आगे बढ़ाया है, पर सौन्दर्य-भावना को नष्ट कर दिया है। वासना का परिष्कार होना चाहिए।

श्री विष्णु प्रभाकर के अनेक नाटक मनोवैज्ञानिक गहनताओं को लेकर लिखे गये हैं। "पाप" में आपने अविवाहित युवती के पाप का विवेचन किया है, "साहस" गरीबी और वेश्या वृत्ति से सम्बन्धित है। "प्रेम", "उपचेतना का छल", "जहाँ दया पाप है", तथा "प्रेयसि पहिले" एकांकी सेक्स की जटिलताओं से सम्बन्धित हैं। "प्रेयसि पहिले" एकांकी में दिखाया गया है कि सेक्स की भूलों से पति पत्नी का जीवन निराश और नीरस हो सकता है।

श्री प्रभाकर माचवे के "पंचकन्या" क्रम के पांचों नाटक सेक्स के विविध प्रश्नों का मनोवैज्ञानिक उत्तर देते हैं। इनकी दृष्टि व्यापक है। इसके अन्तर्गत आपने तलाक, संदेह, प्रेम, वासना, यौन सम्बन्ध तथा आधुनिक संस्कृति पर विचार किया है। "यदि हम वे होते" क्रम के नाटकों में आधुनिक शिक्षित युवक युवतियों के प्रेम सम्बन्धों की विविध दृष्टिकोणों से व्याख्या की है। "वधू चाहिए" में समाज की मनोवृत्तियों का अध्ययन है। अन्य प्रश्नों के साथ-साथ इनके साहित्य में प्रेम की स्वच्छन्दता की भी मनोवैज्ञानिक-मीमांसा है। स्वाभाविमान आदि का चित्रण है।

श्री लक्ष्मीनारायण लाल के "मकबरा", "नूरजहाँ की आखरी रात", "उर्वशी" आदि एकांकी सेक्स दमन की विकृत प्रतिक्रियाएँ और सेक्स सम्बन्धी भूख की प्रबलता चित्रित करती है। श्री चिरंजीत के "मधु मिलन", "छवि बन्धन", "रेशमी साड़ी", और महाश्वेता एकांकी सेक्स सम्बन्धों में सन्देह को स्पर्श करते हैं। जनार्दन मुक्तिदूत के "गोद", "सत्य और सनातन", "किनारा", मूंगा सीपी, नीद के बादल, "मृगतृष्णा" प्रेम के स्वस्थ दृष्टिकोणों का चित्रण है। वासना नामकी भावना यद्यपि प्रेम से अधिक शक्तिशालिनी है, पर वह प्रेम की राह में व्यवधान उपस्थित नहीं कर सकती है, पर आपने दिखाया है कि कर्तव्य का पंथ प्रेम का प्रोत्साहन पाकर और सीधा हो जाता है।

श्री आरसीप्रसादसिंह का 'टूटे दिल', श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का "बसन्त विभ्राट्" और "सुदिन्य" श्री प्रेमनारायण टंडन का "प्रेमी", "साथी", श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का "ब्याह ब्याह ब्याह", आगाहश्र काश्मीरी का "पहला प्यार" प्रो. भगवन्तशरण जौहरी का "स्वप्न की छाया", श्री सत्यजीवन वर्मा का "पति निर्वाचन", श्री विशम्भर मानव का "सन्देह का अन्त" श्री सत्येन्द्र शरत् का "गुंडबाई अनिता", "प्रतिशोध", "ऐस्फोडेल", "उषा की मुसकान", श्री सुमित्रानन्दन पंत के "छाया", आधुनिका, परणीता, साधना, अप्सरि, रजत शिखर, श्री रामचरण महेन्द्र का "जब मिस अनिता प्रिंसिपल बनी" आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सेक्स सम्बन्धी मनोवृत्तियों का विवेचन करते हैं। इनमें से अधिकांश का ध्येय विकृत प्रतिक्रियाओं का निदर्शन है।

श्री कालीचरण चटर्जी का "खरेरू की गृहस्थी" (१६४६) त्रिया चरित्र के गुप्त भेदों को हमारे सामने चित्रित करता है। श्री बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव का 'विवाह" (१६४६) उच्च शिक्षा प्राप्त युवक युवतियों के विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोणों से सम्बन्धित है। कुछ लड़कियां प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार विवाह को सेक्स शक्तियों के विकास का समुन्नत रूप समझती हैं, कुछ स्वच्छन्द प्रेम। इसमें दोनों पक्षों का चित्रण है।

प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप का "आरती" (१६४६) वासना से सर्वथा ऊँचा रहने के उच्च आदर्श को स्पष्ट करता है। इसकी प्रमुख पात्री कहती है, "विवाह की आवश्यकता ही क्या? हम बन्धन को मानते ही नहीं। कोई भी संस्कार बन्धन है। विधान बेड़ी है। कोई भी कानून परतन्त्रता है। अब हम स्वतन्त्र हैं। यह एक नया दृष्टिकोण है।

श्री रामनारायण व्यास का "घर बाहर" (१६४६) नर नारी की लैंगिक प्रतियोगिता को स्पष्ट कर नारी स्वातंत्र्य के दोनों पक्ष पेश करता है। पुरुष दिखाने को तो नारी को घर और बाहर समान अधिकार देने की पुकार करता है, किन्तु वास्तव में वह उसे चिरबन्दिनी ही देखना चाहता है। नारी को दासत्व को ही स्वामित्व समझना होगा, बेड़ियों को ही शृंगार मानना होगा पुरुष की पदरज मे ही विभूति ढूँढनी होगी इस एकांकी में पुरुष के मनोभावों की नग्नता चित्रित की गई है।

श्री प्रशान्त के "गुरुदक्षिणा" एकांकी में वृद्धों में काम-वासना की प्रदीप्ति पर विचार किया गया है। मधुव्रत कुलपति होने पर भी विवाह करना चाहता है। सुवर्णा नामक युवती से जब उसका विवाह होने को होता है, तो उसका प्रेमी मधुव्रत को इस प्रकार डाँटता है:—

"ठहर जाओ, धिक्कार है तुम वृद्धों को। दाँत गिर जाने पर भी, गले का माँस लटकने पर भी, आधी से अधिक आयु खो जाने पर भी तुम विलासिता की ओर दौड़ रहे हो। यह विवाह तुम्हारा काल बन जाएगा। पुत्री के तुल्य लड़की से विवाह करते तुम्हें लज्जा नहीं आई। तुम्हें धिक्कार है!"

श्री वेणीराम श्रीमाली का "अवस्था की पुकार" एकांकी में अधेड़ पुरुषों का विवाह करने की इच्छा

तथा अल्प आयु की विधवा पुत्री को संयम की शिक्षा देने पर व्यंग्य करता है। श्री उदयशंकर भट्ट का "मायोपिया" एक ऐसी अध्यापिका का चित्र प्रस्तुत करता है जो स्वभाव से गंभीर और विचारों में प्रगतिशील है, जो बहुत दिनों से विवाह की महत्ता को तुच्छ दृष्टि से देखती आई है। आज भी उसके विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वह कहती है:—"क्यों नहीं एक लड़की भी बिना विवाह के जीवन बिता सकती है। विवाह एक आवश्यकता है मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार। प्रवृत्ति कमजोरी है। यदि उस कमजोरी को दबाया जा सके, तो विवाह की बीमारी को रोका जा सकता है। उस कमजोरी को शांत करने के उपाय हैं इन्द्रिय दमन, कम खाना, निरन्तर काम करते रहना अपने आप को व्यस्त रखना।" यह एक ऐसी स्त्री है जिसने पिछले सोलह साल से लेकर चौबीस साल की आयु तक सेक्स को पुरुष से घृणा करके दबाया है। वह मानती है स्त्री के अनन्त दुःखों का मूल पुरुष है। इन्हीं बद्धमूल धारणाओं से उसे विवाह से भी उपरति है। अपने भाई तथा मित्र का सुखी वैवाहिक जीवन देख कर वह अपने प्रेमी से प्रेम याचना करती है, किन्तु तब तक वह दूसरी युवती को, उसके सहज स्वाभाविक स्नेहपूर्ण हृदय के कारण, स्वीकार कर लेता है। इस नाटक में सुधी तथा उसकी दलित अनुभूतियाँ और इच्छाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। समय आने पर विवाह ही स्वाभाविक विकास में सहायक हो सकता है।

भट्ट जी का "नई बात" (१९५८) तीन नारियों सुनन्दा, कुन्तल, श्रीमती चोपड़ा का अध्ययन हैं। तीनों स्त्रियाँ तीन पृथक् टाईप हैं। सुनन्दा शृंगार प्रिय, चंचल, दिखावा पसन्द धनी सरकारी अफसर की पत्नी है। अपने धन के मद में मस्त, श्रीमती चोपड़ा स्वतन्त्रता-प्रिय रमणी हैं, जिसे न कोई काम है, न धन्धा। पति दफ़्तर गये और यह बन ठन कर निकली। सिनेमा, जाना उसका रोज का काम है। जो व्यक्ति मिल जाय उसी के साथ चल देगी। रेस में, सिनेमा में, क्लब में, डांस में, कंसर्ट में, पत्नी होकर फौज के लोगों का मनोरंजन भी कर चुकी है। वह चरित्र जैसी चीज़ में विश्वास नहीं करती। जीवन को सजीवता में विश्वास करती है। उसमें लज्जा नहीं, उच्छृंखलता है। तीसरी है कवि पत्नि कुन्तल। इन तीनों टाइपों का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। सांसारिक वृत्त और साहित्यिक की उदार किन्तु गरीब पत्नी को असंतुष्ट रखने वाली वृत्ति का चित्रण किया गया है।

श्री जनार्दन मुक्ति-दूत का "पांचवाँ सफा," गोद, ऊषा मुसकाई, धुंआ, इत्यादि रोमांटिक एकांकी हैं, जिसमें सेक्स की जटिल ग्रन्थियों की विकृत्तियों को उभारा गया है। इनके प्रतिनिधि एकांकी "पांचवाँ सफा" में मृणाल नामकी शक्की मिजाज पत्नि का मनः विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो अपने पति की कहानी की नायिका और पति की कमला को उनकी प्रेम पात्री समझ कर ईर्ष्या में डूब जाती है। पति के प्रति उसके मन में एक गुत्थी सी बन जाती है। परिस्थिति स्पष्ट होने पर मन की गाँठ खुलती है। इसके वाक्य बड़े मर्म-स्पर्शी हैं, जैसे "....तुम एक नारी हो। तुम्हारे अन्दर समुद्र सी गहराई है। तुम सहन कर सकती हो। पर पुरुष यह सब सहन नहीं कर सकता। वह तो अपनी पत्नि पर एक छत्र राज्य एकान्त अधिकार चाहने का आदी है न....।"

"यह क्या जरूरी है कि जब कोई युवती किसी युवक को चाहती है, तो वह उससे शादी भी कर ही लेगी....और न यह जरूरी है कि युवती युवक को भाई कहे या समझे। क्या दोनों में मित्र-जैसा सम्बन्ध नहीं हो सकता।"

प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप: का "स्वप्न हार" (१९४९) एक ऐसी अविवाहित प्रधानाध्यापिका का मनः विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो एक साथ दो व्यक्तियों को समान रूप से प्रेम करती है, एक को मस्तिष्क से दूसरे को हृदय से। विवाह वह किसी से भी नहीं करती। परिणय हार दोनों के चरणों पर चढ़ाती है और फिर सर से लगा कर गले में पहन लेती है। दोनों प्रेमियों के चरण-स्पर्श करती है तथा अन्ततः

एकान्त प्रेम-साधना के लिए चली जाती है। उसे प्रेम के मूर्त आधार की आवश्यकता थी, जिसकी वह आराधना कर सके। प्रेम साधना के लिए मूर्त आधार चाहिए, चाहे शारीरिक संसर्ग न हो सके। यह तत्व इसमें स्पष्ट किया गया है।

श्री चन्द्र किशोर जैन ने नारी मनोविज्ञान का कई दृष्टिकोण से अध्ययन प्रस्तुत किया है। "विषकन्या" एकांकी में सिद्धान्त और वास्तविकता, आदर्श और यथार्थ, कोरी नैतिकता और प्रेम के संघर्ष के द्वारा दिखलाया गया है कि वासना का दमन असंभव, अस्वाभाविक और अहितकर है, किन्तु शमन सम्भव, स्वाभाविक और हितकर है। दमन में अमृत भी विष हो जाता है, और शमन में विष भी अमृत। "पहली भेंट एकांकी में प्रेम और वैभव के मध्य संघर्ष, अतृप्त आकांक्षा की पूर्ति के लिए प्रतिशोध और उत्सर्ग के रूप में दिखलाया गया है।" 'अस्पताल का कमरा' नाटक में यह चित्रित किया गया है कि जिस नारी की उपेक्षित कर मनुष्य छोड़ देता है वह अपने प्रेम के कारण पति के लिए महान् से महान् त्याग कर सकती है और नवीन आकर्षण "गृह-सौख्य को नष्ट कर सकता है। मोटर दुर्घटना से घायल एक व्यक्ति से मिलने के लिए अस्पताल में दो स्त्रियाँ आती हैं। एक उसकी परित्यक्ता उपेक्षित पत्नी और दूसरी नवीन प्रेमिका, जो अस्पताल के कर्मचारियों को अपना परिचय रोगी की पत्नी कह कर ही देती है। बातों में असली पत्नी को ज्ञात हो जाता है कि यह तरुणी उसके पति की प्रेमिका है और पति का भी इसके लिए आकर्षण तथा उसके लिए विकर्षण है। शून्य में निश्वास छोड़ती हुई पत्नी बाहर से लौट जाती है और प्रेमिका को कमरे से जाते देख कर अन्तर्वेदना से व्याकुल हो उठती है।

श्री विश्वम्भर मानव के सामाजिक एकांकी "संकीर्ण' दो फूल, भीगी पलकें, चट्टानें, प्रेम का बंधन, संदेह का अन्त.... "जीवन साथी" इत्यादि का केन्द्र बिन्दु नारी मनोविज्ञान है। इनमें आधुनिक नारी के निगूढ़-तम रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, जो बहुत कम व्यक्तियों पर प्रकट हो पाता है। उसके मन के अतल गह्वरों के उन केन्द्रों का अध्ययन है जो प्रेम व्यवहार से उद्भूत हैं। नारी जीवन की प्रेम सम्बन्धी उलझनों उनके समाधानों, उनके तथा जीवन के प्रति ऐसे दृष्टि-कोणों का आभास मिलता है, जिनको अपना कर वह विषम परिस्थितियों में अपने भाव की रक्षा कर सके।

मानव जी के "संकीर्ण" एकांकी में दो समान कथानकों का सफल गुम्फन है। प्रतिष्ठा की रक्षा के नाम पर एक धनी पिता अपनी कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह एक धनी व्यक्ति से कर देता है। उन प्रेमियों के प्राणों के फूल खिल नहीं पाते। अपमान की चोट पाकर लड़का अपने प्रयत्न से धनी बनता है। जब स्वयं उसकी पुत्री विवाह योग्य होती है और अपना जीवन साथी चुनने का स्वप्न देखती है, तो उसी पिता ने जो स्वयं सामाजिक स्थिति की असमानता का शिकार हो चुका था और जैसे दर्द को पहिचानता था, समय आने पर अपनी पुत्री की भावना को वैसी ही निर्दयता से कुचल कर उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह एक धनी व्यक्ति के साथ किया। आर्थिक इकाइयों से ही मानवी भावनाओं को नापने वाले संसार की दृष्टि में प्रेम जैसी भावना का कोई मूल्य नहीं।

"दो फूल" में भी एक साधारण स्थिति का व्यक्ति धनी युवती का प्रेम पाने के लिए महान् संघर्ष कर बड़ा बनता है। युवती का पिता वचन देकर भी अपनी पुत्री का विवाह धनिक से करता है। निराश होकर प्रेमी विष खाकर आत्म-हत्या करता है। प्रेमिका माता पिता की सम्मान रक्षा के लिए विवाह तो करा लेती है, किन्तु आत्म-हत्या करती है।" भीगी पलकें एकांकी में एक ऐसी सुन्दरी तरुणी का कथानक है, जिसकी ओर अनेक प्रेमी आकृष्ट होते हैं, प्रणय निवेदन करते हैं, किन्तु वह उसे अस्वीकार करती है। सब ओर से निराश होकर जब वह अपने प्रथम प्रेमी के यहाँ आशा के फूल लिए पहुँचती है, तो वह पाती है कि वह अपनी पत्नी से प्रेमालाप कर रहा है। इस व्यक्ति के प्रारम्भिक जीवन में अनेक प्रेमिकाएँ गुजरी हैं, किन्तु वह कहता है—

"व्यक्तियों के प्रेम के ढंग अलग-अलग होते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो जीवन में एक बार प्रेम करने के उपरान्त दूसरे व्यक्ति की कल्पना नहीं कर सकते। कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें प्यार करने के लिए एक व्यक्ति चाहिए, कोई एक व्यक्ति, विशेष रूप से ऐसा व्यक्ति जो उन्हें जीत ले......मैं तुम्हारे सिर पर हाथ रख कर कहता हूं कि जिस दिन से तुम मेरी हुई हो मैंने सब प्रेमिकाओं को हृदय से निकाल कर फेंक दिया है।"

उसी की पूर्व प्रेमिका यह सुन कर मानसिक द्वंद में पड़ जाती है। वह किसकी माँग के सिन्दूर को मलीन करे, सती के या बहिन के? अन्त में वह आत्महत्या करती है।

"चट्टानें" एकांकी में अमिता का पूर्व प्रेमी सात वर्ष पश्चात् उससे मिलता है। अमिता आदर्श-वादिनी तथा उसका पति सत्-असत् का विवेक करने वाला सांसारिक वकील है। वकील को पैसा चाहिए। उचित अनुचित का कोई प्रश्न नहीं। अमिता अपने प्रेमी को ही अपनाना चाहती है, किन्तु समाज, रूढ़ियों और कर्तव्य उसके मार्ग में है। उसी प्रेमी प्रेमी अमिता की समस्या इन शब्दों में व्यक्त करता है—"

...."तुमने अपने पति को एक दिन भी प्यार नहीं किया, अमिता! जब कभी उस व्यक्ति के व्यवहार में कोई भूल या उपेक्षा हुई तुमने तुलना की दूसरे व्यक्ति से....उसे छोटा पाया। तुम्हें पति के प्रति क्षोभ हुआ, विरक्ति हुई, घृणा हुई और यह घृणा रात-दिन बढ़ती गई। प्यार के अभाव को उसने धन के नशे से, मदिरा के नशे से, वासना के नशे से भरना चाहा। दोनों के बीच में इतनी बड़ी खाई खुद चुकी है कि उसका भरना ही कठिन है....वह घृणा अब दोनों ओर से प्रतिहिंसा का रूप धारण करना चाहती है। वह बदला लेना चाहता है, एक दूसरी लड़की से विवाह करके—और तुम बदला लेना चाहती हो मेरे साथ रह कर...आज तक जो कोई बिगड़ा है वह केवल इसलिए कि उसे दुनिया में कोई प्यार करने वाला नहीं था। यदि किसी को प्यार करता है तो यह हो नहीं सकता कि वह बिगड़ जाय। संसार जो आज बिगड़ा है उसका मुख्य कारण यह है कि आज वह प्रेम के स्थान पर नहीं, घृणा के आधार पर चलाया जा रहा है।"

अन्त में प्रेमी यह कर कि मैं चाहता हूँ तुम मेरी प्रेरणा बन कर रहो! अपनी होने पर भी तुम अपनी नहीं हो, इसी से इतना बड़ा आकर्षण है। तुम सामान्य नहीं हो मेरे लिए असाधारण हो।" चला जाता है।"

नाटक के अन्त में अमिता अपने हृदय की व्यथा इन शब्दों में व्यक्त करती है—"पहले कट्टर पिता, फिर चरित्रहीन 'पति फिर आदर्शवादी प्रेमी' मैंने सबके सामने रो-रो कर अंचल पसारा, पर मेरी बात किसी ने न सुनी।" इस एकांकी में प्रेम का उच्चतम स्वरूप चित्रित किया गया है। शरीर में प्रेम आने से प्रेम मर जाता है, वासना ही जीती है।" प्रेम के बन्धन में चार स्त्रियों से विवाह से पूर्व प्रेम आकर्षणों को विवेचना का विषय बनाया गया है। सभी के अन्तर्मन में गुप्त रूप से दलित प्रेम अनूभूतियाँ विद्यमान है। ऊपरी दृष्टि से सुखी दीखने पर भी नारी के मन में हाहाकार और वेदना है।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी एकांकी में सेक्स की अनेक जटिल उलझनों का चित्रण मिलता है। अनेक एकांकीकारों ने मनोवैज्ञानिक शैली से आधुनिक प्रेम-वासना के अन्तर्द्वन्द्वों, संशय और सन्देह दलित कुचली हुई अनुभूतियों को उभारा है और सेक्स के आन्तरिक सत्य को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

पता—प्रिंसिपल गवर्नमेंट कालेज,
सरदार शहर (राजस्थान)

पावस-गीत

श्री चन्द्रसेन "विराट"

★

गीले कर दो अधर धरा के धरती बहुत उदास है,
सबकी पुण्य-पिपासा को बस तुमसे ही अभिलाष है!

ओ, बादल के रसिक देवता! तृष्णा को पहचान लो,
भू की गरम-गरम साँसों पर इन्द्रधनुष को तान लो,
तुम हो जब तक दूर धरा से दूर दूर मधु मास है!
गीले करदो अधर धरा के धरती बहुत उदास है!

पनघट प्यासा, घट भी प्यासा, पनिहारिन प्यासी खड़ी,
घुमड़ो रे घनश्याम कि अब तो सीमाओं से प्यास बढ़ी,
मधुघट छलका ही दो अब तो व्याकुल बहुत पियास है!
गीले करदो अधर धरा के धरती बहुत उदास है!

व्याकुलता की उम्र बढ़ाता, मधुघट छलकाता नहीं,
पनघट पर तो खड़ा हुआ है चुल्लू ढुलकाता नहीं,
व्यर्थ धरा के अधरों पर यह झुका झुका आकाश है!
गीले कर दो अधर धरा के धरती बहुत उदास है!

खेत पियासे आँगन द्वारे, प्यासी सब की साँस है,
बँधी हिचकियाँ व्याकुलता से पर चातक को आस है,
संजीवन दे दो धरती के प्राण तुम्हारे पास है!
गीले कर दो अधर धरा के धरती बहुत उदास है!

पनघट भीगे, घूँघट भीगे, भीगे मन की साधना,
पानी से जब आग मिले तो भीगे मन की कामना,
बिना भिगोये रह न सकोगे सबका यह विश्वास है!
गीले करदो अधर धरा के धरती बहुत उदास है!

पता—६३, कागदीपुरा, इन्दौर शहर (म. प्र.)

तीर्थयात्रियों का स्वर्ग चित्रकूट

★

प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण, हरित श्री से समृद्ध, कलकल निनादिनी जलधाराओं से आवेष्टित तथा ऋषियों एवं सन्तों के दीर्घकालीन संसर्ग से तपःपूत चित्रकूट की पावन भूमि धर्म एवं अध्यात्म-प्रेमियों के साथ ही साथ पर्यटकों के लिए भी समान रूप से आकर्षक है। उत्तरी मध्य-प्रदेश की विन्ध्य गिरि शृंखलाओं के अंचल में पयस्विनी मन्दाकिनी के तट पर बसे हुए इस सुरम्य स्थान में न केवल मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने ही अपने वनवास का कुछ समय व्यतीत किया, वरन् कालिदास के विरह-विह्वल यक्ष को भी यहीं शरण मिली।

चित्रकूट जाने के लिए मोटर एवं रेल दोनों की ही सुविधा उपलब्ध है। मध्य रेलवे की झाँसी मानिकपुर शाखा पर स्थित करवी स्टेशन से मोटर द्वारा चित्रकूट पहुँचा जा सकता है तथा कलकत्ता बम्बई मुख्य रेल मार्ग पर स्थित इलाहाबाद एवं सतना से भी चित्रकूट के लिये नियमित बसें चलती हैं।

चित्रकूट की मनमोहक नैसर्गिक छवि जहाँ भ्रमणार्थियों एवं दृश्यदर्शियों के लिए आकर्षण प्रस्तुत करती है वही चित्रकूट तथा आसपास के पवित्र स्थान धर्म प्रेमियों के लिए तीर्थ-स्थल बन गये हैं जहाँ जाकर हिन्दू तीर्थ यात्री अपने देवी-देवताओं एवं महा-पुरुषों की स्मृति में श्रद्धावनत हो जाते हैं।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अनादिकाल से यह स्थान हिन्दू-अवतारों का क्रीड़ास्थल बना रहा है। महाराज दशरथ द्वारा १४ वर्ष का बनवास पाकर भगवान राम कुछ समय के लिए यहीं ठहरे थे। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों के ही अवतार हुए हैं। भगवान राम के यहाँ पधारने के पूर्व ही चित्रकूट ऋषि-महर्षियों का साधना-स्थल बन चुका था। धार्मिक कथाओं में इस बात का उल्लेख है कि महान् सत्यवादी धर्मराज युधिष्ठिर ने भी यहाँ तपस्या की थी। यही भूमि नल एवं दमयन्ती की मिलन-स्थली बनी। दमयन्ती को पाने के बाद महाराज नल को अपना राज्य भी पुनः प्राप्त हुआ। तप एवं साधना की इसी भूमि में अत्रेय मुनि तथा अनुसूइया ने अपना आश्रम बनाया था।

महाकवि तुलसीदास, शान्ति तथा मुक्ति की खोज में चित्रकूट आये थे, तथा उनके महाकाव्य में इस मनोरम स्थल के सम्बन्ध में अनेक मधुर एवं भावपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। अकबर बादशाह के दरबार के ६ रत्नों में से एक, अब्दुल रहीम 'खानखाना' जब जहाँगीर बादशाह की कोप-दृष्टि के शिकार हुए और उनके सब राजसी वैभव को छीन लिया गया, तब उन्होंने अपने दुर्भाग्य एवं कष्ट के दिनों में इसी स्थान को अपना विश्राम-स्थल बनाया था।

दर्शनीय स्थल

चित्रकूट के आसपास ऐसे अनेक सुन्दर एवं पुनीत स्थल हैं जो अन्यत्र विरले ही पाये जाते हैं। यात्रियों को इस क्षेत्र के प्रमुख ग्राम सीतापुर में ठहरना ही सुविधाजनक है। सीतापुर को केन्द्र-स्थल बना कर वे समीपस्थ स्थलों को सुविधापूर्वक देख सकते हैं। नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्यों एवं पवित्रता दोनों ही दृष्टि से निम्न स्थल उल्लेखनीय है।

सीतापुर घाट पर्णकुटी

सीतापुर में, जो पयस्विनी नदी के तट पर स्थिति है, नदी के किनारे-किनारे २४ घाट है। इनमें से राघव प्रयाग, कैलास, राम और घृत कल्प घाटों को विशेष रूप से पवित्र माना जाता है और इनमें से प्रत्येक में यात्री स्नान करते हैं। रामघाट के समीप स्थित पर्णकुटी के लिए यह कहा जाता है कि यहीं पर राम ने अपनी पत्नि सीता के साथ निवास किया था। यह भी कहा जाता है कि राम ने मन्दाकिनी और पयस्विनी नदी के संगम पर स्थित राघव-प्रयाग घाट पर अपने स्वर्गीय पिता राजा दशरथ को पिंडदान दिया था।

कामदगिरी

कामदगिरी, जो कि सीतापुर से १॥ मील दूर स्थित है इस कथा के लिए प्रसिद्ध है कि इसके तुंग श्रृंगों पर तपस्या कर अनेक साधु-महात्माओं को मोक्ष प्राप्त हुआ है तथा उन्हें स्वर्ग में स्थान मिला है। इस पहाड़ी के चारों ओर एक गोलाकार सड़क है तथा उस पर विभिन्न देवी देवताओं के अनेक छोटे मन्दिर बने हुए हैं। इनमें से एक स्थान पर ३ मन्दिर एक साथ पर बने हुए हैं। इन छोटे मन्दिरों के भीतर पद-चिह्न बने हुए हैं। स्थानीय लोक कथाओं में कहा गया है कि भरत जब अपने सौतेले भाई युवराज राम को वापिस राजधानी ले चलने तथा राजगद्दी पर आसीन करने के लिए लेने आये थे, तब वे राम से इसी स्थान पर मिले थे। दोनों भाइयों का मिलन इतना हृदय-द्रावक था कि निर्जीव शिलाएँ भी प्रेम और करुणा से पिघल गई तथा उन पर उन दोनों के पद चिन्ह अंकित हो गये। 'चरण पादुका' से कुछ ही दूर आगे एक और पहाड़ी है, जिसे लक्ष्मण पहाड़ी कहते हैं। कहा जाता है कि जब राम और सीता रात्रि में विश्राम करते थे तब लक्ष्मण रात्रि-भर इस पहाड़ी पर बैठकर पहरा देते थे। श्रद्धालु तीर्थ-यात्री भक्ति-भाव से इस पथ की परिक्रमा करते है तथा रास्ते के किनारों पर स्थापित विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को आदर से मस्तक नवाते है।

पंच तीर्थ

संकर्षण पहाड़ी से लगभग २ मील दूर पंचतीर्थ नामक एक तीर्थ स्थान है। यह चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, सूर्य और वायु का निवास-स्थान कहा जाता है। इसी के निकट मणिकर्णिका तीर्थ है।

आत्रेय आश्रम गुप्त गोदावरी

चित्रकूट से ६ मील दूर स्थित एक सुन्दर स्थान है जिसके सम्बन्ध में यह बताया जाता है कि इस स्थान पर महर्षि आत्रेय तथा अनसुइया का आश्रम था। घने जंगलों के मध्य यह एक अपूर्व रमणीक स्थल है।

आत्रेय आश्रम से और ५ मील दूर एक कुंड है, जिसे सीताकुंड कहते हैं। यहाँ से एक जलधारा निकलती है तथा उद्गम से थोड़ी दूर चल कर आगे चट्टानों में वह लुप्त हो जाती है। यह जलधारा चट्टानों में खो जाती है तथा भीतर ही भीतर बहती है, अतः इसे गुप्त गोदावरी कहते हैं।

भरतकूप राम शैया

भरतकूप नामक एक और तीर्थ-स्थान है। इसके सम्बन्ध में यह दंतकथा है कि राजा रामचन्द्र के राजतिलक के समय भारत की पवित्र नदियों का जल एकत्रित किया गया था तथा युवराज भरत ने एकत्रित जल को इस कुएँ में डाला था। महर्षि आत्रेय ने इस पवित्र जल-संग्रह-समारोह को सम्पन्न किया था।

इस कुंए से थोड़ी दूर पर एक चट्टान है जिसे राम-शैया कहते है। स्थानीय दंतकथाओं के अनुसार जब राजाराम तथा सीता वनवास के समय चित्रकूट में पधारे थे, तब इन्होंने इस चट्टान पर विश्राम किया था।

हरित अवगुण्ठन में आवद्ध, धार्मिक आख्यायिकाओं से समृद्ध तथा अतीतकाल से महात्माओं, ऋषियों, सन्तों तथा देवताओं की चरण-धूलि से पवित्र नगरी चित्रकूट देश के प्रत्येक भाग से, यहाँ तक कि विदेशों से भी सहस्रों पर्यटकों को आकृष्ट करती है।

आचार्य रघुवीर का कार्य

श्री विजयकुमार माथुर

पिछले बीस वर्ष में हिन्दी को राष्ट्र एवम् राज्य-भाषा बनाने तथा उसकी समृद्धि के लिए जिन विद्वानों और साहित्य-सेवियों ने अधिकतम प्रयास किया है उनमें नागपुर की इण्टरनेशनल एकेडमी ऑफ इण्डियन कल्चर (सरस्वती विहार) के संचालक डाक्टर रघुवीर का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। उनके अधिक परिश्रम और घोर लगन के प्रताप से हिन्दी केवल हमारी राज्य-भाषा ही नहीं बनी, वरन् उसमें वैज्ञानिक साहित्य की सृष्टि के लिए मार्ग भी प्रशस्त हो चुका है।

आचार्य रघुवीर ने १६३६ के लगभग लाहौर में हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का श्रीगणेश किया था। उस समय तक इस दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया गया था। दो चार छुट-पुट प्रयास अवश्य हुए थे किन्तु उनसे किसी प्रकार भी इस समस्या का हल नहीं होता था। अंग्रेजी तथा यूरोप की अन्य भाषाओं में विज्ञान का जो अनन्त भाण्डार है उसे हम अपनी भाषा में लाकर किस प्रकार आत्मसात करें तथा उसमें वैज्ञानिक साहित्य का सृजन किस प्रकार हो इसी प्रश्न को लेकर हमारी भाषा के सामने एक प्रकार का अनिष्टकारी गत्यवरोध उत्पन्न हो गया था। अनेक मनीषियों का मत था कि अंग्रेजी में जितनी पारिभाषिक शब्दावली है उसे अक्षुण्ण रूप में हिन्दी में रख लेना चाहिए किन्तु ऐसा करने का अर्थ यह होता कि भरती के इस प्रकार के विदेशी शब्दों को जिनकी संख्या लाखों तक पहुँचती है-ले लेने से हमारी भाषा का रूप सर्वथा हि बिगड़ जाता, इतना अधिक बिगड़ जाता कि उसे पहचानने में भी कठिनाई होती। और फिर विदेशी शब्दों के समूह के समूह अपरिवर्तित रूप में लेकर हमारा सारा वैज्ञानिक साहित्य विदेशी साहित्य की अनुकृति-मात्र रह जाता। शब्दों से ही भाषा बनती है और शब्द बनते हैं हमारे विचारों से और वे हमारे विचारों के प्रतीक हैं। विदेशी शब्दावली को अपनी भाषा में भरकर हम सदा के लिए अपने मौलिक व स्वतन्त्र चिन्तन का मार्ग बन्द कर देते।

किन्तु दूसरी ओर यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दावली इतनी विशाल तथा विस्तृत है और प्रतिदिन इतनी अधिक सम्पन्न होती जाती है कि अपनी भाषाओं में, जिनमें अभी तक इतने महान् उपक्रम की कल्पना भी नहीं की गई थी, इस शब्दावली के समकक्ष शब्दावली बनाना भगीरथ प्रयास से कम नहीं था। अपनी भाषाओं में इस अभूतपूर्व कार्य को करने की शक्ति किस प्रकार उत्पन्न की जाए यह प्रश्न भी कुछ कम टेढ़ा नहीं था। इस प्रकार हमारी भाषा की उन्नति के दोनों ही रास्ते बन्द थे।

डा॰ रघुवीर ने इस गत्यवरोध को दूर करने के लिए एक नई विचार धारा का सूत्रपात किया। उन्होंने विदेशी पारिभाषिक शब्दावली को अपनी भाषा में केवल अनुवाद रूप में स्वीकार करने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उन्होंने भारत की प्रायः सभी भाषाओं की जननी तथा इस महान् देश की संस्कृति की मूलस्रोत, संस्कृत भाषा को आधार बनाया। उन्होंने अपनी बहु-भाषा-विज्ञता तथा नैसर्गिक प्रतिभा के बल पर इस महान् भारतीय भाषा की संरचना के तत्वों में निहित उस विराट शक्ति को शीघ्र ही पहिचान लिया जिसके प्रयोग से वे यूरोप के वैज्ञानिक साहित्य के समग्र शब्द तथा विचार सम्पदा को भारतीय रूप में अभिव्यक्त

करने की क्षमता प्राप्त कर सकते थे। यह सन्तोष का विषय है कि प्राय: बीस वर्षों के सतत् प्रयत्न और देश के गण्यमान्य विद्वानों की सहायता से वे इस दिशा में एक प्रशस्त मार्ग का निर्माण करने में सफल हुए है।

संस्कृत में लगभग दो सहस्र मूल धातुएँ हैं जिनमें से केवल पाँच सौ ही अधिकतर काम में आती हैं। इस भाषा के विशाल भवन की ये ईटें हैं। इनके अर्थ बहुत कुछ तरल तथा आनम्य हैं। जिस प्रकार कपास के पिण्ड में से, तकुवे के घूमने से डोरा तेजी से निकलता रहता है, उसी प्रकार इन धातुओं के रूप-हीन पिण्ड में से बीस उपसर्गों और प्रायः अस्सी प्रत्यों के प्रयोग से नये नये अर्थ तथा निश्चित रूप वाले शब्द निकलते चले जाते हैं; हृधातु का केन्द्रीय अर्थ है "हरना" और इसी से "हरण" बना है, अब उसमें प्र. आ. सम. वि. परि उपसर्ग जोड़ने से क्रमशः प्रहार आहार, संहार, विहार और परिहार शब्द बनते हैं, जिनके अर्थ केन्द्रीय भाव से मूलरूप में सम्बद्ध होते हुए भी सर्वथा भिन्न हैं। इनके अतिरिक्त शेष उपसर्ग ये हैं—अति, अधि, अनु, अप, अपि, अभि, अव, उद्, उप, दुः, नि, निः, परा, प्रति और सु।

इसी प्रकार तव्य (गंतव्य), अनीय (भेदनीय), तर, तम (अधिकर, तम), मय (स्वर्णमय), शः (अल्पशः), ता (जनता), क (बालक) इत्यादि कृदन्त तथा तद्धित प्रत्ययों के संयोजन से धातुओं तथा संज्ञाओं के अर्थों में विभेद उत्पन्न हो जाता है। डा० रघुवीर ने इसी रीति को अपना कर, जो वास्तव में संस्कृत की रचना का प्राचीन आधार है, वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक शब्दावली के लिए नये-नये शब्दों का निर्माण किया। इस रीति का विशेष लाभ यह था कि अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावलि का, जहाँ प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित और अनेक संबंधी शब्दों से भिन्नता लिये हुए हैं, भारतीय भाषा में अनुवाद करते समय बड़ी सुविधा होती है। इस प्रकार इस रीति से पारिभाषिक शब्दावली का केवल एक-एक शब्द अलग-अलग नहीं, अपितु अपने संबंधी शब्दों के समूह के साथ अनूदित किया जा सका जिससे डा० रघुवीर अपनी शब्दावली को एक क्रमबद्ध तथा संघटित रूप प्रदान कर सके। यही विशेषता आगे चल कर उनकी इस क्षेत्र में अपूर्व देन साबित हुई, क्योंकि इसी विशेषता के कारण भारतीय भाषाओं, खास कर हिन्दी में अंग्रेजी शब्दावली की भाँति ही विज्ञान के अनन्त शब्दों का निर्माण किया जा सकता है और इस प्रकार विज्ञान के अनन्त विदेशी रूप को भारतीय बना कर हम उसे सरल तथा सुगम भी बना सकते हैं—इस प्रकार हिन्दी के पुराने ढाँचे को नवीन विचारों के लिए विस्तृत तथा सुदृढ़ बनाने के कारण आचार्य रघुवीर को आधुनिक हिन्दी का पाणिनि कहा जाए तो शायद अतिशयोक्ति न होगी।

जून १९५५ में नागपुर से A Comprehensive English Hindi Dictionary प्रकाशित हुई। इसमें बृहदाकार के प्रायः १८०० पृष्ठ हैं और एक लाख से ऊपर पारिभाषिक शब्द हैं जिनका सम्बन्ध आधुनिक विज्ञान की अनन्त शाखा-प्रशाखाओं से है। इसके पहले भी डा० रघुवीर ने विषयों के अनुसार कई छोटे कोष प्रकाशित किये थे। इनके साथ ही नागपुर विश्वविद्यालय के लिए इंटरमीडिएट-विज्ञान की लगभग ३४ पाठ्य पुस्तकें नई शब्दावली में लिखकर प्रकाशित हो चुकी थीं। इस विश्वविद्यालय में विज्ञान की शिक्षा इसी शब्दावली द्वारा इंटर की कक्षाओं में सफलता पूर्वक दी जाती रही है। इस कोष के प्रकाशन से तो इस क्षेत्र में क्रान्ति ही उत्पन्न हो गई है, क्योंकि इतनी बृहत् शब्दावली, जिसके निर्माण में अनेक विद्वानों ने भाग लिया है—इतने वैज्ञानिक ढंग से आज तक न बनाई गई थी।

वैज्ञानिक शब्दों के अतिरिक्त प्रशासन-सम्बन्धी शब्दों की भी, स्वतन्त्रता के पश्चात्, देश में बहुत आवश्यकता थी। डा० रघुवीर ने इस कोष में प्रायः सभी ऐसे शब्दों का सन्निवेश किया है और यह हर्ष का विषय है कि इनमें से अधिकांश नवनिर्मित शब्द थोड़े ही समय में हमारी भाषा का अविच्छिन्न अंग बन गये हैं। कुछ के उदाहरण ये हैं संविधान

Constitution) विधान (Legislation) संसद Parliament), अधिनियम (Act), सचिव (Secretary), प्रतिरक्षा (Defence), शासन (Government), प्रशासन (Administration) आदि-आदि। ये शब्द समाचारपत्रों, राजकीय सूचना-पत्रों तथा प्रशासन-सम्बन्धी अनेक पुस्तकों में व्यवहृत हो रहे हैं। इनके निर्माण से हमारी भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति में अद्भुत विस्तार हुआ है। अनेक प्रांतों के प्रशासन में भी इन शब्दों के व्यवहार के कारण जनता को बहुत सुविधा हो गई है।

डा० रघुवीर ने इस प्रकार वैज्ञानिक शब्दावली का हिन्दी में (तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी क्योंकि शब्दावली संस्कृत में है) सूत्रपात ही नहीं किया वरन् उन्होंने इस कार्य को काफी आगे भी बढ़ाया है। उन्हें अपने महान् कार्य का श्री गणेश किया था उनका आज भी वे पूर्ववत् पालन कर रहे हैं।

वास्तव में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण-कार्य पर डा० रघुवीर के जिस अदम्य उत्साह की छाप पड़ी है, उसकी मूल प्रेरणा उन्हें अपने भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट प्रेम से मिली है। उन्होंने हमारी प्राचीन संस्कृति के उद्धार के लिए भी महान् प्रयत्न किये हैं। इसके लिए वे यूरोप तथा एशिया के अनेक देशों में बारबार घूमते रहे हैं। अभी कुछ दिन पूर्व वे चीन और रूस गए थे जहां इन देशों के शासन ने उन्हें निमंत्रित किया था। चीन से प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों, मूर्तियों, अभिलेखों आदि के रूप में जो सामग्री वे भारत लाये थे वह इतनी बिशाल है कि उसके केवल एक अंश की प्रदर्शनी शिक्षा मंत्रालय के तत्वावधान में नई दिल्ली में की जा सकी थी। इसी प्रकार रूस, मध्य-एशिया, मंगोलिया, तिब्बत, जावा, बाली लंका आदि देशों से भी डा० रघुवीर ने प्राचीन भारतीय संस्कृति सम्बन्धी अनन्त सामग्री लाकर सरस्वती विहार को विभूषित किया है। कहा जाता है कि बृहत्तर भारत के इतिहास संस्कृति, साहित्य एवं कला के अध्ययन के लिए भारत में अन्यत्र इतनी अधिक मूल्यवान सामग्री नहीं है जितनी सरस्वती विहार में। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इण्टरनेशनल एकेडमी, जो वास्तविक रूप में ही अन्तर्राष्ट्रीय है, शीघ्र ही दिल्ली में कार्य प्रारम्भ करेगी और भारतीय संस्कृति के अनेक विलुप्त अध्यायों को पुनः लिखने में समर्थ हो सकेगी। आचार्य रघुवीर से देश को बहुत आशाएँ हैं भगवान उन्हें चिरायु करे।
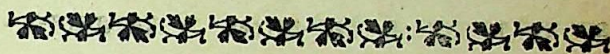
द्विवेदी-युग के सम्पादक, नाटककार और निर्भीक आलोचक

पंडित लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी

श्री अमृतलाल 'अकिंचन'

मैंने सन् १९५४ ई. में पहिली बार, तरुण-साहित्यकार-सम्मेलन-सागर में हिन्दी-साहित्य के प्रकाशवान-स्तम्भ पंडित लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी के दर्शन किये थे। ठिंगना कद, गेहुँआ रंग, प्रशस्त ललाट, सिर पर काले रंग की गोल टोपी, आँखों पर सुनहरे फ्रेम का चश्मा, शरीर पर कमीज, कोट और फुलपेंट धारण किये हुए; ऐसे प्रभावशाली व्यक्तित्व हैं 'विहारी दर्शन' के लेखक सिलाकारी जी। जीवन के अट्ठावन वसन्त पार करने पर भी उनकी कार्य-कुशलता अनुकरणीय है। दिन में आठ दस घण्टे अनवरत लेखन-कार्य में रत रहकर भी वे थकान का अनुभव नहीं करते। चौबीसों घण्टे, उनके अधरों पर हँसी थिरकती रहती है।

सम्मेलन में होने वाली निबन्ध-गोष्ठी का संयोजक मैं था और अध्यक्ष थे सिलाकारी जी। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था "मेरा विश्वास है कि पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और पंडित रामचन्द्र शुक्ल के बाद, कोई ऐसा निबंधकार नहीं हुआ जो हिंदी-निबंध-साहित्य को एक नया मोड़ दे सके। आधुनिक हिन्दी-निबंध-साहित्य में उच्चकोटि के निबंधों का अभाव है। काव्य, कहानी, उपन्यास और नाटक ये अंग संभवतः यथेष्ट परिपुष्ट होते जा रहे हैं; किन्तु निबंध का अंग अब भी निर्बल है। मैं चाहूँगा कि आज के तरुण-साहित्यकार-बंधु ऐसे निबंध लिखें, जो गवेषणा पूर्ण हों। जिनमें मौलिक सूझबूझ हो।" तभी से मैं उनकी विद्वत्ता का कायल हो गया था। इच्छा थी कि सिलाकारीजी के पास घंटों बैठकर साहित्य-चर्चा करूँ; किन्तु वे समयाभाव के कारण, दूसरे दिन अपने वर्तमान निवास-स्थान टीकमगढ़ चले गए। तीन वर्ष बाद अस्वस्थता के कारण सिलाकारीजी पुनः सागर आये।

पूर्व-निश्चित समय पर, बसंत पंचमी के दोपहर के दो बजे मैं सिलाकारीजी के निवास-स्थान पर गया। उस वक्त वे, अटारी पर, बिस्तर पर लेटे हुए, महाकवि पद्माकर भट्ट का बसंत-वर्णन गुनगुना रहे थे। मुझे देखकर उठ बैठे। कहने लगे—

'आइए अकिंचन जी! बैठिए!!'

मैंने कुर्सी पर बैठते हुए, कमरे में नजर दौड़ाई। दीवालों पर सिलाकारीजी के पूर्वजों के चित्रों के अतिरिक्त; महाकवि तुलसी, सूर, बिहारी, रवीन्द्र, टाल्सटाय, गोर्की और प्रेमचंद के चित्रों को भी लगे हुए देखकर मन प्रसन्न हो उठा। छोटी टेबिल पर सामयिक मासिक पत्र-पत्रिकाएँ बिखरी पड़ीं थीं। मैंने मासिक 'वीणा' के पन्ने पलटते हुए कहा—

'कहिये पंडित जी! अब आपका स्वास्थ्य कैसा है?'

सिलाकारीजी हँसकर कहने लगे—'यहाँ की स्वास्थ्यप्रद जलवायु पर्याप्त आराम और आप लोगों का स्नेह पाकर, मैं अपने को बहुत कुछ स्वस्थ-सा, अनुभव कर रहा हूँ। भतीजा डॉक्टर है। वह काफी जिम्मेदारी के साथ मेरा इलाज कर रहा है।'

स्वास्थ्य संबंधी चर्चा के उपरान्त मैंने सिलाकारीजी से पूछा—'आपको साहित्य के प्रति अनुराग किस प्रकार उत्पन्न हुआ? आपने अपने लिए आलोचना का ही क्षेत्र क्यों चुना?'

'जब मैं दस वर्ष का था, उन दिनों मेरे काका पंडित बल्देवप्रसादजी सिलाकारी 'शील' उपनाम

से हिन्दी-भाषा में भजन और गीत लिखा करते थे। पिताजी संस्कृत भाषा में श्लोक लिखा करते थे। घर पर प्रतिदिन पंडितों और कवियों की अच्छी-खासी गोष्ठी हुआ करती थी; जिसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर, शास्त्रार्थ हुआ करता था। वेद, वेदांग, उपनिषद, महाकाव्य से लेकर पिंगल, रस, अलंकार, सभी विषयों पर जोरदार चर्चा हुआ करती थी। कम उम्र का होने के कारण, मुझमें इन विषयों के प्रति न तो कोई रुचि थी और न समझने की क्षमता ही। फिर भी घर पर रोज गोष्ठी जमती, इसलिए सुनना ही पड़ती। धीरे-धीरे इन विषयों के प्रति, मेरी रुचि उत्पन्न होने लगी।

एक बार मेरे निवास-स्थान पर जयपुर दरबार के महाकवि गदाधर भट्ट (पद्माकर के नाती) के सम्मानार्थ श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' की अध्यक्षता में कवि-सम्मेलन हुआ जिसमें एक समस्या-पूर्ति भी रखी गई। 'विधवा के ललाट सुहाग को टीको' सबसे पहिले काका 'शील' ने समस्या पूर्ति करके सुनाई —'दियो विधवा, के ललाट सुहाग को टीको' इस पर उन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। काकाजी की इस सफलता को देख मुझे प्रेरणा मिली। मैं भी प्राचीन ढंग की कविताएँ लिख कर गोष्ठी में सुनाने लगा। इन गोष्ठियों में सम्मिलित होने तथा गोष्ठी में पधारने वाले आदरणीय श्री बाल शास्त्री, पंडित विनायकराव भट्ट, पंडित सुखराम चौबे 'गुणाकर', पं. जानकीप्रसाद द्विवेदी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, सैय्यद अमीरअली 'मीर' प्रभृति विद्वानों और कवियों की रचनाएँ सुनने से मुझे प्राचीन कवियों के पद स्मरण हो गये। काव्य के प्रति अनुराग जाग्रत हो उठा। शास्त्रार्थ सुनने से काव्य और भाषा सम्बन्धी गुणों और दोषों के विवेचन की ओर मेरी दृष्टि जाने लगी। मैं अब प्रत्येक विषय को एक आलोचक की नजर से देखने लगा।

इतना कह कर सिलाकारीजी चुप हो गये। मुझे एक सिगरेट देते हुए उन्होंने दूसरी सिगरेट स्वयं सुलगा ली। कश पर कश खींचते हुए वे आरामकुर्सी पर पैर फैला कर लेट गये। मैंने उनसे पूछा—

'आपकी आरम्भिक रचना कौन सी थी और वह कब, किस पत्र में प्रकाशित हुई?'

'मेरा प्रथम प्रयास एक आलोचनात्मक लेख था जिसके द्वारा मैंने साहित्य देवता को प्रथम पुष्प अर्पित किया था। उन दिनों, मुझे लाला भगवान दीन, पंडित कामता प्रसाद गुरु और श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनेकानेक प्रयोग तथा उनकी रचनाओं की कतिपय पंक्तियाँ, पिंगल शास्त्र की दृष्टि से अशुद्ध नजर आई थीं। बस फिर क्या था। मैंने आव देखा न ताव, एक लेख लिख डाला। जिसका शीर्षक था 'खड़ी बोली की हिंदी कविता?' यह लेख सन् १६२२ ई. में 'लक्ष्मी' मासिक गया में प्रकाशित हुआ, जिसे पढ़कर, हिंदी जगत् मुझसे नाराज हो उठा। मैंने ऐसा अनुभव किया मानो बर्रों के छत्ते में हाथ डाल दिया हो।

आज मैं मानता हूँ कि वह मेरी भूल थी। आलोचना का अर्थ केवल दोष-प्रदर्शन-मात्र नहीं है, किंतु मुझ पर तो गोष्ठी के शास्त्रार्थ की खंडन-मंडन-प्रणाली का भूत सवार था; फिर मैं इतनी कटु आलोचना लिखने में भला, औरों से क्योंकर पीछे रहता।'

'आपके मतानुसार आज की आलोचना का कैसा स्वरूप होना चाहिए? आप सफल आलोचक किसे कहेंगे। आधुनिक युग के आलोचकों में से आप किसे पसन्द करते हैं?' 'पाश्चात्य विद्वान आलोचक वेसिल वर्सफोल्ड के शब्दों में—'आलोचना का अर्थ सम्यक् विचार प्रकट करना है।' मेरे मतानुसार आज की आलोचना का दृष्टिकोण मैथ्यू आर्नल्ड की भाँति स्वस्थ और निष्पक्ष हो। उसकी आलोचना को पढ़ कर पाठक को विषय प्रवेश करने में सुविधा हो। वह ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय को हृदयंगम कर सके। मैं प्रभावाभिव्यंजक आलोचना को हितकारी समझता हूँ आधुनिक युग के आलोचकों में डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी, पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी और प्रोफेसर नगेन्द्र प्रमुख हैं। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी केवल कच्ची सामग्री प्रस्तुत कर देते हैं। उसे आत्मसात कर अपना मन्तव्य पाठक के समक्ष नहीं रखते, जिससे पाठक को कृति के समझने

में आसानी हो। पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी का 'बीसवीं शताब्दी' नामक आलोचना-ग्रन्थ मुझे कुछ अंशों तक पसन्द आया, किंतु वे भी 'प्रसाद' के मोह में पड़ कर 'प्रेमचन्द' का सही मूल्यांकन न कर सके। हाँ बाद के ग्रंथों में वाजपेयीजी ने प्रेमचन्दजी का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है। नई पीढ़ी के आलोचकों में से प्रोफेसर नगेन्द्र की आलोचना का दृष्टिकोण स्वस्थ है। उनकी आलोचना पढ़ कर पाठक को कृति और रचयिता की सही जानकारी हो जाती है; ऐसा मेरा विश्वास हैं। प्राचीन शैली के आलोचकों में पंडित रामशंकर शुक्ल 'रसाल' भी उल्लेखनीय हैं। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की आलोचना डारविन के उपयोगितावाद की भित्ति पर निष्पक्ष और विद्वत्तापूर्ण होती है।

"'काव्य प्रकाश कार' मम्मट की भाँति मेरा मत है कि कृति में कलाकार, जिन भावनाओं का अनुभव करता है, उसे पाठक पर डालने में, आलोचक सहायता करे; तो वह एक सफल आलोचक कहलाने का अधिकारी हो सकता है।"

'क्या आपको नाट्य कला से भी प्रेम है? क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व मैंने आपके द्वारा लिखित 'वीर ज्योति' नामक नाटक' हिंदी नाट्य समिति के द्वारा अभिनीत देखा था।

'जी हाँ अकिंचन जी; मुझे भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भाँति, छात्र जीवन से ही नाटक में अभिनय करने की रुचि रही है। मैंने नगर में हिंदी-नाट्य-समिति की स्थापना की थी। समिति का उद्देश्य था जनसाधारण में नाटक के प्रति रुचि उत्पन्न करना तथा संस्थाओं, साहित्यकारों और पीड़ितों की सहायता, नाटक से होनेवाली आय से करना। मेरे निर्देशन में समिति-द्वारा पहला नाटक पंडित राधेश्याम कथावाचक द्वारा लिखित 'वीर अभिमन्यु' खेला गया था। हिंदी-नाट्य-समिति के वार्षिकोत्सव पर रंग मंच की दृष्टि से, उस वक्त कोई अच्छा नाटक खोजने पर भी न मिला तो मित्रों ने मुझसे नाटक लिखने का आग्रह किया और मैंने 'वीर ज्योति' नाटक लिख डाला।'

'भाई सिलाकारीजी, 'वीर ज्योति' नाटक की पृष्ठ भूमि क्या थी। यह नाटक कब प्रकाशित हुआ; आपने 'वीर ज्योति' के सिवा और कौन-कौन से नाटक लिखे हैं?'

'मैं द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों से प्रभावित था। उन्हीं दिनों; मैंने श्री गोविंद प्रसाद खँगार की 'लक्ष्मी' शीर्षक कहानी पढ़ी; जिसकी कथावस्तु मुझे बहुत पसंद आई। मैंने 'लक्ष्मी' में चित्रित रानी सारन्धा के कथानक को लेकर सन् १९२२ में 'वीर ज्योति' नाटक लिख डाला। रंगमंच की दृष्टि से यह नाटक सफल माना गया। यह नाटक सन् १९२४ ई. में 'शुभचिंतक-प्रेस-जबलपुर' और 'गंगाग्रंथागार-लखनऊ' से प्रकाशित हुआ था। सन् १९३६ ई. में मैंने हरदौल नामक दूसरा नाटक लिखा; किंतु इसके बाद मेरे अंतर के नाटक कार की अपेक्षा मेरा आलोचक सबल हो उठा, इसलिए नाटक लिखना प्रायः बन्द सा हो गया।'

'सफल नाटक की कसौटी क्या है; आप आधुनिक नाटक कारों में से किसे पसंद करते हैं;' मैंने पूछा—

'नाटक में आनंद की प्रधानता हो; क्योंकि प्रत्येक दर्शक अभिनीत वस्तु के साथ हृदय का तादात्म्य स्थापित करके पूर्ण रस की अनुभूति प्राप्त करता है। असल में नाटक, जन-समाज के मनोरंजन और ज्ञानवर्धन का उत्कृष्ट साधन है; इसलिए नाटक का रंगमंच के उपयुक्त होना, मैं उसकी सबसे बड़ी कसौटी मानता हूँ। आज के नाटक-कारों में सभी अपने अपने ढंग से नाटक लिखकर, हिंदी-नाट्य-साहित्य के भांडार को परिपुष्ट कर रहे हैं; किंतु इनमें से डॉक्टर रामकुमार वर्मा और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाटक मुझे बहुत पसंद हैं। विशेषकर 'अश्क' जी के एकांकी तो कथावस्तु देशकाल, विधान और रंगमंच की दृष्टि से बेजोड़ हैं।'

'आपकी साहित्य-सेवा के विकास-क्रम के कौन-कौन से सोपान हैं? आपने किन किन ग्रंथों की रचना की है?'

इसी समय डाकिया एक खत दे गया। वे उसे पढ़ कर खुशी के मारे खिल उठे। कहने लगे—

'बच्चे का पत्र है। टीकमगढ़ से आया है। जब मैं आया था तो पत्नी भी अस्वस्थ थी। बच्चे ने लिखा है कि अब वह पूर्ण रूप से स्वस्थ है!' उन्होंने पत्र टेबिल पर रख दिया और कहने लगे—

'हाँ, तो अकिंचनजी मैं कह रहा था कि छोटे-छोटे आलोचनात्मक लेख लिखने के बाद सन् १६२१ में, मैं 'भृगु' मासिक का संपादक हो गया था। उन्हीं दिनों हिन्दी-साहित्याकाश में झंझावात आया। देव और बिहारी के सम्बन्ध में साहित्यकारों में विवाद छिड़ गया। दीन और मिश्र बन्धुओं में कलम का युद्ध होने लगा। तुलनात्मक आलोचना का युग था। मैंने भी अपने आराध्य बिहारी के पक्ष में अनेकानेक लेख लिखे, जो क्रमशः सुधा, माधुरी, लक्ष्मी, प्रेमा आदि पत्र-पत्रिकाओं में धड़ल्ले के साथ छपते रहे। इन्हीं दिनों; मेरे हितैषियों ने मुझे सलाह दी कि 'दोष प्रदर्शन करने वाली एकांगी आलोचना से, माँ भारती का भला नहीं हो सकता इसलिए आप स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर निष्पक्षतापूर्ण आलोचना लिखें और स्वतन्त्र-ग्रंथ-रचना की ओर भी तेजी से कदम बढ़ाएँ।' इन सलाहकारों में प्रमुख थे पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी। मैंने शीघ्र ही यह कटुता बढ़ाने वाला मार्ग त्याग दिया। मैंने श्रम पूर्वक कार्य करके शृंगार-दर्शन, मध्यप्रदेश का हिन्दी-साहित्य का इतिहास और हिन्दी व्याकरण नामक ग्रंथ लिखे। इनमें से हिन्दी शृंगार दर्शन; रसराज शृंगार पर लिखा गया २५०० पृष्ठों का वृहद् ग्रंथ है; जो अब तक अप्रकाशित है। कोई भी प्रकाशक, इतने बड़े महत्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित करने को तैयार नहीं होता। हाँ....गंगाग्रंथागार लखनऊ से इस ग्रंथ का केवल एक अध्याय 'बिहारी दर्शन' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

यही हाल मध्यप्रदेश के इतिहास का भी हुआ। सन् १६३० ई. में पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में मध्यप्रदेशीय-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन-सागर में हुआ। जिसमें एक प्रस्ताव पारित हुआ कि मध्यप्रदेश सदैव उपेक्षित रहा है, किंतु उसकी साहित्यिक सेवाएँ बेजोड़ हैं। इसके हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा जाना आवश्यक है। यह कार्यभार मुझे सौंपा गया। मैंने मध्यप्रदेश के कोने-कोने में, घूम फिर कर, इतिहास लिखने के लिए प्रामाणिक-सामग्री जुटाई और श्रमपूर्वक मध्यप्रदेश का हिंदी साहित्य का इतिहास नामक ग्रंथ लिखा। नागपुर कटनी और रायपुर में होने वाले सम्मेलनों में इस ग्रंथ के प्रकाशन संबंधी प्रस्ताव भी पास हुए; किंतु आज भी यह ग्रंथ अप्रकाशित है!

'हिंदी व्याकरण कौमुदी' लिखी; जो सन् १६३५ ई. में इंडियन-प्रेस-प्रयाग से प्रकाशित हुई और तबसे लेकर आज तक; मध्यप्रदेश की; हाईस्कूल-सर्टिफिकेट्स परिक्षा के लिए पाठ्यग्रंथ है।

कुछ ग्रंथों की मैंने भूमिकाएँ भी लिखी हैं, जिनमें से भाई दुलारेलाल भार्गव की दुलारे दोहावली की भूमिका उल्लेखनीय है। 'प्रेमा' मासिक जबलपुर के शृंगार-रसांक का संपादक मैं था। मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' की आलोचना 'सुधा' में तथा कृष्ण-काव्य के कविसम्राट् अयोध्यासिंह उपाध्याय के विरोध में श्री व्यंकटेशनारायण तिवारी द्वारा प्रकाशित लेख 'हरिऔध का बुद्दमस' की प्रत्यालोचना 'सुधा में मैंने लिखी। अगर यह आलोचनाएँ स्वतंत्र रूप से पुस्तकाकार; प्रकाशित हों, तो लगभग पच्चीस तीस ग्रंथ तैयार हो जाएँ!

'इतने ग्रंथ लिखने पर भी आपके ग्रंथों का अप्रकाशित रह जाना, हिंदी के लिए बड़ी लज्जा की बात है। आपके साहित्य जीवन के कटु अनुभव कौन कौन से हैं? मैंने उदास होकर कहा'—सिलाकारी जी ने टेबिल पर हाथ पटकते हुए तीव्र स्वर में कहा, 'भाई मेरे! जब साहित्यिक मात्र एक बिरादरी के होते हैं तो फिर....उनमें परस्पर स्नेह होना चाहिए न कि पारस्परिक मनोमालिन्य। मेरा तो अनुभव है, बिना पढ़ेलिखों की अपेक्षा, कतिपय पढ़ेलिखे ज्ञानी अधिक स्वार्थी होते हैं। सच बात तो यह है, अकिंचन जी, कि खरी बात लोगों को कड़वी लगती है और मेरी आदत है साफ-साफ कहने की। इसीलिए मैं चाटुकारिता करके किसी साहित्यिक-मठाधीश को गुरु मानकर, उनका प्रियपात्र न बन सका। नतीजा यह निकला कि मेरे

अनेक ग्रंथ अप्रकाशित रह गये। इस उम्र में भी जीवन संघर्ष करते ही व्यतीत हो रहा है। आप आग्रह कर रहे हैं, तो एक कटु अनुभव आपको सुना दूँ। बात उन दिनों की है, जब मध्यप्रदेशीय हिंदी साहित्य सम्मेलन ने मेरे द्वारा लिखित 'मध्यप्रदेश के इतिहास' के प्रकाशन का प्रस्ताव पास किया था। भाई ब्यौहार राजेन्द्रसिंह ने कहा—'आज कल सम्मेलन की आर्थिक स्थित डाँवाडोल है। फिलहाल, हम इतना बड़ा ग्रँथ छपवाने में असमर्थ हैं।' मैं खामोश हो गया, किंतु आश्चर्य तो उस वक्त हुआ, जब इन्हीं सज्जन ने, उसी वर्ष सम्मेलन द्वारा, स्वयं का लिखा हुआ परिचयात्मक ग्रंथ 'नक्षत्र लोक' प्रकाशित करा डाला ? इस वृत्ति को आखिर क्या कहा जाय। यह तो वही मसल चरितार्थ हुई कि, लोभी बाँटे रेवड़ी चीन्ह चीन्ह कर देय।"

इसी समय सिलाकारी जी के भतीजे डॉक्टर लक्ष्मी नारायण सिलाकारी ने कमरे में कदम रखा। चाचा सिलाकारी को दवा की खुराक पिलाने के बाद डॉक्टर सा. ने मुझसे कहा—

'आज चाचा जी का व्रत है। उन्हें फलाहार कर लेने दें। फिर तो साहित्य-चर्चा होगी ही ?'

सिलाकारी जी के आग्रह करने पर मुझे भी उनके साथ फलाहार करना पड़ा। चाय का दौर चला। सिगरेट का कश खींचते हुए सिलाकारी जी कमरे में टहलने लगे—

मैंने उनसे सवाल किया—'आप आज कल, हिंदी-साहित्य के किस अंग को परिपुष्ट कर रहे हैं ?'

'सन् १९२३ ई. में ओरछा के कुमार वीरसिंहजू देव से परिचय हो गया था। वे जब तक सागर में रहे तब तक मेरे घर पर जमने वाली गोष्ठी में सम्मिलित होते रहे। दिसम्बर सन् १९४४ में जिन दिनों वीरसिंह जू देव ओरछा नरेश हो चुके थे, ललितपुर स्टेशन पर मिल गये। वे स्नेहवश मुझे टीकमगढ़ ले गये। उन्होंने मेरी आवभगत करने के बाद मेरे सामने एक प्रस्ताव रखा। उनके आराध्य महाकवि तुलसीदास के संबंध में एक खोजपूर्ण ग्रन्थ लिखने की जिम्मेवारी मैं ले लूँ। मैं सोच में पड़ गया। ओरछेश ने हँस कर कहा—'मैं जानता हूँ कि साहित्यकार बंधन पसन्द नहीं करता, इसलिए मैं आपको देव और भूषण की भाँति राज्याश्रित रख कर ग्रन्थ रचना नहीं कराना चाहता। यहाँ आप मेरे मित्र की भांति रह कर, ग्रंथ रचना कर सकते हैं। उनके स्नेहवश मुझे रुकना पड़ा। उनका प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। ग्रंथ लिखने के पूर्व मैं कविकुल तिलक तुलसी के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री एकत्र करने के लिये राजपुर, बनारस, सोरों, मलीहाबाद, प्रयाग, चित्रकूट आदि स्थानों का भ्रमण करता रहा। सामग्री एकत्रित करके दो वर्ष बाद में टीकमगढ़ लौटा और 'तुलसीदास' नामक ग्रन्थ लिखने में संलग्न हो गया।'

'पंडितजी ! आपकी तुलसीदास ग्रन्थ की संपूर्ण योजना क्या है ? यह ग्रंथ कब तक पूर्ण होगा ? उसमें लगभग कितना रुपया खर्च होगा ?' मैंने जिज्ञास-पूर्वक पूछा—

'यह ग्रंथ 'रामायण' की भाँति, सात खंडों में पूर्ण होगा। मेरा विश्वास है कि इस ग्रंथ में तुलसीदास के सम्बन्ध में हर प्रकार की ज्ञातव्य सामग्री प्राप्त हो सकेगी। अब तक इस ग्रन्थ के पाँच भाग पूर्ण हो चुके हैं जिन पर लगभग एक लाख रुपये व्यय हो चुके हैं। कहा नहीं जा सकता कि ग्रन्थ के पूर्ण होने तक कितने रुपये और खर्च होंगे। हाँ मेरा अनुमान है कि दो वर्ष बाद यह ग्रंथ पूर्ण हो जायगा। इस ग्रंथ के प्रथम भाग के सुनने के बाद ओरछेश वीरसिंहजू देव ने मुझे ५ हजार रुपये का पुरस्कार देकर सम्मानित किया था। दुःख की बात है कि इतने विद्वान, गुणग्राही, साहित्य-प्रेमी महाराज वीरसिंहजू देव क्वांर सुदी १४ संवत २०१३ में स्वर्गलोक सिधार गये। आजकल उनके पुत्र महाराज देवेन्द्रसिंह के संरक्षण में रह कर मैं—'तुलसीदास' का शेषांश लिखने में व्यस्त हूँ।

आपने साहित्यिक जीवन में किन-किन गण्यमान्य व्यक्तियों का सान्निध्य प्राप्त किया है ?'

'गुरुदेव श्री बाल शास्त्री, पं० विनायकराव भट्ट, प्रेमचन्द, पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' गयाप्रसाद प्रसाद शुक्ल 'सनेही' जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' जगदम्बाप्रसाद हितैषी, पंडित कामताप्रसाद गुरु, जानकी प्रसाद द्विवेदी और ओरछेश वीरसिंहजू देव, जब तक जीवित रहे मुझे साहित्य-सेवा में संलग्न रहने की प्रेरणा और बल देते रहे।

मेरे मित्रों में सर्व श्री-बिहारीलाल ब्रह्मभट्ट बिजावर, महाकवि 'बृजेश' रीवां, डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, जहूरबख्श, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, पं. ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, कमलेश, डा. वेणीशंकर झा प्रमुख है। इनका मुझ पर सदैव ही स्नेह रहा है। दुलारेलाल भार्गव मेरे अनन्य मित्रों में से हैं। भार्गवजी के साथ मेरे साहित्य-जीवन के अनेक वर्ष बीते हैं, उनका नामोल्लेख न करना मेरी कृतघ्नता होगी।'

'आपका जन्म कब हुआ? आपके जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है?' मैंने अंतिम प्रश्न किया।

'मेरा जन्म कुवार सुदी पूर्णिमा के दूसरे दिन संवत् १९५५ वि. में रामपुरा सागर में हुआ। जीवन के ५८ वर्ष पार करने के बाद मुझे लगता है कि मैं चलते चलते थक सा गया हूँ? किन्तु थकने का अर्थ कार्य की समाप्ति न समझ लेना। मेरी इच्छा है कि 'तुलसीदास' ग्रंथ पूर्ण होने के बाद मैं अपनी जन्म-भूमि सागर में रहकर, जीवन की अंतिम साँस तक साहित्य-सेवा करता रहूँ।'

रात्रि के आठ बज चुके थे। इतने में उनके पक्के गानों के शौकीन एक मित्र पधारे। उन्होंने सिलाकारी को याद दिलाया कि आज वसंतोत्सव में शामिल होने श्री रिंगे के यहाँ जाना है। मैं उठकर घर चला आया।

पता—अमृतलाल 'अकिंचन' ३।३४ सदर बाजार सागर

आंचल भीग गया

श्री उदयप्रकाशसिंह 'कसक'

कहानी
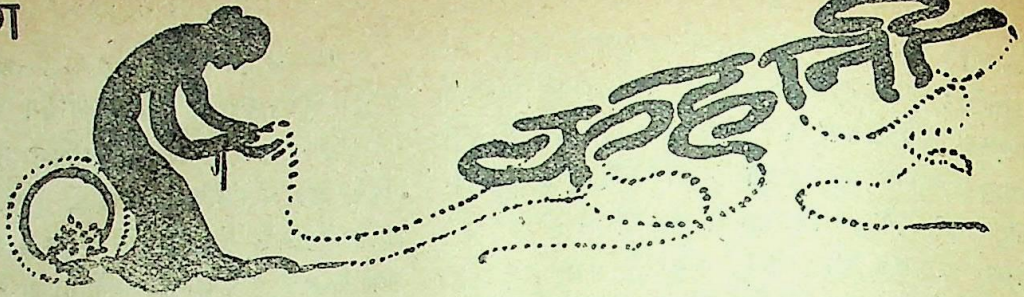
वह !

धोबिन की बिटिया थी

उषा की प्रथम रश्मियों ने उसे छुआ था, फूल की कोमलता ने उसे प्यार किया था, चाँद की आभा उस के रोम-रोम में समा गई थी। शैशव की चपलता में वह एक अविकसित कली थी, उसका नाम था प्रेमा।

उसकी बूढ़ी दादी कभी-कभी कह उठती थी—कैसी फुदकती नाचती घूमती है, किसी दिन अपनी उँगलियों पर दुनिया को नचाएगी।

वह अपने "मालिकों" के यहाँ जाती, दरवाजे को खटखटाती हुई कहती "कपड़े ले लो बाबूजी" उस की इस स्वर-लहरी पर सभी मुग्ध थे। इसी स्नेह को प्रकट करते हुए कोई उसे 'मुन्नी' कहता, कोई उसे 'प्रेमा रानी' और कोई 'छोटी धोबिन' भी कह देता था। ऐसी दशा में रजनी का उस के प्रति आकर्षित हो जाना कुछ असम्भव न था। आखिर नारी थी, ममता और मोह की पुतली नारी !

रजनी अभी ही विवाह के बन्धनों में पड़ी थी, पति-देव नई उम्र के एक सहकारी कर्मचारी थे, इसीलिए रजनी को उनके साथ यहाँ आना पड़ा था।

रजनी का हृदय प्रेमा के प्रेम से अछूता न रह सका। वह जब घर आती, जो कुछ भी बन पड़ता वह प्रेमा को देती थी—कभी मिठाई, कभी नमकीन, कभी पैसे। प्रेमा जो भी पाती प्रसाद के रूप में प्राप्त कर के फुदकती हुई चली जाती और रजनी खिड़की से ताकती रहती, अपने ममत्व को अपने आँचल में समेटे हुए !

धोबिन सभी के यहाँ जाती थी और सभी का स्नेह उसे सरलता से मिल गया था। वह सभी से हँस कर मुसकरा कर बोलती थी उसका प्रेम सभी के लिए बराबर था, जैसे चाँद की किरणें सभी पर समान ही पड़ती हैं। उस के हृदय में न किसी के लिए घृणा थी और न किसी के लिए द्वेष—

वह रजनी और रजनी के पति देव से जब आती तो "इकन्नी" ही माँगती। वह इतना जानती थी कि उसकी मन-चाही चीज "इकन्नी" से ही मिल जाएगी उसके लिए रुपये से बड़ी "इकन्नी" ही थी, रुपये का प्रयोग उसने किया नहीं था। इकन्नी ही उसकी प्रसन्नता थी और वही उसका उल्लास भी—

कभी-कभी रजनी के पति पूनम पूछ उठते थे-क्यों प्रेम धुलाई के कितने पैसे हुए ? यह सवाल सदैव ही उसके लिए नया ही होता था। "क्यों ! तुम धुलाई नहीं जानतीं ?" मुझे दामों का क्या पता बाबूजी, मुझे तो इकन्नी ही चाहिए ! कभी पूनम पूछ उठता था—"क्यों प्रेमा कपड़े देर से क्यों लाई ?" "बाबू पानी बरसने लगा था सूख नहीं पाये" वह अपने बाप-दादों से यही सुनती आई थी इसलिए गरमी हो या बरसात, उसका यही एक उत्तर होता–पूनम और रजनी उसकी इस चाल पर हँस पड़ते थे !

हर तीज-त्यौहार को उसे उपहार मिलते, कोई उसे ब्लाउज देता, कोई उसे धोती, कोई फ्रॉक। जो कुछ भी उसे मिलता था उससे उसका हृदय भर जाता था। इस देन के विषय में रजनी कभी पीछे नहीं रहती थी, पड़ोस में वह अपना स्थान इस विषय में सदैव प्रथम ही रखती थी, चाहे उसे अपने पति से कितनी भी हठ करनी पड़ी

हो। पिछली ही बार जब वह बाजार गई थी तो उस के पति देव ने कहा था—"रजनी" यह ब्लाउज किसके लिए ले रही हो ? "प्रेमा के लिए":—

"अरी, पगली ऐसी मँहगाई में ऐसा सिलकिन ब्लाउज धोबिन को दिया जाता है।" उत्तर में रजनी ने कहा था—"हाँ दिया जाता है।" और अधिक हठ करने पर पूनम को अपनी हार माननी पड़ी थी और वही ८ रुपये का ब्लाउज खरीदना पड़ा था। पड़ोस में बड़ी प्रशंसा हुई थी। कई बार प्रेमा ने रजनी के पैर छुए थे, जो मिला उसी से उसने कहा "मुझे रजनी चाची ने यह ब्लाउज दिया है।"

प्रेमा जब कहती थी "बाबू जी कपड़े ले लो" तो उसकी यह आवाज सभी में सिहरन पैदा कर देती थी सभी के हृदय उस मीठी आवाज से गद्‌गद हो जाते थे।

समय के साथ-साथ प्रेमा की शैशव की चपलता यौवन की गम्भीरता में बदल गई। अब वह अधिक किसी से बात नहीं करती थी, खिलखिला कर बात करने में अब उसे लज्जा लगती थी, अब वह प्रायः अपने वक्षस्थल को देखती, कहीं धोती हट तो नहीं गई है। कभी एकान्त में बैठ कर कुछ स्वप्न बनाती थी। उसे कुछ विशेष आनन्द सा आने लगा था, कुछ विशेष सिहरन सी अंग अंग में होती थी, जिसे वह स्वयं ही न समझ पाती थी। घर से अब वह बहुत कम निकलती थी, पर मनचले छोकरे प्रायः उसके घर से निकलने लगे थे।

यह बात रजनी ने भी सुनी और कुछ उदास हो गई। शायद उसे घृणा हुई या उसके रूप से ईर्षा—

'बाबू कपड़े ले लो' आज भी उसकी आवाज में वही माधुर्य था, परन्तु रजनी उसी विचार-मुद्रा में बैठी रही। आज सदैव की भाँति उसमें सिहरन नहीं हुई—कुछ उलझन बढ़ आई।

वह कल रात से अपने पति देव से नाराज थी, क्योंकि वह प्रेमा को देने के लिए एक पाँच रुपये की साड़ी ले आये थे। पर रजनी ने पूनम से कुछ कहा नहीं और पूनम भी समझने में असमर्थ रहा। कुंडी खुली, प्रेम अन्दर आई।

पूनम ने पूछा—'प्रेमा कपड़े की कितनी धुलाई हुई ?' प्रेमा कुछ बोली नहीं, लज्जा से मुँह नीचे झुका लिया। पूनम ने कहा "वही चार पैसे या चार रुपये ?" इस बार प्रेमा को अपनी बचपन की बात से कुछ हँसी आ गई, जिसे उसने अपने अधरों में ही दबा कर धीरे से मुस्करा दिया। प्रेमा की हँसी रजनी को सदैव मोह लेती थी, पर आज अच्छी नहीं लगी।

प्रेमा ने धीरे से कहा—"बाबू, कल होली है !"

यह सुन कर पूनम ने अन्दर जा कर रजनी से पूछा—'प्रेमा को इस बार क्या दिया जाएगा ?' रजनी कुछ बोली नहीं; पूनम न समझ सका कि रजनी की नाराजी का क्या कारण है। पूनम ने फिर पूछा और इस बार रजनी ने झुँझला कर उत्तर दिया—'दे न दो दो-चार आने।'

पूनम कठिनता से अपने आश्चर्य को दबा पा रहा था।

'कुल दो-चार आने !'

'दो चार आने नहीं तो क्या ? दे दो वही साड़ी जो कल लाये हो, पूछते क्या हो ?'

पूनम ने बॉक्स खोला और साड़ी का बंडल निकाल लाया। 'लो प्रेमा यह तुम्हारे लिए साड़ी है।'

रजनी की आँखें टकटकी बाँध कर पूनम के हाथों को देख रही थीं। आज भी प्रेमा को उतनी ही प्रसन्नता हुई थी जितनी कभी चार पैसे से होती थी ! पर सहसा उसकी दृष्टि रजनी की आँखों पर पड़ी, जो क्रोध से लाल थीं। प्रेमा को रजनी के मौन में छिपे सन्देह को समझने में देर न लगी। उसके हाथ काँपने लगे, आँखें भर आईं, साड़ी हाथ से छूट गई, दो आँसू की गरम-गरम बूँदें टपक कर आँचल पर आ गिरीं, जिस को छिपाये हुए वह घर चली आई।

पूनम खिड़की से मौन ताकता रहा और रजनी ने उसे देख कर भी नहीं देखा।

प्रेमा ने जीवन में अनेकों कपड़े धो डाले। अनेकों होली के रंग छूट गये, पर वह धोबिन होकर भी अपने आँचल के उन दो आँसूओं के चिह्न न धो सकी, कभी न धो सकी।

पताः—द्वारा संचालक, मैडीकल ऑफिसर इन्दौर।
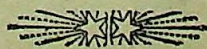
नाप-तौल में दशमिक प्रणाली का आरम्भ

एक बार बम्बई के एक सज्जन उत्तर भारत के किसी नगर में गये। वहाँ नाना प्रकार की मिठाइयाँ देखकर उनका मन मचल गया और उन्होंने एक पाव रबड़ी मोल ली और उसे चट कर गये। अभी वह रबड़ी के सुस्वाद का मजा ले ही रहे थे कि उनके पेट में दर्द होने लगा और रबड़ी खाने का सारा मजा किरकिरा हो गया। बात असल में यह थी कि वह जितना हजम कर सकते थे, उससे कहीं अधिक खा गये थे। इस गलती का कारण यह था कि बम्बई का उस समय का 'पाव' उत्तर भारत में प्रचलित पाव का लगभग आधा था। उन्होंने अपनी ओर से ठीक ही रबड़ी ली, परन्तु वह निकली अंदाज से दुगुनी।

यह किस्सा सच हो या मनगढंत। इससे एक बात का पता चलता है कि देश के विभिन्न भागों में नापतौल की एक-सी प्रणाली न होने से कितनी गड़बड़ी होती है।

देश में प्रायः सब जगह मन-सेर-छटाँक की तौल चलती हैं, परन्तु कहीं सेर २४ तोले का होता है तो कहीं ११२ का। देश में इस समय लगभग १५० तरह के तौल-नाप चल रहे हैं। इसमें भी अनाज तौलने का सेर और है और दूध का और।

इस गड़बड़ी को दूर करने के विचार से आयोजना आयोग ने १९५५ में इस समस्या का अध्ययन किया। विस्तृत जाँच-पड़ताल के बाद आयोग ने सिफारिश की कि देश-भर में मेट्रिक प्रणाली की नाप-तौल चलायी जाय। संसार की करीब दो-तिहाई जनता इसी तरह की नाप-तौल से अपना काम चलाती है। इस प्रणाली का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह अत्यन्त सरल है।

मेट्रिक प्रणाली दशमिक प्रणाली है। सभी को पता है कि दस का पहाड़ा कितनी जल्दी याद होता है। दशमिक प्रणाली के सिक्के चालू हो जाने से लोगों को पता चल ही गया है कि यह कितनी आसान है। इससे हिसाब सरल हो गया है। नाप-तौल की मेट्रिक प्रणाली में भी सब पैमाने १० के होते हैं:—जैसे, १० ग्राम=१ डेकाग्राम; १० डेकाग्राम=१ हेक्टोग्राम और १० हेक्टोग्राम=१ किलोग्राम। इसी तरह १ सेंटीमीटर में १० मिलीमीटर होते हैं, १ डेसीमीटर में १० सेंटीमीटर और १ मीटर में १० डेसीमीटर।

हमारी परम्परा

लगभग दो हजार वर्ष पहले भारत में ही गणित में 'शून्य' का व्यवहार शुरू हुआ, और दशमिक प्रणाली का आरम्भ हुआ। यह प्रणाली संसार को भारत की महत्त्वपूर्ण देन है। मेट्रिक प्रणाली इसी पर आधारित है। इसलिए इसे अपना कर हम अपनी ही प्राचीन परम्परा को अपना रहे हैं।

१९५६ में मेट्रिक प्रणाली के व्यवहार के लिए कानून बनाया गया। इसमें वर्तमान बाटों, नपुओं और पैमानों की जगह मेट्रिक प्रणाली के पैमाने निश्चित किये गये हैं।

क्रमशः परिवर्तन

इतना बड़ा परिवर्तन एकदम नहीं हो सकता। इसी कारण इसके लिए १० वर्ष की अवधि रखी गयी है। इस अवधि में नयी प्रणाली धीरे-धीरे चालू की जा सकती है।

राज्य सरकारों और व्यापारियों के प्रतिनिधियों के साथ काफी सलाह-मशविरा करने के बाद यह तय किया गया है कि यह प्रणाली १ अक्टूबर, १९५८ से विभिन्न राज्यों के कुछ चुने हुए क्षेत्रों में चालू की जाए। इसके अलावा उसी दिन से यह सूती वस्त्र, लोहा और इस्पात, इंजीनियरी, भारी रसायन, सीमेंट, नमक, कागज और कहवा उद्योगों में भी शुरू की जाएगी।

आरम्भ में नयी प्रणाली के साथ-साथ दो वर्ष यानी ३० सितम्बर, १९६० तक, पुरानी प्रणाली की मापतौल भी चलती रहेगी। इस बीच लोग नयी प्रणाली के आदि हो जाएँगे। दो वर्ष के बाद इन क्षेत्रों में केवल मेट्रिक बाट और पैमाने ही चलेंगे। धीरे-धीरे इसी प्रकार यह प्रणाली अन्य क्षेत्रों में भी चलायी जाएगी। सन् १९६६ तक सारे देश में मेट्रिक प्रणाली ही चालू हो जाएगी।

इस प्रकार १ अक्टूम्बर, १९५८ से चुने हुए क्षेत्रों में, जहाँ यह प्रणाली चालू की जा रही है, दुकानदार भाजी, अनाज, कोयला आदि पुराने सेर के अलावा नयी किलोग्राम की तौल से भी बेच सकेंगे। कपड़े की खुदरा बिक्री गज के हिसाब से चालू रहेगी। मद्रास और केरल में नयी व्यवस्था से कोई फर्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि वहाँ अनाज नपुए से बेचा जाता है, तौल से नहीं।

१ अक्टूबर से आरम्भ

१ अप्रेल, १९५७ से दशमिक प्रणाली के सिक्के आरम्भ हो गये हैं। अब इनसे लोग अभ्यस्त हो गये हैं।

प्रारम्भ में मेट्रिक नाप-तौल से कुछ कठिनाई अवश्य होगी। परन्तु जब पूरा परिवर्तन हो जाएगा तब जनता इसके लाभों को समझने लगेगी और पसन्द भी करेगी।

प्रमुख उद्योगों में १ अक्टूबर से कच्चे माल की खरीद और तैयार माल की बिक्री दशमिक तौल और पैमानों में होगी। थोक खरीद-बिक्री के हिसाब में दाम और तौल भी मेट्रिक प्रणाली में लिखे जाएँगे। परन्तु खुदरा बिक्री पुराने हिसाब से ही चलती रहेगी।

पटसन के थोक व्यापार में यह प्रणाली १ जुलाई से आरम्भ की जा चुकी है, क्योंकि इसका कारबार इसी तारीख से खुलता है।

सरकारी विभागों और प्रतिष्ठानों में भी यह प्रणाली धीरे-धीरे लागू की जाएगी। १ अक्टूबर से सामग्री खरीदने में सरकारी विभाग मेट्रिक नापतौल का उपयोग कर सकेंगे। बीजक और टेंडरों में वस्तुओं के तौल और मूल्य मेट्रिक पैमानों में लिखे जाएँगे। इंडियन एअर लाइंस तथा एअर इंडिया इंटरनेशनल के विमानों में माल-असबाब की तौल और भाड़ा इसी प्रणाली में लिखे जाएँगे।

भूमि और खानों की नयी पड़ताल में दशमिक प्रणाली का प्रयोग होगा, परन्तु वर्तमान नकशे भी चलते रहेंगे। उन पर पुराने पैमानों को नये में बदलने की तालिका छाप दी जाएगी। सरकारी विभाग जिन आँकड़ों का संकलन तथा प्रकाशन करते हैं वे सब मेट्रिक प्रणाली में होंगे।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने मेट्रिक प्रणाली को लागू करने की तैयारी शुरू कर दी है। कारखानों में नये बाट और नपुए किस मात्रा में बन सकेंगे, इसकी पड़ताल की गयी है और इससे पता चलता है कि इनके बनाने में दिक्कत नहीं होगी। राज्य सरकारें स्वीकृत कारखानेदारों को नये बाट आदि बनाने के लिए लाइसेंस देंगी। तौलने की मशीनों को भी मेट्रिक प्रणाली में बदल दिया जाएगा।

नये बाट, पैमानों को चालू करने के लिए राज्य सरकारों ने आवश्यक कानून बनाये हैं और बना रही हैं। राज्यों में, इसके लिए नये विभाग खोले जा रहे हैं और कर्मचारियों को इस सम्बन्ध में शिक्षा दी जा रही है।

लोगों को मेट्रिक प्रणाली के पैमाने बताने और समझाने के लिए प्रचार किया जा रहा है। भारत में मेट्रिक प्रणाली चालू करने के निर्णय से संसार के सभी देशों का इस ओर ध्यान गया है। अभी तक ब्रिटेन और अमेरिका ने यह प्रणाली नहीं अपनायी है। वहाँ पर भी अब यह सवाल उठाया जा रहा है। पिछले १०० वर्षों में ५८ देशों ने इस प्रणाली को स्वीकार किया है और इससे उन्हें सुभीता हुआ है।

राष्ट्रीय एकता में सहायक

जब मेट्रिक प्रणाली पूरी तरह लागू हो जाएगी, तो जन-साधारण इसके लाभों को अनुभव करेंगे। विशेषतः स्कूलों और कालेजों के छात्र तो इसे बहुत पसन्द करेंगे, क्योंकि उन्हें हिसाब लगाने में आसानी होगी और बहुत से पैमाने न रटने पड़ेंगे।

इस प्रणाली से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि यह राष्ट्रीय एकता बढ़ाने में बहुत सहायक होगी। फिर भारत का कोई नागरिक देश के किसी भी भाग में चला जाय उसे वहाँ के नाप तौल न जानने से परेशानी नहीं उठानी पड़ेगी।
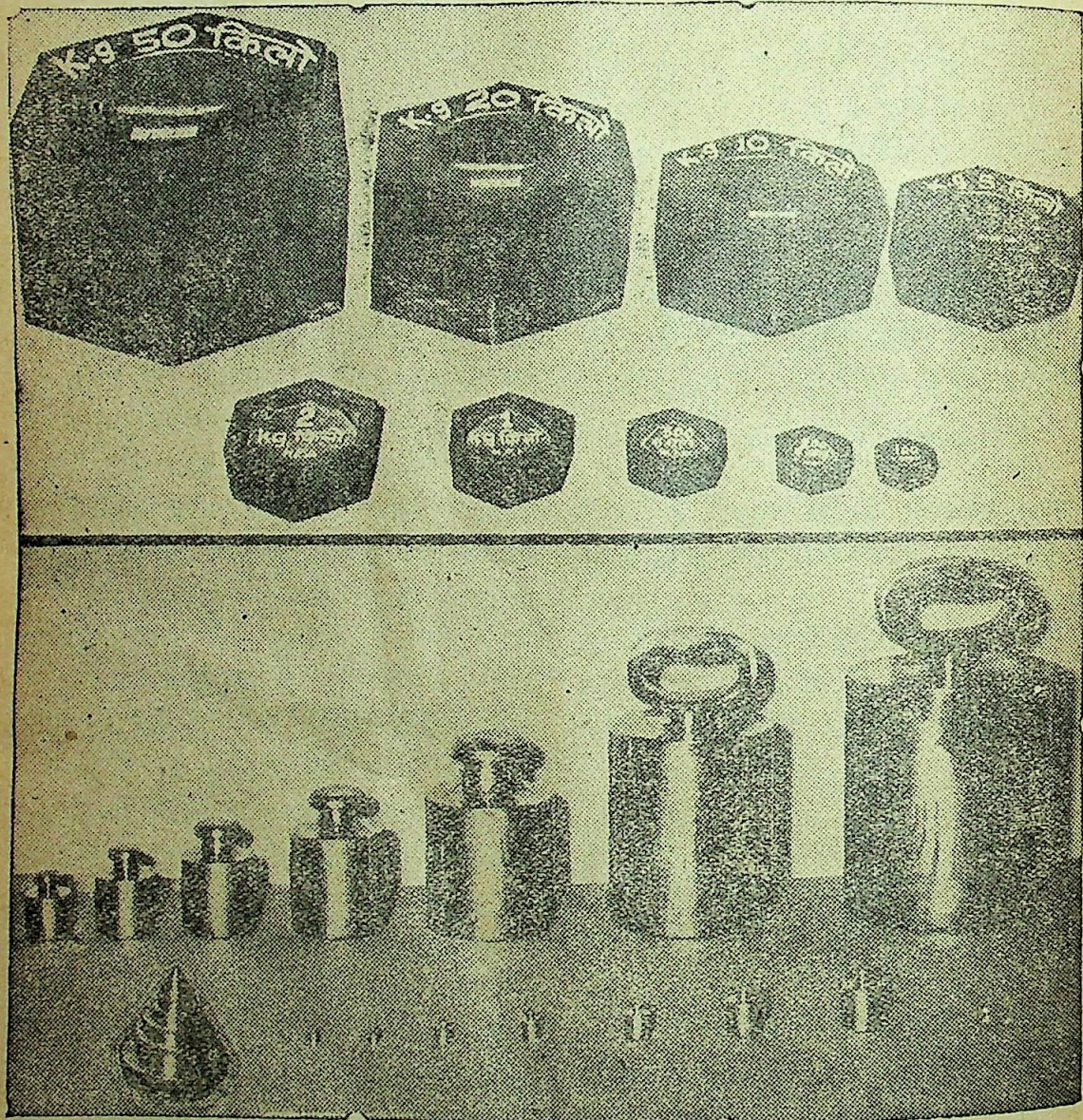
चित्र के ऊपरी हिस्से में ढले हुए लोहे के बांट और नीचे के हिस्से में सोना आदि तोलने के पीतल के बांट दिखाई दे रहे हैं। ये सब मीटर प्रणाली में हैं।

उपहार

(कहानी)

★ प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

माथुर, मेरा एक सहपाठी। किशोरावस्था, मुझसे चार-पाँच वर्ष छोटा। कद मझोला, नख-शिख सुन्दर, इतना सुन्दर कि सब कोई कहते कि लड़की होता तो..........। लड़की होना उसके भाग में था नहीं सो लड़का हो गया। सभी उसे छेड़-छेड़कर मन बहलाते, पर वह मुस्कराता रहता। रूप-गर्व की आत्म-चेतना लज्जा बन कर आँखों में से झाँक-झाँक जाती, और तब यह धारणा और भी बलवती हो उठती कि यह बालू, नाम था बालकृष्ण, लड़की होता तो अच्छा रहता। पर वह लड़की तो था नहीं, तो साथियों की छेड़छाड़ कभी उसे अखर भी जाती। एक दिन तो बात यहाँ तक बढ़ी कि मैंने उसे एकान्त में उदास और उतरे मुँह बैठा देखा। मैंने कहा—"आज यह बादल कैसे घिर आये हैं बालू?" जीभ का काम आँखों ने किया, बादल बरस पड़े।

"छिः यह क्या? तुम तो सचमुच लड़की निकले।"

"भैया!"

"क्यों, क्या बात है?"

"मैं पढ़ना छोड़ जाऊँगा।"

"पर दुनिया तो नहीं छोड़ी जा सकती बालू!"

वह सिसक-सिसक कर रो रहा था। मैंने कहा—'तुमने एक कहानी सुनी है?" उसने सिर उठाकर प्रश्न-वाचक मुद्रा बनाई। मैं बोल चला—"एक दिन गन्ने को अपने पर बड़ी ग्लानि हुई—'यह भी कोई जीवन है! जो आता है उखाड़ता है, चबाता है, चूसता है, और नीरस छूँछ करके फेंक देता है। कोल्हू में पेरता है, आग पर चढ़ाकर जलाता है, गुड़-राब-शक्कर बनाता है। इस दशा में जो भी देखता है मुँह से लार टपकाता है। अच्छा भगवान् के दरबार में अपना दुखड़ा रोऊँ।' यह सोचकर भगवान् के दरबार में पहुँचा और सारी दुःख-गाथा कह सुनाई। भगवान् ने सारी राम-कहानी सुनी, फिर तनक मुस्कराकर बोले—'अरे भई इटके खड़े हो, मन मेरा भी मचल रहा है।' बेचारा मुँह मोड़कर भागा........।"

कहानी ने मनोरंजन किया, मंद मुस्कान लौट आई, और नीची-सी नज़र में शरारत भर के बोला—"तो क्या आप भी औरों की तरह........।"

"अरे चुप! मैं भगवान् थोड़े ही हूँ, और न गन्ना खाने लायक अपने दाँत ही तीखे हैं।"

"जवानी के आरम्भ में ही आपके दाँत......।"

"अरे दाँत नहीं, आँत भी; मुझे वह सब कुछ नहीं पचता, न रुचता ही है।"

"इसीलिए आप औरों से भिन्न हैं।"

"जो भी समझो।"

"तो फिर मुझे अपने रक्षण में ले लीजिए, आप मेरे अभिभावक बन जाइए।"

"रक्षण में तो भगवान् ही ले सकता है।"

"वही भगवान्, जिसकी कहानी आपने अभी सुनाई।"

"अरे वह कहानी ही तो है।"

"तो फिर मैं क्या करूँ?"

"सच-सच बता दूँ?"

"जी"

"तुम मर्द बन जाओ।"

"सो तो हूँ ही।"

"अरे बहुत तो हुए। लड़कियों की भाँति बुरी तरह से लजा जाते हो। तुम्हारी उसी लज्जा को देखने को तो लड़के लालायित रहते और छेड़ा-छाड़ी करते हैं। तुम्हारे रूप का गर्व तुम्हारा उन्माद बन गया है।"

"क्या यह सच है?"

"नहीं तो ?"

"तो आज मुझे बुरा क्यों लगा ?"

"क्योंकि तुम मर्द हो।"

"आप भी पहेलियाँ बुझाने लगे भाई साहब; अभी कह रहे थे–'मर्द बन जाओ' अब कह रहे हो-मर्द हो।"

"नहीं तो क्या लड़की हो ? मर्द तो हो ही, पर अपने मर्दपन पर विश्वास खो कर नारीपन पर बल दिये बैठे हो।"

"मैं तो समझा नहीं।"

"किसी भी व्यक्ति में पुरुष और स्त्री दोनों ही रहते हैं। पुरुष में पौरुष स्त्री-तत्व को दबाकर रहता है, नारी का नारीत्व उसमें के पुरुष को दबा कर। पुरुष-चिह्न होते हुए भी जो नारी-भाव को नहीं दबा पाते उनमें लैङ्गिक परिवर्तन हो जाता है, और जो नारी अपने में के पुरुष को नहीं दबा पाती वह पुरुष बन जाती है।"

"कैसी बातें करते हैं आप, तो क्या मैं........"

"हाँ-हाँ तुम भी, यही हाल रहा तो, लड़की बन के रहोगे।"

"आप मज़ाक कर रहे हैं क्या ?"

"तो इसी विश्वास पर मुझे अभिभावक बनाने चले थे क्या ?"

वह लजा गया। और अपनी जेब से एक चित्र निकाल कर मेरे पैरों पर रख दिया।

"यह क्या ?"

"मेरे नारी-भाव की बलि।"

तस्वीर उठाई, देखी, अरे यह तो नारी वेश में तुम्हारा चित्र है।

"मैंने ड्रामा में भाग लिया था न।"

"अच्छा समझा, यह उसी दशा का चित्र है।"

"अब आगे ऐसा नहीं होगा।"

"अच्छा।"

× × × ×

"बालू !"

"जी।"

"तुम्हें फिर एक बार वही वेश धारण करना पड़ेगा।"

जानकर भी अनजान-सा बनते हुए उसने पूछा "कौन-सा वेश ?"

"वही मोहिनी का।"

"मोहिनी का ?"

"हाँ"

"क्या मोहिनी पर आप भी........"

"दुत् ! पागल हुआ है क्या ?"

"तो फिर ?"

"उसका कुछ उपयोग करना है।"

"कैसा उपयोग ?"

"उस चित्र से जो हलाहल उत्पन्न हुआ है, उसे अमृत में परिणत कर देना चाहता हूँ।"

"कैसा हलाहल ?"

"स्पष्ट तो कहना ही होगा, अच्छा सुनो। पुस्तकें उलटते-पलटते तुम्हारा वह चित्र एक दिन तुम्हारी भाभी के हाथ लग गया, उसे देखते ही जैसे कि अंगारे पर पैर पड़ गया हो। उस दिन से हमारे सम्बन्धों में हलाहल घुल गया है। समझ में नहीं आता, क्या किया जाए।"

"तो भाभी की सौत यह मोहनी तैयार है, जो उपयोग चाहें कीजिए। मोहिनी के पास अमृत-घट है, वह उसे उँडेलकर हलाहल को अमृत में परिणत कर देगी। दुर्भाग्य है मोहनी का ! जगत् उस से अमृत न लेकर मद और हलाहल ही चाहता है।"

इस बार वही लजीली मुस्कान बालू के होठों और आँखों में खेल गई थी। वह एक बार फिर मोहिनी था, वेश बदलने-भर की देरी थी। लगा, उसे मर्द बनाने की इतने दिनों की साधना निष्फल ही गई।

"मुझे क्षमा करना बालू !"

"कैसी बात करते हैं आप ! वह नारीत्व में आपके चरणों में चढ़ा चुका। वह आपका है। वह यदि आप के कुछ काम आ गया तो फिर इससे बढ़ कर क्या बात होगी ? कहिए मोहिनी कब आपके चरणों में उपस्थित हो जाए।" हाथ जोड़ कर कहता हुआ वह फिर मुस्करा दिया।

"पिटेगा क्या ?"

"बड़ी मुश्किल है। मैं पूछ रहा था कैसे, कब, क्या उपयोग कीजिएगा बेचारी मोहिनी का ?"

"कल रविवार है, कल संध्या को ही सही। तुम उसी वेश में आना देखो त्रुटि न करना।"

"मोहिनी से कोई त्रुटि न होगी भोलानाथ!" और नाटकीय ढंग से झुक कर उसने पैरों पर हाथ धर दिया था और मैंने उसके सिर पर हलकी-सी चपत।

× × ×

मैंने आज सवेरे उठते ही कहा था—"सुनती हो!"

"क्या?" विरक्ति-मय प्रश्न था, जो तनक तिरछे खड़े रहकर पूछा गया था।

"आज संध्या के ६ बजे मेरी एक मित्र आने वाली है।"

"कितनी मित्र हैं आपकी?"

"अरे क्या कमी, अनगिनती।"

उत्तर सुनकर वह और कुढ़ गईं, मैं कहता गया—"खिलाते-पिलाते जाओ, उपहार देते रहो, एकाधिकार का ढोंग मत रचो, फिर नारी-मित्रों की क्या कमी। पीछे लगी फिरती हैं पीछे।"

"शकल तो देखो खर्च करने वालों की। करते भी होंगे तो क्या, नहीं तो नित नई-नवेलियाँ कहाँ से मिलें।"

"यह बात! बहुत समझदार हो तुम, तभी तो इतने जल्द समझ जाती हो।"

"हाँ तो मेरी मित्र मोहिनी आने वाली हैं। मैंने उनसे तुम्हारी बड़ी प्रशंसा कर रखी है—बड़ी सुन्दर है, खुश मिज़ाज है, सदा सेवा में रत रहती है, मेरी बात पत्थर की लकीर मानती है और मैं तो समझाता हूँ, मोहिनी, कि मैं तुमसे विवाह भी कर लूँ तो वह बुरा मानने की नहीं।"

"कर क्यों नहीं लेते फिर?"

"तुम्हारी इजाज़त है?"

"हमें कौन पूछता है?"

"अरे पूछ ही तो रहा हूँ, तुम्हारी आज्ञा के विना तो इस घर में पत्ता भी नहीं हिल सकता।"

"जी, सो तो देख ही रही हूँ। खिलाना-पिलाना, उपहार देना, यह सब मेरी इच्छा ही से तो होता है।"

"नहीं तो क्या, यदि तुम एक दिन अड़ जाओ तो मेरी क्या मजाल कि......"

"अच्छा तो लो मैं अड़गई, इस घर में किसी मोहिनी-रोहिनी का काम नहीं है।"

"अरे-अरे ऐसा क्या करती हो! मेरी नाक कट जाएगी। और तुम्हारी भी तो बची न रहेगी! मैंने कितनी प्रशंसा की है तुम्हारी शालीनता की।"

"बहुत तो की, कहा होगा-वह बड़ी फूहड़ है, बे-सलीका है, कटु भाषिणी है, काली-कलूटी असुंदर है, कानी है, तभी तो हे प्यारी मोहिनी मैं तुम्हें चाहता हूँ, हृदय से चाहता हूँ।" यह वात उन्होंने इतनी अदा से कही कि उन्हें स्वयं हँसी आगई! मैं भी हँस पड़ा। हँसी की तरलता ने मान को किंचित् काट दिया।

"अच्छा भई हम तो हुकुम के बंदे हैं, गुलाम जो ठहरे, जिसकी कहोगे उसी की जूतियाँ सीधी करेंगे।"

"बस आज आखिरी दिन। फिर तुम्हें कोई शिकायत नहीं रह जायगी।"

"नहीं जी जीवन-भर।"

"तो फिर करलूँ न व्याह मोहिनी से।"

"कर लो न, अपनी बला से।" आज अकेली रोती हूँ, कल दो हो जाएँगीं, क्यों कि भ्रमर किसी तीसरी अनजान कली पर गुन-गुना कर जादू डाल चलेगा। क्या ठिकाना मर्दों का!" कहती-कहती वे चली गई थीं।

× × ×

ठीक समय पर द्वार की घण्टी बजी, द्वार खोला तो देखा--हाँ, बालू, नहीं-नहीं, मोहिनी ही तो है। कितना रूप, कितना लावण्य, कितना भार-संभार कि देह-यष्टि से सँभाले सँभलता नहीं। केश-कलाप, मंगल विंदुमय अर्द्ध चन्द्र, अराल भँवें, तीर-सी बरौनियाँ, आयात नेत्र, नुकीली नासिका जैसे कि तिल पुष्प-स्तवक हो, पतले-पतले बिंबाधर, काम-फल जैसी चिबुक, सुराही-सी गर्दन, गले में मोतियों का हार, वक्ष पर कसा गया कंचुक-पट, सिर से ओढ़ी गई झीनी ओढ़नी, झूमता-घूमता हलका-

सा घाँघरा, पैरों में रुनुन-झुनुन करते नूपुर, लाल मखमली जूती। सोचा मैंने मोहिनी सचमुच ऐसी ही रही होगी। ठीक ही हुआ जो बालू इस वेश में संध्या के झुटपुटे में आया नहीं तो……

कान्ता दौड़ी आई। देखते ही अचकचा गई। ओंठ और आँखें विस्फारित हो रहे। फिर सम्हली—"स्वागत है बहिन, आज मेरे मन-प्राण आप्यायित हुए। ऐसी हो तभी तो भोलानाथ की हृदयेश्वरी हो रही हो। आज मुझे कोई रंज नहीं। जहाँ पार्वती है, वहाँ गंगा भी रहे तो क्या? ठुड्डी पकड़ कर वदन ऊँचा करते हुए—वाह! भई वाह!! बधाई देती हूं तुम्हें और तुम मुझे बधाई दो। ऐसी सौत कभी भी किसी को मिली होगी! आओ आओ तुम दोनों का पाणि-ग्रहण करा दूँ। मेरा दायाँ हाथ हाथ में लेकर जैसे ही उसने मोहिनी रूप बालू का हाथ मेरे हाथ में देने को पकड़ना चाहा, वैसे ही बालू पीछे हट गया।

"तुम्हें स्वीकार नहीं, भला क्यों स्वीकार नहीं?"

बालू चीत्कार कर उठा—"भाभी!"

"भाभी, यानी तुम इनको भाई कहती हो, तो क्या हुआ!"

"ये मेरे भाई हैं, भाई ही रहें, यही मैं चाहता हूँ, मेरी प्यारी भाभी।"

"चाहता हूँ! चाहता हूँ क्यों। तो क्या?" कान्ता की दृष्टि चेहरे पर गई। बालू पसीना-पसीना हो रहा था। पसीने ने बहकर सौंदर्य-प्रसाधनों को बहा दिया।

"तो क्या तुम वह हो जो नहीं हो, या वह नहीं हो जो हो!"

"भाभी!" और बालू ने झुककर साष्टांग प्रणाम किया।" इसी बीच बालू ने कंचुक-पट्ट और उससे बँधे वक्षभार को कान्ता के चरणों में धर दिया।"

"नक़ल! नक़ल भी इतनी असल हो सकती है क्या?"

"यह वक्ष-भार स्वीकार हो भाभी! और यह कंचुक-पट्ट भी। आज मैंने अपना सम्पूर्ण भ्रम आपके चरणों में चढ़ा दिया है। एक बार तस्वीर इन चरणों में रखकर इस मायामयी मोहिनी ने अपना कृत्रिम नारीत्व इन भोलानाथ के चरणों में चढ़ा दिया था। आज नारीत्व का भ्रमात्मक प्रतीक तुम्हें अर्जित है। अपना वक्षभार हलका करते हुए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपके वक्ष भार को……"

मोद-भरी दृष्टि से बालू की ओर देखते हुए—'बड़े वह हो लाला! एक बार तो मेरे घर में आग लगा दी, फिर रूप के दहकते अंगारे को चिंतामणि जान मैंने हृदय से लगाना चाहा, तब सूर्य की किरणों ने शबनम को सुखा डाला। काश! तुम मोहिनी होते। मोहिनी रहते तुम्हारा यह वक्ष-भार सचमुच का हो कर मेरा वक्ष-भार बना रहता, तुम्हारे रूप पर लुट मैं जीवन-भर तुम्हारी जूतियाँ सीधी....' कहते-कहते वह मेरी ओर देख कर मुस्करा दीं। मैं भेद खुल जाने से हतचेत, पर प्रसन्न था। भेद तो खुलना था, पर इतने शीघ्र! इतने आकस्मिक ढंग से!!

"तुम्हारा नाम क्या है मैं नहीं जानती" मैंने धीरे से कह दिया—"बालू यानी बालकृष्ण"

"बालू भैया तुमने मुझे उपहार दिया है, मैं उसका बदला बिना चुकाये न मानूँगी। शान्ता! ओ शान्ता!! इधर तो आ!"

कहीं ओट से कान्ता की बहिन शान्ता यह सब नाटक देख रही थी, और सुन-समझ भी चुकी थी। नत-मस्तक पर नटखटी-भरी मुस्कान के साथ आगे बढ़ आई। कान्ता ने कहा—"देखो लाला तुमने अपना वक्षभार उतार कर, मेरा वक्ष भार उतारने का उपकार किया। पर मैं तुम्हारा भार यों हलका न होने दूँगी। शान्ता इधर तो आ। शान्ता लज्जावनत हो रही, दिल भले ही आगे को बढ़ रहा हो, पर पैर न बढ़ सके। तब कान्ता ने झपट कर उसको हाथ से खींचते हुए उसका हाथ बालू के हाथ में दे दिया। शान्ता ने लजीली मुस्कान और शरारत में धीरे से कहा—" नारी का विवाह नारी से "

मैंने कहा—"कलजुग हैं बीबी, कभी-कभी ऐसा भी होता है।"

"हाय मैं तो लुट गई रे! मेरी सौत छिन गई!" कह कर कान्ता बालकों की भाँति ताली बजा-बजा कर नाच उठी।

एक चित्र

वृद्ध

★

श्री रामरतन 'ज्वेल'

बादल की गड़गड़ाहट के बीच ज्योंही मैं मोड़ से गुजरा, त्योंही किसी आदमी से टकरा गया—जानते हो आज ठण्ड का भाव अधिक है। मैं एक आह के साथ डामर की चिकनी-चप्पट-मासूम-सुबकी हुई जो औंधी मछली-सी फैली हुई थी, सड़क पर जिसमें काँटे थे—आप चल नहीं सकते मिस्टर—क्या कहा, बहुत मज़ा आता है। चला जा रहा था—वे लोग बातें बड़ी जोर से कर रहे थे, एक ने कहा "अरे यार हमारा कॉमरेड स्टालिन मर गया, तभी तो ये उल्लू की औलाद—आयजन होवर के बेटे गले फाड़-फाड़ कर ऐशिया के छोटे-मोटे उपनिवेशों और मुल्कों को सैनिक, आर्थिक न जाने क्या क्या सहायता दिये चले जा रहे हैं। यदि स्टालीन होता न, तो ये चर्चिल चाचा और 'आईक' बाबा दड़बे में से मुँह तक नहीं निकाल सकते थे, मिस्टर आप क्या समझते हो ?" मैंने कहा—'क्या सुन्दर टॉपिक छिड़ा हुआ है', मैं मन ही मन मुस्कराया—मोड़ के मुँह पर एक तंग गली थी, और गली के मुँह पर एक दुबले-पतले सज्जन खड़े थे, मैंने भौंहे चढ़ाकर कहा—"अमा देखकर भी नहीं चलते, शायद सिविक सैंस भी नहीं है", मैंने गेवरडीन के पेंट में हाथ डाला और एक कदम आगे बढ़ गया—ये सज्जन वे ही थे जिनसे मेरी टक्कर हो गई थी। उन्होंने एक सर्द आह के साथ जिसमें गर्मी थी, कहने को लहजा था, और जवानी बुढ़ापे के साथ मिलकर प्रौढ़ की संज्ञा को सार्थक कर रही थी—"हाँ बाबू साहब—क्या बतलाएँ, खुदा का नूर जो ऊपर वालों की देन थी, नीचे वाले ने वापस सिफारिश करके ले ली। अब तो बेनूर होकर इन ठण्डी सड़कों पर आवारा ढोरों की तरह टकराते फिरते हैं।" मैं जरा पानी-पानी-सा हो गया, जरा गौर से देखा तो यह अपने ही पुरे के जाने-माने और पहिचाने वकील साहब निकले; जिनकी शहर में एक जमाने में इज्जत थी, पैसा था, बीबी थी, बच्चे थे—नाती-पोते और न जाने कौन-कौन थे, पर ये अवश्य किस्मत की बात आज ये ही वकील साहब इन डामर की तारगेट की सड़कों पर घूमते-फिरते हैं, डॉक्टरों ने बेटों को राय दी कि इनको किसी कोठरी में अलग से पटक दो, नहीं तो सारा परिवार कोढ़िया हो जायगा—ये बात है। दूसरे रोज ही उन सपूतों ने उन्हें अस्तबल में पटक दिया, वकील साहब को कोढ में वे फीके चेहरे दिखाई देते जिन्हें एक की जगह दस वसूल करकर के उन्हेंने कारावास की काल-कोठरी में घिरवा-पटकवा दिया था। आज वे चेहरे खुश थे, उसका प्रतिशोध अपने आप खुदा ने कर लिया—खुदा कितना नरम,सुन्दर और रहीम है, साथ में रहनुमादार—बरखुरदार नहीं। वकील साहब की कमर क्या थी, जैसा राम का धनुष, गेहुँए रंग के मुँह की दशा उसी तरह की हो गई थी जैसे पानी निकल जाने पर मशक की हो जाती है। दाँत थे पर आगे के केवल दो। बस ये ही वकील साहब हाथ में बँबूल की छड़ी लिए मोड़ पर खड़े थे। 'बाबू साहब जरा हटना बाबू साहब, इक्के वाला पीछे से जोर से चिल्लाया—जैसे कोई चोर तांगे में से घोड़ा खोलकर भागा जा रहा हो। 'एक पैसा'—हाँ आधी छटाँक चने अवश्य आ जाएँगे। कुछ झिझका और वे आँखें इक्के वाले से कुछ माँगती-सी नजर आईं। इक्के वाले ने झल्लाकर कहा—जैसे पीतल-अरे हाँ ताँबा के चार, सॉरी, किसी पत्थर पर झल्लाकर बोल उठता है वैसे ही लहजे में फ़रमाया-साले कहाँ से सुबह-सुबह आकर अपनी मनहूससूरत दिखा देते हैं, जिससे सारा दिन फांकाकसी में कटता है, और गुस्से में उसने आव देखा न ताव एक ताँबे का टुकड़ा-जिसमें अभी भी पञ्चम जॉर्ज की मुद्रा अङ्कित थी-

गीत

सौ० आशारानी व्होरा

जीवन को राह न मिल पाती ।

सुख का मल्हार, दुःख की गाथा-
चेतन की वंशी गा उठती,
स्वर फूटे जो भी कण्ठों से-
लेखनी गीत दुलरा उठती;
किन्तु छिपा क्या अवचेतन में ?
प्राणों को थाह न मिल पाती ।
जीवन को राह न मिल पाती ।

पथ के मोड़ों पर कितने ही-
साथी हमको अटका जाते,
कुछ ऐसे भी जो हाथ पकड़-
कर काँटों में अटका जाते;
सब देते नेक सलाह (?) मगर
है नेक सलाह न मिल पाती ।
जीवन को राह न मिल पाती ।

कुछ करते पूजा, स्नान, दान,-
अन्तर का मैल छुड़ाने को,
कुछ करते और गुनाह, विगत-
कृत्यों का गम पी जाने को;
कुछ पर हित तिल-तिल जल जाते-
पर आह ! पनाह न मिल पाती ।
जीवन को राह न मिल पाती ।

तरु की छाया सब को भाती,-
नन्हें अंकुर कुम्हला जाते,
चंदा की शीतल छाँह मगर-
सागर में ज्वार उमड़ आते;
सब को निद्वन्द्व पनपने दे जो-
ऐसी छाँह न मिल पाती ।
जीवन को राह न मिल पाती ।

पता—२०५६, बाबू गली महू, (मध्यप्रदेश)

स्वराज जो है, उन सूखी हथेलियों पर पटककर घृणा से मुँह फेर लिया । इक्के वाले के चले जाने के बाद फिर मैं वकील साहब के बारे में सोचने लगा । "हाय बुढ़ापा ! तोरे मारे अब तो हम नकिन्याय गयन" की शब्दावलियों ने मुझे अपने विचारों से वापिस लाकर भावभूमि पर खड़ा कर दिया ।

मुझे देर हो रही थी । मतलब-भरी आँखों से वकील साहब की ओर एक सरसरी दृष्टि डाली, और गेवरडीन के शानदार कोट से एक चवन्नी निकाल कर उनकी गोद में डालकर चल दिया, पीछे मुड़कर जो देखा तो वह चवन्नी को गौर से देख रहे थे-सोचा होगा शायद मखौल उड़ाने के लिये मुझे एक पाई दे दी गई हो । बादल की गड़गड़ाहट के बीच मैं सोचता चला जा रहा था-उन चिकनी डामर की सड़कों पर- "कि समय भी कितना विचित्र नाटककार है ।"

——
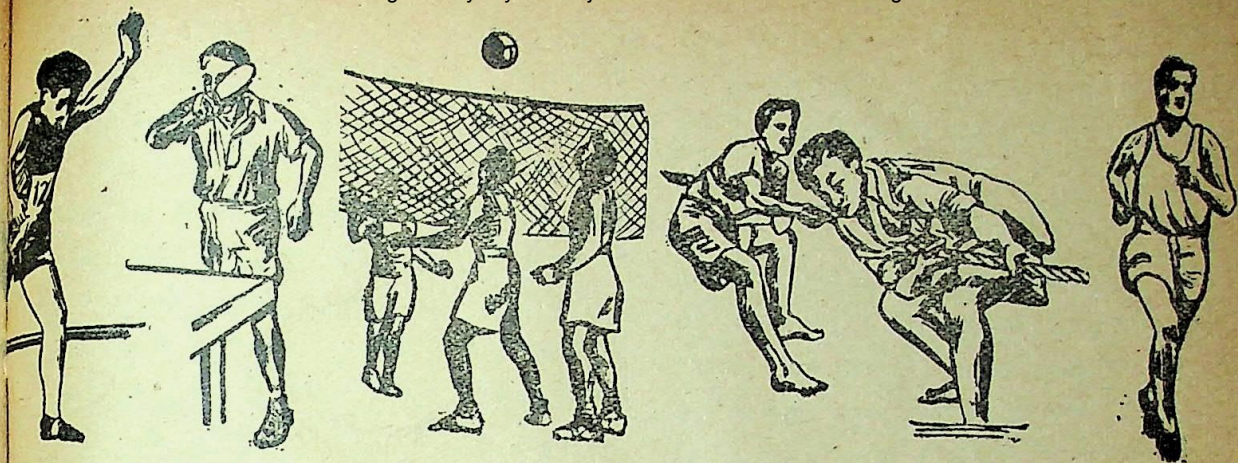
खेल के मैदान से—

जुलाई १९५८

क्रिकेट

१९ जून से लार्ड्स पर इग्लैण्ड तथा न्यूजीलैण्ड के बीच दूसरा टेस्ट मैच आरम्भ हुआ। इग्लैण्ड ने टॉस जीतकर खेलना आरम्भ किया और २६९ रन बनाकर खिलाड़ी आउट हो गये। काउड्री ने ६२ रन बनाये। न्यूजीलैण्ड प्रथम दाव में ४७ रन तथा दूसरे दाव में ७४ रन ही बना सका। इन ७४ रन में जिम्मी-डी-आर्की ही केवल एक मात्र खिलाड़ी हैं जो इग्लैण्ड के तेज गोलदाजों के सामने सरलता से खेल सके। इस प्रकार इग्लैण्ड प्रथम तथा द्वितीय टेस्ट जीत कर २-० हो चुका है।

३-४ जुलाई को वर्षा के कारण इग्लैण्ड तथा न्युजीलैण्ड के बीच तृतीय टेस्ट मेच आरंभ न हो सका, ५ जुलाई को भी खेल केवल चार घण्टे ही खेला गया, इस अवधि में न्यूजीलैण्ड ने प्रथम दाव में केवल ६७ रन ही बनाये लेकर तथा लॉक ने ५ तथा ४ विकेट १७ तथा १४ रन क्रमशः देकर लिये। इग्लैण्ड ने प्रथम दाव में २६७ रन बनाये मे ने ११३ रन तथा मिल्टन ने १०४ रन बनाये, दोनों खिलाड़ी "नॉट आऊट" रहे। न्यूजीलैण्ड ने दूसरे दाव में केवल १२९ रन ही बना पाये। इस प्रकार न्यूजीलैण्ड की हार रही।

बैडमिंटन

२६ जून को बम्बई जिमखाना कोर्ट पर डेनमार्क और भारत के खिलाड़ियों की अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त प्रतियोगिता आरंभ हुई। भारत के नन्दू नाटेकर ने फिन कोबरो को १७-१६ और १५-६ पर हराया, त्रिलोकनाथ सेठ ने पालि ग्रुन्लैण्ड को १५-६ और १५-१ से हराया, पुरुष युगल के दोनों मैच डेन मार्क के खिलाड़ियों ने सरलता से जीत लिये। तारीख २७ को मजूमदार ने जे. एच. हसन को हराया, इसी प्रकार नाटेकर ने आर ग्रुन्लैण्ड को सरलता से हरा दिया। आज का सब से जोरदार मैच सेठ और फिन कोबरो का हुआ। सेठ ने अपने जीवन के उत्तम खेल का प्रदर्शन करके विजय प्राप्त की १५-१७, १५-३, १८-१५, मैच पाइण्ट थे। कोबरो विश्व के बैडमिंटन में सब से अधिक "स्टोक" खिलाड़ी है भारत ने ६-३ मैच से प्रतियोगिता जीती।

फुट बॉल

विश्व फुट-बॉल प्रतियोगिता में संसार के फुट-बॉल खेलने वाले ६४ राष्ट्रों ने भाग लिया। अन्तिम चरण के लिए ब्रैज़िल ने फ्रांस को ५-२ गोल से हरा दिया; फ्रांस के केवल १० खिलाड़ी ही खेल के ३५ मिनिट बाद गये क्योंकि फ्रांस के केप्टन तथा सेंटर-फार्वर्ड

राबर्ट जॉन क्वाइट चोट लग जाने के कारण आगे खेल में भाग नहीं ले सके। दूसरे सेमी-फाइनल में स्वीडन ने गत वर्ष के विजेता वेस्ट-जर्मनी को ३-१ गोल से पराजित किया। इस प्रकार इस वर्ष ब्रेझिल और स्वीडन ने फाइनल में आने का गौरव प्राप्त किया।

२६ जून को स्वीडन के प्रसिद्ध नगर स्टाकहोम में ब्रेझिल और स्वीडन के बीच जूली रिमीट गोल्ड कप फुट-बॉल प्रतियोगिता का फाइनल खेला गया। स्वीडन के राजा और रानी के अलावा ५०००० दर्शक भी खेल देखने आये थे। खेल आरंभ के चार मिनिट में ही स्वीडन के खिलाड़ी ने गोल कर दिया; इस नाटकीय आरंभ ने दर्शकों को अति प्रसन्न कर दिया; परन्तु यह प्रसन्नता अधिक समय तक स्थायी न रह सकी, ब्रेझिल के खिलाड़ी वावा ने गोल किया। इस प्रकार मध्यान्तर के समय ब्रेझिल २-१ गोल से जीत रहा था और खेल के अन्तिम समय तक जीतता रहा। ब्रेझिल फाइनल ५-२ गोल से जीता और संसार में उत्तम फुट-बाल खेलने वाला राष्ट्र सिद्ध हुआ।

२८ जून को इस प्रतियोगिता के सेमी फाइनल में हारने वालों फ्रांस और वेस्ट जर्मनी का तीसरे स्थान के लिए मैच हुआ, फ्रांस ने वेस्ट-जर्मनी पर ५-३ गोल से विजय प्राप्त की और इस प्रकार ब्रेझिल प्रथम, स्वर्ण पदक, स्वीडन द्वितीय स्थान पर रजत-पदक और फ्रांस तृतीय स्थान पर ताम्र-पदक पाने के अधिकारी हुए। यह प्रतियोगिता प्रत्येक चौथे वर्ष खेली जाती है।

टेनिस

संसार के पांच टेनिस-टूर्नामेंट प्रतियोगिता में विम्बल्डन एक सबसे प्रमुख टेनिस प्रतियोगिता है। विश्व के प्रत्येक टेनिस खिलाड़ी का इस प्रतियोगिता को जीतना सुखद-स्वप्न होता है इस वर्ष यह प्रतियोगिता आकर्षण का मुख्य केन्द्र इस कारण और अधिक हो गई क्योंकि गत वर्ष चैम्पियन होड़, रोजवाल, आदि नहीं है। २३ जून को भूरे बादल तथा ठण्डी हवा में खेले गये पहले मैच में भारतीय खिलाड़ी अखतरअली ने क्लाईटन को ६-१, ८-६, ६-४ से पराजित कर दूसरे चक्र में प्रवेश किया। रामनाथन् कृष्णन् ने अमेरिका के जॉन कॉस्टन को ६-३, ६-४, १-६, ६-३, से हराया नरेशनाथ आस्ट्रेलिया के जैक्यूस से ४-६, ४-६, ६-८ से हार गये। आज का सबसे अच्छा मैच आस्ट्रेलिया के केन्डी और इग्लैंण्ड के खिलाड़ी नाईट का हुआ, यह मैच ३ घंटे १८ मिनिट चला, इस मैच ने केन्डी की विजय हुई सेट-पाइन्ट इस प्रकार है ७-५, ५-७, १३-१५, ६-३ और १२-१० । आज खेल के बीच-बीच में वर्षा के बादल तथा विजली ने खेल में बाधा दी।

२४ जून को विम्बल्डन की परम्परा के अनुसार कल के सिंगलस् के मैचेस् लेडिज-सिंगल तथा पुरुष-युगल के मैच हुए। लेडिज सिंगलस् में चारों खिलाड़ी सरलता से जीत गये। भारत के पुरुष-युगल में कृष्णनन् तथा कुमार ने डच के मॉरीस, वॉन-डी-वैग को ६-१, ६-३, ६-२ से सरलता से हरा दिया।

२५ जून को तीन भारतीय खिलाड़ी में से दो आज हार गये, परन्तु उनकी इस हार में भी जीत की कीर्ति थी। अखतरअली इकापनाजो टोविक से ६-८, ६-४, ८-६, ३-६, ५-७ से हार गये। यह मैच दो घण्टे ५ मिनिट चला, खेल के प्रत्येक विभाग का प्रदर्शन हुआ, परन्तु अखतरअली का विरोधी की ऊँचाई ६ फुट ३ इन्च होने से खेल में सहायक सिद्ध हुई। नरेशकुमार पीमेन्टल से ६-७, ६-८, ८-१०, ३-६ से हार गये, यह मैच भी २ घण्टे ३० मिनिट चला। भारत के नम्बर एक, खिलाड़ी कृष्णनन् ने इग्लैंण्ड के आवेर वार्विक को ६-१, १४-१२; ६-० से हरा कर तीसरे चक्र में प्रवेश किया। भारत के कृष्णनन् ही एक मात्र खिलाड़ी सिंगलस् प्रतियोगिता में बचे हैं।

२६ जून, भारत के रामनाथ व कृष्णनन् ने फ्रांस के डेविस कप खिलाड़ी जीन-क्लाड मोरीनरी को ८-६, ६-१, ६-० से हरा कर प्रतियोगिता के अन्तिम १६ खिलाड़ियों में प्रवेश किया। कृष्णनन् का मैच कोर्ट नम्बर दो पर था, दर्शकों की अपार भीड़ थी। जीत के बाद प्रथम बधाई देने वालों में १९३४, ३५, ३६ के विम्बल्डन विजेता पैरी थे। आज के दूसरे मैचों

में एक मैच बहुत जोरदार हुआ और वह था इटली के (पेन्ट्रान्वली) तथा चिलियन के लुइस अयला। आपको प्रतियोगिता में पांचवें नम्बर पर प्राथमिकता मिली थी को ६-४, ६-४, ६-३ से हरा कर १६ खिलाड़ियों में स्थान प्राप्त किया।

तारीख २७ को केवल एक मैच खेला गया आस्ट्रेलिया के नीयेल फ्रसर ने इटली के अन्टानियों मागी को ६-०, ६-४, ६-३ पर हरा कर अन्तिम ८ में प्रवेश किया। पानी की अधिकता के कारण कोर्ट गीला होने से खेल में बहुत बार खिलाड़ी गिर पड़ते थे।

तारीख २८ को भारत की पुरुष युगल की जोड़ी कृष्णनन् तथा कुमार ने अमेरिका का बॉब पेरी और आस्ट्रेलिया के वारेन उडकाक को ६-२, ६-३, ६-२ से सरलता से हरा कर तीसरे चक्र में प्रवेश किया। पाठकों को यहाँ याद दिलादें कि अभी तक भारत की इस जोड़ी ने एक भी "सैट" नही खोया है।

आज स्त्रियों के खेल में इग्लैण्ड की ट्रूमेन अमेरिका की अरनोल से १०-६ और ६-३ पर हार गई।

तारीख ३० जून को भारत के कृष्णनन् अमेरिका के बैरी मैंके से ६-३, ११-९, ६-२ से हार गये। इस प्रकार भारत की अन्तिम आशा इस वर्ष की विम्बल्डन के सिंगल्स प्रतियोगिता में समाप्त हो गई। कृष्णनन् ने दूसरे "सेट" में यद्यपि जम कर मुकाबिला किया; तथापि हार से नहीं बच सके; अमेरिका के खिलाड़ी की "सर्विस" बहुत तेज तथा शक्तिशाली थी जब कि कृष्णनन् इस विभाग में बहुत ही कमजोर सिद्ध हुए। अब प्रतियोगिता में केवल युगल जोड़ी और रह गई है।

तारीख १ जुलाई, इंग्लैंड के बॉब-विलसन, प्रथम खिलाड़ी हैं जिन्हें प्राथमिकता न मिलने पर भी, आस्ट्रेलिया के अस्ले कूपर को पाँच सेट तक ले गये, सेट पाईन्ट इस प्रकार ६-४, ६-२, ३-६, ४-६, ७-५, रहे।

२ जुलाई, विम्बल्डन प्रतियोगिता के सेमी-फाइनलस् खेले गये; अस्ले-कूपर ने मेर्विन-रोज़ को ७-९, ६-२, ६-२, ६-३ पर हराया। दूसरे सेमी-फाइनल में नील फ्रैसर (आस्ट्रेलिया) ने कुर्ट-नेलसन् (डेनमार्क) को ६-४, ६-४, १७-१९, और ६-४ पर हराया। इस प्रकार; इस वर्ष भी, फाइनल में दोनों खिलाड़ी आस्ट्रेलिया के आये। भारत को डेविस-कप "पेअर" कृष्णनन् तथा कुमार ने अमेरिका की चैम्पियन जोड़ी गार्डनर मूली तथ बज पेटी को ३-६, ६-४, ६-२, ३-६, और ७-५ पर पराजित किया और क्वाटर-फाइनल में प्रवेश किया। भारतीय खिलाड़ी आज अपने जीवन का सर्वोत्तम खेल खेले।

३ जुलाई को भारत की पुरुष युगल की जोड़ी स्वीडन के सेन डेविड्सन् तथा उल्फ स्वीमिट् से ६-४, ७-६, ६-४, ११-६ पर हार गये। खेल में भारतीय खिलाड़ी बहुत दब कर खेले; कृष्णनन् आज अच्छा खेलते तो परिणाम दूसरा होता; मालूम नहीं क्यों इस भारतीय खिलाड़ी का खेल एक समान स्तर पर नहीं रहता; कभी-कभी तो विश्व के सर्वोत्तम खिलाड़ी की श्रेणी प्राप्त कर लेते हैं और कभी साधारण खिलाड़ी से खेलते हैं।

४ जुलाई को पुरुष सिंगलस् का फाइनल मैच अस्लेकूपर और नील फ्रैसर (आस्ट्रेलिया) के बीच खेला गया। सैंटरकोर्ट पर देखने वालों की संख्या १५ हजार थी। खेल में हर पाइण्ट, हर गेम, हर सेट में दोनों खिलाड़ियों ने जम कर मुकाबिला किया, नील फ्रैसर हारे किन्तु हार में भी उनका खेल निखर आया था। अस्लेकूपर ६-३, ६-४, ३-६ और १३-११ पर जीते। इस प्रकार अस्लेकूपर विम्बल्डन के नवीन चैम्पियन हुए। भारत का इस मैच में आशातीत सफलता नहीं मिली। पुरुष युगल में कुछ सफलता मिली किन्तु वह भी अधूरी ही रही है।

"दीप अकेला ही जलता है"

लेखक:—श्री दुर्गादत्त शर्मा

★

सावन की काली रातों में,
मौन सिसकियाँ-सी भरता है।
किसी यक्ष की विवश व्यथाएँ,
क्यों, घन आँसू बन ढरता है ? दीप०

सोई दुनियाँ वेसुध-सी बन,
सुखद स्वप्न वारिद बनता है।
टप-टप बूंदों की झड़ियों से,
प्यार थपकियों-सा बनता है॥ दीप०

कहीं उपेक्षित कोई रोना,
आहों से मचला पड़ता।
देख किसी की सूनी करवट,
मेघ, दामिनी बन हँसता है॥दीप०

देख चंचला की चितवन को,
घन का प्यार उमड़ पड़ता है।
इधर किसी शापित प्राणी का,
प्यार अश्रु बन कर ढरता है॥दीप०

तरजन, गर्जन, बादल को सुन,
यक्ष-प्रिया का मानव रोता है।
अरे! किसी का प्यार आज यों,
दीपक की लौ बन जलता॥दीप०

दीप अकेला, प्यार अकेला,
झकझोर पवन क्यों जाता है ?
पुरवैया का मादक झोंका,
सेज भिजोकर क्यों जाता है ? दीप०

पता—बिड़ला पब्लिक स्कूल पिलानी (राजस्थान)

---

५ जुलाई विम्बल्डन प्रतियोगिता के सब फाइनल आज समाप्त हुए। अमेरिका की गिबसन ने इग्लैण्ड की ऐन्जीला मोर्टिमर को ८-६ ६-२ हराया। पुरुष युगल में भारतीय खिलाड़ियों पर विजय पाने वाले स्वीडन के डेविडसन तथा उल्फ स्वीमीट ने अस्लेकूपर फ्रेसर को (आस्ट्रेलिया) ६-४, ६-४, ८-६ पर हराया। स्त्रियों के डब्बलस में गिब्बसन तथा मरिया बूनो ने मागारेंट-डू-पून्ट तथा मागारेंट वार्नेर को ६-३ तथा ७-५ पर हराया मिक्स डब्बल्स् में आस्ट्रेलिया के बॉब हाव लारियन ने गिब्बसन् तथा प्रतियोगिता का सर्वश्रेष्ठ सन्मान से वंचित कर दिया; मिस गिब्बसन् गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी केवल दो विभागों में विजय प्राप्त कर सफल हुई किन्तु तीसरे विभाग में (मिक्स डब्बल्स्) में हार कर, "ट्रिपल क्राऊन" से वंचित हो गई।

बीणा

साहित्य-परिचय

हमें बनाना ऐसा ग्राम (कविता-संग्रह)

लेखकः—श्री शिवनारायण उपाध्याय 'शिव'

प्रकाशकः—तुलसी साहित्य सदन, इन्दौर

मुद्रकः—श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति मुद्रणालय, इन्दौर

पृष्ठ संख्या ३२, मूल्यः—पचास नये पैसे

देश की प्रायः ६० प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है, उन ग्रामों का गत इतिहास अवश्य ही गौरव-मय रहा है, किन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग में वे अनेक कुसंस्कारों से भर गये हैं। अतः किसानों के जीवन में क्रान्ति लाना केवल आवश्यक ही नहीं अत्यंन्त आवश्यक है । सर्वाङ्गीण सामाजिक ग्रामीण विकास में नवयुग झलकना ही चाहिए । जब ग्रामीणों के विचारों में क्रान्ति उत्पन्न होगी तभी उनका दृष्टिकोण बदल सकेगा और सभी आवश्यकताओं के अनुरूप ग्राम्य जीवन बनाया जा सकेगा। आज जैसी कि ग्रामीणों की अवस्था है उसमें यह पुस्तक उनके उत्थान में सहायक हो सकेगी ऐसी हमारी कामना है। छपाई सफाई सुन्दर है। पुस्तक की कविताएँ सरल और सुबोध हैं।

इसी लेखक की दूसरी पुस्तक, 'जाग उठे हैं गांव-गांव' में लेखक ने भारत देश के गाँवों को जगाने का प्रयत्न किया है। निर्माणकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलने के सदुद्देश्य से ही प्रेरित होकर लेखक ने सरल भाषा में किसानों के समझने योग्य इस पुस्तक का निर्माण किया है। ग्रामोन्नति के अनेक स्वरूपों का इसमें बड़ी सुगमता के साथ वर्णन किया गया है। पुस्तक ग्रामोपयोगी है। पृष्ठ संख्या २८ देखते हुए पुस्तक का मूल्य ७५ नये पैसे अधिक प्रतीत होता है। छपाई सफाई संतोष जनक, प्रकाशकः—कमल प्रकाशन १०७खजूरीबाजार, इन्दौर । मुद्रकः—बृजकृष्ण भार्गव भार्गव फा. आ. प्रि. व. इन्दौर ।

साहित्यिक समाचार

तराना

माध्यमिक विद्यालय में छात्र-सभा

स्थानीय माध्यमिक विद्यालय में श्री शिव उपाध्याय के संयोजन एवं श्री केशव जोशी की अध्यक्षता में तुलसी-पुण्यतिथि मनाई गई। रामायण पूजन के अनंतर छात्रों एवं शिक्षकों द्वारा रामायण पाठ, भाषण, कविता आदि आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत हुए। तुलसी के जयघोष के साथ कार्य संपन्न हुआ।

कल्याण विस्तार परियोजना कार्यालय में साहित्य गोष्ठी

श्री पुष्पा बहन खोपकर तथा श्री शंकर वामन पंडित के प्रयत्नों से नवीन लेखक संघ द्वारा तुलसी पुण्य तिथि के उपलक्ष में साहित्य गोष्ठी श्री डा० शर्मा की अध्यक्षता में की गई। सर्वश्री शिव उपाध्याय, नारायणसिंह ठाकुर, विकल, समाधिया, प्रेमी, सुलतान भाभा, राठोड़, दुबे, पंडित आदि की कविताएँ कहानियाँ एवं भाषण रुचिकर रहे। साहित्य-मनीषी श्री तुलसी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

श्री 'शिव' उपाध्याय साहित्य-मंत्री के प्रचार से नगर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षार्थियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। आवेदन-पत्र भरे जा रहे हैं। प्रतिवर्षानुसार इस वर्ष भी कक्षाएँ प्रारम्भ करने का विचार किया जा रहा है। प्रथमा से रत्न तक के सभी परीक्षार्थियों ने आवेदन पत्र भरे हैं।

उज्जैन

स्थानीय श्री हिन्दी विद्यापीठ में तुलसी जयन्ति का विशाल कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री शंकर्षणदास श्री वैष्णव ने की। कार्यक्रम में —श्री दिनेशचन्द्र शास्त्री, श्री निगम, श्री ललित, कमलाकांत, श्री शिवप्रमोद गोयल, पं० रामेश्वरजी त्रिपाठी एवं छात्र वर्ग में से श्री बालचन्द कोठारी ने अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। अन्त में कार्यक्रम के अध्यक्ष शंकर्षणदासजी ने तुलसीदासजी के जीवन पर विद्वतापूर्ण प्रकाश डाला। आपने कहा कि रामायण आदर्श ग्रन्थ है और इसके सिद्धान्तों पर चल कर ही देश नैतिक उत्थान कर सकता है। कार्यक्रम में अतिथि के प्रति श्री दिनेशचन्द्र शास्त्री ने आभार प्रदर्शन किया। कार्यक्रम सराहनीय था।

सम्पादकीय

राष्ट्रीय अनुशासन-योजना

हमारा युवक वर्ग किधर जा रहा है । कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में आये दिन हड़तालें और प्रदर्शन होते हैं और छात्रों में अपने अध्यापकों का आदर नहीं दिखाई देता। उनके जीवन में आदर्श और उद्देश्य का अभाव दीख पड़ता है । कुछ लोगों का विचार है कि अनुशासनहीनता की यह लहर थोड़े दिनों में खुद निकल जाएगी। लेकिन यह बात पूरी तरह ठीक नहीं है। इस गड़बड़ की तह में कुछ और कारण हैं और उनका निराकरण भी असम्भव नहीं।

पहला कारण है, ठीक ढंग के अध्यापकों का अभाव। वे अपनी ही समस्याओं में इतने उलझे रहते हैं कि विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा देने पर वे ध्यान ही नहीं दे पाते। दूसरा कारण है प्रांतीयता और जात-पाँत आदि की संकीर्ण भावनाएँ, जिनके कारण देश और राष्ट्र का गौरव और उसके प्रति अपने कर्तव्य का भाव नहीं जाग पाता।

तीसरा कारण विद्यार्थियों का राजनीतिक और आर्थिक विवादों में पड़ना है। वास्तव में राजनीतिक और आर्थिक मसले अध्ययन और विचार की वस्तु हैं। लेकिन होता यह है कि युवक और युवतियाँ इनको समझने के बदले भड़क उठते हैं और इनमें बेसोचे समझे कूद पड़ते हैं। एक और बात से भी विद्यार्थी हतोत्साह होते हैं। वह है चारों ओर से वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की निंदा और "क्लर्क पैदा" करने वाली आदि विशेषणों की बौछार।

फिर भी निराशा की कोई बात नहीं है। इस झंझावात में ऐसे भी अवसर आये हैं जब हमारे छात्रों ने बड़ी समझदारी और संयम का परिचय दिया है और कई झगड़ों को स्वयं निपटाने की कोशिश की है। इससे पता चलता है कि छात्रों की अनुशासनहीनता कोई असाध्य रोग नहीं। यदि उनकी बुद्धि और शक्ति को ठीक राह पर डाला जाय तो वे देश की अपार सेवा कर सकते हैं।

राष्ट्रीय अनुशासन योजना का यही उद्देश्य है। सबसे पहले इसमें विद्यार्थियों का शरीर और स्वास्थ्य बनाने पर जोर दिया जाता है। मानी हुई बात है कि स्वस्थ शरीर का मन भी स्वस्थ रहता है। अतः लड़के लड़कियों को स्वस्थ और चुस्त रखने के लिए उन्हें व्यायाम और कवायद करायी जाती है और खेल खिलाये जाते हैं। जहाँ तक अनुशासन का प्रश्न है, वह कोई अलग से सिखाने या पढ़ाने की चीज नहीं, वह तो एक आदत या व्यवहार है। अतः पढ़ाई के साथ ही उन्हें अनुशासन की आदत डाली जाती है। छुट्टियों में अवस्था और क्षमता के अनुसार उन्हें यात्राओं पर ले जाया जाता है और शिविरों में रखकर समाज-सेवा करायी जाती है। इस प्रकार उन्हें अनुशासित जीवन का अभ्यस्त बनाया जाता है, परन्तु इस बात की सावधानी बरती जाती है कि वे अपनी स्वतंत्र बुद्धि और इच्छा खोकर सहज आज्ञा-पालक न बन जाएँ।

दूसरा प्रयत्न होता है बालकों में ज्ञान, विचार-शक्ति और सहनशीलता बढ़ाने का। इसके लिए उनकी बुद्धि के अनुसार व्याख्यानों, फिल्मों, यात्राओं आदि का प्रबन्ध होता है। यह न कहकर कि 'ऐसा करो' और 'ऐसा मत करो' इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि बच्चे खुद सीखें। ऐसी शिक्षा से बच्चों

का मन शैतानी या उदंडता की तरफ नहीं जा पाता और वे मिल-जुलकर रहना सीखते हैं।

इस योजना का विचार, १९५४ में दिल्ली में हुआ, जब प्रधान मंत्री, श्री नेहरू ने राष्ट्रीय छात्र सैनिक दल के सामने भाषण में संकट के समय छात्रों से देश की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहने की अपील की थी। इस विचार को मूर्त रूप देने में तत्कालीन पुनःसंस्थापन उपमंत्री, श्री भोंसले का जापान आदि देशों का अनुभव बहुत काम आया। उन्होंने जापान आदि देशों में देखा कि छात्रों को किस प्रकार अनुशासन सिखाया जाता है और अनुशासन से ही उन पर स्वदेशाभिमान, त्याग और बलिदान के संस्कार पड़ते हैं।

श्री भोंसले ने सबसे पहले यह योजना दिल्ली के कस्तूरबा निकेतन में शुरू की। कस्तूरबा निकेतन शरणार्थी विधवाओं और उनके बच्चों और अनाथ बच्चों का आश्रय है। १९५४ में जब प्रधान मंत्री यहाँ के बच्चों की परेड देखने गये तो उससे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने इस योजना को सारे देश में चालू करने का सुझाव दिया।

इस योजना की सबने सराहना की और इसके अच्छे परिणाम को देखकर इसे दिल्ली में ही नहीं, फरीदाबाद, राजपुरा, उल्हासनगर और जालंधर में भी शुरू किया गया। यद्यपि इसके लिए कुल १ लाख रु. ही मिला था, फिर भी १९ स्कूलों के २४,८८१ छात्र-छात्राओं को इसके अनुसार शिक्षा दी जाने लगी।

१९५५-५६ में अनुशासन योजना के लिए २ लाख रु. मिला और इससे अम्बाला, पंचकुला, गुड़गांव, पानीपत और सौराष्ट्र में भी काम चालू किया गया और १९५६-५७ के शुरू में ४०,००० बच्चे इसके अंतर्गत शिक्षा पा रहे थे। इनमें से १५,००० दिल्ली में १०,००० पंजाब में, २०,००० पटियाल में, २,००० सौराष्ट्र में, ४,००० बम्बई में और ७,००० प० बंगाल में थे। १९५६ के अंत तक ६६,००० बच्चे इस योजना का लाभ उठा रहे थे। आयोजन आयोग ने भी इस योजना के महत्व को समझा और इसके विस्तार के लिए दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में ५० लाख रु. रखा है।

आजकल यह योजना पंजाब, बम्बई, प. बंगाल, दिल्ली, मध्यप्रदेश, और जम्मू-कश्मीर में चल रही है। उत्तर प्रदेश के कुछ स्कूलों में भी इसकी शुरूआत हुई है। इस साल के अंत तक करीब २०० स्कूलों में यह योजना चालू हो जाएगी और इससे लाभ उठाने वाले बच्चों की संख्या भी १ लाख से ऊपर पहुँच जाएगी। योजना के अंतर्गत शारीरिक शिक्षा के अध्यापक तैयार करने के लिए मालवीयनगर और फरीदाबाद में दो शिविर चलाये गये हैं। यहाँ से ३-३ महीने के पाठ्य-क्रम पूरे करके ६०० शिक्षक निकल चुके हैं।

यों तो इस योजना को देश-भर में फैलाने के लिए बहुत धन, संगठन और परिश्रम की आवश्यकता है, किन्तु इन चार सालों से इसकी जो प्रगति और सुपरिणाम सामने आये हैं, उनको देखकर यह विश्वास होता है कि इसमें स्वतः इतना सामर्थ्य है कि इसका विस्तार होना निश्चित है।

मध्य प्रदेश में शिक्षा-विस्तार

इन पिछले दो वर्षों में मध्यप्रदेश ने अप्रत्याशित रूप से शिक्षा-क्षेत्र में विकास लाभ किया है। जहाँ प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के विस्तार का प्रयत्न किया जा रहा है वहाँ हायर सेकण्डरी का भी भरपूर विकास हो रहा है। उच्च स्तरीय शिक्षा को भी भुलाया नहीं गया है, गतवर्ष तथा इस वर्ष कई महाविद्यालयों की स्थापना की गई है तथा स्नातकीय महाविद्यालयों को स्नातकोत्तरीय महाविद्यालयों का रूप दिया गया है। पूर्व-स्थित स्नातकोत्तरीय महाविद्यालयों में नवीन विषयों के अध्यापन का प्रबन्ध कर उन्हें विस्तार दिया गया है। इस विस्तार के कारण कहीं साधन जुटाना कठिन हो रहा है तो कहीं प्राध्यापकों तथा अध्यापकों का प्रबन्ध करने में विलम्ब हो रहा है। जिन अध्यापकों तथा प्राध्यापकों से कार्य लिया जा रहा है उनको भी अनेक कठिनाइयाँ हैं जिन पर समुचित रीति से विचार नहीं हो पा रहा है। हायर सेकण्डरी तथा प्रीयूनी-

(शेष पृष्ठ ५५८ पर)

समिति उत्थान के राजमार्ग पर

तुलसी-उत्सव

तारीख २०-२१ व २२ अगस्त को समिति-भवन में भारतीय संस्कृति के अमर-गायक, हिन्दी साहित्याकाश के अद्वितीय प्रतिभा-प्रभाकर, मानवता के संदेश वाहक, पुण्यश्लोक गोस्वामी तुलसीदास की पुण्यतिथि उत्साह के साथ मनाई गई।

ता० २० अगस्त बुधवार को सांय ७॥ बजे तुलसी के चुने हुए पदों का पाठ संगीत के रूप में किया गया। स्थानीय संगीत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री गोलवेलकर सा० के नेतृत्व में विद्यालय की स्नातिकाओं ने अपने सुमधुर कंठों से तुलसी के पदों का गान कर उपस्थित श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस अवसर पर कु० पुष्पा इनामदार ने—"रघुवर तुमको मेरी लाज" तथा—"मन पछितैहैं....." एवं उषा कोल्हेकर ने—"यह बिनती रघुवर गुसाईं....." तथा—"ऐसो को उदार जग माहीं....." पद गाकर सुनाया। श्री गरुड़ ने बाँसरी पर श्रीवलिवडेकर ने गिटार पर तथा श्रीखड़ीकर ने तबले पर भजन के साथ सुमधुर धुन जमाई। कार्यक्रम की सफलता के लिए प्राचार्य श्री गोलवेलकर तथा आचार्य श्री गरुड़ सा० का सहयोग सराहनीय रहा। आयोजन के अध्यक्ष थे वीणा के भूतपूर्व सम्पादक तथा डेली कालेज हिंदी विभागके अध्यक्ष श्रीभालचन्द्रजी जोशी तथा संयोजक साहित्य मुकटमणिषी श्री लाड़लीप्रसादजी सेठी। इसी अवसर पर राजकुमार आयुर्वेदिक कालेज के प्राचार्य श्री राधाकृष्णजी पाराशर ने संक्षिप्त में तुलसी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की।

दूसरे दिन ता० २१ अगस्त गुरुवार को समिति भवन में प्रातः ८॥ बजे श्री गुरुदेवप्रसाद दुवे ने तुलसीदास के चित्र का पूजन व आरती की तथा उपस्थित जन-सामुदाय ने तुलसीदास के भजन सामूहिक रूप से गाये। तत्पश्चात प्रचार मन्त्री श्री बियाणी द्वारा प्रसाद वितरण किया गया।

सायंकाल ७॥ बजे अ० सौ० कमलाबाई सा० किबे की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। श्री कमलाबाई किबे द्वारा गोस्वामी तुलसीदास के चित्र तथा डाक्टर सरजूप्रसाद की प्रतिमा को हार समर्पण करने के पश्चात पं० श्रीहरि कोठारी ने अपने मधुर कंठों से रामचरितमानस का पाठ किया।

तुलसी द्वारा मन की वंदना

राजकुमार आयुर्वेदिक कालेज के प्राचार्य श्री राधाकृष्णजी पाराशर ने तुलसीदास के जीवन का उदाहरण देते हुए बताया कि हम मनुष्य हैं तथा हमें मनुष्य बनने में कितना समय लगा है, कितनी ही बाधाएँ आई हैं और उन बाधाओं में से होकर हमें गुजरना पड़ा है व पड़ रहा है यह सब हमें तुलसी के जीवन से प्राप्त हो सकता है। जो भी कुछ हम देखते हैं वह प्रकृति है और जो हममें तन्तु है वे सब प्राकृतिक है तथा प्रकृति मन को किस तरह अपने बस में रखती है। यह मन गणेश के समान है इसीलिए ही तो उसकी वंदना की जाती है यदि यह ठीक रहे तो सब कार्य सुचारु रूप से हो जाते हैं और यदि न रहे तो सुचारु रूप से होने में कठिनाई उत्पन्न होती है। तुलसीदास ने इसीलिए मन की वन्दना भी की है और मन को एकान्त चित्रकूट में ले जा कर मानस की रचना की है।

तुलसी-साहित्य से मानव जीवन में स्फूर्ति

वीणा के सम्पादक तथा होलकर कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आचार्य रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' ने कहा कि भक्तों एवं विद्वानों की जो परम्परा हम देखते हैं ठीक उसी प्रकार विजेता की संस्कृति विजित

संस्कृति को अपने में निगल जाने की कोशिश करती है। तुलसीदास के समय हिन्दू-संस्कृति को मुस्लिम संस्कृति निगल जाने की पूर्ण कोशिश कर रही थी। हम देखते है कि मुगल जब भारत में आये तो उनके रीति रिवाज आये, बाद में जब अंग्रेज आये तो उनकी रहन-सहन-पोषाक आदि आये, उन्हें धीरे-धीरे भारतीय अपनाते भी गये, आज भारत से अंग्रेज चले गये हैं किन्तु हम उनके पहनावे को नहीं भूल पाये है। महमूद गजनवी ने मूर्तिपूजा का खंडन कर अपनी संस्कृति का प्रचार किया व फकीरों को स्थान स्थान पर फैलाया। हिन्दू संस्कृति के बचाव के लिए एक ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी जो कि संस्कृति की रक्षा करे ऐसे ही समय में रामभक्ति के रूप में तुलसीदास आगे आये। तुलसी के साहित्य से मानव-जीवन में स्फूर्ति आई। यदि हम इस समय संघर्ष करते तो विजयी नहीं हो सकते थे इसीलिए तुलसी ने रामभक्ति को अपनाने के लिए जनता को आव्हान किया। अंत में तुलसीदास को श्रद्धांजली अर्पित करते हुवे कहा कि वे सत्य के पुजारी तथा नैतिक सदाचार के मानने वाले थे।

कठिन समय में तुलसी का नेतृत्व

प्रो. श्यामलालजी शर्मा ने तुलसीदास के पदों को अपने मधुर कंठो से उपस्थित श्रोताओं को सुनाते हुए मंत्र-मुग्ध कर दिया। प्रो. शर्माजी ने कहा कि जब देश में बेकारी फैली हुई थी, जीविका बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती थी, किसान को खेती करना कठिन था, भिकारी को भीख भी नहीं मिलती थी, लोग धर्म विमुख होते जा रहे थे, अनेक पन्थों व पाखण्डों का जोर था, ऐसे कठिन समय में तुलसीदास ने जनता का नेतृत्व करते हुए शैव्यों तथा वैष्णवों के मतभेदों को समाप्त किया, जनता को एक-धर्मता प्रदान की, एक समाज का ढाँचा दिया, एक राजनैतिक रूपरेखा दी, रामराज्य की और छोटे-बड़े की मर्यादा को कायम रखने से ही सुख और शांति स्थापित हो सकती है इस रहस्य का उद्घाटन किया। तुलसी-साहित्य में भारतीय संस्कृति का वह निचोड़ा हुआ रस मिलता है जिसमें दार्शनिक तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति बहुत ही निखार के साथ आ सकी है।

जनकवाटिका में राम-सीता का मिलन

अध्यक्ष पद से सौ. कमलाबाई किवे ने तुलसीदास की मराठी संत तुकाराम से तुलना करते हुए कहा कि तुलसीदास संस्कृत व हिन्दी के प्रकांड पंडित थे। केवल सुनी सुनाई बातों पर ही उनका ज्ञान आश्रित नहीं था। उन्होंने साहित्य-दर्शन तथा अन्य धर्म-ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था। तुलसी ने प्रेम रूपाभक्ति को अपनाया। रामचरित्र मानस में राम-लक्ष्मण के वियोग में तड़पते हुए दशरथ-भरत कौशल्या आदि के चित्रण अच्छी तरह से किये हैं। बाल्यावस्था की तथा जनक की वाटिका में राम और सीता के मिलन का सुन्दर चित्र हमारे सामने अंकित किया है।

धर्मग्रंथों को भाषा के रूप में लाना

समिति के प्रबन्ध मन्त्री श्री शेषनारायणजी चौहान ने अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए तुलसी-साहित्य पर प्रकाश डाला और कहा कि तुलसीदास ने अपने समय में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह था धर्म-ग्रंथों को भाषा के रूप में ले आना तथा मानव-जीवन की अनेक परिस्थितियों पर अपना निर्णय प्रस्तुत करना। तुलसीदास ने अंधकार, निराशा और अकर्मण्यता के समय में प्रकाश दिया। अंत में आभार प्रदर्शित करते हुए उपस्थित सुमुदाय से इसी प्रकार सहयोग देने का अनुरोध किया। श्री सुन्दरसिंह चौहान का सहयोग सराहनीय रहा।

श्री बी. के. जोशी विद्यापीठ में

तारीख १ अगस्त को समिति द्वारा संचालित गांधी विद्यापीठ में तिलक जयन्ती श्री बी. के. जोशी शिक्षा-उपसंचालक के सभापतित्व में मनाई गई। होल्कर कालेज हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री चन्द्रजी ने तिलक के जीवन पर प्रकाश डालते हुए छात्रों से तिलक के जीवन से शिक्षा प्राप्त करने की अपील की।

गांधी व तिलक के कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन कराते हुए श्री बी. के. जोशी ने कहा कि लोकमान्य तिलक ने "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" का मन्त्र देकर हम सोते हुए देशवासियों को एक नई प्रेरणा, नया उत्साह एवं नया सन्देश दिया। तिलक

के हृदय में कोमलता थी, दया थी, वीरता थी, दृढ़ता थी, कर्तव्य परायणता थी, योग्यता थी, नीति थी, और अच्छे बुरे को समझने की क्षमता थी। कठिन से कठिन समय पर भी आदर्श और कर्तव्य को निभाने की वह महान् वृत्ति थी जिससे जीवन में सर्वदा ही सफलता मिली। उनका सम्पूर्ण जीवन कर्तव्य की कसौटी पर कसा गया। तिलक का 'गीता रहस्य' साहित्य-संसार की अक्षय निधि है। समिति के प्रधान मंत्री श्री कमलाशंकरजी मिश्र के अनुरोध पर आपने मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा इसी सत्र से शुरू होने वाले सेकण्डरी एज्यूकेशन पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। समिति से अपना निकट का सम्बन्ध बताते हुए श्री बी. के. जोशी ने कहा कि मैं बचपन से ही समिति से प्रेरणा पाता रहा हूँ, मैं समिति को अपनी ही संस्था मानता हूँ।

श्री जोशी सा. ने प्रथमा-मध्यमा तथा उत्तमा की लगने वाली कक्षाओं का निरीक्षण भी किया।

अंत में श्री शेष नारायण जी चौहान ने आभार प्रदर्शन किया।

स्वतंत्रता-दिवस पर

ता. १५ अगस्त स्वतंत्रता दिवस को प्रातः ७॥ बजे प्रबन्ध मंत्री श्री चौहान ने समिति प्रांगण में राष्ट्रीय ध्वज फहराते हुवे देश में होने वाले क्रान्तिकारी विकास कार्यों तथा साहित्य के विभिन्न अंगों की प्रगति पर प्रकाश डाला और अनुरोध किया कि आने वाले वर्ष में हर मनुष्य को देश तथा साहित्य के साथ ही आत्म-निर्माण करना चाहिये।

अंत में बच्चों को मिठाई वितरण की गई।

नवरत्न श्री गिरधर शर्मा सम्मानित

समिति के संरक्षक श्रीमान् गिरिधर शर्मा नवरत्न को १५ अगस्त सन '५८—स्वतन्त्रता दिवस के शुभ अवसर पर भारत गणराज्य के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र-प्रसाद ने उनकी संस्कृत साहित्य की सेवाओं के उपलक्ष्य में जो पुरस्कृत किया है उसके लिये समिति-परिवार उन्हें बधाई देता है। समिति-द्वारा आपकी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

हिन्दी दिवस

प्रति वर्षानुसार इस वर्ष भी आगामी १४ सितम्बर को हिन्दी-दिवस उत्साह के साथ मनाया जाएगा।

जगन्नाथ बियाणी
प्रचार-मन्त्री

(पृष्ठ ५५५ का शेष)

वर्सिटी कोर्स की स्थापना ने भी भ्रम तथा अनियमताओं को जन्म दिया है, फिर भी यह लगता है कि मध्य-प्रदेश शिक्षा समस्याओं की ओर जागरूक ही नहीं, दृढ़ता-पूर्वक डगें भरता चला जा रहा है। इस विस्तार को स्वीकार करते हुए भी हमें मध्यप्रदेश सरकार की ओर से एक शिकायत है—संस्कृत को उसका महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जा रहा है; साथ ही मध्यभारत क्षेत्र मराठी संश्लिष्ट होते हुए मराठी अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से उपयुक्त ध्यान आकर्षित नहीं कर पा रहा है। हम समझते हैं कि हिन्दी-भाषी क्षेत्र में स्थित मराठी को उसका उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए। स्नातकीय अथवा इस से भी नीचे शिक्षण को पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। मध्यभारत के सभी, नहीं तो ग्वालियर-इन्दौर के महाविद्यालयों में स्नातकोत्तरीय शिक्षण का प्रबन्ध परमावश्यक है। दो-तीन वर्ष महू में हुए मध्य-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अपने एक प्रस्ताव-द्वारा इस माँग का समर्थन भी किया था। हम आशा ही नहीं, विश्वास के साथ मध्यप्रदेशीय सरकार से निवेदन करते हैं कि वह सम्पूर्ण प्रान्त में संस्कृत को उसका उपयुक्त स्थान प्रदान करे तथा कम से कम उक्त दो स्थानों के महाविद्यालयों में मराठी के उच्चस्तरीय शिक्षण का शीघ्रातिशीघ्र प्रबन्ध करे।

——

महाकवि कालिदास-विरचित—

ऋतु-संहार [वर्षा-वर्णन]

[अनुवादकः-श्री पं. मदनलाल जोशी, शास्त्री, सा. रत्न]

(१९)

इन्द्र-धनुप औ विद्युत्-भूषित नीर-भारनत जलद महान्,
मधुर मेखला मणिमय कुण्डल से हो उज्ज्वल रूपनिधान।
ये ललनाएँ औ वे वारिद दोनों ही कर एक विचार,
प्रवासियों के मन हर लेते; एक साथ ही हो अनुदार ॥

(२०)

सजा सजाकर सुभग श्रवन जा करती हैं निशिदिन शृङ्गार,
ककुभ मञ्जरी के आभूषण निज अभिलाषा के अनुसार।
कान्त केतकी नूतन केसर औ कदम्भ कुसुमों के हार,
ये ललनाएँ वरद वेणियों में धारण करतीं प्रतिवार ॥

(२१)

श्याम अगरु-मिश्रित चन्दन से पूर्ण लिप्त है जिनका अङ्ग,
केश-पाश सुरभित है जिनका कुसुम भूषणों का कर सङ्ग।
सान्ध्य समय ऐसी प्रमदाएँ सुन गर्जन घन का घनघोर;
छोड़ श्वसुर-गृह तत्क्षण जातीं अपने शयन-सदन की ओर ॥

(२२)

सलिलभार से जो अवनत औ नीलकमल दल के सम श्याम,
उन्नत, मृदुल समीर विकम्पित, मन्थर गति से चल अविराम।
इन जलवाहक मेघों ने जो इन्द्र धनुष से शोभित हैं,
प्रिय विरहाकुल ललनाओं के हृदय किये अपहृत-से हैं ॥

(२३)

नवजल के सेवन से जिसका शान्त हुआ है तप-सन्ताप,
ऐसा यह वन, स्मित कदम्ब सुमनों से हर्षित-सा है आप।
पवन-चलित तरु-शाखाओं से नृत्य कर रहा चारों ओर,
कान्त केतकी कलिकाओं से दीख रहा ज्यों हास्य-विभोर ॥

(२४)

जलधर सम्मेलन हो जिसमें, ऐसा यह वर्षा का काल,
प्रियतम-सा हो प्राण प्रिया-हित गूँथ रहा सुमनों की माल।
मधुर मालती मौलश्री औ जूही की कलियाँ ले साथ,
कर्णाभूषण बना रहा है, नव कदम्ब कुसुमों से प्रात ॥

(२५)

ये प्रमदाएँ उन्नत निज कमनीय कुचों पर मुक्ताहार,
और स्थूल कटि-तट पर करतीं धारण शुभ्र वसन सुकुमार।
दीख रहा इनकी इस सुन्दर त्रिवली के अन्तर का धाम,
नवजल-कण सेवन से उद्गत, रोमपंक्ति से आज ललाम ॥

(२६)

सलिल बिन्दुओं की सङ्गति से शीतलता ले अपने साथ,
कुसुम-भार से अवनत तरुओं का भी कर सुन्दरतम साथ।
इधर केतकी-रज से रुचिकर समुत्पन्न कर सौरभ-सार,
प्रवासियों के हरता रहता हृदय, पवन यों बारम्बार ॥

(२७)

नीर-भार से नत ये वारिद, कर यों निज मन में सुविचार,
भार-वहन के समय हमारा एक यही होता आधार।
ग्रीष्मानल की तीव्र शिखाओं से पीड़ित उद्विग्न महान्,
विन्ध्याचल पर बरस बरस ये करते उसको मुदित समान ॥

(२८)

मनरञ्जक जो कामनियों का गुणगण से जो दिव्य ललाम,
वृद्ध विटप औ वल्लरियों का जो है पूर्ण सखा निष्काम।
जीवों का जो प्राण हेतु है ऐसा यह वर्षा का काल,
देवे तुमको मनोऽभि-वाञ्छित, इष्ट वस्तु, प्रायः सब काल ॥
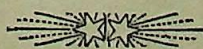
पताः—जीवागंज मन्दसौर

'वीणा' रजिस्टर्ड नं. जे. ८७

अनुक्रम संख्या 080328

श्रीमान् संपादक जी 'गुरुकुल पत्रिका'
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार
(उ.प्र.)

मुद्रक एवं प्रकाशक—पं० उमाशंकर जोशी मैनेजर, श्री मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति प्रेस, इन्दौर.